मतादर्श

सामाजिक विज्ञान, मानविकी एवं वाणिज्य की शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ० प्रसून दत्त सिंह

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

संपादक

डॉ० रितेश भारद्वाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मेखला प्रकाशन

एफ-3/139, सेक्टर-16, रोहिणी

दिल्ली-110089

वर्ष : 14 **अंक** : 4 ❑ अक्टूबर–दिसम्बर, 2022

मतादर्श

मतादर्श भारत में समाचार पत्रों के निबंधक (आर.एन.आई.) द्वारा अनुमोदित है।

संपादक मंडल

डॉ॰ आर. एन. कुंअर

डॉ॰ बामेश्वर सिंह

डॉ॰ विद्या भूषण श्रीवास्तव

डॉ॰ रवीन्द्रनाथ राय

डॉ॰ अमरकान्त सिंह

डॉ॰ लक्ष्मेश्वर ठाकुर

फोन : 011–35522994, 40564514, 22753916

e-mail : matadarsh.journal@gmail.com

मुद्रक एवं प्रकाशक अलका सिंह द्वारा एफ–3/139, सेक्टर–16, रोहिणी दिल्ली–110089 से प्रकाशित तथा बी. के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा दिल्ली–32 से मुद्रित

नोटः पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

Editorial

The farmers' crisis arising out of two consecutive years of deficit monsoon has put a lot of focus on the state of Indian agriculture and its future readiness recently. The normally urban tinted media has also for once turned its attention to the problems afflicting India's agriculture sector, and distress of farmers who are disproportionately dependent for their livelihood on nature's benevolence. The rising food prices over the past two years and the cascading effect on the entire economy of a slowing agriculture sector has shown us evidently that India cannot dream about a two digit growth rate unless the shackled rural economy is freed and its engine speeded up. The Union Budget of 2016-17 appropriately took cognisance of the fact that the closely intertwined farm sector and rural economy need more than piecemeal benefits to sustain the large population dependent on this sector. The prediction of a healthy monsoon from the weatherman has also brought much relief. However, we need much more than budget allocations and good rainfall to make agriculture sustainable in the long run. We need a broader vision and long term policy approaches. Despite supporting almost 60 percent of India's total population, the contribution of agriculture to the GDP has been consistently declining. It currently stands at around 15 percent. A sector that provides work to more than half of the country's population contributing less than 1/5th to its GDP indicates a clear imbalance. While India grew by over 7 percent per cent last year, agriculture remained more or less stagnant. India's food grain production which has consistently been abundant over the past several years is showing signs of plateauing, suggesting saturation. These statistics point to the need for a major reshuffle in the rural economy. It clearly indicates that an unsustainably excessive part of the population is dependent on one sector and that we need to wean away labour out of agriculture to other sectors. The prevailing situation also calls for a need for major policy measures to boost the rural economy and create new infrastructure for the farm sector. What we need is a dedicated policy push to create alternate avenues of employment and work in rural areas. This calls for major skill development programs in rural areas which

can push a section of the population towards non-farm activities and reduce overcrowding of the agriculture sector. Alternative income avenues to create jobs outside agriculture in rural areas include a policy push to help develop the retail sector, improve education, boost rural entrepreneurship, develop tourism, cottage and handicraft industries, horticulture, fisheries and create better connectivity with urban centres and infrastructure to make business ideas viable.

—Editor

इस अंक में

बी०एड० विभाग

शिक्षा में गुणात्मक सुधार–अनिल कुमार यादव 7
औपचारिक, अनौपचारिक एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा–अरविन्द्र कुमार मिश्र 10
समाज की प्रगति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका–डॉ० नागेन्द्र राम 13
शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य–राम विलास यादव 16
उच्च शिक्षा की दशा एवं दिशा–संतोष कुमार पाल 19
भारत में प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप–सुरेन्द्र कुमार रजक 22
माध्यमिक शिक्षा आयोग की पृष्ठभूमि–विकास सिंह 25

रक्षा एवं स्त्रातजिक

रक्षा प्रौद्योगिकी की आवश्यकताएँ एवं महत्व–डॉ० अश्विनी कुमार पाण्डेय 28

जन्तु विज्ञान

हमारे दैनिक जीवन में जन्तुविज्ञान का महत्व–अशोक कुमार सिंह 31

वनस्पति विज्ञान विभाग

वनस्पति विज्ञान के इतिहास का एक संक्षिप्त परिचय–डॉ० अवधेश कुमार यादव 34

बी०एल०एड० विभाग

कोविड-19 के प्रभावों का विश्लेषण भारतीय शिक्षा प्रणाली–अमरजीत सिंह यादव 37
शिक्षण अधिगम सामग्री प्रयोग एवं रखरखाव–योगेश सिंह 39
कोविड-19 महामारी पर एक व्यापक अध्ययन: भारत में स्कूली शिक्षा पर प्रभाव–योगेन्द्र कुमार सिंह 43
शिक्षा दर्शन की आवश्यकता–विवेक सिंह 46
भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरूआत–पदम सिंह 49
बदलते प्ररिप्रेक्ष्य में शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप–ओमप्रकाश सिंह यादव 52
शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009: एक समावेशी अधिनियम–डॉ० नन्द किशोर वर्मा 55
भारत में विभिन्न शिक्षा समितियाँ तथा सिफारिश–मुकुंद लाल 58
भारतीय उच्च शिक्षा के विभिन्न स्वरूप–घासी राम सिंह 62
भारत में शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ–दिलीप कुमार यादव 65

भौतिक विज्ञान विभाग

वैश्वीकरण में भौतिक विज्ञानों की भूमिका–ज्ञान प्रकाश सिंह 68
हमारे दैनिक जीवन में भौतिक विज्ञान की भूमिका–डॉ० सुयश कुमार श्रीवास्तव 71

रसायन विज्ञान विभाग

दैनिक जीवन और रसायन में संबंध–सलीम सिद्दिकी 74
रसायन विज्ञान का विकास एवं का महत्त्व–विश्व प्रताप शुक्ल 77

गणित विभाग

दैनिक जीवन में गणित का महत्व–डॉ० अजय सिंह 80
गणित शिक्षण के विभिन्न उद्देश्य–राजीव कुमार शर्मा 84

हिन्दी

आदिवासी साहित्य विमर्श–डॉ० अभय नाथ सिंह 87

इतिहास

ब्रिटिश भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन–नीति वर्मा 90

संस्कृत

शुल्बसूत्रों में वर्णित गणितीय विषयों का आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण–डॉ० आभा द्विवेदी 94

समाजशास्त्र

भारत में महिला सशक्तिकरण: महिला स्वयं सहायता समूहों की भूमिका–कौमुदी राय 101

अर्थशास्त्र

दुग्ध उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नींव–नविता कुमारी 106
आर्थिक विकास एवं भारतीय बैंकिंग प्रणाली–स्मिता कुमारी 108
लघु एवं कुटीर उद्योग और ग्रामीण अर्थव्यवस्था–सुष्मिता कुमारी 110
आर्थिक मानवाधिकार और विकास–डॉ० सीमा कुमारी 112

राजनीति विज्ञान

रूढ़िवादी हिन्दू और डॉ० भीमराव अम्बेडकर का संघर्ष: एक ऐतिहासिक विवेचन–अजीत कुमार शर्मा 118
स्वामी विवेकानन्द के सामाजिक दर्शन का आधार: आध्यात्मिक एकता–डॉ० मदेश कुमार तिवारी 120
विनोबा भावे का भूदान आन्दोलन: एक अवलोकन–डॉ० अनिल शर्मा 124
भारत-श्रीलंका सम्बन्ध: श्रीलंका की जातीय समस्या के विशेष परिप्रेक्ष्य में (1947-1996)–डॉ० हनुमान सहाय मण्डावरिया 128

इतिहास

आचार्य नरेन्द्र देव और स्वाधीनता संग्राम–आद्या शंकर यादव 135
महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका तथा लैंगिक भेदभाव का विश्लेषण–डॉ० रचना ग्रोवर; सोनम यादव 139

वाणिज्य संकाय

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना का अध्ययन बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में–ब्रज भूषण कुमार; डॉ० प्रभु नाथ सिंह 143

मनोविज्ञान

फ्रायड और टैगोर की कामदृष्टि : एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण–निशिकान्त जायसवाल 148

HISTORY

Vedic Mathematics In Ancient India : A Review—Dr. Neeraj Devi 152
Environmental Change and Urbanization in the Indus Valley and Ganga Valley [C. 2500 B.CE. - AD 8th Century]—Dr. Manoj Kumar 157

GEOGRAPHY

Historical Prospective of Evolution of the Siwan Town—Mukesh Kumar Ram 164

LAW

Role of Juvenile Justice System in India—Karishma Tamta 167

APPLIED ECONOMICS AND COMMERCE

Digital India: Challenges And Oppourtuinity, In The Perspective Of State Of Bihar—Dr. Ratan Kumar 181

COMMERCE

Implications of GST on Unbranded Food Items—Dr. Phool Chand 186
Role of Restructuring of Psb's in India's $5 Trillion Economy—Dr. Ramveer 189

POLITICAL SCIENCE

National Education Policy : Bringing Gandhian Education Philosophy Under Spotlight—Neha Swami 197

ECONOMICS

Perceived Relationship Between Corporate Capital Structure And Value Of Firm: A Case Study Of Apollo Tyres Limited—Sandhya Gupta 203
Health and Economical Problem of the Elder's in Rural Areas—Navin Kumar Singh 207

ENGLISH

Events and Tragedy in English Literature—Dr. Prakash Kumar 210

शिक्षा में गुणात्मक सुधार

अनिल कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

शिक्षा के दो पक्ष होते हैं। एक आंतरिक, जिसमें पाठ्यक्रम आता है और दूसरा बाह्य, जिसमें शिक्षण पद्धति आती है। यह दूसरा पक्ष पहले पक्ष से तय होता है। यानी पाठ्यक्रम से पद्धति निर्धारित होती है। क्या पढ़ना है, इस पर निर्भर करता है कि उसे कैसे पढ़ाया जाए? इसलिए जिस विधि से विज्ञान पढ़ाया जाता है, उसी विधि से कला नहीं पढ़ाई जा सकती, ठीक वैसे ही जैसे जिस तरीके से तर्क किया जाता है उसी तरीके से प्रेम नहीं किया जा सकता। विषय के हिसाब से विधि बदल जाती है। इसलिए शिक्षा पर विचार करते वक्त सबसे पहले इस पर विचार किया जाना जरूरी है कि पढ़ा क्या जाए? यानी पाठ्यक्रम क्या हो?[1]

यही सवाल शिक्षा का उद्देश्य तय करता है। आखिर हमें शिक्षा क्यों चाहिए? हम शिक्षित होकर क्या करेंगे? शिक्षा हममें कौन-सी तब्दीली लाएगी? इससे हमारी किस समस्या का समाधान होने वाला है? यह सवाल आज भी उतना ही प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है जितना उस दिन रहा होगा, जिस दिन पहली बार किसी ने शिक्षा की आवश्यकता महसूस की होगी। और इसका जवाब आज भी वही होगा जो संभवत: उस दिन दिया गया होगा- कि शिक्षा मनुष्य को विकसित करती है, उसे सभ्य और सामाजिक बनाती है। यानी कुल मिलाकर उसे सही ढंग से जीने की कला सिखाती है। कोई पूछ सकता है कि जब शिक्षा से संबंधित सवाल और उसका जवाब दोनों मालूम है तो फिर इस पर विचार करने की जरूरत क्या है?

जरूरत इसलिए है कि जीने का वह सही ढंग क्या है, यह आज तक अनुत्तरित है। अनुत्तरित कहने का अर्थ यह नहीं है कि इस सही ढंग का निर्धारण कभी किया ही नहीं गया। शिक्षा से संबंधित जितनी परिभाषायें दी गई हैं, जितने विचार प्रस्तुत किए गए हैं, वे सब इस ढंग निर्धारण की प्रतिक्रयायें हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह निर्धारण कभी हुआ ही नहीं, बल्कि इसका अर्थ यह है कि वह सही ढंग क्या है, यह आजतक सुनिश्चित नहीं हुआ। और सुनिश्चित नहीं हुआ ऐसा भी कहना ठीक नहं है, अपितु यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि सुनिश्चित हुआ, परंतु अपने देश, काल, परिस्थिति और परिवेश के हिसाब से सुनिश्चित हुआ। अब चूंकि ये सभी परिवर्तनशील हैं, इसलिये अतीत में जो इनका स्वरूप था, वह वर्तमान में नहीं रह गया है। फलत: कल इनके हिसाब से जो सही था, वह आज सही नहीं रह गया। ऐसी स्थिति में अभी के हिसाब से क्या सही है यह तय करना शिक्षा का उद्देश्य है। और यह उद्देश्य द्विआयामी है। एक आयाम तो यह है कि शिक्षा सही का पैमाना तय करें और दूसरा यह कि उस पैमाने के अनुकूल व्यक्ति निर्मित करें। इस प्रकार शिक्षा का मुख्य दायित्व यह है कि वह सही मनुष्य विकसित करे।[2]

इस प्रकार अभी की शिक्षा केवल भौतिक विकास, बाह्य समृद्धि, दैहिक सुख आदि से जुड़ी हुइ है, और इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न है। इसमें मानसिक शांति, आध्यात्मिक उत्थान तथा आंतरिक प्रगति आदि के लिए कोई जगह नहीं है। इसीलिए दर्शन, साहित्य, संगीत, कला आदि विषय जो मनुष्य को भीतर से विकसित करते हैं, हाशिये पर चले गए हैं, जबकि इनके बगैर मनुष्यता सही मायने में विकसित हो ही नहीं सकती।

लेकिन विडंबना यह है कि जो लोग शिक्षा पर निरंतर विचार करते हैं, बच्चों के बस्ते के बोझ से चिंतित हैं, उन्हें खेलने के पर्याप्त अवकाश नहीं मिल पाने से दुखी हैं, उनमें उपजने वाले मानसिक विकारों से त्रस्त हैं और उनके रोबोट होते जाने से आक्रांत हैं, वे भी इस मूल कारण पर उंगली नहीं रखते। वे विकास की इसी अवधारणा को स्वीकारते हुए शिक्षा में सुधार लाना चाहते हैं, जो कि संभव नहीं है। यह नीम रोप कर आम पाने का प्रयास है। आखिर इस व्यवस्था में यह कैसे संभव है?

जब सबको अधिकतम समृद्धि चाहिए तो उसके लिए गलाकाट प्रतिस्पर्धा होगी और उसमें सब अलग आना चाहेंगे। ऐसी स्थिति में छांटने के तमाम उपाय करने पड़ेंगे और चुनाव का सख्त पैमाना अख्तियार करना पड़ेगा ताकि न्यूनतम छात्र सफल हो सकें।

ऐसे शिक्षण-संस्थान देश के नवनिम्राण में संलग्न संगठन अथवा संस्थाएँ स्वतंत्र रूप से खोल सकती हैं या सरकार की मदद ले सकती हैं। सरकार की मदद के लिए उसे इस वैकल्पिक अवधारणा और उनकी योजनाओं को ठीक से समझाया जाना जरूरी है। यह काम संगठन और संस्थाओं का प्रतिनिधि मंडल उससे मिलकर कर सकता है। जब इस तरह के शिक्षण-संस्थान खोले जाएंगे, उसमें इस तरह का पाठ्यक्रम लागू होगा और इस तरह की शिक्षण-पद्धति अपनाने से छात्रों के बस्ते का बोझ भी कम होगा, उन्हें खेलने के अवसर भी मिलेंगे। उनमें दूसरे से आगे निकलने की घातक प्रतिस्पर्धा तथा अनावश्यक वस्तुओं को संग्रह करने की विकृत होड़ नहीं होगी, क्योंकि उनका स्वस्थ विकास हुआ रहेगा। उस विकास में शारीरिक, मानसिक, हार्दिक और आत्मिक सभी तरह विकास शामिल होंगे। इससे उनका व्यक्तित्व संतुलित होगा। ऐसे लोग देश का नवनिर्माण कर सकेंगे और विश्व मानचित्र पर देश को नये रूप में स्थापित कर सकेंगे।

हमारे यहां प्रतिभाओं की कमी नहीं है। यहां की प्रतिभाएं पूरे विश्व में अव्वल हैं यहां श्रमिकों की भी कमी नहीं है यहां कि श्रमिक हर जगह फैले हुए हैं। यहां उर्वर जमीन की कमी नहीं है। यहां बहुत जमीन आज भी बंजर पड़ी हुई है। नदियों की कमी नहीं है। कई नदियों का संजाल बिछा है। मतलब यहां कृषि केंद्रित विकास के लिये आधारभूत संरचनाओं की कमी नहीं है। जो लोग नवनिर्माण के लिए प्रयासरत हैं उन्हें पूरे आत्मविश्वास के साथ यहां नेतृत्व करना पड़ेगा।

परंतु इस पगडंडी पर चलने में सबसे बड़ा भय है अपने पिछड़ जाने का। यह काम किसी पुराने गिरते हुए ढांचे को इधर-उधर से ठीक-ठाक करके बचा लेने भर का नहीं है, बल्कि जर्जर हो गए खतरनाक ढांचे को पूरी तरह ध्वस्त करके नया ढांचा निर्मित करने का है। चूते छप्पर को प्लास्टिक से ढंक कर एक-आध बारिश काटी जा सकती है, पूरा जीवन नहीं गुजारा जा सकता। उसके लिए तो नया मकान ही बनाना पड़ता है। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था को भी इस जर्जरता से मुक्ति चाहिए। नये निर्माण के लिए शिखा को भी बिल्कुल नया होना पड़ेगा। विकास, बाजार, विज्ञापन, औद्योगीकरण, उदारीकरण, भूमंडलीकरण जैसे तमाम शब्दों के चक्रव्यूह से बचाते हुए शिक्षा को नये अर्थबोध से युक्त करना होगा।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु निम्नलिखित विकल्प हो सकते हैं:-

समाज व्यवस्था के कारक

1. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा- भारतीय समाज में सभी नागरिक न्यूनतम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नागरिक होंगे। इस दिशा में केन्द्र व राज्य सरकारों ने काफी प्रयास भी किया। बिहार सरकार द्वारा चरवाहों को विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए "सचल विद्यालय'' उत्तर प्रदेश में "आश्रम पद्धति विद्यालय'', "शिक्षा मित्र योजना'' एवं "शिक्षा गारण्टी योजना'' जैसी कई योजनाएँ एवं कार्यक्रम भी चलाए गए हैं।

'नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण' हेतु 6 से 14 वर्ष के बच्चों के नामांकन और उनके विद्यालय में बने रहने के साथ-साथ उनके निष्पत्ति स्तर में सुधार के प्रयास किए गए हैं।[3] प्राथमिक शिक्षा में नवीं योजना में निम्नलिखित विशेष प्रावधान किए गए हैं-

(i) औपचारिक विद्यालयों में 1.84 करोड़ बच्चों का नामांकन सुनिश्चित किया जायेगा और अवशेष बच्चों को अनौपचारिक शिक्षा केंन्द्रों में भेजने की व्यवस्था की जाएगी।

(ii) प्रदेश में 4804 नए प्राथमिक विद्यालय खोले जाने का प्रस्ताव किया गया है।

(iii) 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड स्कीम' के अन्तर्गत 1770 विद्यालयों में आवश्यक व्यवस्थाएँ सुनिश्चित की जाएँगी।

(iv) माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के मौलिक अधिकार के अन्तर्गत 447 करोड़ रुपए के अतिरिक्त परिव्यय की व्यवस्था की गई है।

(v) 'मिड डे मील स्कीम' के अन्तर्गत 1.31 करोड़ बच्चों को लाभान्वित किया गया है।

2. अस्पृश्यता निवारण- वैधनिक दृष्टि से 1955 के अस्पृश्यता कानून द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गय, फिर भी भारत में अस्पृश्यता जातियों की अनेक समस्याएँ रही हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् नगरों में इनकी आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में अवश्य परिवर्तन आया है, किन्तु ग्रामीण समाज में आज भी इनकी दयनीय स्थिति है। ग्रामीण समाज में अनुसूचित जातियों के व्यक्ति भूमिहीन कृषि श्रमिक हैं और जिनके पास भूमि है भी वह नाम-मात्र की है, जिससे उनके सम्पूर्ण परिवार का गुजारा सम्भव नहीं है। अधिकांश अनुसूचित जातियों के व्यक्ति ब्राह्मण और क्षत्रियों के खेतों पर पीढ़ियों से काम करते चले आ रहे हैं। इनके श्रम के बदले कुछ पंसेरी अनाज प्राप्त हो जाता था और आज कुछ रुपए।

3. पिछड़े समुदायों का विकास- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के विकास के लिए एक ओर जहाँ पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं वहीं वोटों की इस राजनीति में पिछड़े वर्ग के कथित उत्थान के लिए भारतीय संविधान में अनुच्छेद 15(4), 16(4), 17, 23, 25, 29 और 46 आदि-आदि के अन्तर्गत विशेष व्यवस्थाएँ की गई।

1. बालक का समाजीकरण- भारत में अनेक प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव मनाए जाते हैं। होली के दिनों में लोग आपसी द्वेष भुलाकर एक-दूसरे को गले लगाते हैं। दशहरा के समय लोग राम-रावण के युद्ध को देखने के लिए हजारों की संख्या में एक स्थान एकत्र होते हैं। दीवाली के समय गणेश-लक्ष्मी का पूजन करके अपने घरों को लोग प्रकाशित करते हैं। 15 अगस्त एवं 26 जनवरी तथा 2 अक्टूबर को सभाओं का आयोजन, चर्खा तथा तकली प्रतियोगिता तथा भजन-कीर्तन का आयोजन करते लोग खुशी मनाते हैं। बालक इन सब उत्सवों में भाग लेकर सहयोग, प्रतिद्वन्द्विता आदि गुण सीखता है। वह सामूहिक रूप से खुशी मनाना सीखता है।

समाजीकरण करने में विद्यालय बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। विद्यालय इस प्रक्रिया का औपचारिक अभिकरण है। अत: विद्यालय इस स्थिति में होता है कि वह बालकों को सामाजिक संस्कृति से परिचय कराए और सामाजिक प्रथाओं का मूल्यांकन करके नए समाज की रचना की प्रेरणा दे। विद्यालय भी एक प्रकार का समाज ही है। यहाँ पर छात्रों के बीच में, छात्रों एवं अध्यापकों के बीच में, अध्यापकों के ही बीच में,

छात्रों एवं प्रधानाचार्य के मध्य तथा शिक्षकों एवं प्रधानाचार्य के मध्य सामाजिक अन्त:क्रिया होती रहती है। बालक का समाजीकरण करने में विद्यालय में निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जा सकता है-

(i) विद्यालय में सामूहिक कार्यों की व्यवस्था करना; नाटक, वाद-विवाद, सामूहिक शिक्षण आदि का आयोजन करना।

(ii) सामूहिक अन्त:क्रिया के अन्य विभिन्न अवसर प्रदान करना; यथा-विद्यालय एवं समाज के मध्य सम्पर्क बढ़ाना।

(iii) सामाजिक कौशलों एवं सामाजिक अनुभवों की शिक्षा प्रदान करना। पत्र-लेखन, सहभोज, टेलीफोन का प्रयोग आदि ऐसे ही कौशल हैं।

इस प्रकार परिवार, विद्यालय और समुदाय बालक का समाजीकरण करने में सहायक होते हैं।

2. मानवतावादी समाज- भारत का भावी समाज मानवतावाद पर आधारित होगा। मानवतावाद पर विनोबा के विचार और अन्य शिक्षाशास्त्रियों के विचार प्रेरणादायी हैं। आचार्य विनोबा भावे का कथन है, "कहीं फैक्ट्री के मालिक विरुद्ध मजदूर, कहीं साम्यवादी विरुद्ध पूँजीवादी, तो कहीं अरब विरुद्ध इजराइल का सवाल पेश होता है।'' इस स्थिति से विश्व को भारत उभार सकता है, क्योंकि भारत के ही आध्यात्म में विनोबा के अनुसार, ऐसी शक्ति मौजूद है और संसार भी भारत से यही आशा करता है। विनोबा का कहनाा है "हिन्दुस्तान से दुनिया यही अपेक्षा रखती है कि सारी दुनिया में जब विरोध निर्माण होगा तो उसमें समन्वय पैदा करने का काम हिन्दुस्तान करे।''[4]

3. बालिका-शिक्षा- बालिका शिक्षा के सन्दर्भ में भावी समाज के निर्माण में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना समीचीन होगा-

(i) भविष्य में महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

(ii) लड़के तथा लड़कियों में चले आ रहे भेदभाव को समाप्त किया जाए।

(iii) बालिका शिक्षा के प्रसार के लिए योग्य अध्यापिकाएँ, जो ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की इच्छुक हों, अधिक संख्या में नियुक्त की जाएँ।

(iv) केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को महिला शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(v) बालिका एवं बालक विद्यालयों को समान सुविधाएँ देने का प्रयत्न करना चाहिए।

योजना आयोग की चौथी पंचवर्षीय योजना तक सभी राज्यों में बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उड़ीसा में बालिकाओं के कम नामांकन की समस्या थी। 11 से 14 वर्ष की बालिकाओं की समस्या विशेष रूप से जटिल थी, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में माता-पिता अपने बच्चों को बड़ी संख्या में स्कूल से वापस बुला लेते थे। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, एवं मध्य प्रदेश में इस समस्या के प्रति विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। चतुर्थ योजना के अन्त तक नामांकन 637 लाख बढ़ा, जिसमें 393 लाख लड़के तथा 244 लाख लड़कियाँ शामिल थीं।

सन् 1970-71 से 1975-76 की पंचवर्षीय योजना के लेकर नवम् पंचवर्षीय योजना तक 14 वर्ष की आयु वर्ग की बालिकाओं के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा पर बहुत जोर दिया गया तथा राज्य सरकारों को भी इस दिशा में समुचित कदम उठाने के लिए कहा गया, जिसके फलस्वरूप सभी राज्यों ने 6 से 11 आयु वर्ग की बालिकाओं के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की और इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता भी मिली।वर्ष 1987-88 से हमारे देश में शिक्षा अत्यन्त तीव्र गति से लोकप्रिय हुई है और लगभग 50 प्रतिशत बालिकाएँ बालकों के विद्यालय में अध्ययन करती हैं। ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ बालक तथा बालिकाओं की संख्या अधिक नहीं है, वहाँ बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय खोलने की आवश्यकता नहीं है। नवीन क्षेत्रों में प्रत्येक 1 किलोमीटर पर प्राथमिक स्तर पर सहशिक्षा विद्यालय खोले गए हैं।

संदर्भ

1. Ministry of Human Resources Development. 1992. National Policy on Education 1986—Programme on Action 1992 (NPE). New Delhi: Government of India.
2. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT
3. University Education Commission. 1950. Report of the University Education Commission (UEC). New Delhi: Government of India.
4. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT

औपचारिक, अनौपचारिक एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा

अरविन्द्र कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

शिक्षा से तात्पर्य हमारा उस क्रिया से है जो मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह समाज का उपयोगी प्राणी बन सके। शिक्षा वह कार्य है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। अत: शिक्षा के द्वारा मनुष्य सभ्य बनता है। अर्थात् उसकी आदिकालीन बर्बरता कम हो जाती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी उन शक्तियों को विकसित करता है जो उसे सफलता प्राप्त करने में सहायक होती हैं। शिक्षा ऐसी कुछ नहीं हैं जो किसी वस्तु के रूप में दी जा सके। शिक्षा तो एक प्रकार की 'चेतना' है जिसे मनुष्य स्वयं प्राप्त करता है। आदिकाल से मनुष्य सीखता आ रहा है और जो कुछ उसने सीखा, उसे शिक्षा का रूप दिया। दूसरे शब्दों में, शिक्षा मानव-समाज की संचित सीख है जिसे परम्परा और परिस्थिति के अनुसार मनुष्य ग्रहण करता है।[1]

वर्तमान युग में ऐसा व्यक्ति मिलना नितान्त असम्भव है जो शिक्षा के सम्बन्ध में किसी-न-किसी प्रकार की धारणा न रखता हो। आप यह देखेंगे कि विभिन्न व्यक्तियों की धारणाएँ एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न होती है। व्यक्तियों की धारणाओं की भिन्नता का आधार हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का आदर्श एक-दूसरे से भिन्न होता है। जैसा जिसके जीवन का आदर्श या उद्देश्य होता है, शिक्षा के प्रति वह वैसा ही अपना दृष्टिकोण रखता है। व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप होते हैं-

(1) औपचारिक
(2) औपचारिकेत्तर
(3) अनौनचारिक

औपचारिक शिक्षा

विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलने वाली शिक्षा को औपचारिक शिक्षा कहते हैं। औपचारिक शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षा विधियां निश्चित होते हैं। औपचारिक शिक्षा योजनाबद्ध होती है और इसकी योजना बहुत कठोर होती है। सीखने वालों को विद्यालय महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय को समय सारणी के अनुसार कार्य करना पड़ता है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा लेने एवं प्रमाणपत्र देने की व्यवस्था होती है।

औपचारिक शिक्षा की यह बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह व्यक्ति के ज्ञान का विकास करते हुए उसके आचरण को उचित आधार प्रदान करती है और व्यक्ति को किसी व्यवसाय या उद्योग के लिए योग्य बनाती है। औपचारिक शिक्षा समाज की दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक मांगों की पूर्ति में सहायक होती है और उसके लिए विशेषज्ञ तैयार करती है। समाज इसके द्वारा उन्नति करता है। औपचारिक शिक्षा के माध्यम से ही अध्यापक, वकील, वैद्य, हकीम, डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक एवं तकनीशियन तैयार किये जाते हैं। औपचारिक शिक्षा के अभाव में इन सबका निर्माण नहीं होगा और जिस समाज में इनका निर्माण नहीं होता है वह समाज उन्नति नहीं कर सकता है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था होती है। औपचारिक शिक्षा के व्यवस्थापकों को अधिक धन एवं समय खर्च करना पड़ता है और औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने वालों को भी अधिक धन एवं समय व्यय करना पड़ता है। बहुतेरे छात्रों को अपनी शिक्ष बीच में ही छोड़ देनी पड़ती है और इस प्रकार इस शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोध होता है। यह शिक्षा कई स्तरों पर व्यवस्थित होती है सभी स्तरों पर परीक्षा होती है और प्रमाण पत्र दिये जाते हैं। प्रमाण पत्रों के आधार पर ही बालक उच्च शिक्षा प्राप्त करता है और प्रमाण पत्रों के आधार पर ही उन्हें सरकारी या गैर सरकारी नौकरियां प्राप्त होती है। औपचारिक शिक्षा प्राय: परीक्षा प्रधान होती है। पढ़ने वाले छात्र ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि करने की अपेक्षा अच्छे अंक पाने एवं प्रमाण पत्र करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। औपचारिक शिक्षा में स्थान, समय एवं पाठ्यक्रम के बहुत ज्यादा बन्धन होते है जिसके कारण सभी आलक इसका लाभ नहीं उठा पाते हैं। भारत जैसे देश में तो यह सुविधा सबसे सुलभ नहीं है।[2]

औपचारिक अभिकरण

शिक्षा के औपचारिक अभिकरण वे सामाजिक समूह अथवा संगठन होते हैं जिनका निर्माण कोई समाज, सोच समझकर, शिक्षा के लिए ही करता है, जैसे-सरकार के शिक्षा विभाग और शिक्षण संस्थाएं (विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय)। इन अभिकरणों के द्वारा जिस शिक्षा की व्यवस्था की जाती है उसके उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियां सब कुछ भी निश्चित होते हैं। यहां विद्यार्थी शिक्षकों की देख-रेख एवं निर्देशन में शिक्षा प्राप्त करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि इन अभिकरणों में शिक्षा बड़े ही नियोजित ढंग से चलती है।

समाज या राज्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति इन अभिकरणों के द्वारा ही करते हैं। औपचारिक अभिकरणों के अभाव में समाज के

सभी अर्जित गुणों और उपलब्धियों को आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करना सम्भव नहीं हो सकता है। ये अभिकरण बालकों को वह सब सीखने में सहायता करते हैं जो वे अनौपचारिक अभिकरणों के माध्यम से नहीं सीख पाते हैं। विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा के लिए तो इन अभिकरणों का निर्माण परम आवश्यक भी होता है। इतना ही नहीं अपितु अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा प्रापत ज्ञान एवं आचरण को व्यवस्थित करने एवं उन्हें अधिक उचित दिशा देने के लिए भी इनकी ही आवश्यकता होती है।

लेकिन इन अभिकरणों की अपनी सीमाएं हैं। इनके द्वारा 1 से 3 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती है। 3 से 5 वर्ष की आयु के बालकों की शिक्षा व्यवस्था करने में भी बड़े परेशानी होती है और यह वह समय है जब बच्चे के व्यक्तित्व के निर्माण की नीवं रखी जाती है। इसके अलावा इन अभिकरणों में एक कमी है और वह यह है कि ये प्राय: पुस्तकीय ज्ञान पर ही अधिक बल देती हैं, आचरण की शिक्षा पर अपेक्षाकृत कम। कभी-कभी तो ये सभी निश्चित पाठ्यक्रम को पूरा करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती हैं और तब साधन ही साध्य बन जाता है।

औपचारिकेत्तर शिक्षा

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है औरपचारिकेत्तर शिक्षा औरपचारिक शिक्षा की भांति विद्यालय एवं महाविद्यालयों की सीमा में नहीं बांधी जाती है और न ही अनौपचारिक शिक्षा की भांति आकस्मिक रूप से चलती है। औपचारिकेत्तर शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां प्राय: निश्चित होते हैं लेकिन ये औपचारिक शिक्षा की भांति कठोर नहीं होते हैं। औपचारिकेत्तर शिक्षा की योजना बहुत लचीली होती है। इस शिक्षा का उद्देश्य सामान्य शिक्षा का प्रसार और उसके लिए सतत व्यवस्था करना है। इसका पाठ्यक्रम सीखने वालों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। शिक्षण विधियां भी बहुत सरल होती है। औपचारिकेत्तर शिक्षा का आयोजन भी सीखने वालों की सुविधा के अनुसार विद्यालय भवनों, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर एवं गुरूद्वारों, धर्मशालाओं एवं अन्य सामाजिक स्थलों, खेत खलिहानों एवं कारखानों में किया जाता है। समय भी सीखने वालों की सुविधा को ध्यान में रखकर तय किया जाता है। औपचारिकेत्तर शिक्षा में परीक्षा देना एवं प्रमाण पत्र पाना आवश्यक नहीं होता है। कुछ योजनाओं में परीक्षा ली जाती है और प्रमाण पत्र दिये जाते हैं। कुछ योजनाओं में निरीक्षण के आधार पर प्रमाण पत्र दिये जाते हैं तो कुछ योजनाओं में ऐसा कुछ नहीं होता है। विद्यालय से बाहर की प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक स्तर एवं उच्च स्तर की खुली शिक्षा एवं प्रौढ़ सभी औपचारिकेत्तर शिक्षा के ही विभिन्न अंग हैं। हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए औपचारिक शिक्षा के समानांतर चलाई जाने वाली शिक्षा व्यवस्था को ही औपचारिकेत्तर शिक्षा कहा जाता है। इस शिक्षा में जनसंचार के साधनों का भी बहुत प्रयोग होता है।[3]

औपचारिकेत्तर शिक्षा की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसके द्वारा उन बच्चों को शिक्षित किया जाता है जो विद्यालय की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वे प्रौढ़ शिक्षित किये जाते हैं जो बचपन में पढ़ नहीं पाते हैं या जो प्राथमिक शिक्षा को ही किसी स्तर पर छोड़कर किसी अन्य कार्य में लग जाते हैं। व्यक्ति की शिक्षा को निरंतरता इस शिक्षा से प्राप्त हो जाती है। औपचारिकेत्तर शिक्षा के अंतर्गत नये-नये आविष्कारों से परिचित कराया जाता है और तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। औपचारिकेत्तर शिक्षा इस प्रकार समाज की सामाजिक एवं राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। भारत जैसे गरीब एवं बड़े देश के लिए तो औपचारिकेत्तर शिक्षा बहुत ही लाभकारी है। कम खर्च करके इस शिक्षा द्वारा ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाया जा सकता है।

इस शिक्षा में एक कमी है कि इस शिक्षा के द्वारा समाज के लिए विशेषज्ञ तैयार नहीं किये जा सकते हैं। डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक आदि बनाने के लिए हमें औपचारिक शिक्षा पर निर्भर होना पड़ता है।

अनौपचारिक शिक्षा

जिस शिक्षा का कोई उद्देश्य निश्चित नहीं हो, कोई योजना नहीं बनाई गई हो, न पाठ्यक्रम हो और न कोई परिभाषित शिक्षण विधियां, जो आकस्मिक रूप से सदैव चलती रहती है। अनौपचारिक शिक्षा कहते है। जन्म के बाद जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में रहता है वह उन्हीं लोगों का अनुकरण करता है, उनकी बोलचाल की भाषा, रहन सहन तथा खान पान की विधियां आदि बातें सीखता है। कुछ कार्य वह ऐसा भी सीखता है जो समाज उसे सिखाना चाहता है वे उसकी सामाजिक शिक्षा के अंग होते हैं यह शिक्षा औरपचारिक एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा के साथ-साथ तो चलती ही हैं उनके बाद भी चलती रहती हैं। परिवार एवं समुदाय में रहकर हम जो भी सीखते हैं या समाज हमें जो भी सिखाता है अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं।

अनौपचारिक शिक्षा जीवन भर चलती है और जीवन पर सबसे ज्यादा प्रभाव डालती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का 3/4 निर्माण जीवन के पहले पांच वर्षों में हो जाता है और हम जानते हैं कि पहले पांच वर्षों में बालक केवल अनौपचारिक शिक्षा ही पाता है। भाषा और अचारण की शिक्षा अनौपचारिक ही होती है। सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान भी अनौपचारिक शिक्षा से ही होता है। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा बहुत आवश्यक है।

लेकिन जब तक औपचारिक एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा द्वारा व्यक्ति् एवं समाज शिक्षित नहीं होते हैं हम अनौपचारिक शिक्षा के लिए वातावरण तैयार नहीं कर सकते हैं। बिना शिक्षित किए दी गई अनौपचारिक शिक्षा बहुत ही अव्यवस्थित होती है। व्यक्ति की भाषा एवं आचरण को उचित दिशा देने, अनुभवों को व्यवस्थित

करने, उसकी रूचि, रूझान एवं उसकी योग्यतानुसार किसी विशेष कार्य के लिए प्रशिक्षित करने तथा जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक है।

अनौपचारिक अभिकरण

शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण वे सामाजिक समूह या संगठन हैं जिनका निर्माण नयी सामाजिक संरचना के अन्तर्गत स्वतंत्र होता रहता है तथा जिनके सामने औपचारिक या निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था का उद्देश्य नहीं होता है। लेकिन जाने-अनजाने ये बच्चों, युवकों या प्रौढ़ों की शिक्षा को प्रभावित करते हैं जैसे परिचार, समुदाय और धार्मिक संस्थाओं को इन अभिकरणों में जो शिक्षा चलती है उसके उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियां कुछ भी निश्चित नहीं होते हैं। यहां व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आकार एक दूसरे से स्वाभाविक रूप से सीखते हैं।

मानव की अधिकतर शिक्षा इन्हीं अभिकरणों से होती है, इसलिए इनका अपना ही महत्व है। औपचारिक अभिकरणों द्वारा सोद्देश्य शिक्षा का विधान होता है, व्यवहार और आचरण की शिक्षा तो बच्चे अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा प्राप्त करते हैं। भाषा, रहन-सहन और खान-पान आदि के तरीके, रीति-रिवाज और आचरण की शिक्षा के लिए इनका बहुत महत्व है। सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण और विकास में इन अभिकरणों का येागदान अपेक्षाकृत अधिक होता है। शिक्षाशास्त्रियों जॉन डीवी इन अभिकरणी को आकस्मिक भी स्वाभाविक भी और महत्वपूर्ण भी मानते थे। उनके अनुसार बच्चों की वास्तविक शिक्षा इन्हीं संस्थाओं में होती है, उनकी बुद्धि का विकास होता है, बच्चों की कल्पना शक्ति तेजी होती है और वे समाज में समायोजन कर पाते हैं। ये अभिकरण शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों का निर्माण भी करते हैं।

लेकिन अनौपचारिक अभिकरणों की भी अपनी सीमाएं होती है। इनके द्वारा व्यवस्थित शिक्षा का विधान नहीं हो सकता है। आज का सामाजिक जीवन इतना जटिल हो चुका है कि व्यवस्थित सामान्य शिक्षा का विधान किये बिना हम उसे समझ ही नहीं सकते हैं। विभिन्न प्रकार के कला-कौशलों की शिक्षा इन अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा नहीं दी जा सकती है। व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा के लिए भी औपचारिक अभिकरणों की आवश्यकता होती है। बगैर उचित औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था किये कोई भी समाज विशेषज्ञों का निमार्ण नहीं कर सकता है और इसके अभाव में उसकी उन्नति नहीं हो सकती है। बचपन में शिक्षा नही प्राप्त करने वाले लोगों को शिक्षित करने के लिए, प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिए और शिक्षित व्यक्तियों को शिक्षा की निरंतरा प्रदान करने के लिए औपचारिकेत्तर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। शिक्षा के प्रसार में इसका अपना अलग महत्व है। यह कई देशों में औपचारिक शिक्षा के समांतर चलती है। कुछ लोग औपचारिकेत्तर शिक्षा को ही अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। भारत सरकार ने भी उसे अनौपचारिक शिक्षा की ही संज्ञा दी है।समाज एवं व्यक्ति के विकास के लिए औपचारिक, औपचारिकेत्तर एवं अनौपचारिक शिक्षा का अपना अपना महत्व है। शिक्षा का प्रारम्भ औपचारिक शिक्षा से होता है और अनौपचारिक शिक्षा से ही शिक्षा समाप्त होती है। बच्चे के प्रारम्भिक जीवन में जो संस्कार पड़ते हैं वे बड़े ही स्थायी होते हैं और प्रायः अनौपचारिक शिक्षा के परिणाम होते है। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा को व्यक्ति के निर्माण की आधारशिला भी कहते हैं। लेकिन अनौपचारिक शिक्षा के लिए वातावरण का निर्माण औपचारिक एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा के द्वारा ही किया जाता है इसलिए इनको अधिक महत्व दिया जाता है। अतः सभी लोग इन तीनों के अलग-अलग महत्व को स्वीकार करते हैं क्योंकि तीनों कए दूसरे की पूरक हैं।

संदर्भ

1. American Association of School Librarians and Association for Educational Communications and Technology. (1998). Information literacy standards for student learning. Chicago, IL: American Library Association. Available:
   National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine. 2012. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century. Washington, DC: The National Academies Press. https://doi.org/10.17226/13398.
2. Anderman, E.M. (2011). The teaching and learning 21st century skills. Paper presented at the NRC Workshop on Assessment of 21st Century Skills, National Research Council, Irvine, CA, January 12-13. Available:
   National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine. 2012. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century. Washington, DC: The National Academies Press. https://doi.org/10.17226/13398.
3. American Society for Training and Development. (2009). The 2009 state of the industry report. Summary available: http://www.astd.org/Publications National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine. 2012. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century. Washington, DC: The National Academies Press. https://doi.org/10.17226/13398.

समाज की प्रगति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका

डॉ० नागेन्द्र राम

विभागाध्यक्ष- बी0एड0 विभाग, किसान पी0जी0 कालेज रकसा, रतसड़, बलिया।

"शिक्षा मानव से प्रारम्भ होती है और मानव से ही अन्त होती है।'' इस कारण शिक्षा के सम्बन्ध से जो कुछ अवधारणा हमारी बनती है वह हमारे मानव प्रकृति के सम्बन्ध में क्या विचार है उन पर केन्द्रित होती है। इसके साथ-साथ समाज की मूल प्रकृति की हमारी अवधारणा भी शिक्षा के रूप को निर्धारित करने का आधार बनती है। ऐसा इस कारण है कि मानव सामाजिक प्राणी है और शिक्षा के कार्य मानव के जीवन को उत्तम बनाना, समाज के योग्य बनाना तथा समाज में प्रगति लाना। हम यह कह सकते हैं शिक्षा-व्यक्ति तथा समाज-दोनों से सम्बन्धित है और उसके उद्देश्य व्यक्ति के जीवन तथा समाज जिन आदर्शों को प्रतिपादित करता है और जिनकी ओर अग्रसर होने की चेष्टा करता है उन पर ही केन्द्रित होते हैं।इसलिए भौतिक संसाधनों एवं मानवीय विकास से शिक्षा का सामाजिक उपयोग अति आवश्यक है। शिक्षा के संसाधनों द्वारा सामाजिक और संस्थागत उद्देश्यों के साथ-साथ सामाजिक सुधार और प्रगति में रूचि का सम्बन्धित करना भी आवश्यक है। शिक्षा का अभीष्ट दायित्व वर्तमान समय में सामाजिक प्रगति पर बल देना है।[1]

शिक्षाः सामाजिक प्रगति की प्रक्रियाः-

प्रत्येक नागरिक जो कुछ भी शिक्षा के सम्बन्ध में विचारने की योग्यता रखता है, वह इसके दोषों के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता व्यक्त करता है और चाहता है कि इसका नवनिर्माण हो, जिसमें मानव का विकास ऐसा कि उसका चरित्र ऊँचा हो, प्रतिष्ठा हो, हाथ से काम करने में गौरव समझे और समाज प्रगति में योगदान दे जो इस प्रकार है-

1. सामाजिक कुशलता का विकास (Development of Social Efficiency)- शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जाना चाहिए जो दूसरे के कार्यों में अवांछित हस्तक्षेप न करें, राष्ट्र के विकास में सहयोग प्रदान करें। ऐसे कुशल नागरिकों का निर्माण करने के लिए बालकों को ऐसे व्यवसायों तथा उद्योगों के प्रति कुशल बनाये जो उसके समाज तथा समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हों।
2. राष्ट्रीय विकास (National Development)- शिक्षा द्वारा राष्ट्र का विकास सम्भव है। अशिक्षा के कारण व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों को नहीं समझ पाता। ऐसी स्थिति में राष्ट्र की प्रगतिशील योजनाओं पर भली-भांति अमल करना असम्भव हो जाता है। शिक्षा द्वारा इस कार्य के सम्पादन से योजनाओं को उचित दिशा निर्देश मिलता है एवं योजनाओं को चलाने वाले कुशल नेताओं द्वारा देश समृद्धि की ओर अग्रसर होता है।[2]
3. राष्ट्रीय एकता (National Unity)- हमारे राष्ट में जातिवाद, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता और दलबन्दी तथा भाषावाद आदि ऐसे तत्व हैं, जिनके अभाव में राष्ट्रीय एकता मजबूत नहीं हो सकती हे। इसलिए पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "एक दृष्टि से राष्ट्रीय एकता मजबूत नहीं हो सकती है। इसलिए पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "एक दृष्टि से राष्ट्रीय एकता के प्रश्न में जीवन की प्रत्येक वस्तु आ जाती है। शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है और यही आधारशिला है।''
4. कुशल कार्यकर्ताओं का तैयार करना (Prepare efficient Persons)- शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र के लिए कुशल कार्यकर्ताओं की पूर्ति सम्भव है। कुशल कार्यकर्ता मिल जाने से उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में प्रगति होगी और राष्ट्र आर्थिक क्षेत्र में विकसित होगा।
5. संस्कृति एवं समाज की सुरक्षा (Reservation of Cultural and Society)- प्रसिद्ध विद्वान औटावे ने कहा है कि "शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को नवयुवकों तथा कार्यशीलता सदस्यों को प्रदान करना है।'' शिक्षा द्वारा ही समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा सम्भव है। प्रत्येक पीढ़ी आने वाली दूसरी पीढ़ी को अनेक परम्पराएँ, रीति-रिवाज, धर्म, रहन-सहन, कला, प्रौद्योगिकी ज्ञान आदि देती है, हस्तान्तरित करती है।
6. भावनात्मक एकता की भावना का विकास (Development of Emotional Integration)- भारत में अनेक परम्पराएँ, रीति-रिवाज एवं धर्म पाये जाते हैं, जिनमें जनता की अन्ध श्रद्धा होती है, परन्तु इससे भी अधिक महत्व की हमारी राष्ट्रीय मान्यताएँ या बिरासत हैं जिनके अन्दर समूह विशेष, समाज एवं समुदाय की परम्पराएँ समाहित होती हैं। ये ही सभी समुदायों, एवं समूहों को भावात्मक एकता के सूत्र में बँधते हैं ताकि राष्ट्रीय कल्याण (विकास) का साधन बनें। अतः शिक्षा द्वारा भावात्मक एकता का वातावरण बनाया जा सकता है। बालकों के लिए ऐसे पाठ्यक्रमों का निर्माण करना चाहिए जिससे उनके संवेगों तथा दृष्टिकोणों का उचित दिशा में विकास हो सके। ऐसा होने पर ही उनमें भावात्मक एकता के स्थायी भाव विकसित हो सकते हैं।

एवं समाज् के प्रति समर्पण का भाव विकसित हो सकता है।

7. प्रभावशाली नेतृत्व के लिए उचित प्रशिक्षण (Training for appropriate effective Leadership)- शिक्षा द्वारा प्रारम्भिक स्तर से ही कुशल नेतृत्व की भावना प्रबल की जा सकती है, उन्हें उचित प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है, ताकि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में उचित रूप से नेतृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर उसे समाज के विकास हेतु प्रयोग किया जा सके।

8 सामाजिक नियंत्रण का साधन (Means of Social Control)- शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य बालकों के ऊपर नियंत्रण रखना है। विद्यालय में अध्यापकों द्वारा यह कार्य किया जाता है। अध्यापक बालक के सामने समाज के आदर्श, मूल्य, आचरण, प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं तथा इन सबका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें ज्ञान देते हैं। इससे बालक नियम-पालन, अनुशासन, आज्ञा-पालन आदि का महत्व जान जाता है। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण, जो कि समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए अत्यधिक अनिवार्य है, के साधन के रूप में शिक्षा का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।[3]

9 ज्ञान का प्रसार (Diffusion o Knowledge)- प्रो0 वार्ड के अनुसार, व्यक्ति एवं समाज की उन्नति, बुद्धि पर निर्भर करती है और बुद्धि मानसिक शक्ति और ज्ञान पर निर्भर करती है। अत: शिक्षा का प्रथम कार्य ज्ञान का प्रसार करना है।

10 संस्कृति की रक्षा तथा हस्तान्तरण (Maintenance and Transmission of Culture)- शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार, शिक्षा का अति-महत्वपूर्ण कार्य समाज की संस्कृति, सभ्यता, प्रथा परम्परा, मूल्य, आदर्श आदि की रक्षा करना तथा उसे अपनी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना है। समाज की प्रत्यक पुरानी पीढ़ी अपनी नई पीढ़ी को संस्कृति का हस्तांतरण करती है। ऐसा करने के लिए सबल माध्यम शिक्षा ही है। शिक्षा के द्वारा ही बालकों को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान होता है तथा वे निरन्तर प्रगति करते रहते हैं। यदि शिक्षा यह कार्य न करे तो मानव समाज विकास करने के स्थान पर पीछे की ओर लौटने लगेगा।

11 नये समाज का विकास (Development of a New Society)- वर्तमान काल में शिक्षा का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। समाज निरन्तर परिवर्तित होता रहता है तथा नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। ऐसी दशा में समाज के ढाँचे को बदलने की आवश्यकता होती है। पुरानी प्रथाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों को तोड़ने की आवश्यकता होती है तथा संसार के अन्य समाजों के साथ कदम मिलाकर चलने की आवश्यकता होती है। एक विकसित समाज में रहकर ही व्यक्तियों के व्यक्तित्व का उत्तम ढंग से विकास सम्भव हो सकता है। अत: शिक्षा का यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह ऐसे समाज का निर्माण करे जो तर्क-संगत हो, आधुनिकता के अनुसार हो तथा जिसमें व्यक्ति प्रगति की ओर बढ़ सके।[4]

12 सामाजिक भवना की जागृति (Awareness of Social understnding)- प्रत्येक व्यक्ति समाज में जन्म से लेकर आगे उन्नति की ओर अग्रसर होता है। वह सामाजिक भावना का भली-भांति विकास कर सके, इसके लिए उसमें अनुशासन, परोपकार, दया, नेतृत्व, पारम्परिक प्रेम आदि सामाजिक गुणों का विकास किया जाता है। एच0 गार्डर ने कहा है- "शिक्षा को यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि वह सामाजिक प्रक्रिया को उन व्यक्तियों के सम्मुख लाने की दिशा में आगे बढ़े जो इसके लिए योग्य हैं।''

13 सामाजिक भावना का विकास (Developing Social Feeling)- भारत जैसे धर्म-निरपेक्ष तथा प्रजातांत्रिक देश की सम्पन्नता एवं विकास के लिए सामाजिक एवं नागरिक कर्तव्यों का पालन करना अति आवश्यक है। शिक्षा का महत्वपूर्ण एक कार्य यह है कि वह व्यक्ति को इस प्रकार सुशिक्षित एवं दीक्षित करे कि वह समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को भली-भांति समझकर उसी के अनुरूप कार्य करे।

सभी जनकल्याण हेतु शिक्षा द्वारा हमें समस्त-नागरिकों का मन मस्तिष्क एवं शरीर इस प्रकार बना देना है, ताकि उससे की समृद्धि हो सके। बोसिंग ने कहा भी है- "शिक्षा का कार्य व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा सामंजस्य स्थापित करना है, जिसमें व्यक्ति अपने को मोड़ सके और परिस्थितियों को पुनर्व्यवस्थित कर सके, जिससे दोनों को अधिकाधिक स्थायी सन्तोष प्राप्त हो सके।'

1. सामाजिक कल्याणकारी कार्यों पर बल (Emphasis on Social Welfare Activities)- वर्तमान आर्थिक एवं भौतिक युग में प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिवादी हो गया है। वह अपने हितों को अधिक महत्व देता है। इसीलिए हम समाज में पारस्परिक द्वेष एवं कटुता देख रहे हैं। इसके न होने पर ही राष्ट्र का विकास हो सकता है। अत: शिक्षा द्वारा बालकों में ऐसी भावना भरनी चाहिए ि कवे समूचे राष्ट्र के हितों को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर स्थान दें।
2. अच्छे नागरिकों का निर्माण (Develop good Citçenship)- न्यूयार्क की वैधानिक समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा है- "सार्वजनिक शैक्षणिक व्यवस्था का यह प्रधान कार्य है कि छात्रों को राज्य में नागरिकता के अधिकारों और कर्तव्यों को निभाने योग्य बनावे।''

अतः समाज के विकास एवं कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उस राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति योग्य नागरिक हो। शिक्षा द्वारा ही बालक में उसके कर्तव्यों, अधिकारों तथा देश में अन्य उत्तरदायित्वों को निभाने की क्षमता विकसित की जा सकती हे।

सामाजिक सुधार और प्रगति करना (Social Reform and Progres)- सामाजिक कल्याण के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांतों द्वारा समाज को अपेक्षित दिशा में अग्रसर करना है। ओटावे ने ठीक ही कहा है-"यह निःसन्देह सत्य है कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है।''

सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकासः- (Development of Social, Moral and Spiritual Values) आधुनिकीकरण का अर्थ यह नहीं है कि भौतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन में कोई स्थान दिया जाय आधुनिकीकरण के परिणाम तभी अच्छे हो सकते है जब उसे आत्मिक शक्ति की प्रेरणा से ग्रहण किया जाये। आधुनिकीकरण का उद्देश्य बहुलता की अर्थव्यवस्था निर्मित करना है ताकि हर व्यक्ति को अपनी पसंद के अनुसार जीवन के लिये अधिक अवसार प्रापत हो सके, लेकिन अपनी पसंद करने की स्वतंत्रता के अपने लाभ हैं। वहाँ इसका अर्थ यह भी है कि समाज का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हर व्यक्ति क्या चुनता है, व्यक्ति अपने जीवन के मूल्यों के अनुसार वस्तुओं का चुनाव करेगा ताकि उसे अधिक से संतुष्टि मिल सके या समाज के हित को ध्यान में रखते हुए चुनाव करेगा, दुर्भाग्य की बात है कि आज व्यक्ति के सामाजिक और नैतिक मूल्य कमजोर पड़ जाने से सामाजिक और नैतिक संघर्ष उत्पन्न हो गया है[5] इसलिये कुछ लोगों का विचार है कि विज्ञान और तकनीकी के कारण प्राप्त ज्ञान का सम्बन्ध नीति शास्त्र तथा धर्म से सम्बन्धित मूल्यों के साथ किया जाये, आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने "स्व'' को समझे, जीवन के अर्थ को समझे, तथा यह समझने का प्रयास करे कि परम सत्य क्या है? एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है? आधुनिकीकरण के लिये औद्योगीकरण के मार्ग पर तो चलना है लेकिन उन दो भूलो-दो विश्वयुद्ध-की पुनरावृत्ति नहीं करनी है जिन्हें पश्चिमी देशों ने किया है तभी हम विज्ञान का लाभ उठा सकते हैं और अपनी सांस्कृतिक के महान् आदर्शों के प्रति वफादारी भी दिखा सकते हैं।

आज हमारा समाज विघटित होता जा रहा है, समाज के विभिन्न वर्ग जैसे निर्धन और धनी, सुविधाहीन और सुविधा प्राप्त, ग्रामीण और नगरीय, अशिक्षित आदि अलगाव की स्थिति में हैं, स्थानीय प्रान्तीय भाषागत, धार्मिक और वर्गगत या संकुचित निष्ठाओं के कारण देश की अखण्डता खतरे के गर्त में हैं। राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या तभी हल हो सकती है जब सभी को राष्ट्र के भविष्य में पूर्ण आस्था हो, लोगों के रहन-सहन के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि हो, बेरोजगारी तथा देश के विभिन्न भागों का संतुलित विकास हो, सरकारी सेवाओं में निष्पक्ष प्रशासन तथा समान व्यवहार हो, नागरिकता के मूल्यों एवं दायित्वों का विकास हो तथा राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की जीवन विधियों, परंपराओं और संस्कृति के बीच आपसी सद्भाव हो, राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी गंभीर समस्या है, जिसे कई तरह से हल करना होगा और शिक्षा भी उनमें से एक है, शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

संदर्भ

1. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT
2. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT
3. Rudolph, Susanne H., and lloyd I. Rudolph (eds.). 1972. Education and Politics in India: Studies in Organization, Society, and Policy. New Delhi: oxford University Press.
4. Madhukar Bhimrao Konnur, Veena Bhalla Association of Indian Universities , 2002
5. Raza, Moonis. 1990. Education, Development & Society. New Delhi: Vikas Publishing House.

शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य

राम विलास यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

शिक्षा यदि मनुष्य व समाज का विकास करने में तथा जीवन के सभी पक्षों को सबल बनाने में समर्थ नहीं होती है तो उसकी सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। गिजू भाई वर्तमान शिक्षा की इन्हीं दुर्बलताओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि जिस कारण से विद्यालयों में दी जाने वाली बौद्धिक शिक्षा से हमारे हृदयों को बल नहीं मिल पाया, धार्मिक शिक्षा लेने के बावजूद भी हम में धार्मिक संकीर्णता विद्यमान रही है, जिस कारण से हम में मनुष्य-मनुष्य के बीच, धर्म-धर्म के बीच, जाति-जाति के बीच और देश के विभिन्न राज्यों के बीच अभेद्य अलगाव उत्पन्न हो रहा है, उस कारण को, यानी हम में व्याप्त रूढ़िवादिता को कैसे तोड़ा जाए, यह प्रश्न वर्तमान शिक्षा शास्त्रियों के सामने विचारणीय है। गिजू भाई की आशायें शिक्षा शास्त्रियों पर टिकी हैं। वे कहते हैं कि "शिक्षा प्रदान करने वाले लोग समाज के नेता हैं। वे समाज के स्मृतिकार हैं, समाज की जीवन डोर उन्हीं के हाथ में है और समाज में कल्याणकारी कार्य करना भी उन्हीं के हाथ में है। आज का समाज एक अंधेरे कुएं मे पड़ा सड़ रहा है। उसे वहां से बाहर निकालकर स्वच्छ करना और उसका कल्याण करना शिक्षा शास्त्रियों का परम धर्म है।"[1]

शिक्षा एक सौद्देश्य प्रक्रिया है। विभिन्न शिक्षा-दार्शनिकों के पारस्परिक दृष्टि भेद के कारण उनके द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों में कुछ भिन्नता भले ही दृष्टिगोचर होती हों, परन्तु वे उद्देश्यों की चर्चा न करें ऐसा कदापि संभव नहीं है। जीवन की प्रत्येक गतिविधि का कोई न कोई पूर्व-उद्देश्य अवश्य होता है।

हरबार्ट जर्मनी का प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ था। हरबार्ट ने शिक्षा का वह उद्देश्य निश्चित किया जिसकी कि स्पेन्सर के उद्देश्य में कमी थी। हरबार्ट ने शिक्षा का उद्देश्य नैतिक रखा। हरबार्ट का विचार था कि मनुष्य में कुछ ऐसी वृत्तियाँ पायी जाती हैं जिनका सुधार करना आवश्यक है। मनुष्य के कुछ कार्य सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है। दूसरे शब्दों में, हरबार्ट का यह मत था कि शिक्षा का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिसमें मनुष्य अपनी दुर्बलताओं को दूर कर सके और वह ऐसा आचरण करे जो सबको पसन्द हो। इस प्रकार हरबार्ट शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण मानता था। जीवन के लिए अच्छे चरित्र की आवश्यकता है क्योंकि बिना अच्छे चरित्र के सुख और शान्ति सम्भव नहीं। इसलिए जीवन को सुखी बनाने के लिए हरबार्ट महोदय ने शिक्षा का नैतिक उद्देश्य बताया।

हरबार्ट के मत के सम्बन्ध में मतभेद को सम्भावना नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चरित्र का महत्व समझता है। इसलिए व्यक्ति में चरित्र का होना अनिवार्य है। लेकिन केवल चरित्र ही से मुनष्य का काम नहीं चल सकता। उस व्यक्ति में चरित्र के साथ ऐसी क्षमता भी होनी चाहिए कि वह जीवन से सम्बन्धित अन्य समस्याओं को समझ सके। हरबार्ट ने शिक्षा के सम्बन्ध में जिन विषयों को चुना है उनमें विज्ञान और गणित का स्थान नही के बराबर है। इसलिए शिक्षा का सामाजिक पक्ष दुर्बल हो जाता है। अतः विद्वानों का जो दल शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य निश्चित करता है इसी में नीति को भी सम्मिलित कर लेता है।

सामाजिक उद्देश्य

शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक होना चाहिए क्योंकि समाज और व्यक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्ति का चरित्र अच्छा है या बुरा, व्यक्तिगत कसौटी पर नहीं माना जाता। किसी के चरित्र की अच्छाई या बुराई समाज की दृष्टि से निश्चित की जाती है। इसलिए चरित्रहीन व्यक्ति का आदर समाज नहीं करता। जो व्यक्ति उन कार्यों को करता है, जिन्हें समाज पसन्द करता है, वह चरित्रवान कहा जाता है।

समाज का एक स्थिर रूप नहीं होता। वह बदलता रहता है। समाज में पविर्तन के साथ नीति के रूप में भी परिवर्तन होता है। इस सिद्धांत को शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य स्वीकार करता है। समाज के हित के लिए ही व्यक्ति है इसलिए व्यक्ति में शिक्षा वह क्षमता उत्पन्न कर दे कि वह समाज का कल्याण कर सके। उसका जीवन समाज के लिए भार-तुल्य न हो। वह समाज के हित के लिए अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करने में कुशल हो। वह भली-भाँति समाज के लिए उपयोगी बन सके, यही शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य है।

जीविकोपार्जन का उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में जन सामान्य का यह विचार है कि शिक्षा जीविका-निर्वाह में सहायता प्रदान करे। जीवन, जो संघर्षो का दूसरा नाम है, इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है जिनके लिए व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से मुकाबला करना पड़ता है। एक व्यक्ति चाहता है कि वह दूसरे से बढ़ जाए। इस तरह के मुकाबले और छीना-झपटी की दशा में शिक्षा को एक ऐसा साधन बनाया जाता है जो इस काम में सहायता पहुँचाए। इन कारणों से जन-साधारण की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य जीविका-निर्वाह में सहायता प्रदान करना है।[2]

लेकिन जीवन तो केवल खाने-पाने के लिए नहीं है। यदि शिक्षा केवल रोटी कमाने का साधन बन जाएगी तो मनुष्य का

विकास रुक जाएगा और उसकी मानसिक और नैतिक उन्नति न हो सकेगी। इसलिए शिक्षा के उद्देश्य में वे बातें भी निहित हों जिनसे व्यक्ति का मानसिक और नैतिक विकास भी होता है। यदि मनुष्य का मानसिक और नैतिक विकास न होगा वह उस समय क्या करेगा जब उसे रोटी कमाने के काम से फुर्सत मिल जाती है। वास्तव में अच्छी शिक्षा वह होती है जो मनुष्य को यह भी सिखाती है कि समय का उपयोग कैसे करना चाहिए। जो व्यक्ति समय का उपयोग करना जानता है वह शिक्षित व्यक्ति है। लेकिन समय के उपयोग के लिए कुछ विद्वानों ने शिक्षा का उद्देश्य उन कामों का सिखाना ही रख दिया है जिनसे मनुष्य अपना जीविका-निर्वाह कर सकता है। इस प्रकार का उद्देश्य उद्योग-धन्धों का सिखाना हो गया है। जो देश उद्योग-धन्धों की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और जहाँ सामान की कमी इसलिए है कि बनाने वाले नहीं हैं उस देश में शिक्षा का उद्देश्य उद्योग-धन्धों का सिखाना रखा जा सकता है। लेकिन ऐसा करने में अक्सर यह होता है कि उद्योग-धन्धों का महत्व अधिक हो जाता है और शिक्षा की उपेक्षा होने लगती है। मनुष्य मशीन की तरह काम करने लगता है, उसके व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है और वह परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने जीवन में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। फल यह होता है कि पेट की समस्या सुलझती है तो मानसिक समस्या उलझती है। एक बहुमूल्य वस्तु को खोकर दूसरी साधारण वस्तु को पाना बुद्धिमानी नहीं है।

शिक्षा का उद्देश्य जब जीविका-निर्वाह के लिए उद्योग-धन्धों का सिखाना हो जाता है तो एक हानि और होती है, जिसका परिणाम संकुचित दृष्टिकोण में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की शिक्षा से मनुष्य की दृष्टि का विस्तार नहीं होता। फल यह होता है कि उन बातों में उलझा रहता है जिनका कोई स्थायी मूल्य नहीं होता।

शिक्षा का आदर्श उद्देश्य

शिक्षा का आदर्श उद्देश्य वही है जो व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास इस प्रकार करे कि वह समाज की उन्नति में सहायक हो। इस प्रकार एक ओर तो शिक्षा व्यक्ति की व्यक्तिगत पूर्णता प्रस्तुत करती है और दूसरी ओर सामाजिक प्रगति में भी सहायक होती है। अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-दार्शनिक डॉक्टर डिवी भी मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के पक्ष में हैं। नवीन शिक्षा का आधुनिक रूप यही है। क्योंकि संसार में लोकतंत्र की भावना व्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपना यह जन्मसिद्ध अधिकार समझता है कि उसे जीवित रहने के लिए समान अवसर प्रदान किए जाएँ। जिस समाज में प्रत्येक प्राणी का समभाव से ग्रउतर नहीं किया जाता, वह देश और समाज लोकतंत्र के अनुकूल नहीं है, सुख इसलिए शिक्षा का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिसमें मनुष्य अपने को आवश्यक स्वस्थ बना सके और अधिक से अधिक दिनों तक जीवित रह सके। यह किसी देश के स्वस्थ और सबल मनुष्य उस देश की वास्तविक शक्ति है। फिर प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक विकास भी होना आवश्यक है। जिस व्यक्ति का मानसिक विकास नहीं होता, उसकी कल्पना, निरीक्षण, भावना, उदारता सभी मानसिक चेष्टाएँ सीमित होती हैं और वह व्यक्ति नैतिक दृष्टि से भी उभर नहीं पाता। इस प्रकार वह समाज का हित नहीं कर सकता अत: अधिकतर आधुनिक शिक्षा-विशेषज्ञों ने शिक्षा के इसी आदर्श उद्देश्य को ग्रहण किया है।[3] इस दृष्टि से कुछ शिक्षा-शास्त्रियों के उद्देश्य-सम्बन्धी कथन उल्लेखनीय हैं-

1. सुकरात-शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सत्य समझाकर तदनुसार उसे व्यवहार करना सिखाना है।
2. प्लेटो-व्यक्तित्व का विकास ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।
3. अरस्तू-शिक्षा का उद्देश्य सुख की प्राप्ति है।
4. मिल्टन-शिक्षा ऐसी हो कि वह ईश्वर का ज्ञान कराकर उसमें प्रेम जाग्रत कर दे।
5. बेकन-शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज के लिए उपयोगी बनाना है।
6. रूसो-शिक्षा का उद्देश्य बालक को पढ़ने-लिखने पर बलि देना नहीं, वरन् उसका विकास प्रकृति के अनुकूल करना है।
7. पेस्तालात्सी-शिक्षा का उद्देश्य व्यावहारिक, नैतिक तथा सामाजिक उन्नति करना है।
8. हरबार्ट-सद्व्यवहार ही में शिक्षा का सारा सार निहित है।
9. फ्रोबेल-शिक्षा का उद्देश्य पवित्र, शुद्ध तथा श्रद्धापूर्ण जीवन की प्राप्ति है।
10. स्पेन्सर-शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को ऐसा बनाना है कि यह अपने जीवन को पूर्ण सफल बना सके।
11. जॉन डिवी-शिक्षा का उद्देश्य ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें व्यक्ति मानव-जाति की 'सामाजिक जाग्रति' में सफलतापूर्वक भाग ले सके।
12. मांटसोरी-स्व-शिक्षा' सबसे बड़ा शिक्षा-सिद्धांत है।

शिक्षा का दार्शनिक उद्देश्य

दर्शन के आधार पर शिक्षा अपने उद्देश्यों को निर्धारित करती है। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उनका एक दार्शनिक आधार है। जब गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य मुक्ति के योग्य बनाना कहते हैं, तब सहज ही यह प्रश्न उठता है कि मुक्ति क्या है? इस प्रश्न का उत्तर-शास्त्र देता है। जीवन के विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण मुक्ति, सत्य, सुख और दु:ख पर प्रकाश डालते हैं। अत: शिक्षक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दर्शन और शिक्षा के सम्बन्ध को समझे और यह देखे कि विभिन्न दार्शनिक वादों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य क्या हो सकते हैं। अधिकतर चार दार्शनिक वादों का उल्लेख शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में किया जाता है। उनके नाम हैं- आदर्शवाद, प्रकृतिवाद,

प्रयोगवाद और यथार्थवाद। अब हम इन्हीं दार्शनिक वादों के अनुसार शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्यों पर प्रकाश डालेंगे।[4]

आदर्शवाद–आदर्शवादी दर्शन के अनुसार सत्य केवल विचार है। सम्पूर्ण जगत् का अस्तित्व विचारों पर निर्भर है। प्लेटो के अनुसार केवल विचार ही यथार्थ हैं। इसीलिए आदर्शवाद भौतिक जगत को मिथ्या मानता है और आध्यात्मिक जगत को सत्य। आध्यात्मिक जगत का आधार मनुष्य की आत्मा और उसका मन है। अत: आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य है मन और आत्मा का इतना और ऐसा विकास करना कि व्यक्ति अपने आध्यात्मिक स्वरूप का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सके। जब मनुष्य अपने वास्तविक आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तभी उसका पूर्ण विकास होता है। इस प्रकार आदर्शवादी शिक्षा मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन पर बहुत बल देती है, वह चाहती है कि मनुष्य अपने को केवल हाड़-माँस का एक जीता-जागता पुतला ही न समझे, वरन् वह यह भी समझे कि उसमें देवत्व प्राप्त करने की असीम शक्ति है। इसमें सन्देह नहीं कि आदर्शवाद शिक्षा में विचारों, गुणों और जीवन के शाश्वत मूल्यों पर अत्यधिक बल देता है।

स्वतंत्रता के बाद नीति निर्माताओं ने अंग्रेजों द्वारा निर्मित कुलीनतावादी शिक्षा प्रणाली को जन सामान्य की उस शिक्षा प्रणाली में बदलने के लिए कठिन परिश्रम किया, जो समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर खड़ी थी। वर्ष 2009 में शिक्षा के अधिकार का विचार देते हुए इसे मौलिक अधिकार बना दिया गया और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा भी की गई।[5] उसके बाद से नीति निर्माताओं ने सर्व शिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास किया है। आज भारत को तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के रूप में ही नहीं बल्कि उपयुक्त एवं शिक्षित व्यक्तियों वाले शक्तिशाली मानव संसाधन के विशाल समूह के रूप में भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उच्च शिक्षित, तकनीक को समझने वाले और वैज्ञानिक तरीके से प्रशिक्षित भारतीय नागरिक दुनिया के कोने-कोने में विभिन्न प्रकार के काम कर रहे हैं और भारत का मान बढ़ा रहे हैं।

संदर्भ

1. Bhattacharya, Abhijit. 2010. Mismanagement of Indian Management Education. Economic and Political Weekly 45 (24): 14–17.
2. राममोहन राय, ए लेटर आन एजुकेशन
3. अक्षय कुमार दत्त, धर्मनीति, पृ0-161
4. प्राचीन शिक्षा प्रणाली-डॉ0 वी0पी0 चतुर्वेदी पृ0 09
5. National Knowledge Commission. 2009. National Knowledge Commission— Report to the Nation (NKC). New Delhi

उच्च शिक्षा की दशा एवं दिशा

संतोष कुमार पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

किसी भी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में उस राष्ट्र में उच्च शिक्षा की प्रगति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आज समूचा विश्व भारत को भविष्य की आर्थिक महाशक्ति कके रूप में देख रहा है। क्योंकि भारत तथा चीन ही वह देश हैं जिनकी अर्थव्यवस्था तेजी से आगे बढ़ रही है, लेकिन उच्च शिक्षा पर ध्यान दिये बिना आर्थिक महाशक्ति बनने की कल्पना करना बेमानी होगा। आज अगर हम सुपर पावर अमेरिका और अन्य विकिसित तथा सम्पन्न राष्ट्रों की ओर ध्यान दे ंतो यह तथ्य भी स्पष्ट रूप से सामने आता है कि इन राष्ट्रों में उच्च शिक्षा की स्थिति भी अत्यन्त सुदृढ़ है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कोई भी राष्ट्र उच्च शिक्षा को नजरन्दाज करके उन्नति और विकास की अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता है। शिक्षा अर्थतंत्र के विभिन्न स्तरों के लिये मानव शक्ति का निर्माण करती है तथा शिक्षा ही वह आधार है जो शोध और राष्ट्रीय विकास का उन्नयन कर सकती है।[1]

भारत में अति प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया है। वैदिक काल में गुरूकुल, बौद्ध-काल में मठ तथा मुस्लिम काल में मदरसे उच्च शिक्षा के महत्वपूर्ण संस्थान रहे हैं। तत्कालीन समय के कुछ प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय तथा दिल्ली, रामपुर एवं देवबन्द जैसे प्रसिद्ध मदरसे है जो कि विश्व विख्यात रहे हैं। ब्रिटिश काल में सर्वप्रथम चार्ल्स वुड (1854) ने अपने घोषणापत्र में भारत के सन्दर्भ में व्यवहारिक एवं आधुनिक उच्च शिक्षा की व्यवस्था पर सुझाव दिया तथा लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श बनाकर भारत में कलकत्ता, मद्रास और बंबई में विश्वविद्यालय स्थापित करने का सुझाव दिया। 1872 में भारत में म्योज कॉलेज की स्थापना हुयी तथा तथा 1887 में गवर्नर जनरल की कौंसिल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय अधिनियम पास हुआ। इसी क्रम में 27 जनवरी 1902 को भारत के लिये विश्वविद्यालय आयोग गठित किया गया, जिसने भारत के तत्कालीन तीनों विश्वविद्यालयों की कार्य प्रणालियों का अध्ययन करने के पश्चात् 2 जून 1902 को अपना प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी के आधार पर 21 मार्च 1904 को भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पास किया गया तथा भारतीय विश्वविद्यालयों को नियुक्ति, शिक्षण कार्य, पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं का विकास तथा 'सीनेट' के लिये 'फैलों' के चुनाव का अधिकार दे दिया। जिससे भारतीय विश्वविद्यालयों का संचालन तथा संगठन अधिक व्यवस्थित हो गया क्योंकि अब तक ये विश्वविद्यालय अधिकृत कॉलेज के लिये परीक्ष्ज्ञा संचालन मात्र का ही कार्य करते रहे थे। 1904 में सम्पूर्ण भारत में महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय मद्रास वि0 वि0 बम्बई वि0 वि0, कलकत्ता वि0 वि0 स्थापित हो चुके थे।[2]

इसी काल में उच्च शिक्षा देने के लिये भारत में कॉलेजों का भी विकास हुआ जो तत्कालीन विश्व विद्यालयों के कार्य क्षेत्र में आते थे। 1882 में भारत में केवल 17 कॉलेज थे जो 1902 में संख्या में 47 हो गये थे जिनमें से 42 विशिष्ट जनसमितियों के थे कुल 2 लाख 55 हजार रूप्पये इन जनसंख्याओं को आर्थिक सहायता के रूप में दिये जबकि जनता ने उच्च शिक्षा के महत्व को देखते हुए 16,31,000 रूपये व्यय किये थे।

इसी क्रम में ब्रिटिश सरकार ने पुनः 1917 में लीड्स वि0 वि0 के कुलपति डॉ0 माईकल सैडलर की अध्यक्षता में सात सदस्यीय आयोग बनाया, जिसमें तत्कालीन बंगाल प्रान्त के शिक्षा संचालक सर आशुतोष बनर्जी तथा जियाउद्दीन अहमद भारतीय विद्वानों के रूप में शामिल थे, परन्तु यह कमीशन भी आधुनिक उच्च शिक्षा की भारत में आवश्यकता को अधिक महत्व नहीं दिला पाया तथा इसका भी एक मुख्य उद्देश्य यही रह गया कि तत्कालीन यूरोप में हो रही औद्योगिक क्रान्ति के लिये शिक्षित मजदूरों की व्यवस्था बड़े पैमाने पर हो जाये। कालान्तर में भारत का जनमानस उच्च शिक्षा के महत्व को समझ चुका था तथा 1921 तक 7 और नये वि0 वि0 भारत में स्थापित हो चुके थे-

1. मैसूर वि0 वि0 (1916),
2. उस्मानिया वि0 वि0 (1918),
3. अलीगढ़ वि0 वि0 (1920),
4. बनारस वि0 वि0 (1915) में एक शिक्षात्मक आवासीय संस्था थी जो 1917 में वि0 वि0 के रूप में स्थापित हुआ)
5. लखनऊ वि0 वि0 (1920),
6. पटना वि0 वि0 (1917),
7. ढाका वि0 वि0 (1920),

यद्यपि सरकार ने भारत में उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास किया था परन्तु उनका उददेश्य व नीतियां सही न होने के कारण उच्च शिक्षा की दिशा में काई सार्थक पहल न हो सकी। 15 अगस्त 1947 को स्वतत्रता की पूर्व अवधि तक भारत में दिल्ली (1922), नागपुर (1923), आन्ध्रा प्रदेश (1926), आगरा (1927), अन्नामलाई (1929), केरल (1937), उत्काल (1943), सागर (1946), राजस्थान (1947), तथा चण्डीगढ़ (1947), सहित कुल 20 विश्वविद्यालय कार्य कर रहे थे। स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति- किसी भी राज्य के विकास में शिक्षा का

महत्वपूर्ण योगदान होता है इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् भारत में बहुमुखी विकास हेतु उच्च शिक्ष के प्रसार एवं विकास हेतु सर्वप्रथम प्रयास किये गये तथा 1948 में सर्वप्रथम डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग गठित किया गया। इसके पश्चात् समय-समय पर अनेकों समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया जिनका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न स्तरों की समीक्षा करके उसे उच्च शिक्षा के योग्य बनाना रहा है क्योंकि वास्तव में उच्च शिक्षा कोई स्वतंत्र स्तर नहीं अपितु यह प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर भी शिक्षा से जुड़ा है।

स्वतंत्र भारत के लिये पं0 जवाहल लाल नेहरू ने उच्च शिक्षा के मुख्य केन्द्र बिन्दु विश्वविद्यालय के मूल उद्देश्यों व राष्ट्रीय जीवन में उसकी भूमिका का वर्णन करते हुए कहा था कि -"विश्वविद्यालय का अस्तित्व मानवता के लिये, सहिष्णुता के लिये, विचारमत साहस व सत्य की खोज के लिये होता है। उसका यह लक्ष्य होता है कि मानव जाति और भी उच्चतर उद्देश्यों की ओर कदम बढ़ायें राष्ट्र और जनता का श्रेय इसी में है कि विश्वविद्यालय अपने दायित्व का समुचित निर्वाह करते रहें''। वर्तमान समय में कदाचित विश्वविद्यालय अपने उद्देश्यों से भटक गये हैं तथा अनेक समस्याओं के जनक बन गये हैं।

शिक्षा का उद्देश्य समाज में एकीकरण एवं संगठन उपलब्ध करवाना है एवं बालक- बालिकाओं को आत्मनिर्भर बनाने के साथ है। उनका बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना भी होता है,[3] जिससे कि वह भविष्य में अपने सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ सफल अनुकूलन कर सके तथा अपने ज्ञान एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक विरासत को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचा सकें। महात्मा गाँधी के अनुसार- "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करने से है।'' वहीं स्पेन्सर का मानना है कि "शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने जीवन को पूर्णतया सफल बना सके।'' और उचच शिक्षा के कन्धों प् यह उत्तरदायित्व स्वाभाविक रूप से आ जाता है। एच0 हेररिंगटन ने अपनी पुस्तक "दि सोशल फंक्शन ऑफ दि यूनिवर्सिटी'', में विश्वविद्यालय का कार्य ज्ञान के उस व्यापक रूप का अन्वेषण करना बताया है जो मानव की संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में विकास एवं उन्नति में सहायक हो सके। "अर्थात् उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देष्य ज्ञान का संकलन, खोज तथा प्रसार करना है। परन्तु वर्तमान में उच्च शिक्षा अपने उद्देश्य से दूर हो गयी है। अत: आवश्यक हो गया है कि अब शिक्षा के लिए उत्तरदायी कार्यदायी संसथायें यथा- विश्वविद्यालय अनुदान आयेाग, राष्ट्रीय योजना परिषद, एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, तथा एन0 सी0 टी0 ई0, ए0 आई0 ई. सी0 टी0 टी0, मेडिकल कांऊसिल ऑफ इण्डिया बार कांऊसिल इत्यादि अपनी भूमिकाओं का निर्वाह अत्यन्त योग्यता, कुशलता एवं जिम्मेदारी के साथ करें। 21वीं सदी में अर्थव्यवस्था और समाज का बदलाव काफी हद तक हमारे लोगों में शिक्षा के क्षेत्र में उसके स्तर, विशेषकर उसके उच्चतर शिक्षा के प्रसार एवं उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करेगा। क्योंकि सबको समाहित करने वाला समाज ही एक ज्ञानवान समाज की बुनियाद की व्यवस्थ कर सकता है।

छात्र अनुशासनहीनता- कोलकाता विश्व विद्यालय के पूर्व उपकुलपति प्रोफेसर एन0 के सिद्धांत के अनुसार 7 प्रकार की अनुशासनहीनता वि0 विद्यालयों में मुख्य रूप से पायी जाती हैं यथा- उच्श्रृंखला व्यवहार, सामान्य दुर्व्यवहार, यौन सम्बन्धित दुर्व्यवहार, परीक्ष्ज्ञा सम्बन्धित दुर्व्यवहार, अधिकारों का दुरूपयोग, धन सम्बन्धित अनियमितता, चोरी और सेंधमारी।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2006) का भी मानना है कि हमारे उच्च शिक्षा संस्थाओं की मुख्य समस्या यही है कि यहाँ पर छात्रों के लिये स्थानों की संख्या कम है। जिससे योग्य छात्र प्रवेश पाने से वंचित रह जाते हैं तथा वे छात्र प्रवेश पाने में सफल हो जाते हैं जो कि कदाचित इसके योग्य नहीं होते हैं। ज्ञान आयोग का मानना है कि सभी होनहार एवं योग्य छात्रों को उच्चतर शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए भले ही उनकी सामाजिक- आर्थिक पृष्ठ भूमि कैसी भी हो। निसन्देह योग्य एवं प्रतिभाशाली छात्रों के उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश से इन संस्थाओं में पायी जाने वाली अनुशासनहीनता की समस्या पर भी काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है।

उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ समस्या एवं सुझाव

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार विकसित होने का अधिकार है। मानव अधिकारों की घोषणा में इस तथ्य को मूलभूत रूप से स्वीकार किया गया है। इसके लिए शिक्षा और ज्ञान अत्यंत आवश्यक हैं, यह तथ्य सब के लिए शिक्ष की धारणा से बहुत आगे है। फ्रेड्रिक हेयाक ने ज्ञान और शिक्षा में जो अंतर किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने इसके दो बिल्कुल अलग बिंदुओं को इस तरह बताया है कि बाजार व्यवस्था के अंतर्गत प्रयुक्त किया जाने वाला बहुत-सा ज्ञान न तो कोडीफाई किया जा सकता है और न ही उसका भौतिकता से कोई संबंध होता है। जैसे कि दर्जी, रंगाई करने वाले, बेकरी वाले आदि अपने क्षेत्र का जो ज्ञान रखते हैं उसका कोई भी संबंध औपचारिक शिक्षा से नहीं होता। इस प्रकार आर्थिक अवसरों के साधन के रूप में औपचारिक शिक्षा की बड़ी सीमाएं हैं। औपचारिक शिक्षा कुछ अलग तरह के लोगों को बनाती है जैसे- नौकरशाह, प्रबंधक, डॉक्टर, वकील आदि परंतु व्यावसायिक शिक्षा के विकास के बावजूद आर्थिक गतिविधियों में संलग्न और सफल बहुसंख्यक समाज अपना ज्ञान शिक्षा केंद्रों से अलग हट कर पाता है। इसीलिए खिलाड़ी, फैशन मॉडल, फिल्मी कलाकार आदि एक इंजीनियर या समाजशास्त्री शिक्षक से कई गुना अधिक पैसा कमाते हैं। ज्ञान के इस पक्ष को आवश्यक रूप से ध्यान में रखना चाहिए।[4]

प्लूटो ने कहा था कि ज्ञान ही अच्छाई है यद्यपि इस पर आज ढेर सारे प्रश्न खड़े किए जाते हैं लेकिन आज इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि शिक्षा ही शक्ति का स्रोत है। आजकल आईटी

क्षेत्र के विशेषज्ञ श्रेष्ठतम स्थिति में हैं। आजादी के बाद देश में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा विद्यार्थियों की प्रवेश संख्या तेजी से बढ़ी है, किंतु दुर्भाग्य से वर्तमान में शिक्षा के मात्रात्मक प्रसार के साथ-साथ उसका गुणात्मक मूल्य धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और कुछ विशेष केंद्रों को छोड़कर अधिकांश शिक्षण संस्थाएँ डिग्रियाँ बांटने के केंद्र बन कर रह गई हैं।

शिक्षा के दो उद्देश्य होते हैं- एक तो वह व्यक्ति को शिष्ट, सभ्य, सामाजिक नागरिक बनने में मदद करती है एवं दूसरा वह आजीविका का साधन होती है। वर्तमान भारतीय समाज में जिस प्रकार के व्यक्ति केंद्रित प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अपराध एवं एक-दूसरे के प्रति विद्वेष रखने और शिक्षितों के द्वारा अपराधों में वृद्धि के हालात बने हुए हैं, उससे इस उद्देश्य की पूर्ति की विफलता साफ जाहिर होती है। भारतीय श्रम रिपोर्ट, 2007 में पाया गया कि रोजगार के अवसर तो हैं उसके लिए काबिल लोगों की कमी है। एक तरफ लोग भारतीय प्रतिभा की तारीफ कर रहे हैं एवं दूसरी ओर 80 प्रतिशत लोग प्रतिभाविहीन हैं। रिपोर्ट के अनुसार 53 प्रतिशत युवाओं में वांछित कौशल की कमी पाई जाती है, हालांकि 8 प्रतिशत युवा ही बेकार हैं। रिपोर्ट में साफ-साफ कहा गया है कि शिक्षा प्रणाली में तत्काल सुधार की आवश्यकता है। आज उपलब्ध रोजगार के अवसरों में 90 प्रतिशत व्यावसायिक कौशल की आवश्यकता होती है जबकि 90 प्रतिशत कॉलेजों और स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा केवल किताबी है। अगले चार वर्षों में विश्व की 25 प्रतिशत श्रमशक्ति भारत में होगी। सन् 2025 तक 30 करोड़ युवा श्रमशक्ति के तौर पर उपलब्ध होंगे और अगर वे काबिल हुए तो भारत आर्थिक महाशक्ति बनकर रहेगा।[5]

वर्तमान में देश के लगभग सभी बुद्धिजीवी इस बात पर सहमत हैं कि इस शिक्षा प्रणाली को तत्काल बदलने की आवश्यकता है। अगर 21वीं सदी में भारत के 6 से 14 वर्ष के छह करोड़ बच्चे अशिक्षित रहते हैं और बेरोजगारों और अर्ध-बेरोजगारों की फौज बढ़ती है, तो यह गहन चिंता का विषय है। देश में एक ओर कौशल संपन्न लोगों की भारी कमी महसूस की जा रही है और दूसरी ओर बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हैं। सरकार इससे अनभिज्ञ नहीं है और इस संबंध में कई योजनाएं घोषित की जा चुकी हैं। सरकार ने 2004 के बजट में अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए 2 प्रतिशत का सेस लगा दिया एवं इसकी जरूरत भी बताई कि शिक्षा पर व्यय वर्तमान जीडीपी के 3.4 से बढ़ाकर 4 प्रतिशत किया जाए। इसके परिणामस्वरूप परिमाणात्मक वृद्धि तो हो रही है पर समस्या गुणात्मक वृद्धि की है। स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा के हर स्तर पर यह समस्या विद्यमान है।

आज 21वी सदी में शिक्षा के समक्ष बहुत सी चुनौतियां हैं वर्तमान में विश्वव्यापीकरण, औद्योगिकीकरण, प्रौद्योगिकीकरण, एवं उदारीकरण, निजीकरण जैसी प्रक्रियाओं के कारण सम्पूर्ण विश्व में जो परिवर्तन हो रहा है उसे देखते हुये भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी पूर्णत: परिवर्तन की सम्भावना की जा सकती है।[6] यदि समाज में समय के अनुसार परिवर्तन लाना है तो हमें परिवर्तन के अभिन्न स्रोत शिक्षण के क्षेत्र में नवीन तथ्यों को समाहित करना होगा जिससे 21वीं सदी के द्वार पर शिक्षा जगत को एक 'ज्ञान के मन्दिर' के रूप् में प्रतिस्थापित किया जा सके।

संदर्भ

1. दर्शना कुमारी, उच्च शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं राष्ट्र के विकास में योगदान, (सम्पादन) डॉ0 उमेश कुमार शाक्य, भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियां, बुक पब्लिकेशन, लखनऊ, 2016, पृ0 50
2. प्राचीन शिक्षा प्रणाली-डॉ0 वी0पी0 चतुर्वेदी पृ0 09
3. Bhattacharya, Abhijit. 2010. Mismanagement of Indian Management Education.
4. भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें-डॉ0 महावीर प्रसाद गुप्ता, डॉ0 ममता।
5. Anderman, E.M. (2011). The teaching and learning 21st century skills. Paper presented at the NRC Workshop on Assessment of 21st Century Skills, National Research Council, Irvine, CA, January 12-13. Available
6. National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine. 2012. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century. Washington, DC: The National Academies Press. https://doi.org/10.17226/13398.

भारत में प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप

सुरेन्द्र कुमार रजक

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

प्राथमिक शब्द का सामान्य अर्थ है- प्रारम्भिक, मुख्य। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ- प्रारम्भिक शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा इसलिए कि यह बच्चों को प्रारम्भ में दी जाती है और मुख्य शिक्षा इसलिए कि यह आगे की शिक्षा की नींव होती है। इस प्राथमिक शब्द के पीछे एक भाव और छिपा है और वह यह कि इसके द्वारा बच्चों को शिक्षा प्रक्रिया की प्रथम आवश्यकता सम्प्रेषण के माध्यम भाषा की शिक्षा दी जाती है और उन्हें सामाजिक जीवन जीने की प्राथमिक क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता है। परन्तु प्राथमिक शिक्षा बच्चों की किस आयु तक चले अथवा किस कक्षा से किस कक्षा तक चले और इसकी क्या पाठ्यचर्या हो, इस विषय में भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न-भिन्न निर्णय हैं।

हमारे देश में 1937 मे प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित हुआ। उसी वर्ष गांधी जी ने 'राष्ट्रीय शिक्षा योजना' प्रस्तुत की जिसमें 7 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने का प्रस्ताव किया। हमारे संविधान की धारा 45 में प्रारम्भ में यह घोषणा की गई थी कि संविधान लागू होने के समय से 10 वर्ष की अवधि के अन्दर 14 वर्ष तक के बच्चों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जाएगा। इसका आशय कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा से ही है।[1]

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। तब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में यह शिक्षा केवल शिक्षित परिवारों के बच्चों तक सीमित थी और इसका कोई सर्वमान्य स्वरूप निश्चित नहीं था। परिणाम यह हुआ कि इस काल में प्राथमिक शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका।

बौद्ध कला में प्राथमिक शिक्षा

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने अपने मठों एवं विहारों में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था शुरू की। यह शिक्षा बौद्ध संघों के नियंत्रण में थी, इसलिए दोनों स्तरों की शिक्षा का स्वरूप निश्चित हुआ, उनके उद्देश्य निश्चित हुए और उनके पाठ्यक्रम निश्चित हुए। बौद्धों ने अपने मठों एवं विहारों में सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्रवेश देना शुरू किया, परिणामस्वरूप सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर सुलभ हुए। परन्तु ये बौद्ध मठ एवं बिहार देश के सभी स्थानों पर स्थिति नहीं थे, इसलिए इस काल में भी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ नहीं बनाया जा सका। हाँ, एक ओर बौद्ध मठों एवं विहारों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने और दूसरी ओर बौद्धों की टक्कर में ब्राह्मणों द्वारा पाठशालाओं की स्थापना होने से प्राथमिक शिक्षा का विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ।[2]

ब्रिटिश शासन काल में प्राथमिक शिक्षा

1857 में भारत में अंगेजीं के विरुद्ध क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का दमन करने के बाद 1858 से यहाँ सीधे ब्रिटेन की सरकार का शासन स्थापित हो गया। लॉर्ड कैनिंग यहाँ के प्रथम गवर्नर जनरल एवं वायसराय नियुक्त हुए। 1859 में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा कर लगाया और इससे प्रापत धनराशि से प्राथमिक शिक्षा के विकास का प्रयत्न शुरू किया, परन्तु इसमें उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1882 में उसने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए भारतीय शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) की नियुक्ति की। प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में इसके चार सुझाव बड़े महत्वपूर्ण थे। पहला यह कि सरकार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों (Local Bodies) पर छोड दे और प्रान्तीय सरकारें इन निकायों को प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले व्यय का 1/2 या 1/3 भाग अनुदान के रूप में दें। दूसरा यह कि प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ हों। तीसरा यह कि प्रान्तीय सरकारें इन भाषाओं के विकास के लिए प्रयत्न करें। और चौथा यह कि प्राथमिक शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाए। इसकी सिफारिशों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों को सौंप दिया गया। इन स्थानीय निकायों ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयन्त शुरू किए। परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा में विकास शुरू हुआ। 1881-82 में भारत में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 82,916 थी और इनमें पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या 20,61,541 थी जो 1901-02 में बढ़कर क्रमश: 93604 और 30,76,671 हो गई। परन्तु इन स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी इसलिए ये भी प्राथमिक शिक्षा को जन शिक्षा का रूप नहीं दे सके।[3]

इस बीच देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर उठी। राष्ट्रीय नेताओं ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग की। इस सन्दर्भ में तत्कालीन बड़ौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड़ का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1892 में 9 ग्रामों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा योजना

लागू की। इस कार्य में उन्हें पूरी सफलता मिली, परिणामतः 1906 में उन्होंने एक अधिनियम द्वारा अपने पूरे राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। 1910 में गोपालकृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा (Imperial Legislative Council) में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में एक प्रस्ताव रखा। सरकार ने प्रस्ताव तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु उसके लिए प्रयन्त करने का आश्वासन अवश्य दिया। जब सरकार ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया तो मार्च, 1911 में गोखले ने इसे केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया। यह विधेयक भी पास नहीं हुआ, परन्तु इससे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने हेतु एक मुहिम शुरू अवश्य हो गई। सरकार ने 1913 में शिक्षा सम्बन्धी नए प्रस्ताव (नीति) की घोषणा की। इस शिक्षा नीति, 1913 में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में चार घोषणाएँ बड़ी महत्वपूर्ण थीं- पहली यह कि निम्न प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाए। दूसरी यह कि आवश्यकतानुसर उच्च प्राथमिक स्कूल स्थापिक किए जाएँ। तीसरी यह कि व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाए। और चौथी यह कि देशी पाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाए।

आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

जहाँ तक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने की बात है, इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम भारतीय शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन, 1882) ने विचार व्यक्त किए। उसने प्राथमिक शिक्षा के केवल दो उद्देश्य निश्चित किए थे-एक जन शिक्षा का प्रसार और दूसरा व्यावहारिक जीवन की शिक्षा। बस, तब से अब तक हम इन्हीं उद्देश्यों को भाषायी अन्तर से अभिव्यक्त करते रहे हैं। नवम्बर, 2000 में 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) ने विद्यालयी शिक्षा के लिए जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा दस्तावेज प्रकाशित की थी, उसमें विद्यालयी शिक्षा के 20-25 उद्देश्य निश्चित किए हैं। उन उद्देश्यों के आधार पर हम प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-

(1) बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का ज्ञान कराना और स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं में प्रशिक्षित करना।

(2) बच्चों को उनकी मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) और उनके प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान करना।

(3) बच्चों में सामूहिकता की भावना विकसित करना, उन्हें वर्ग भेद से ऊपर उठाना और जीवन कला में प्रशिक्षित करना।

(4) बच्चों को सांस्कृतिक क्रियाओं-उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य आदि में भाग लेने की ओर अग्रसर करना और उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना।

(5) बच्चों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।

(6) बच्चों को शरीर श्रम के अवसर देना, उनमें शारीरिक श्रम के प्रति आदर भाव पैदा करना और उनकी सृजनात्क शक्ति को सचेष्ट करना।

(7) बच्चों को एक-दूसरे का सम्मान करने की ओर प्रवृत्त करना और उन्हें प्रेम, सहानुभूति और सहयोग से कार्य करने की ओर उन्मुख करना।

(8) बच्चों को पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सचेत करना, उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास करना।

आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यचर्या

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना घोषित की गई और 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की आधारभूत पाठ्यचर्या (Core Curriculum) की रूपरेखा तैयार कर दी। इस बीच कुछ प्रान्तों में भी तद्नुकूल पाठ्यचर्या तैयार की गई। उसी बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की घोषण की गई। इस शिक्षा नीति, में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना को पूरे देश में अनिवार्य रूप से लागू करने पर बल दिया गया। 1988 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की आधारभूत पाठ्यचर्या का नया प्रारूप प्रकाशित किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में यह घोषणा की गई थी4 कि प्रत्येक 5 वर्ष बाद किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या का पुनर्निरीक्षण किया जाएगा और उसमें आवश्यक संशोधन किए जाएँगे। अतः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने 2000 में प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की आधारभूत पाठ्यचर्या की तीसरा और इसके बाद 2005 में चौथी आधारभूत पाठ्यचर्या प्रस्तुत की जिसमें प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या इस प्रकार है-

(अ) कक्षा 1 से कक्षा 5

(1) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा)

(2) अंग्रेजी

(3) गणित

भारत में आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश करने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को है। यहाँ सर्वप्रथम 1510 में पुर्तगाली व्यापारी और उनके साथ पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया, उन्होंने गोआ, कोचीन और बान्द्रा में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में पुर्तगाली भाषा, स्थानीय भाषा, गणित और स्थानीय शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। इसके बाद 1613 में ब्रिटिश व्यापारी और उनके साथ ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया। इनके बाद इस देश में 1667 में फ्रान्सीसी व्यापारी और फ्रान्सीसी ईसाई मिशनरियों और 1680 में डेन व्यापारी और डेन ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया। यूँ तो इन सभी मिशनरियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की परन्तु इनमें सबसे अधिक योगदान ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों का रहा। उन्होंने 1613

से 1757 के 144 वर्ष के इस लम्बे काल में भारत में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में बड़ा योगदान दिया। उन्होंने स्थान-स्थान पर ईसाई मिशनरी प्राथमिक स्कूल खोले और इनमें क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था शुरू कीं इन विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा और ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। 1698 में ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक आदेश जारी किया जिसमें उसे भारत में शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार की आज्ञा प्रदान की और साथ ही इस पर व्यय करने का अधिकार दिया। परिणामत: कम्पनी ने एक ओर ईसाई मिशनरियों को शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए आर्थिक सहायता देनी शुरू की और दूसरी और स्वयं अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोलने प्रारम्भ किये। इनकी टक्कर में भारतीयों ने भी जगह-जगह पाठशालाएँ और मकतब स्थापित किए। परन्तु ये ईसाईयों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोक नहीं पाए और भारत में अंग्रेजी प्रणाली की शिक्षा फूलते-फलने लगी।[5]

(1) एकीकृत पर्यावरण अध्ययन
(2) कला व शिल्प
(3) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा
(4) कार्यानुभव

(ब) कक्षा 6 से कक्षा 8

(1) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा)
(2) आधुनिक भारतीय भाषा
(3) अंग्रेजी
(4) विज्ञान
(5) गणित
(6) सामाजिक विज्ञान अध्ययन (इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र तथा अर्थशास्त्र)
(7) कला शिक्षा
(8) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

इस पाठ्यचर्या में क्या पढ़ाना चाहिए के साथ-साथ क्यों पढ़ाया जाना चाहिए और कैसे पढ़ाना चाहिए और उसका परिणाम क्या होना चाहिए इस पर विशेष प्रकाश डाला गया है। यूँ यह पाठ्यचर्या अभी अपने सही रूप में किसी भी प्रान्त में लागू नहीं की गयी है। परन्तु कुछ प्रान्तों में अंग्रेजी को कक्षा 1 से और कुछ प्रान्तों में कक्षा 6 से अनिवार्य कर दिया गया है।

प्राथमिक शिक्षा के विकास के काफी तेजी आई और उसमें लगभग 3 करोड़ बच्चे प्रति दशक बढ़ते गए और वर्तमान में भी इसी गति से बढ़ रहे हैं। परन्तु चौंकाने वाला तथ्य यह है कि वर्तमान में भी 6-14 आयु वर्ग के लगभग 4 करोड़ बच्चे प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं से बाहर हैं। इनमें से लगभग 2 करोड़ बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने प्राथमिक स्कूलों में नामांकन ही नहीं कराया है और लगभग 2 करोड़ बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा बीच में ही छोड़ दी है। इस सन्दर्भ में दूसरा चिन्ता का विषय यह है कि अनेक उपाय करने के बाद भी वर्तमान में भी कक्षा 1 से 8 तक अपव्यय लगभग 30 प्रतिशत और अवरोधन लगभग 20 प्रतिशत हो रहा है। इस सन्दर्भ में तीसरा चिन्ता का विषय यह है कि अब तक लगभग 10 प्रतिशत प्राथमिक और 30 प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्कूलों को ब्लैक बोर्ड योजना का लाभ नहीं पहुँच पाया है और जिन्हें इसका लाभ पहुँचाया गया है वह भी टिकाऊ नहीं है। तब प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत विकास करना शेष है और साथ ही उसका उन्नयन करना भी शेष है।हमारे देश में तो निजी संस्थाओं द्वारा एक ओर एकदम साधनविहीन प्राथमिक स्कूल चलाए जा रहे हैं और दूसरी ओर सम्पूर्ण साधन सम्पन्न चमक-धमक वाले पब्लिक स्कूल चलाए जा रहे हैं। सरकार को इनके बीच के भारी अन्तर को भी कम करना चाहिए। साथ ही उसे प्राथमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण पर भी नियंत्रण करना चाहिए। परन्तु यह सब केवल नियम एवं कानून बनाने से नहीं किया जा सकता, इसके लिए जनचेतना जागृत करना आवश्यक हैं।

संदर्भ

1. राम शकल पाण्डेय, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास-पृ0 59।
2. ए हिस्ट्री ऑफ मिशंस इन इण्डिया, पृ0 18
3. डेविड काण्क, ब्रिटिश ओरियंटलिज्म एण्ड इंडियन रिनेसों, 1969, पृ0-13-21
4. केशव चन्द्र सेन, प्रोमोशन ऑफ एजुकेशन इन इंडिया, पृ0-47
5. पर्सीवल स्पियर, 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया', 1968, पृ0- 160

माध्यमिक शिक्षा आयोग की पृष्ठभूमि

विकास सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर- बी0एड0 विभाग, किसान पी0जी0 कालेज रकसा, रतसड़, बलिया।

स्ततंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों के हृदयों में देश की शीघ्र प्रगति के लिए असीम उत्साह था। देश के स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने देश के चहुंमुखी विकास के लिए बड़े-बड़े स्वप्न संजोए हुए थे। अब उन्हें साकार रूप में परिवर्तित करने का अवसर मिला। शिक्षा को प्रगति का एक सक्षम माध्यम माना जाता रहा है। अत: स्वाभाविक था कि इस क्षेत्र पर उचित ध्यान दिया जाए। उच्च शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालय आयोग की संस्तुतियाँ आ चुकी थीं। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र पर भी पर्याप्त समीक्षा की गई थी। परन्तु माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार के किसी आयोग का गठन नहीं किया गया था।[1] केन्द्रीय शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार सरकार को सुझाव दिया कि माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता है। अत: एक आयोग का इस कार्य की समीक्षा के लिए गठन किया जाए, भारत सरकार ने बोर्ड के इस सुझाव को स्वीकार किया तथा 23 सितम्बर, 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को मुदालियर शिक्षा आयोग (Mudialar Education Commission) भी कहा जाता है।

आयोग के सदस्य-सचिव केन्द्रीय शिक्षा संस्थान के प्रिंसिपल ए.एन. बसु थे।

आयोग की जाँच के विषय

आयोग की जाँच के दो मुख्य विषय थे-

1. भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति की समीक्षा करना तथा उस पर प्रकाश डालना।
2. माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एवं सुधार के लिए निम्नलिखित के संबंध में सुझाव देना।
3. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन एवं विषयवस्तु।
4. माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक, बेसिक तथा उच्च शिक्षा से संबंध।
5. विभिन्न प्रकार के माध्यमिक स्कूलों का पारस्परिक सम्बन्ध।
6. माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अन्य समस्याएँ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने विभिन्न राज्यों का भ्रमण किया। शिक्षाविदों तथा शिक्षा से जुड़े वर्गों से साक्षात्कार किया। विस्तृत प्रश्नावली जारी की। आयोग को अनेक प्रतिवेदन तथा सुझाव प्राप्त हुए। तदुपरान्त 28 अगस्त 1953 को आयोग ने अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को प्रेषित की। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन करके उस पर अपने विचार दिए तथा संस्तुतियाँ की।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

1. स्कूलों मे दी जाने वाली शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।
2. स्कूलों से शिक्षा प्राप्त छात्र वास्तविक जीवन में अपने को असहाय समझते हैं।
3. शिक्षा बच्चे का सर्वांगीण विकास नहीं करती है।
4. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम जीवन की समस्याओं से कोसों दूर है।
5. माध्यमिक शिक्षा संकीर्ण है।
6. माध्यमिक शिक्षा एक पक्षीय है।
7. माध्यमिक शिक्षा का छात्रों की रुचि से कोई लेना-देना नहीं है।
8. माध्यमिक पक्ष चरित्र निर्माण के पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं देती है।
9. अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है और यह शिक्षा का माध्यम भी है। अत: इस इका प्रभुत्व छात्रों पर रहता है। जो छात्र इस भाषा का समुचित ज्ञान नहीं रखते, वे अन्य विषयों में भी पीछे रह जाते हैं।
10. शिक्षण विधियाँ नीरस है।
11. शिक्षण विधियाँ छात्रों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाती है।
12. कक्षाओं में छात्रों की अधिक संख्या होने के कारण अध्यापकों तथा छात्रों में व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है।
13. परीक्षा प्रणाली में अनेक दोष है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की प्रमुख संस्तुतियाँ

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य - माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ज्यों-ज्यों राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ में परिवर्तन होता है, उसी के अनुरूप माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर बदलते हैं।[2]

संवधिान में निर्देशित गणतान्त्रिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के चार उद्देश्य बताए।

1. छात्रों में गणतांत्रिक नागरिकता का विकास।

2. छात्रों में व्यावसायिक क्षमता का विकास।
3. छात्रों में व्यक्तित्व का विकास।
4. छात्रों में नेतृत्व के गुणों का विकास।

गणतांत्रिक नागरिकता का विकास

इसके अन्तर्गत इन गुणों का व्यक्ति में निर्माण करना है।

(i) स्पष्ट विचार,
(ii) नए विचारों को स्वीकार करने की कला,
(iii) लिखने तथा पढ़ने में विचारों की स्पष्टता,
(iv) समाज में रहने की कला,
(v) सामाजिक जागरूकता,
(vi) सहनशीलता,
(vii) देश प्रेम की भावना तथा,
(viii) अन्तर्राष्ट्रीय भावना।

व्यावसायिक क्षमता का विकास

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य छात्रों में व्यावसायिक क्षमता को बढ़ाना है। इसके अन्तर्गत हैं-

(क) कार्य के महत्व को समझने की भावना।
(ख) कार्य को यथाशक्ति अच्छा तथा सुन्दर बनाना।

व्यक्तित्व का विकास

इसके अन्तर्गत हैं-विद्यार्थियों में सृजनात्क शक्तियों का विकास करना जिससे वे अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति गर्व अनुभव कर सकें। साथ ही कला-कौशल आदि विषयों में स्थान देकर उनकी सौन्दर्य शक्ति का विकास करना।[3]

नेतृत्व के गुणों का विकास

गणतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि शिक्षा ऐसे गुणों का निर्माण करे जिससे छात्रों में नेतृत्व के गुणों का विकास हों जहाँ एक ओर अनुयायी बनने के गुणों का होना आवश्यक है वहाँ दूसरों का आवश्यकतानुसार नेतृत्व करना जरूरी है।

शैक्षिक ढाँचा- इसका विवरण अलग से दिया गया है।

पाठ्यक्रम- पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण किया जाए तथा इसे सशक्त बनाया जाए। (विस्तार से विवरण आगे दिया गया है)।

पाठ्य पुस्तकें- पाठ्य-पुस्तकों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रत्येक राज्य में एक "उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तक समिति'' का संगठन किया जाना चाहिए।

एक विषय में एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित करने के स्थान पर पाठ्य-पुस्तकों की पर्याप्त संख्या निश्चित की जानी चाहिए। विद्यालयों को इन पाठ्य-पुस्तकों में से किसी एक को चुनने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

स्फूर्तिपूर्ण शिक्षण विधियाँ- "क्रिया विधि'' एवं "योजना विधि'' को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

प्रभावी शिक्षण- विधियों को लोकप्रिय बनाने के लिए "प्रयोगात्मक'' एवं "प्रदर्शनात्मक'' विद्यालयो की विभिन्न स्थानों पर स्थापना की जानी चाहिए।

धार्मिक शिक्षा- "आयोग'' का विचार है कि चरित्र के निर्माण में धार्मिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः उसने धार्मिक शिक्षा संबंधी निम्नलिखित सुझाव दिए हैं-

(i) धार्मिक शिक्षा-विद्यालयों में दी जा सकती है।
(ii) धार्मिक शिक्षा-विद्यालय के शिक्षण के समय से पहले या बाद में दी जानी चाहिए।
(iii) धार्मिक शिक्षा-छात्रों के अभिभावकों की अनुमति प्राप्त करने के बाद दी जानी चाहिए।

चित्र-निमार्ण की शिक्षा - "आयोग'' ने चरित्र-निर्माण की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है

और निम्नलिखित सुझाव दिए-

(i) छात्रों में उत्तम अनुशासन की भावना का विकास करने के लिए उनमें और शिक्षकों मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।
(ii) विद्यालयों में स्वशसन-प्रणाली को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

निर्देशन तथा परामर्श -(i) छात्रों को व्यवसायों के विषय में सूचना देने के लिए, विद्यालय में समय-समय पर "जीविकोपार्जन सम्मेलनों'' का आयोजन किये जाना चाहिए। (ii) विद्यालयों में "निर्देशन-अधिकारियों'' और "जीविकोपार्जन शिक्षकों'' की नियुक्ति की जानी चाहिए।

छात्रों का शारीरिक कल्याण - (i) सब राज्यों में "स्कूल-स्वास्थ्य-सेवा'' (School Medical Service) की सुसंगठित योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए। (ii) सब विद्यालयों के सब छात्रों की एक वर्ष में कम-से-कम एक बार स्वास्थ्य परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए।

(iii) रोगी छात्रों एवं छात्राओं का "विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी'' (School Health officer) द्वारा मुफ्त उपचार किया जाना चाहिए।

परीक्षा एवं मूल्यांकन- (i) बाह्य परीक्षाओं की संख्या में कमी की जानी चाहिए। (ii) माध्यमिक शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त करने के पश्चात् केवल एक "सार्वजनिक परीक्षा'' होनी चाहिए। (iii) परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्न निबन्धात्मक ढंग के न होकर वस्तुनिष्ठ प्रकार के होने चाहिएं, ताकि परीक्षाओं के "आत्मगत-तत्वों'' का अन्त किया जा सके। (iv) छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्यांकन करते समय अग्रलिखित उचित महत्व दिया जाना चाहिए-आन्तरिक परीक्षाएँ, नियतकालिक परीक्षाएँ (Periodical Tests) एवं विद्यालय-अभिलेख (School Records)। (v) बाह्य व

आन्तरिक परीक्षाओं का मूल्यांकन अंकों में न करके प्रतीकों (Symbols) में किया जाना चाहिए।

उच्च शिक्षा में निजी प्रयास को प्रोत्साहन देना- इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि शिक्षा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में लगभग 12 प्रतिशत था परन्तु अब यह घट कर लगभग 3 प्रतिशत रह गया है। पहले उच्च शिक्षा में निजी प्रयास से संस्थाएँ चलाई जाती थी तथा उनको चलाने के लिए सरकार से अनुदान मिलता था परन्तु अब यह प्रणाली लुप्त होती जा रही है। इसका स्थान स्ववित पोषित कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों ने ले लिया है।[4] केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की वित्त संबंधी उच्च शिक्षा तक तथा तकनीकी शिक्षा समिति (CABE Committee on Financing Higher and Technical Education) 2004-2005 ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि वर्ष 2000-2001 में लगभग 85 प्रतिशत इन्जीनियरिंग कॉलेज स्ववित पोषित कॉलेज थे। आन्ध्र प्रदेश में इस प्रकार के 95 कॉलेज थे। इसी प्रकार भारत के मैडिकल कॉलेजों की संख्या इस क्षेत्र में 303 थी। सरकारी कॉलेज केवल 25 थे। शिक्षक शिक्षा/प्रशिक्षण कॉलेजों की संख्या इस क्षेत्र में बहुत बढ़ी। यह भी पाया गया कि कुछ विश्वविद्यालय तथा कॉलेज केवल किराए के छोटे से मकानों मे चलाए जा रहे थे। 2005 में भारत के उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) ने अनेक स्ववित्त पोषित संस्थाओं की उपयुक्त साधनों के न होने के कारण मान्यता रद्द की।

स्थिति का दूसरा पहलू यह है कि उच्च शिक्षा में बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है। अत: निजी क्षेत्र का योगदान अनिवार्य है। अभिभावकों तथा छात्रों का स्ववित्त पोषित संस्थाओं के चलाने वाले शोषण न कर सकें, इस दिशा में भी व्यावहारिक कदम उठाने होंगे। सरकारी नियत्रंण इतना कठोर भी नहीं होना चाहिए कि स्वत्रंत प्रयास उपलब्ध ही न हों। इस संदर्भ में एक वैज्ञानिक तथा पारदर्शी नीति अपनाने की आवश्यकता है।

व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र का आधार -स्कूलों के लिए व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र के निर्माण में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों से सहायता मिल सकती है।

हिन्दी संध की राज-भाषा है, और आशा है कालान्तर में वह देश की जन-भाषा बन जाएगी। अन्ततोगत्वा, भाषा-पाठ्चर्या में मातृभाषा के बाद इसका ही स्थान होगा। जब तक अंग्रेजी विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा का मुख्य माध्यम और केन्द्र तथा अनेक राज्यों में प्रशासन की भाषा बनी रहेगी तब तक उसको ऊँचाा स्थान मिलता रहेगा। विश्वविद्यालयों में प्रान्तीय भाषाओं के उच्चतर शिक्षा का माध्यम बन जाने के बाद भी सभी छात्रों के लिए अंग्रेजी का व्यावहारिक ज्ञान बहुत ही उपयोगी होगा और विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वालों के लिए उसमें काफी योग्य होना आवश्यक होगा।

स्कूल में किसी भाषा के अध्ययन में कितनी योग्यता प्राप्त की जा सकती है यह बात केवल इस बात पर निर्भर नहीं हैं कि कोई भाषा कितने वर्षों तक सीखी जाती है, अपितु इस पर भी निर्भर है कि छात्र के सामने क्या अभिप्रेरण है, भाषा किस अवस्था पर सीखी जा रही है, तथा उपलब्ध शिक्षक, उपस्कर और शिक्षण-पद्धतियाँ किस प्रकार की हैं। उचित सुविधाओं के अभाव में लम्बी अवधि तक भाषा पढ़ाने से भी अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।[5] यद्यिप बहुत कम आयु में ही बच्चे को दूसरी भाषा सिखाने के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, लेकिन हमारे विचार से प्राथमिक स्कूलों में लाखों छात्रों को भाषा की शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षकों की व्यवस्था करना बहुत दुष्कर काम होगा।

तीन भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य बनाने के लिए अवर माध्यमिक अवस्था (कक्षा आठ से दस तक) सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि, उस अवस्था पर भाषा की शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या कम होती है और बेहतर सुविधाओं और शिक्षकों का प्रबन्ध किया जा सकता है। दो नई भाषाओं के शुरू करने में समय का अन्तर रखना भी वांछनीय है ताकि उनमें से एक उच्चतर माध्यमिक अवस्था में शुरू की जाए और दूसरी पहली-अतिरिक्त-भाषा पर कुछ सीमा तक अधिकार पा लेने के बाद, अवर माध्यमिक अवस्था में जबकि पहली अतिरिक्त भाषा पर छात्र का कुछ अधिकार हो गया हो। एक अच्छे स्कूल में, तीसरी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीन साल तक का अनिवार्य अध्ययन, शायद काफी होगा, लेकिन ऐच्छिक आधार पर अधिक समय तक भी इसके पढ़ने का प्रबन्ध होना चाहिए।

संदर्भ

1. University Education Commission. 1950. Report of the University Education Commission (UEC). New Delhi: Government of India.
2. Kumar, Deepak. 1998. Educational Ideas of Bengali Scientists from 1850 to 1920. In Bhattacharya 1998a.
3. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT
4. University Education Commission. 1950. Report of the University Education Commission (UEC). New Delhi: Government of India.
5. Kapur, Devesh. 2010. Indian Higher Education. In Clotfelter

रक्षा प्रौद्योगिकी की आवश्यकताएँ एवं महत्व

डॉ० अश्विनी कुमार पाण्डेय

सहायक आचार्य, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसड़, बलिया

किसी राष्ट्र की सुरक्षा में विज्ञान एवं तकनीकि का विशेष महत्व होता है। राष्ट्र की सुरक्षा का आकनि उनके शिक्षिक एंव तकनीकी आविष्कारों तथा प्रौद्योगिकी से लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का अत्यधिक महत्व होता है। किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य तत्व है। आज के युग में जिस देश की तकनीकी प्रणाली शोध गुणवत्ता की नहीं है, वह राष्ट्र कभी भी शक्तिशाली नहीं बन सकता है।[1]

रक्षा तथा प्रौद्योगिकी में सम्बन्ध

विश्व इतिहास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सुदीर्घ पम्रपरा रही है। परन्तु यदि इनकी प्रभावी भूमिका की बात की जाए, तो यह स्पष्ट है कि विश्व-जगत् में औद्योगिक क्रान्ति के बाद से ही ये प्रभावी हुई हैं। मध्यकाल तक विज्ञान एवं वैज्ञानिक विचारधारा का व्यापक स्तर पर विरोध ही होता रहा, किन्तु सामंतशाही के पतन और तर्कवाद के अभ्युदय के बाद विज्ञान एवं वैज्ञानिक विचारधारा का सम्पूर्ण विश्व में प्रभाव स्थापित हो गया।[2]

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने इतनी तीव्र गति से विकास किया है कि उनकी विभिन्न शाखाएं एवं उपशाखाएं विकसित हो गई हैं। आज विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के बीच तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन तथा प्रयोग किया जा रहा है। वर्तमान में जिस प्रकार मानव-जीवन दिन-प्रतिदिन संश्लिष्टता प्राप्त करता जा रहा है, ठीक उसी प्रकार विज्ञान की विभिन्न शाखाएं भी संश्लिष्टता को प्राप्त होती जा रही हैं।

वर्तमान विश्व में किसी भी राष्ट्र की आर्थिक एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति पूर्णरूपेण उसके प्रौद्योगिकीय स्तर एवं वैज्ञानिक आधार पर ही निर्भर करती है। ऐसे में, भारत-सदृश विकासशील राष्ट्र में तो 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की रक्षा प्रौद्योगिकी

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अपनी सुरक्षा-व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए रक्षा अनुसंधान एवं विकास को प्रोत्साहन प्रदान करना भारत की आधारभूत आवश्यकता थी। क्योंकि, अंग्रेजों ने अपने लगभग दो सौ वर्षों के शासन काल में सम्पूर्ण भारत को असुरक्षित बना दिया था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उत्पन्न परिस्थितियों, पड़ोसी देशों की आक्रामक प्रवृत्तियों और सबसे बढ़कर आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए आत्मनिर्भर रक्षा प्रौद्योगिकी का विकास भारत के लिए अत्यावश्यक हो गया था। रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग तथा अन्य संगठनों एवं सरकार की सकारात्मक नीतियों के कारण रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत ने अभूतपूर्व वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी उपलब्धियां हासिल की हैं।[3]

पण्डित जवाहरलाल नेहरू देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास में विज्ञान एवं प्रौंद्योगिकी के महत्व को भली-भांति समझते थे और अपनी इस समझ को उन्होंने हर संभव कार्य-रूप देने की कोशिश की। उन्होंने विज्ञान के कार्यान्वयन एवं वैज्ञानिक पद्धति से योजना के सुनिश्चियन के लिए 1958 में संसद में 'वैज्ञानिक नीति' का वक्तव्य रखा और, 183 में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 'प्रौद्योगिकी नीति' की घोषणा की। फिर, 1958 के विज्ञान नीति और 1983 की प्रौद्योगिकी नीति के अनुरूप ही 1993 में 'नई प्रौद्योगिकी नीति' की घोषणा की गई। समय-समय पर घोषित नीतियों एवं विचार-विमर्श के उपरान्त निर्मित ठोस योजनाओं के कारण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का संतोषप्रद विकास संभव हो सका है और विकासमान विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने अर्थव्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी विकास का सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। इस संदर्भ में बौद्धिक-सम्पदा नीति भी विशिष्ट तौर पर ध्यातव्य है।

रक्षा प्रौद्योगिकी की आवश्यकताएँ एवं विकास

किसी भी राष्ट्र के स्त्रोतेजिक परिदृश्य का मूल्यांकन राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक स्तर पर उत्पन्न चुनौतियों और उनके निदान के लिए निर्मित नीतियों के परिप्रेक्ष्य में ही बहुधा किया जाता है। अतः स्त्रोतेजिक परिदृश्य तीनों स्तर पर उत्पन्न चुनौतियों एवं खतरों के सापेक्ष अनुकूल प्रतिकूल होता रहता है। इस संदर्भ में राष्ट्र के सुरक्षा एवं स्त्रातेजिक परिदृश्य के अनुकूल होने का तात्पर्य राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित खतरों का सामना करने के लिए आंतरिक एवं बाह्य स्तर पर सतत तैयार रहने-होने से होता है। एक ओर राष्ट्र जहाँ आंतरिक स्तर पर अपनी वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के द्वारा अपनी सैन्य क्षमता को सुदृढ़ बनाने का यत्न करता है, वहीं दूसरी ओर बाह्य खतरों का सामना करने के लिए अपने से शक्तिशाली राष्ट्रों के साथ राजनीतिक एवं कूटनीतिक संबंधों की स्थापना करने का प्रयास करता है तथा इन संबंधों के परिणामस्वरूप उन चुनौतियों को प्रभावित करने की क्षमता अर्जित करता है। दूसरे शब्दों में किसी राष्ट्र का स्त्रोतजिक वातावरण उसकी सुरक्षा पर पड़ने वाले क्षेत्रीय या वैश्विक घटनाक्रम के प्रभावों से घटता और बढ़ता है, जिसके लिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी शक्ति बढ़ाने के साथ

अंतर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्त्रातेजिक समीकरणों एवं घटनाक्रम के अनुरूप अन्य राष्ट्रों के साथ अपने संबंधों को विकसित तथा निर्धारित करता है।

वर्तमान सुरक्षा परिदृश्य में भारत को चीन की ओर से उत्पन्न होने वाले खतरे और चुनौतियाँ पहले से भिन्न हैं, अलग हैं। दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है। बांग्लादेश, म्यांमार, नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका, थाईलैंड मलेशिया आदि देशों के साथ चीन की बढ़ती राजनीति, स्त्रातेजिक एवं सामरिक भागीदारी से स्पष्ट हो जाता है। हिंद महासागर क्षेत्र में उसकी बढ़ती गतिविधियाँ एक नवीन स्त्रातेजिक परिवेश का निर्माण कर रही हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में माओवादी राजनीतिक एवं क्रांतिकारी विचारधारा, पाकिस्तान में इस्लामी कट्टरतावाद, अफगानिस्तान और पूर्व में म्यांमार स्थित मादक पदार्थ उत्पादन केंद्र, इन केंद्रों और माकद पदार्थों के व्यापार एवं आतंकवाद के बीच गठजोड़, मानव तस्करी, धन की कालाबाजारी इत्यादि आयाम सुरक्षा के ऐसे परिवेश का निर्माण कर रहे हैं, जिनसे निपटने के लिए किसी अकेले राष्ट्र के प्रयासों की अपेक्षा अन्य राष्ट्रों के साथ सहभागिता के द्वारा ही उनका उन्मूलन किया जा सकता है। विगत वर्षों में भारत के साथ अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इजराइल आदि राष्ट्रों से सैनिक क्षेत्रों के संबंधों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इन संबंधों की सहायता से भारत न केवल अपना वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास कर रहा है, बल्कि अपनी सेना के आधुनिकीकरण द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर उत्पन्न होने वाले रक्षा संबंधी चुनौतियों का सामना करने में समर्थ बन रहा है। अत: ये संबंध और क्षमता भारत को क्षेत्रीय स्तर पर एक विश्वसनीय शक्ति के रूप में स्थापित कर रहे हैं। वहीं दूसरी ओर क्षेत्रीय मामलों पर उसकी राय और उसके निर्णय लेने की क्षमता अधिक प्रभावशाली हुई है।

रक्षा प्रौद्योगिकी ओर प्रमुख देशों के साथ सहयोग

जिस प्रकार मनुष्य को अपना अस्तित्व कायम रखने हेतु हवा, पानी और भोजन की अपरिहार्यता होती है उसी प्रकार राष्ट्र के जीवन में भी विदेश नीति, रक्षा नीति और आर्थिक नीतियों का आपसी तालमेल बैठाना भी आवश्यक होता है। जब कोई राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय नीति (National Policy) बनाता है तो राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के बारे में पहले विचार करताह है। यही कारण है कि देश की विदेश नीति बहुत बड़ी सीमा तक उसकी रक्षा संभाव्यताओं पर निर्भर रहती है। नैतिकता या सैन्य शक्ति के बिना किसी देश की बात विश्व सम्बनध की समस्याओं पर प्रभावी रूप से नहीं सुनी जा सकती। फलत: किसी देश की विदेश नीति को भी इस तरह समंजित करना होगा कि वह देश को समय से पूर्व युद्ध में न फँसा दे, भले ही संघर्ष अन्तत: मालूम पड़ने लगे पर पर्याप्त लड़ाकू शक्ति पहले विकसित कर लेनी चाहिए। सैनिक तरीकों से एक कमजोर देश को दबाने का प्रयास करने वाली एक बड़ी शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय भावना अपने प्रतिकूल कर सकी है और अपने खिलाफ विरोध तक खड़ा कर सकती है। उदाहरण के तौर पर ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा 1956 के स्वेज नहर विवाद को लेकर मिस्र पर आक्रमण करने की घटना को लिया जा सकता है। सरकार के निर्णय को कार्य रूप देने में जनमत का भी काफी योगदान होता है।

किसी भी राष्ट्र की विश्व सम्बन्धों में स्थिति उसकी विदेश नीति द्वारा निर्धारित होती है और राष्ट्रीय नीति ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कोई भी राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित को पूरा करने का प्रयास करता है। जैसा कि जार्ज मौडेल्स्की ने विदेश नीति के बारे में कहा है कि- "विदेश नीति उन क्रिया-कलापों का समुच्चय है जो किसी समुदाय ने अन्य राज्यों का व्यवहार बदलने के लिये और अपने क्रिया-कलापों को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के साथ समायोजित करने के लिए विकसित किया हो।" विदेश नीति का अस्तित्व शून्यता के आधार पर कदापि सम्भव नहीं। यह राष्ट्रीय हितों और उद्देश्य के संदर्भ में ही अपनी भूमिका का निर्वाह करती है। अत: राष्ट्रीय हित की उपेक्षा करके कोई भी विदेश नीति नहीं बनाई जा सकती। विदेश नीति की अच्छाई इसब बात में निहित होती हैं कि राष्ट्र को समय से पहले किसी लड़ाई में न उलझा दे। जैसे द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी के आक्रामक रवैये को देखते हुए भी ब्रिटेन युद्ध का तब तक टालता रहा जब तक कि वह सैन्य दृष्टि से तैयार नहीं हो गया।

सन् 1971 में जब पाकिस्तान हमारी सीमाओं पर आक्रमण करके पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में खुला ताण्डव नृत्य करने लगा और फलत: शरणार्थियों की संख्या भारत में बढ़ती गई, फिर भी श्रीमती गाँधी ने युद्ध की शंख ध्वनि तब तक नहीं फूँकी जब तक कि सोवियत संध से हरी झण्डी नहीं ले ली। यह भारतीय विदेश नीति की सफलता रही जिससे भारत-पाक युद्ध 1971 में हमें शानदार विजय मिली और इस युद्ध ने तृतीय विश्व युद्ध का रूप भी नहीं लिया। सम्भवत: इसीलिए वाल्टर लिपमैन ने ठीक ही कहा है कि किसी राष्ट्र की सुरक्षा उसी समय तक बनी रह सकती है जब राष्ट्र न्यायोचित हितों का बलिदान किये बिना युद्ध को टालने में सक्षम होता है और यदि उसे चुनौती दी जाये तो वह युद्ध द्वारा उससे निपट सके।

अत: विदेश नीति और रक्षा नीति का सम्बनध चोली-दामन का होता है। रक्षा और विदेश मंत्रालयों की, मंत्रिमंडल के सर्वोपरि उत्तरदायित्व के अधीन रहते हुए पूरे-पूरे सहयोग और सरकार के साथ कार्य करना चाहिए क्योंकि ये दोनों एक दूसेरे के पूरक है। दोनों का उद्देश्य राष्ट्र हित को प्राप्त करना होता है। मात्र अन्तर केवल इतना है कि विदेश नीति एक राजनीतिक साधन हैं और रक्षा नीति सैनिक साधन। रक्षा नीति देश के लिये उन सभी साधनों को जुटाती है जो राष्ट्र की रक्षा तथा राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिये आवश्यक हैं ये साधन यद्यपि मूल रूप से सैनिक है, परन्तु अन्य देशों के साथ आर्थिक राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के आदान-प्रदानों से प्रापत होते है। अत: इन दोनों के बीच लक्ष्मण रेखा खींचना सम्भव नहीं। विदेश नीति की दुर्बलता तथा सशक्तता

उस राष्ट्र की रक्षा क्षमता पर ही निर्भर करती है, परन्तु कभी-कभी सैनिक क्षमता की कभी विदेश नीति के द्वारा पूरी की जाती है। उदाहरणार्थ सन् 1971 में जब भारत को अमेरिका का रवैया अनुकूल न लगा और पाकिस्तान एवं चीन से खतरा झलकने लगा तब भारत ने रूस से भारत-रूस मैत्री संधि (1971) की जो समय आने पर भारत-पाक युद्ध 1971 में राष्ट्रीय हित के लिए कारगर प्रमाणित हुई। यह निश्चित ही विश्व सम्बनध को प्रभावित करने वाली राष्ट्रीय नीति का प्रमुख उदाहरण है।

राष्ट्रीय सुरक्षा में रक्षा प्रौद्योगिकीका महत्वपूर्ण योगदान[4]

युद्ध में रक्षा प्रौद्योगिकी का निर्णायात्मक योगदान काफी महत्वपूर्ण होता है। बिस्मार्क के माध्यम से जर्मनी समन्वयीकरण के दौन हुए युद्ध में तकनीकी का अत्यधिक योगदान रहा। इस युद्ध में रेलवे का प्रभाव सर्वाधिक प्रभावशाली साबित हुआ। रेलवे की मदद से। प्रशिया के सैनिक शीघ्रता से दूसरे स्थान तक भेजे जा सकें। उन्हें सारे समय युद्ध के मैदान में ही नहीं रखा गया अपितु उनको कुछ समय पश्चात् युद्ध-क्षेत्र से आराम करने के लिए वापस बुला लिया जाता था और उनके स्थान पर ताजा और चुस्त सैनिक भेजे जाते थे। इससे उनके मानसिक बल में वृद्धि हुई; इसी प्रकार रेल-रोड की सहायता से प्रशिया की सैन्य सामग्री जैसे तोपें आदि त्वरित गति से युद्ध के उस क्षेत्र में भेज दिए जाते थे जहाँ उनकी अधिक आवश्यकता होती थी। इस प्रकार कम सैनिक अथवा सैन्य सामग्री होते हुए भी उनका भरपूर उपयोग रेल-रोड के कारण संभव हो पाया जिससे वे विजयी हुए।

उसी अवधि में विकसित एक अन्य तक्नालॉजी 'टेलीग्राफी' ने भी युद्ध को प्रभावित किया। इसकी सहायता से संदेशों का आदान-प्रदान बहुत त्वरित गति से होने लगा तथा कमांडरों को सुदूर स्थित सैन्य टुकड़ियों पर भी नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त हो सकी।

फ्रांस तथा प्रशिया के बीच हुए युद्ध में एक अन्य तथ्य यह उजागर हुआ कि केवल उन्नत तक्नालॉजी के उपसकर रखना ही काफी नहीं है, उनका उचित ढंग से उपयोग करना भी आवश्यक है। प्रशिया के सैनिकों की रायफलें फ्रांस के सैनिकों की रायफलों जैसी अच्छी नहीं थी। उसके अतिरिक्त फ्रांस के पास मशीनगनें भी थीं जो एशिया के पास नहीं थीं किन्तु प्रशिया के सैनिकों ने अच्छा प्रशिक्षण पाया हुआ था जिससे उन्हें सफलता मिली।

एक अन्य प्रकार के तकनीकी यंत्र का आविष्कार हुआ जिसके अन्तर्गत गोलिया नोजल से भरने के स्थन पर छिद्र से भरने का प्रावधान था। उससे युद्ध के समय गोलियाँ भरने में कम समय लगता था तथा एक निश्चित समय में अपेक्षाकृत अधिक गोलियाँ चलाई जा सकती थीं। इस नई तक्नालॉजी का एक लाभ यह भी हुआ कि अब सैनिक लेटकर, बैठकर अथवा खड़े होकर, किसी भी स्थित में गोली चला सकता था।

इस प्रकार युद्ध में विजय पताका फहराने हेतु उच्च तकनीकी के औजार ही आवश्यक नहीं हैं बल्कि उन औजारों के संचालन के बारे में भली भांति ज्ञान होना भी जरूरी है। जर्मनी में प्रथम विश्व युद्ध शुरू होने के पहले एक विस्तृत औद्योगिक क्षेत्र निर्मित हो गया था और युद्ध करने के आधुनिक पद्धतियों का आविष्कार हो चुका था जो प्रथम विश्व युद्ध को पूर्ण रूपेण प्रभावित किया। विषाक्त गैस एक आधुनिक तकनीक थी।

संदर्भ

1. बाला, मनमोहन, ''युद्ध और सूचना प्रौद्योगिकी'', विकास दीप प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2005, पेज-45।
2. अग्रवाल, गिरिराज शरण, ''आओ अतीत में चलें'', फ्यूजन बुक्स, अप्रैल, 2005, पेज-7
3. Kathpalia, P.N., National Security Perspectives, Lancer International, New Delhi, 1986. Page-89.
4. सिविल सर्विसेज टाइम्स, जनवरी, 2005, पेज-12

हमारे दैनिक जीवन में जन्तुविज्ञान का महत्व

अशोक कुमार सिंह

सहायक आचार्य, जन्तु विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया,

जन्तुविज्ञान पशु विज्ञान का अध्ययन है। यह जीव विज्ञान की एक शाखा है जो जानवरों के जीवन, उनकी जीव संरचना और उनकी उपकोशिकीय जीवन इकाई का अध्ययन करती है। प्राणी विज्ञानी जानवरों के शरीर की कार्यप्रणाली और संरचना का अध्ययन करते हैं कि जानवर कैसे बनते हैं और कैसे उनकी विशेषताएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाती हैं। जूलॉजिस्ट अध्ययन करते हैं कि जानवर कैसे व्यवहार करते हैं और एक दूसरे के साथ बातचीत करते हैं और उनके रहने का वातावरण कैसा है। वे जानवरों के व्यवहार संबंधी महत्व का भी अध्ययन करते हैं।[1]

जन्तुविज्ञान का अनुप्रयोग

जन्तुविज्ञान को एक अनुप्रयुक्त या बुनियादी विज्ञान के रूप में देखा जा सकता है। जो लोग जूलॉजी का बुनियादी अध्ययन करते हैं, वे प्राप्त जानकारी के किसी भी अनुप्रयोग पर विचार किए बिना जानवरों के बारे में जानने के इच्छुक होते हैं। जो लोग अनुप्रयुक्त प्राणीशास्त्र का अध्ययन करते हैं, वे प्राणिविज्ञान के अनुप्रयोग में रुचि रखते हैं और यह जानने में रुचि रखते हैं कि कैसे प्राप्त ज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में मनुष्यों और जानवरों को लाभ पहुंचाने में मदद कर सकता है।[2]

जन्तुविज्ञान का इतिहास

'जूलॉजी' शब्द की उत्पत्ति प्राचीन ग्रीस में हुई है। यह ग्रीक शब्द जोन से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'पशु' और 'लोगो' का अर्थ है 'अध्ययन' या 'ज्ञान'। ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने जानवरों की संरचना और विकास के अवलोकन और अध्ययन में बहुत रुचि ली। उन्हें 'जूलॉजी का जनक' कहा जाता है।

प्राचीन काल से ही लोगों में जानवरों के बारे में जानने की रुचि रही है। 16वीं और 17वीं सदी के मध्य में, यूरोप में जानवरों का अध्ययन करने के एकमात्र उद्देश्य से कई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी। 19वीं शताब्दी में, सूक्ष्मदर्शी ने पशु कोशिकाओं के अध्ययन में सहायता की और जूलॉजी को अगले स्तर पर ले गए। ऐतिहासिक रूप से, जूलॉजी का उपयोग जानवरों को वर्गीकृत करने और उनका विश्लेषण करने के लिए किया जा रहा है। अरस्तू एक यूनानी दार्शनिक है जिसे एक ऐसी प्रणाली तैयार करने का श्रेय प्राप्त है जो जीवों को वर्गीकृत करने और कई अन्य विविध जीवों के बीच उनकी समानता को पहचानने में मदद करता है। उन्होंने चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में प्रणाली तैयार की जहां उन्होंने जानवरों के विभिन्न समूहों को उनके निवास स्थान और उनके प्रजनन पैटर्न के अनुसार व्यवस्थित किया। पहले अरस्तू ने चीजों को या तो जानवरों या पौधों में विभाजित किया था और फिर उनका वर्गीकरण जारी रखा। यह केवल बाद में था कि जूलॉजी, वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान जैसे शब्द अस्तित्व में आए और विभिन्न जीवों को अलग कर दिया।[3]

जन्तुविज्ञान 12वीं शताब्दी में एक विज्ञान के रूप में उभरी, और यह अध्ययन मुख्य रूप से जानवरों को वर्गीकृत करने के लिए उनकी शारीरिक रचना का अध्ययन करने पर केंद्रित था। कैरोलस लिनिअस एक स्वीडिश वनस्पतिशास्त्री हैं जिन्होंने एक नामकरण प्रणाली विकसित की है जो प्रजातियों और जीनस की द्विपद प्रणाली है और एक पूर्व निर्धारित प्रणाली के अनुसार एक वर्गीकरण है।

चार्ल्स डार्विन ने इन विकासों को प्राकृतिक चयन के माध्यम से अपने विकासवाद के सिद्धांत में संश्लेषित किया।

जन्तुविज्ञान का अर्थ

आज, हालांकि, जानवरों के साम्राज्य के सभी पहलुओं को कवर करने वाला एक बहुत ही विविध विषय है। यह जैव रसायन और आनुवंशिकी जैसे क्षेत्रों को शामिल करने के लिए भी व्यापक है। जानवरों के साम्राज्य के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई तरह के तकनीकी पहलुओं का इस्तेमाल किया जाता है।

उदाहरण के लिए, जानवरों का एक अनुवांशिक अध्ययन उनके विकास के इतिहास में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। यह जूलॉजी के प्रमुख महत्वों में से एक है।

जन्तुविज्ञान की परिभाषा

जन्तुविज्ञान जीव विज्ञान का क्षेत्र है जो जानवरों के अध्ययन से संबंधित है। इसमें जीवित और विलुप्त दोनों तरह के जानवरों के भ्रुणविज्ञान, वर्गीकरण, संरचना, विकास और आदतों का अध्ययन शामिल है। जूलॉजी भी पारिस्थितिकी तंत्र के साथ जानवरों की बातचीत का वर्णन करती है।

जन्तुविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ

जन्तुविज्ञान के कई उपखंड हैं जो कुछ विशिष्ट पशु जीवन विभाजनों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यहाँ प्राणीशास्त्र की शाखाएँ हैं।

- एंटोमोलॉजी कीड़ों का अध्ययन है।
- हर्पेटोलॉजी सरीसृपों और उभयचरों का अध्ययन है।
- इक्थियोलॉजी मछलियों का अध्ययन है।
- अकशेरूकीय जंतु विज्ञान इन जानवरों का अध्ययन है जिनमें रीढ़ की हड्डी नहीं होती है।
- मैलाकोलॉजी मोलस्क का अध्ययन है।
- मैमोलॉजी स्तनधारियों का अध्ययन है।
- पक्षीविज्ञान पक्षियों का अध्ययन है।
- प्राइमेटोलॉजी प्राइमेट्स का अध्ययन है।
- इकोलॉजी अध्ययन करती है कि कैसे जानवर पर्यावरण के साथ इंटरैक्ट करते हैं।
- भ्रूणविज्ञान जन्म से पहले पशु के विकास का अध्ययन है।
- इथोलॉजी जानवरों के व्यवहार का अध्ययन करती है।
- जीवाश्म विज्ञान जीवाश्मों का अध्ययन है।

सामाजिक-जीव विज्ञान स्कूली मछली, मधुमक्खियों, चींटियों और मनुष्यों जैसे सामाजिक जानवरों के पारिस्थितिकी, व्यवहार और विकास का अध्ययन करता है।

जन्तुविज्ञान का महत्व

जन्तुविज्ञान जीव विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका दुनिया भर के सभी जीवों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जूलॉजी के कुछ महत्व नीचे दिए गए हैं:

प्रकृति और हमारे परिवेश की खोज- जन्तुविज्ञान हमें माँ प्रकृति और उसके आसपास के वातावरण से अवगत कराती है जिसमें हम रहते हैं। विभिन्न जानवरों के जीवन, उनकी विशेषताओं और अन्य जानवरों की प्रजातियों के साथ उनकी बातचीत के अध्ययन से प्रकृति के साथ उनके सामंजस्य का पता चलता है। यह विभिन्न पशु प्रजातियों के बारे में मिथकों को दूर करने में भी मदद करता है। इसके अलावा, जूलॉजी इस बात पर प्रकाश डालती है कि जानवर अज्ञात आवासों में क्या और क्यों कुछ विशेषताओं का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए, एक दिलचस्प प्राणी तथ्य बताता है कि दुनिया में लोगों की तुलना में मुर्गियां अधिक हैं

वन्यजीव संरक्षण को समझना- विभिन्न लुप्तप्राय जानवरों की प्रजातियों के अध्ययन से वन्यजीवों के संरक्षण में मदद मिलती है। इस आधुनिक दुनिया में, पारिस्थितिक तंत्र के टूटने और दुनिया भर में वनों की कटाई के कारण कई जीव विलुप्त होने का सामना कर रहे हैं। जूलॉजी वन्यजीवों के नुकसान को कम करने के तरीके सुझाकर इन जानवरों के प्राकृतिक आवासों को समझने और उनकी रक्षा करने में मदद करती है

चिकित्सा उपयोग- जानवरों के शरीर के अंगों और आंतरिक संरचना का अध्ययन हमें उनके चिकित्सा लाभों की समझ देता है। पशु जीवन का अध्ययन हमें मनुष्यों को संक्रमित करने वाले स्वाइन और बर्ड फ्लू जैसी कुछ बीमारियों का मुकाबला करने में भी मदद करता है

मानव कल्याण में जन्तुविज्ञान की भूमिका

जन्तुविज्ञान या जानवरों के अध्ययन का मानव कल्याण में महत्व है। इनमें से कुछ हैं:

1. हानिकारक कीट जैसे उपयोगी और हानिकारक जानवरों का अध्ययन जो कृषि के लिए खतरा हैं, फसलों को संरक्षित करने में मदद करते हैं।
2. जानवरों का अध्ययन जानवरों के विलुप्त होने को बचाने और रोकने में मदद करता है।
3. यह रोगों, प्रेरक एजेंटों का निदान करने और उनके लिए सही इलाज खोजने में मदद करता है।
4. मानव अनुवांशिक अध्ययन व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य में सुधार की क्षमता के साथ जानकारी बनाता है।
5. फिजियोलॉजी और शरीर रचना विज्ञान शरीर के सभी अंगों, उनकी प्रकृति और उनके कार्यों के बारे में जानने में मदद करता है।
6. आनुवंशिकी के मूल्यांकन ने क्रॉस-ब्रीडिंग की शुरुआत की है जो पशुपालन प्रथाओं और अन्य क्षेत्रों में लागू होती है।

वन्यजीव पुनर्वासकर्ता उन जंगली जानवरों की देखभाल करता है जो अनाथ या घायल हो गए हैं ताकि उनके स्वास्थ्य में सुधार हो सके ताकि वे अपने प्राकृतिक आवास में वापस आ सकें।

जन्तुविज्ञान ,विज्ञान की उस शाखा को संदर्भित करता है जो जानवरों के तौर-तरीकों, आवासों, संरचना और वर्गीकरण के अध्ययन से संबंधित है। इसे लौकिक "नूह के सन्दूक" के रूप में संदर्भित किया जाता है, जो पुनर्वास, प्रजनन, जागरूकता अभियान आदि जैसे कार्यक्रमों द्वारा घटते वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करता है। यह जीव विज्ञान की एक अत्यंत महत्वपूर्ण धारा है जो एक तरह से मनुष्यों के लिए जीवन को बहुत बेहतर बनाती है। हालाँकि, लोग इसे एक और उबाऊ विषय मानते हैं। हकीकत में, यह उससे कहीं अधिक है। यह हमें जीवन के वास्तविक सार, प्रकृति के जादू और बहुत कुछ का एहसास कराने में मदद करता है।[4]

भोजन: हममें से अधिकांश लोग रोजाना काफी मात्रा में अंडे, दूध और मांस का सेवन करते हैं। जन्तुविज्ञान हमें इन खाद्य पदार्थों के उत्पादन की प्रणाली को समझने में मदद करती है, अंततः हमें उनकी संख्या और गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करती है। जूलॉजी हमें क्या सिखाती है, इससे लैस होकर हम मवेशियों से निपटने के लिए बेहतर स्थिति में हैं!

प्रकृति की सराहना करना: जन्तुविज्ञान- हमें अपने आस-पास की सुंदर प्रकृति का बोध कराने में मदद करती है। एक बार जब आप जूलॉजी का अध्ययन करते हैं, तो अदम्य जंगली जानवर

विकीर्ण करते हैं, और प्रत्येक के प्रति उनकी प्रतीत होने वाली "पालतू" प्रकृति का रहस्य प्रकट होता है। विषय का जादू प्रकृति माँ के जादू को उजागर करने में मदद करता है। एक बार जब आप प्रकृति में सह-अस्तित्व वाले जीवन चक्रों को जान जाते हैं, तो आप जान जाएंगे कि शांति क्या है, और आप निश्चित रूप से महसूस करेंगे कि जानवरों में हमसे बहुत अधिक नैतिकता है।

संरक्षित करने की आवश्यकता को समझना:- ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं कि हम विभिन्न प्रजातियों को संरक्षित करते हैं क्योंकि वे "सुंदर" हैं, जो प्रफुल्लित करने वाला है! एक बार जब आप जूलॉजी और प्रकृति को समझ जाते हैं, तो आप जानवरों और पारिस्थितिक संतुलन के बीच सह-मौजूदा सामंजस्य को समझ पाएंगे। यदि प्रजातियों में से एक को समाप्त कर दिया जाता है, तो पूरी खाद्य श्रृंखला अस्त-व्यस्त हो जाती है, जिससे प्रकृति में विनाशकारी असंतुलन पैदा हो जाता है। इसलिए, जूलॉजी हमें सुरक्षा की आवश्यकता को समझने में मदद करती है।

अपनी भूमिकाओं को समझना: मनुष्य पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वे सबसे बुद्धिमान और सभी प्रजातियों में सबसे चतुर हैं। लेकिन हम इंसान भी पारिस्थितिकी तंत्र की कमी का कारण हैं। हम एक तरह से प्रकृति को नष्ट कर रहे हैं। जूलॉजी हमें इसे संरक्षित करने की आवश्यकता को समझने में मदद करती है और माँ प्रकृति के रखवाले के रूप में हमारी भूमिकाओं को समझने में हमारी मदद करती है। चूँकि हम पृथ्वी पर प्रमुख प्रजातियाँ हैं, हमें ग्रह को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है। एक पीढ़ी के रूप में, हमने इसे उधार लिया है और इसे हमारी आने वाली पीढ़ियों को अच्छी स्थिति में लौटाना चाहिए। हम, जानवर के रूप में, सबसे खतरनाक प्रजाति हैं। जूलॉजी हमें इसे बेहतर बनाने में मदद करती है।[5]

औद्योगिक उपयोग- शहद, मोम, चमड़ा, शंख आदि हमारे जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये पदार्थ जानवरों से प्राप्त किए जाते हैं, और जानवरों से इन सभी को निकालने का सबसे अच्छा तरीका हमें सिखाने के लिए जूलॉजी से बेहतर क्या होगा! जंतु विज्ञान के सौजन्य से पिछले कुछ वर्षों में ऊन, रेशम आदि की निकासी काफी सस्ती और लाभदायक हो गई है।

कृषि उपयोग:- जन्तुविज्ञान हमें फसल के विनाश और विकास में कई कीड़ों की भूमिका की पहचान करने में मदद करती है। इस ज्ञान से लैस, किसानों के पास अपनी फसलों को विनाशकारी कीटों से बचाने और उन्हें उपयोगी कीड़ों के संपर्क में लाने का बेहतर मौका है। इस प्रकार, एक कृषक को अत्यधिक लाभ होता है।

चिकित्सा:- आज हमारे पास बहुत सारी सर्जिकल जानकारी है जो हमने अन्य जानवरों को विच्छेदित करके एकत्र की है। साथ ही, स्वाइन फ्लू और बर्ड फ्लू जैसी कई बीमारियां जानवरों के जरिए इंसानों तक पहुंचती हैं। जूलॉजी यहां हमारे बचाव में आती है, जिससे हमें जानवरों को बेहतर ढंग से समझने और इन बीमारियों का मुकाबला करने में मदद मिलती है।

जेनेटिक मॉडिफिकेशन और ट्रेसिंग रूट्स:- जूलॉजी ने हमारे पूर्वजों और जानवरों और मानव जाति के विकास के बारे में बहुत सारी जानकारी दी है। अब हम विकास के संबंध में भूतकाल में घटित बहुत सी घटनाओं से अवगत हैं।

साथ ही, जन्तुविज्ञान ने हमें आनुवंशिक संशोधन की दिशा में एक रास्ता दिखाया है जो किसी जानवर के जीन में परिवर्तन को संदर्भित करता है। हमें अपनी बेहतरी के बारे में एक अंतर्दृष्टि है। हम अपनी इच्छा से उत्तम विशेषताओं और चरित्रों वाली संततियों को पाकर अपनी जाति में सुधार कर सकते हैं।

निष्कर्ष

वनस्पति विज्ञान और प्राणी विज्ञान जीव विज्ञान कहे जाने वाले विज्ञान के बहुत व्यापक क्षेत्र के दो प्रमुख विषय हैं। जबकि वनस्पति विज्ञान पौधों का अध्ययन है, जूलॉजी पूरी तरह से जानवरों के अध्ययन से संबंधित है। फिर भी, प्राणी विज्ञान और वनस्पति विज्ञान दोनों ही हमारे दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हमारे समाज के बेहतर भविष्य के लिए उनके पास देने के लिए बहुत कुछ है। प्राचीन काल से ही इन शाखाओं के अध्ययन का मानव जीवन में बहुत महत्व रहा है।

संदर्भ

1 *Cox, C. Barry; Moore, Peter D.; Ladle, Richard J. (2016).* Biogeography:An Ecological and Evolutionary Approach, *p.25*

2 William Bingley, ed. by Louise Hope, *Animal Biography: or, Popular Zoology*,p.46

3 Popular Scripture Zoology, Containing a Familiar History of the Animals Mentioned in the Bible (London, p.98

4 *Saint Albertus Magnus (1999). On Animals: A Medieval Summa Zoologica. Johns Hopkins University Press.p.64.*

5 *Agutter, Paul S.; Wheatley, Denys N. (2008).* Thinking about Life: The History and Philosophy of Biology and Other Sciences. *Springer. p.* 43

वनस्पति विज्ञान के इतिहास का एक संक्षिप्त परिचय

डॉ० अवधेश कुमार यादव

सहायक आचार्य, वनस्पति विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया

वनस्पति विज्ञान के अंतर्गत पौधों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। प्राचीन काल में इसमें पौधे, जीवों सभी को शामिल किया गया था। पुरापाषाणकालीन शिकारी-संग्रहकर्ता पादप विद्या के अपने अनुभव को मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे हस्तांतरित करते थे, जिसके माध्यम से अल्पविकसित वनस्पति विज्ञान की शुरुआत हुई। पौधों का पहला लिखित रिकॉर्ड लगभग 10,000 साल पहले नवपाषाण में तैयार किया गया था क्योंकि लेखन का विकास स्थायी रूप से रहने वाले कृषि समुदायों के बीच हुआ था जहाँ पौधों और जानवरों को सर्वप्रथम पालतू बनाया गया था। प्रारंभिक रचनाएँ पौधों के बारे में मानवीय जिज्ञासा को दर्शाती हैं, न कि उनके उपयोग के बारे में, ये प्राचीन ग्रीस (Greece) और प्राचीन भारत में दिखाई देते हैं।

प्राचीन ग्रीस में, लगभग 350 ईसा पूर्व में अरस्तू के छात्र थियोफ्रेस्टस (Theophrastus) की शिक्षाओं को पश्चिमी वनस्पति विज्ञान के लिए प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। प्राचीन भारत में, महर्षि पराशर से संबंधित वृक्षायुर्वेद को वनस्पति विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का वर्णन करने वाले शुरुआती ग्रंथों में से एक माना जाता है। यूरोप (Europe) में, वानस्पतिक विज्ञान मध्ययुगीन पौधों के औषधीय गुणों के साथ 1000 से अधिक वर्षों तक छाया रहा।

इस दौरान, शास्त्रीय पुरातनता के औषधीय कार्यों को पांडुलिपियों में पुनः प्रस्तुत किया गया था। ग्रीको-रोमन (Greco&Roman) के औषधीय पौधों पर किए गए कार्यों को चीन (China) और अरब (Arab) दुनिया में संरक्षित और विस्तारित किया गया था। यूरोप में 14वीं-17वीं शताब्दी के पुनर्जागरण ने एक वैज्ञानिक पुनरुत्थान की शुरुआत की जिसके दौरान वनस्पति विज्ञान धीरे-धीरे प्राकृतिक इतिहास से एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में उभरा, जो चिकित्सा और कृषि से अलग था। जड़ी-बूटियों को फ्लोरस (सिवतें): किताबें जो स्थानीय क्षेत्रों के देशी पौधों का वर्णन करती हैं, द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था।[1]

माइक्रोस्कोप (microscope) के आविष्कार ने पादप शरीर रचना विज्ञान के अध्ययन को प्रेरित किया, और पादप निकाय क्रिया विज्ञान में पहले सावधानीपूर्वक डिजाइन किए गए प्रयोग किए गए। यूरोप से परे व्यापार और अन्वेषण के विस्तार के साथ, खोजे जा रहे कई नए पौधों को नामकरण, विवरण और वर्गीकरण की एक कठोर प्रक्रिया के अधीन किया गया।प्रगतिशील रूप से अधिक परिष्कृत वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी ने पादप विज्ञान में समकालीन वनस्पति शाखाओं के विकास में सहायता की, जिसमें आर्थिक वनस्पति विज्ञान (विशेषकर कृषि, बागवानी और वानिकी) के अनुप्रयुक्त क्षेत्रों से लेकर पौधों की संरचना और कार्य की विस्तृत परीक्षा और उनके साथ उनकी सहभागिता शामिल है। वनस्पति और पादप समुदायों (बायोजीयोग्राफी और इकोलॉजी) (biogeography and ecology) के बड़े पैमाने पर वैश्विक महत्व से लेकर सेल थ्योरी (cell theory), मॉलिक्यूलर बायोलॉजी (biology) और प्लांट बायोकेमिस्ट्री (plant biochemistry) जैसे विषयों के छोटे पैमाने तक को शामिल किया गया।[2]

भारतीय पौधों का विवरण सर्वप्रथम प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में किया गया था। हालाँकि, इनके अधिकांश भाग अस्पष्ट हैं। पुर्तगाली पहले यूरोपीय जो भारत आए थे, ने पौधों का वर्णन करने वाले विषयों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश भारत में वनस्पति विज्ञान पर सर्वप्रथम डचों द्वारा ध्यान दिया गया जिसका उद्देश्य 'हॉर्टस मालाबारिकस (hortus malabaricus)' को आकार देना था, जो मालाबार के क्षेत्र के गवर्नर वान रीडे (Van Rheede) के कहने पर किया गया था। वैन रीडे स्वयं केवल एक वनस्पति शौकिया थे, लेकिन उन्हें पौधों और उनके सही और वैज्ञानिक ज्ञान के मूल्य से बहुत प्यार था।

उष्णकटिबंधीय एशिया के वनस्पति साहित्य में अगला महत्वपूर्ण योगदान ब्रिटिश भारत के बजाय डच (Dutch) के पौधों से संबंधित है। यह जॉर्ज एवरहार्ड रुम्फ (हनोवर के मूल निवासी) (George Everhard Rumph (a native of Hanover), एक चिकित्सक और व्यापारी का काम करते थे, जो कुछ समय के लिए अंबोइना (Amboina) में डच परामर्शदाता थे। लंदन में 1696 और 1705 के बीच क्वार्टो (quarto) में प्रकाशित प्लुकेनेट (pluconate) की कृतियों में कई भारतीय पौधों के आंकड़े हैं, जो आकार में छोटे होते हुए भी आम तौर पर अच्छे चित्र हैं, और इसलिए ब्रिटिश भारत से जुड़ी वनस्पति पुस्तकों की एक सूची में उल्लेख के लायक हैं।

लिनिअस (Linnaeus) की 'फ्लोरा जेलेनिका' (FlorZa eylanica) (600 प्रजातियों से संबंधित लेख) का अनुसरण 1768 में निकोलस बर्मन (Nicholas Burman) के 'फ्लोरा इंडिका' (Flora Indic) द्वारा किया गया था - जिसमें लगभग 1,500 प्रजातियों का वर्णन किया गया है। जिस हर्बेरियम पर यह 'फ्लोरा इंडिका' स्थापित किया

गया था, यह अब जिनेवा में महान हर्बेरियम डेलेसर्ट (Herbarium Delessert) का हिस्सा है।लिनिअस द्वारा आविष्कृत नामकरण की द्विपद प्रणाली पर वनस्पति विज्ञान का सक्रिय अध्ययन भारत में ही उनके शिष्य कोएनिग (Koenig) द्वारा शुरू किया गया था।

भारत में वनस्पति विज्ञान के बाद के इतिहास को दो अवधियों में विभाजित करना सुविधाजनक होगा, पहला 1768 में कोएनिग के भारत आगमन से लेकर 1848 में सर जोसेफ हुकर (S Joseph Hooker) के आगमन तक; और दूसरा बाद की तारीख से आज तक। कोएनिग ने व्यापक रूप से भारतीय वनस्पतियों का अध्ययन किया।जॉन जेरार्ड कोएनिग (John Gerard Koenig) कौरलैंड के बाल्टिक (Baltic) प्रांत के मूल निवासी थे। वह लिनिअस के एक संवाददाता थे और शिष्य थे। 1768 में इन्होंने पूरे उत्साह के साथ वनस्पति विज्ञान का अध्ययन शुरू किया, जिसे उन्होंने विभिन्न संवाददाताओं को प्रदान करने में सफलता प्राप्त की, उस दौरान 'द यूनाइटेड ब्रदर्स' (The United Brothers) के नाम से एक समाज में खुद की पहचान बनाई, उनके संघ का मुख्य उद्देश्य वानस्पतिक अध्ययन को बढ़ावा देना था।

भारत में अब तक वानस्पतिक कार्य गौण था, और 1787 में कलकत्ता में वनस्पति उद्यान की स्थापना तक ब्रिटिश भारत में वनस्पति गतिविधि का एक मान्यता प्राप्त केंद्र स्थापित नहीं हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी (East India Company) अभी भी 1787 में एक व्यापारिक कंपनी थी।

ब्रिटिश भारत में वनस्पति विज्ञान में विकास

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य में वनस्पति विज्ञान के विकास में भी काफी प्रगति हुई। इसने वास्तव में एक इतिहास बनाया। 1778 में श्रवींद ळमतींतक ज्ञवमदसह (1728–1785) ने मद्रास में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के प्राकृतिक इतिहासकार के रूप में काम किया। उन्होंने भारत में नामकरण की लिनियन द्विपद प्रणाली की शुरुआत की। 1785–89 की अवधि के भीतर मद्रास में पैट्रिक रसेल (1725–1805) को नेचुरिस्ट का नाम दिया गया। उन्होंने 1785–87 की अवधि में लगभग 900 पौधों को सर्कस में एकत्र किया। 1787 में कर्नल रॉबर्ट किड (1746–1793) ने कलकत्ता के पास सिबपुर में कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन की प्रारंभिक स्थापना के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी का समर्थन प्राप्त किया। यह बॉटनी और उसके सहयोगियों के भविष्य के वर्षों के लिए एक ऐतिहासिक विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है। 1790 तक केड ने सागौन के पेड़ों के संग्रह और विकास पर जोर देने के साथ बगीचे में 4000 से अधिक पौधों की एक सूची स्थापित की थी। 1785 में लंदन के रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष सर जोसेफ बैंक्स (1743–1820) ने वनस्पति मामलों पर कंपनी के सलाहकार के रूप में अपनी सेवा शुरू की। कई दशकों तक उन्होंने सर विलियम जोन्स (1746–1794), कर्नल रॉबर्ट किड (1746–1793), विलियम रॉक्सबर्ग (1751–1815), फ्रांसिस बुकानन (1762–1829), नाथनियल रिच (1786–1854) और भारत में अन्य शुरुआती वनस्पतिशास्त्री के साथ प्रभावशाली संबंध बनाए रखे। 1793 में बेंजामिन हेने कंपनी की सेवा में शामिल हो गए और 1796 में मद्रास बोटनिस्ट के रूप में समालकोट में नियुक्त हुए। फिर 1800 में उन्हें बैंगलोर में वनस्पति उद्यान के प्रभारी के रूप में रखा गया। यहां हेने ने पौधों के नमूनों का काफी संग्रह किया, जिन्हें लंदन भेजा गया था। 1793–1813 के वर्षों के भीतर विलियम रॉक्सबर्ग (1751–1815) ने कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन के अधीक्षक के रूप में कार्य शुरू किया। उन्होंने बॉटनिकल गार्डन में जीवित पौधों के संग्रह और विवरण के माध्यम से टैक्सोनोमिक रिसर्च की नींव रखी। इस तरह के होनहार और अच्छी तरह से शोध किए गए कार्यों ने भारत के बॉटनी में परिष्कृत विकास को आगे बढ़ाया। 1794–1803 की समय अवधि में फ्रांसिस बुकानन (1762–1838) ने कई प्रसिद्ध पौधों का संग्रह और सर्वेक्षण किया। 1800–34 के व्यापक वर्षों में बॉटनी में बहुत अधिक तेजी से विकास हुआ। रेवरेंड विलियम कैरी ने सेरामपुर में एक महत्वपूर्ण निजी उद्यान की स्थापना की। 1815–46 के वर्षों में नाथनियल वालिच (1786–1854) ने कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन के अधीक्षक के रूप में कार्य किया। 1835 में वालिच ने विलियम ग्रिफिथ (1810–1845) और जॉन मैक्लेलैंड (1800–1883) को चाय उगाने में सक्षम जगह के लिए असम का पता लगाने में शामिल कर लिया। अपने कई लंबे दौरों के दौरान वालिच ने नेपाल, असम, पेनांग और सिंगापुर में पौधों का एक व्यापक संग्रह इकट्ठा किया।[3]

1815 में जॉर्ज गोवन (1787–1865) ने सहारनपुर बॉटनिकल गार्डन बनाया। नेपाल युद्ध के बाद उन्होंने इसका कार्यभार संभाला और 1819–21 में उन्हें औपचारिक रूप से इसका अधीक्षक नामित किया गया गया। गार्डन के मिशन ने पौधों और पेड़ों के विकास को अपनाया। जॉन फोर्ब्स रॉयल (1823–31) और ह्यूग फाल्कनर द्वारा गोवन को अधीक्षक के रूप में सफलता मिली। संबद्ध मसूरी गार्डन में, रोयल ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की चिकित्सा सेवा के लिए दवाओं के उत्पादन में सक्षम पौधों को उगाने का प्रयास किया। 1826–28 की अवधि के भीतर रॉबर्ट वाइट (1796–1872) ने मद्रास सरकार के लिए प्रकृतिवादी के रूप में सेवा करते हुए दक्षिण भारत में कई हजार पौधों के नमूने एकत्र किए। 1853 में अपनी सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने रॉयल बोटेनिक गार्डन, केव को 4000 से अधिक पौधे भेंट किए। 1832–42 के समय की अवधि में, सहारनपुर गार्डन के अधीक्षक के रूप में सेवा करने के बाद, ह्यूग फाल्कनर (1808–1865) 1847 से 1855 तक कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन के अधीक्षक बने। यहाँ उन्होंने कई ताड़ के पेड़ और बगीचे में नए पौधों को लगाया। दक्षिण अमेरिका से सिनकोना की शुरुआत की और तेनसेरीम, बर्मा के सागौन जंगलों के लिए संरक्षण उपायों को लागू किया। 1832–45 के समय में विलियम ग्रिफिथ ने स्तनधारियों, मछलियों, कीड़ों और विशेष रूप से अफगानिस्तान से मलक्का के पौधों के संग्रह के रूप में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। उन्होंने न केवल

उनके वर्गीकरण बल्कि उनकी आकृति विज्ञान की भी जांच की। Icones Plantarum Astaticarum (1847–54), Notulae ad Plantas Aslaticas (1847–54), and Palms of British India (1850) जैसे पेपर्स की रचना उन्होने की। 1842–61 के वर्षों के भीतर, थॉमस थॉमसन (1817–1878) कश्मीर और तिब्बत के बीच सीमा का निर्धारण करने वाले एक सीमा आयोग में शामिल हो गए, जिसके दौरान उन्होंने हिमालय के पौधों को एकत्र किया। थॉमसन ने 1855 से 1861 तक कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन के अधीक्षक के रूप में कार्य किया। 1847–51 की लंबी अवधि के भीतर सर जोसेफ डाल्टन हूकर ने हिमालय, पूर्वी बंगाल और खासी हिल्स में पौधों का व्यापक रूप से भ्रमण किया। उन्होने The Rhododendrons of Sikkim Himalaya (1849), Himalaya Journal (1854), and The Flora of British Indi (1872–96) जैसे पेपर्स तैयार किए। 1857–82 के वर्षों के भीतर रिचर्ड हेनरी बेडडोम (1830–1911) ने सहायक संरक्षक और बाद में मद्रास वन विभाग के प्रमुख के रूप में सेवा करते हुए कई हजार पौधों, विशेष रूप से फर्न एकत्र किए। उन्होने Ferns of Southern India (1862), Trees of the Madras Presidency (1863), Ferns of British India (1865–70), Icones Plantarum Indiae Orientalls (1868–74), Flora Sylvatica for Southern India (1869–73) and Handbook to Ferns of British India (1883) जैसे कार्य किए। 1861–1868 की अवधि के भीतर थॉमस एंडरसन (1832–1870) को रॉयल बॉटनिकल गार्डन, कलकत्ता का अधीक्षक नामित किया गया था। 1869–1878 के वर्षों के दौरान, चार्ल्स क्लार्क, प्रथम बैरन (1832–1906) ने एंडरसन को कलकत्ता बॉटनिकल गार्डन के अधीक्षक के रूप में सफलता दिलाई।

1871–1898 के वर्षों में, सर जॉर्ज किंग (1840–1909) को कलकत्ता के रॉयल बॉटनिकल गार्डन का अधीक्षक नियुक्त किया गया था। 1887 में उन्होंने द एनल्स ऑफ द रॉयल बोटैनिक गार्डन, कलकत्ता के प्रकाशन की पहल की। 1890 में बॉटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया की स्थापना के साथ, किंग इसके पहले निदेशक बने। 1885 में डॉ डेविड डगलस कनिंघम (1843–1914) ने कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज में भारत पर कवक रोगों के बारे में अनुसंधान किया। 1886–97 के वर्षों के दौरान सर डेविड पेन (1857–1944) कलकत्ता हर्बेरियम के क्यूरेटर बने। 1905 में पेन इंग्लैंड के केव में रॉयल बोटैनिक गार्डन के निदेशक बने। 1875–1903 के दौरान जॉन फर्मिंगर डूथी (1845–1922) को सहारनपुर उद्यान का अधीक्षक नामित किया गया था। आर्थिक वनस्पति विज्ञान में रुचि के साथ उन्होंने उत्तर पश्चिमी भारत में चारे की आवश्यकता के कारण घास के अध्ययन में विशेषज्ञता हासिल की। 1933–1950 की अवधि के भीतर फ्रैंक लुडलो (1885–1972) और जॉर्ज शेरिफ (1898–1967) ने भूटान और तिब्बत के दक्षिण–पूर्वी क्षेत्रों में पौधों का संग्रह करने वाले कई पर्यटन किए। पहली बार इनमें से कई पौधों को सीटू में उकेरा गया था, क्रेट किया गया था और इंग्लैंड भेजा गया था। कुछ 21,000 नमूनों का उनका संग्रह अब ब्रिटिश संग्रहालय (प्राकृतिक इतिहास) में रहता है।

वनस्पति इतिहास की व्यापक समीक्षा में यह स्पष्ट है कि, वैज्ञानिक पद्धति की शक्ति के माध्यम से, पौधों की संरचना और कार्य से संबंधित अधिकांश बुनियादी प्रश्नों को सैद्धांतिक रूप से हल किया गया है।

अब शुद्ध और अनुप्रयुक्त वनस्पति विज्ञान के बीच का अंतर धुंधला हो गया है क्योंकि पृथ्वी के मानव संरक्षण में सुधार के लिए पौधों के संगठन के सभी स्तरों पर हमारे ऐतिहासिक रूप से संचित वनस्पति ज्ञान की आवश्यकता होती है। सबसे जरूरी अनुत्तरित वानस्पतिक प्रश्न अब जीवन के बुनियादी अवयवों के वैश्विक चक्रण में प्राथमिक उत्पादकों के रूप में पौधों की भूमिका से संबंधित हैं: यह ऊर्जा, कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन, और संसाधन प्रबंधन, संरक्षण, मानव खाद्य सुरक्षा, जैविक रूप से आक्रामक जीव, कार्बन जब्ती, जलवायु परिवर्तन और स्थिरता हमारे पादप प्रबंधन वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करने में मदद कर सकते हैं।

संदर्भ

1 https://bitd ly/3NUo7gQ
2 https://bitd ly/38yxcvx
3 https://bitd ly/3jcLRyp

कोविड-19 के प्रभावों का विश्लेषण भारतीय शिक्षा प्रणाली

अमरजीत सिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

भारत सरकार ने समुदायों के भीतर सामाजिक दूरी को लागू करने के लिए तार्किक समाधान के रूप में शैक्षणिक संस्थानों को बंद करने और बंद करने की घोषणा की है। देशव्यापी तालाबंदी का देश की शिक्षा व्यवस्था पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों के लिए। चूँकि भारतीय शिक्षा प्रणाली में कक्षा अध्ययन का बोलबाला हैए इसलिए वर्तमान परिदृश्य ने शिक्षण संस्थानों के कामकाज को बहुत कठिन बना दिया है।

इस अवधि के दौरान सभी शैक्षिक गतिविधियों जैसे परीक्षाएंए स्कूल प्रवेशए विभिन्न विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षाएं और प्रतियोगी परीक्षाएंए अन्य आयोजित की जाती हैं। जैसे.जैसे दिन बीत रहे हैं और इस प्रकोप को रोकने के लिए कोई तत्काल समाधान नहीं हो रहा हैए स्कूलों और विश्वविद्यालयों के बंद होने से देश भर में पढ़ाई प्रभावित हो रही है। भारतीय शिक्षा प्रणाली की संरचना अर्थात सीखने की पद्धतिए शिक्षण तकनीक सेट लक्ष्यों और उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आभासी शिक्षा पर सबसे अधिक ध्यान केंद्रित करें। लेकिन केवल कुछ ही स्कूल और विश्वविद्यालय इस तरह के तरीकों को अपना सकते हैं और कम आय वाले निजी और सरकारी स्कूल इसे अपनाने में काफी अक्षम हैंए जिसके परिणामस्वरूप बंद हो गया।[1]

भारत में डिजिटल बुनियादी ढांचा

भारत में COVID-19 लॉकडाउन से पहले किसी ने अनुमान नहीं लगाया था कि भारतीय शिक्षण संस्थानों का चेहरा इतना बदल सकता है। जिन स्कूलों ने कभी छात्रों को इलेक्ट्रॉनिक गैजेट ले जाने की अनुमति नहीं दीए वे ऑनलाइन कक्षाओं के लिए शिक्षण केंद्र बन गए। शिक्षक और छात्र दोनों इस नए सामान्य से परिचित हो रहे हैंए जो निश्चित रूप से शिक्षकों के लिए इस स्थिति से निपटना अधिक चुनौतीपूर्ण है। शिक्षकों को प्रभावी पाठों को डिजाइन करने और ऑनलाइन सीखने की ओर शिफ्ट होने पर शिक्षण को बदलने में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है इसे कार्यशालाओं और प्रशिक्षण के माध्यम से भी हल किया जा सकता है।[2]

ऑनलाइन शिक्षा का लाभ लेने के लिए बिजली की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण चुनौती है। हाल ही में 2017.18 के एक सर्वेक्षण मेंए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने पाया कि केवल 47% भारतीय घरों में 12 घंटे से अधिक बिजली प्राप्त होती है और भारत में 36% से अधिक स्कूल बिना बिजली के चलते हैं। इससे पता चलता है कि जहां रहने के बेहतर साधनों वाले परिवारों के छात्र दूरस्थ शिक्षा के लिए संक्रमण को आसानी से पाट सकते हैंए वहीं वंचित पृष्ठभूमि के छात्रों की अक्षमता और अनुकूलन की कमी को स्वीकार करने की संभावना हैए या तो प्रौद्योगिकी की दुर्गमता या कम शिक्षा के कारण उनके माता.पिता तकनीक.प्रेमी अनुप्रयोगों के माध्यम से उनका मार्गदर्शन करने के लिए। पूरे भारत में तकनीकी बुनियादी ढांचे की अनुपलब्धता और अनियमित रूप से बाधित इंटरनेट कनेक्टिविटी छात्रों और शिक्षकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है।[3]

शिक्षकों और छात्रों पर प्रभाव

ऑनलाइन शिक्षा के दौरान शिक्षकों और छात्रों दोनों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। घर में बुनियादी सुविधाओं की कमीए बाहरी ध्यान भंग और अध्यापन के दौरान पारिवारिक व्यवधान प्रमुख मुद्दे थे। शैक्षिक संस्थान समर्थन बाधाओं जैसे कि उन्नत तकनीकों को खरीदने के लिए बजटए प्रशिक्षण की कमीए तकनीकी सहायता की कमी और स्पष्टता और दिशा की कमी भी देखी गई। शिक्षकों को भी तकनीकी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। तकनीकी सहायता की कमी के तहत कठिनाइयों को समूहीकृत किया गया थाय इसमें तकनीकी बुनियादी ढांचे की कमीए ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफार्मों के बारे में सीमित जागरूकता और सुरक्षा संबंधी चिंताएं शामिल थीं। तकनीकी ज्ञान की कमी प्रौद्योगिकी के साथ पाठ्यक्रम एकीकरण सहित शिक्षकों की व्यक्तिगत समस्याएं ऑनलाइन शिक्षण में उनकी व्यस्तता को कम कर रही हैं।

शिक्षा प्रणाली पर सकारात्मक प्रभाव

हालांकि कोविड.19 के प्रकोप ने शिक्षा पर कई नकारात्मक प्रभाव पैदा किए हैंए भारत के शैक्षणिक संस्थानों ने चुनौतियों को स्वीकार किया है और महामारी के दौरान छात्रों को निर्बाध सहायता सेवाएं प्रदान करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली को पारंपरिक प्रणाली से एक नए युग में परिवर्तन का अवसर मिला। निम्नलिखित बिंदुओं को सकारात्मक प्रभावों के रूप में माना जा सकता है।

- शिक्षण सामग्री की सॉफ्ट कॉपी का उपयोग विकसित करें. लॉकडाउन की स्थिति में, छात्र अध्ययन सामग्री की हार्ड कॉपी एकत्र करने में सक्षम नहीं थे और इसलिए अधिकांश

छात्र संदर्भ के लिए सॉफ्ट कॉपी सामग्री का उपयोग करते थे।

- सहयोगी कार्य में सुधार. एक नया अवसर है जहां सहयोगी शिक्षण और सीखने के नए रूप ले सकते हैं।
- ऑनलाइन बैठकों में वृद्धि. महामारी ने टेलीकॉन्फ्रेंसिंगए वर्चुअल मीटिंग्सए वेबिनार और ई.कॉन्फ्रेंसिंग के अवसरों में भारी वृद्धि की है।
- बढ़ी हुई डिजिटल साक्षरता. महामारी की स्थिति ने लोगों को डिजिटल तकनीक सीखने और उपयोग करने के लिए प्रेरित किया और इसके परिणामस्वरूप डिजिटल साक्षरता में वृद्धि हुई।
- जानकारी साझा करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उपयोग में सुधार. सीखने की सामग्री को आपस में साझा किया जाता है

शिक्षा प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव

COVID-19 के प्रकोप के कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली को बहुत नुकसान हुआ है। इसने शिक्षा पर कई नकारात्मक प्रभाव पैदा किए हैं और उनमें से कुछ नीचे बताए गए हैं।

- शैक्षिक गतिविधि बाधित. स्कूल बंद हैं और कक्षाएं निलंबित कर दी गई हैं। विभिन्न बोर्ड पहले ही पूरे भारत में वार्षिक परीक्षाओं और प्रवेश परीक्षाओं को स्थगित कर चुके हैं।
- शिक्षकों और छात्रों की तैयारी में कमी. शिक्षक और छात्र ऑनलाइन शिक्षा के लिए तैयार नहीं हैंय वे आमने.सामने सीखने से लेकर ऑनलाइन सीखने तक के इस अचानक परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे।
- माता.पिता की भूमिका. शहरी क्षेत्र में कुछ शिक्षित माता. पिता मार्गदर्शन करने में सक्षम होते हैं लेकिन कुछ के पास घर में बच्चों को पढ़ाने के लिए आवश्यक शिक्षा का पर्याप्त स्तर नहीं होता है।
- डिजिटल गैजेट्स विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में कई छात्रों के पास सीमित या कोई इंटरनेट का उपयोग नहीं है और कई छात्र अपने घरों में कंप्यूटरए लैपटॉप या मोबाइल फोन खरीदने में सक्षम नहीं हो सकते हैंए ऑनलाइन शिक्षण. शिक्षण छात्रों के बीच एक डिजिटल विभाजन पैदा कर सकता है। लॉकडाउन ने भारत में गरीब छात्रों को बहुत मुश्किल से मारा है क्योंकि उनमें से अधिकांश विभिन्न रिपोर्टो के अनुसार ऑनलाइन सीखने में असमर्थ हैं।
- अंतर पैदा करेंरू यह ऑनलाइन शिक्षण.शिक्षण पद्धति अमीर बनाम गरीब और शहरी बनाम ग्रामीण छात्रों के बीच एक बड़ा अंतर पैदा करती है।

अवलोकन और सिफारिश

इस महामारी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली की कुछ प्रमुख खामियों को उजागर किया है। स्कूलों के बंद होने से हाशिए पर रहने वाले छात्रों पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। जिन महत्वपूर्ण रुझानों का पालन किया जा सकता है उनमें से एक है शैक्षणिक संस्थानों के प्रौद्योगिकी बुनियादी ढांचे के उन्नयन पर निवेश में वृद्धि के साथ ऑनलाइन सीखने के लिए एक संयुक्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है। शिक्षकों के प्रशिक्षण पर जोर देने की जरूरत है। सभी उच्च शिक्षा संस्थान अब प्रौद्योगिकी के महत्व से अवगत हैं और शिक्षण प्रबंधन प्रणाली के माध्यम से प्रौद्योगिकी संचालित शिक्षा के संचालन के लिए गंभीर उपाय करने चाहिए। यह अनुशंसा की जाती है कि शिक्षण संस्थानों को प्रौद्योगिकी का उपयोग करना चाहिए[4]

निष्कर्ष

COVID-19 ने भारत के शिक्षा क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित किया है। हालाँकि इसने कई चुनौतियाँ पैदा की हैंए विभिन्न अवसर भी विकसित हुए हैं। भारतीय सरकार। और शिक्षा के विभिन्न हितधारकों ने कोविड.19 के वर्तमान संकट से निपटने के लिए विभिन्न डिजिटल तकनीकों को अपनाकर मुक्त और दूरस्थ शिक्षा की संभावना का पता लगाया है। भारत डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से देश के सभी कोनों तक शिक्षा पहुंचाने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं है। डिजिटल प्लेटफॉर्म की वर्तमान पसंद के कारण जो छात्र दूसरों की तरह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैंए वे पीड़ित होंगे। भारत में लाखों युवा छात्रों के लिए लाभप्रद स्थिति बनाने के लिए डिजिटल तकनीक का उपयोग करना प्राथमिकता होनी चाहिए। कोविड.19 जैसी स्थितियों का सामना करने के लिए शिक्षण संस्थानों को अपने ज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के बुनियादी ढांचे को मजबूत करना समय की मांग है।

भले ही COVID-19 संकट लंबा खिंचता है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के अधिकतम उपयोग पर प्रयास करने की तत्काल आवश्यकता है। भारत को यह सुनिश्चित करने के लिए रचनात्मक रणनीति विकसित करनी चाहिए कि सभी बच्चों को महामारी COVID-19 के दौरान सीखने की स्थायी पहुंच होनी चाहिए। 19 चूंकि ऑनलाइन अभ्यास से छात्रों को अत्यधिक लाभ हो रहा हैए इसे लॉकडाउन के बाद भी जारी रखा जाना चाहिए। भारत की शिक्षा प्रणाली पर कोविड.19 के प्रभाव का पता लगाने के लिए और विस्तृत सांख्यिकीय अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ

1. https://en.unesco.org/covid19/educationresponse
2. https://www-indiatodayin.cdn.ampproject.org/v/s/www.indiatoday.in/amp/education- today/featurephilia/story/covid-19-impact-digital-education-conventional-education
3. http://www.educationinsider.net/detail_news.php?id=1326
4. http://www.education.ie/en/Schools-Colleges/Information/Information- CommunicationsTechnology-ICT-in-Schools/Digital-Strategy- for-Schools/ Building- Towards-a-Learning-Society-ANational-Digital-Strategy-for-Schools- Consultative- Paper.pdf

शिक्षण अधिगम सामग्री प्रयोग एवं रखरखाव

योगेश सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

शिक्षण का अर्थ है पढ़ाना, शिक्षा देना, ज्ञान देना। यह शिक्षक-शिक्षार्थी की उपस्थिति में सम्पन्न होने वाली अन्तः क्रिया है एवं इस अन्तः का माध्यम पाठ्यवस्तु होती है। इस प्रक्रिया में शिक्षक-शिक्षर्थी को निर्धारित विषयों में पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हेतु ज्ञान एवं कुशलता प्रदान करता है। ज्ञान एवं कौशल को प्रवाहित करने वाली कार्य प्रक्रिया एवं कला को शिक्षण कहते हैं। शिक्षण की प्रक्रिया के उत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए शिक्षक, शिक्षार्थी एवं विषय तीनों पर ही ध्यान देना आवश्यक है। ये तीनों पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इसलिए एक सफल शिक्षक को शिक्षण करते समय अपने लक्ष्य के साथ-साथ छात्र तथा विषय-वस्तु से अपने सम्बन्धों को भी ध्यान में रखना चाहिए। शिक्षण का एक महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्ति को सामाजिक चेतना में भाग लेने के योग्य बनाना।

शिक्षण उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए रायबर्न ने लिखा है कि, "जब बालक का उत्तम शिक्षण हो चुकता है तो वह एक समयबद्ध विकसित व्यक्तित्व सहित विद्यालय छोड़ता है। वह आत्मविश्वासी होता है। उसमें उत्तम रुचियाँ होती है। वह समाज के जीवन में सृजनात्मक भाग लेने हेतु तत्पर रहता है। जीवन तथा उसकी समस्याओं के प्रति उसका एक साहसपूर्ण एवं सृजनात्मक दृष्टिकोण होता है। अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग करने की कामना उसके चित्त में उत्पन्न हो चुकी होती है।''

शिक्षक द्वारा शिक्षण कराना अत्यन्त ही जटिल कार्य है अतः शिक्षक अपने शिक्षण में सदैव ऐसी क्रिया-प्रतिक्रिया करता है जिससे शिक्षण में सरसता, सरलता, रोचकता एवं प्रभावशीलता आ सके एवं छात्र कक्षा में सक्रिय होकर अधिक ज्ञानार्जन कर सकें। इस कार्य में मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि इस विषय ने छात्रों की रुचि, अभिरुचि व अभिवृत्तियों के प्रभाव का अध्ययन किया है एवं उसके अनुसार शिक्षण के कतिपय मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का निरूपण् किया, जिन पर आधारित शिक्षण प्रक्रिया अधिक रोचक एवं प्रभावपूर्ण हो जाती है। बाद में इन्हें ही शिक्षण सिद्धांतों का नाम दिया गया।

शिक्षण अधिगम सामग्री का अर्थ

शिक्षण को सफल और आकर्षक बनाने के लिये सहायक अधिगम सामग्री का उपयोग किया जाता है।

इस सम्बन्ध में एक चीनी कहावत है, "एक बार का देखना हजारों बार के सुनने से बेहतर है।''

"One seeing is better than thousands hearing."

सहायक अधिगम सामग्री की परिभाषा एक विद्वान ने इस प्रकार दी है- "विषय को स्पष्ट करने तथा उसे आकर्षक, रुचिकर बनाने तथा जटिल विषय को सरल, सुबोध बनाने के लिए जिस वस्तु का भी उपयोग किया जाता है, वह सभी शिक्षण अधिगम सहायक सामग्री कहलाती है।'' प्रत्येक विषय के शिक्षण में सहायक सामग्री का महत्व होता है। इनके माध्यम से छात्रों का ध्यान पाठ्य-विषय में सरलता से केन्द्रित किया जा सकता है। शिक्षण अधिगम सहायक सामग्री का तात्पर्य शिक्षण के उन साधनों से है जिनके प्रयोग से छात्रों की ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती है और वे पाठ के सूक्ष्म तथा कठिन भावों को सरलतापूर्वक समझ जाते हैं। समरण रहे कि जिस समय शिक्षण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियाँ तथा प्रविधियाँ असफल होती दिखाई देने लगती हैं तो ऐसी स्थिति में शिक्षण सामग्री का प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टि से शिक्षण सामग्री ने केवल शिक्षण को ही अपितु शिक्षण की प्रविधियों या युक्तियों को भी प्रभावशाली बनाने में रामबाण का कार्य करती है। ई0 सी0 डेण्टा के अनुसार, "शिक्षण अधिगम सामग्री का अर्थ उस समस्त सामग्री से है जो कक्षा में अथवा अन्य शिक्षण परिस्थिति में लिखित अथवा बोली हुई पाठ्य-सामग्री में सहायता देती है।''[1]

शिक्षण सहायक अधिगम सामग्री अथवा शिक्षण के उपकरण का अर्थ

(Meaning of Teaching Adis)

शिक्षण-प्रक्रिया को सरल, सजीव एवं प्रभावशाली बनाने के लिए जिन वस्तुओं अथवा साधनों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें सहायक साधन अथवा शिक्षण उपकरण कहा जाता है।

शिक्षण अधिगम सामग्री की आवश्यकता एवं महत्व

(Need and Importance of Teaching Learning Aids)

शिक्षण सामग्री के अनेक कार्य है तथा सभी बालकों की शिक्षा के लिए उपयोगी है। छोटे बालकों की शिक्षा में इसके महत्व को प्रत्येक शिक्षाशास्त्री ने एकमत होकर स्वीकार किया है।

शिक्षण-प्रक्रिया में अधिगम सहायक सामग्री का अत्यधिक महत्व है। सहायक सामग्री विषय-वस्तु को रोचक तथा आकर्षक बनाती है। इसके द्वारा सीखने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। पाठ्य-पुस्तक से पढ़ी हुई विषय-वस्तु अथवा भाषणों के द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी नहीं होता है। रूलन (Rulon) ने एक

अध्ययन में बताया है कि जब छाया चित्र को पाठ्य-पुस्तक के पूरक के रूप में प्रयोग किया गयातो छात्रों की निष्पत्ति की मात्रा में बीस प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी प्रकार अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि सहायक सामग्री छात्रों की निष्पत्ति में पचास से साठ प्रतिश वृद्धि करती है। इन विभिन्न अध्ययनों से हमें पता लगता है कि सहायक सामग्री निष्पत्ति की मात्रा को काफी बढ़ा देती है।

शिक्षण अधिगम सामग्री की आवश्यकता एवं महतव से सम्बन्धित कुछ बिन्दुओं का अध्ययन निम्नलिखित रूप में करेंगे-

(1) क्रियागत अवसर की सुलभता- शिक्षण सामग्री के प्रयोग से बालकों को नाना प्रकार की क्रियाएँ करने के अवसर मिलते है। वे उसमें बोलते-चालते हैं, प्रश्न पूछते है तथा वाद-विवाद करते हैं। इससे उनकी विभिन्न इन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप उनकी पाठ में रुचि बनी रहती है और वे खेलते-खेलते कठिन-से-कठिन बातों को बिना किसी कठिनाई के स्वाभाविक रूप से सीख जाते हैं।

(2) प्रेरणादायी- श्रव्य-दृश्य साधन बालकों का ध्यान आकर्षित करके ज्ञान को स्थूल रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे बालकों को सीखने की क्रिया में प्रेरणा एवं उत्सुकता मिलती है।

(3) अर्थयुक्त अनुभव की प्राप्ति (Gain of Meaningful Experience)- शिक्षण सामग्री द्वारा बालकों को पाठ स्थूल रूप से पढ़ाया जाता है। प्रत्येक बालक वस्तु को देखकर, छूकर तथा पूछकर हर प्रकार से ठीक-ठीक समझने का प्रयास करता है। इससे पाठ सरल, रोचक तथा मनोरंजक बन जाता है और सभी बालक ज्ञान को प्रसन्नापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।

(4) शब्दावली में वृद्धि (Growth in Vocabulary)- शिक्षण सामग्री के द्वारा बालकों की शब्दावली में वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि रेडियो, टेलीफोन तथा चलचित्र प्रयोग करते समय वे नये-नये शब्द सुनते हैं तथा ग्रहण करते हैं।

(5) स्पष्टीकरण में सहायक (Helpful in Clearification)- शिक्षण सामग्री के प्रयोग से बालकों को कठिन-से-कठिन पाठ्य-सामग्री का स्पष्टीकरण हो जाता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि बालक जो कुछ सुनते हैं उसी को आँख से देख भी लेते हैं।

(6) शिक्षण में कुशलता- शिक्षण सामग्री का प्रयोग करने से शिक्षण में कुशलता आती है। साथ ही शिक्षण और अधिक प्रभावशाली बन जाता है। दूसरे शब्दों में, जिन सूक्ष्म बातों तथा कठिन भावों को अधिक चॉक और 'टाक' (Talk) की सहायता से नहीं समझ सकते, उन्हें वे सहायक सामग्री के प्रयोग से सरलतापूर्वक समझ सकते हैं।

(7) रटने को कम करना- शिक्षण सामग्री के प्रयोग से बालक पाठ के विकास में रुचि लेते हैं तथा ज्ञान स्वयं क्रिया करके ग्रहण करते हैं। इससे सीखा हुआ ज्ञान निश्चित और स्थायी बन जाता है और उन्हें किसी चीज को रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(8) ज्ञानेन्द्रियों का महत्व (Importance of sence organs)- बालकों को किसी ज्ञान की प्राप्ति केवल कल्पना या पुस्तकों को पढ़ लेने की अपेक्षा अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अधिक सरलता के साथ और अधिक स्थायी रूप में होती है। ज्ञानेन्द्रियाँ ही वास्तव में ज्ञान के द्वार (Gates of Knowledge) है। शिक्षण में सहायक सामग्री द्वारा ज्ञान का ऐसा बनाने का प्रयास किया जाता है जिससे वह छात्रों की ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच में जा सके और ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अथवा द्वार से उनके मस्तिष्क में प्रवेश पा सके।

शिक्षण अधिगम सामग्रियों के प्रकार

शिक्षण अधिगम सामग्रियों के कुछ निम्नलिखित प्रकार होते हैं-

(1) परम्परागत सहायक सामग्री (Traditional Aids)
(2) श्रवय सहायक सामग्री (Audio Aids)
(3) दृश्य सहायक सामग्री (Visual Aids)
(4) श्रव्य-दृश्य सहायक सामग्री (Audio-Visual Aids)
(5) सामाजिक साधन (Community Resources)
(6) अन्य साधन (Other Resources)

प्रमुख परम्परागत सामग्रियाँ निम्नलिखित हैं-

(1) श्यामपट्ट (Black-board)
(2) तालिकाएँ (Tables)
(3) पत्र-पत्रिकाए (Journal and Periodicals)

श्यामपट्ट

(Black-Board)

यह शिक्षा का महत्वपूर्ण उपकरण है। दुर्भाग्यवश भारत में यह सर्वाधिक उपेक्षित विद्यालय उपकरण है। विद्यालय भवनों का निर्माण करते समय कक्षाओं में श्यामपट्ट के लिए पर्याप्त स्थान रखने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। विद्यालयों में श्यामपट्ट न तो उपयुक्त स्थान पर रखे जाते हैं और न ही उनकी हालत ठीक रहती है।

श्यामपट्ट का अर्थ (Meaning if Black-Board)- श्यामपट्ट का अर्थ काला तथा पट्ट का अर्थ लकड़ी के तख्तों के जुड़े हुए बड़े टुकड़े से है अर्थात् श्यामपट्ट का तात्पर्य लकड़ी के 48'' x 36'' के टुकड़े से है, जिस पर काला रोगन करके उस पर चॉक से लिखने के योग्य बना दिया गया है तथा इसे तिपाई पर रख दिया जाता है। ऐसे श्यामपट्ट को शिक्षण के समय कक्षा के अन्दर

तथा बाहर दोनों स्थानों पर प्रयोग किया जात है। वर्तमान समय में कक्षा की दीवार पर 62'' x 48'' सीमेन्ट अथवा स्लेट का पट्ट बना लिया जाता है। कुछ विद्यालयों में इसी नाप की लकड़ी के तख्तों से जुड़े पट्ट को जमीन से लगभग 5 1/2 फुट की ऊँचाई पर दीवार के बीच टाँग दिया जाता है।

श्यामपट्ट का प्रयोग- शिक्षण में शिक्षण श्यामपट्ट के प्रयोग में द्वारा छात्रों की दो इन्द्रियों को एक साथ क्रियाशील रख सकता है, जिससे बालक ज्ञान ग्रहण करने में इसका प्रयोग निम्नलिखित बातों के लिए कर सकता है-

(i) विभिन्न नियमों व सिद्धांतों को अंकित करने के लिए।
(ii) इनके पदों की परिभाषा देने के लिए।
(iii) योजना की रूपरेखा लिखने के लिए।
(iv) सारांश देने के लिए।
(v) औद्योगीकरण के नियमों को स्पष्टीकरण के लिए रेखाचित्र तथा रेखाकृतियाँ बनाने के लिए।
(vi) चार्ट, ग्राफ आदि प्रदर्शित करने के लिए।
(vii) महत्वपूर्ण तथ्यों, पदों आदि पर बल देने के लिए।
(viii) मुख्य निर्देश के लिए।
(ix) गृह-कार्य देने के लिए।

श्यामपट्ट का महत्व- यद्यपि श्यामपट्ट कोई आकर्षक नहीं है वरन् यह काले रंग का है, परन्तु जब उसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाता है, तब वह बहुत-ही प्रेरणादायक हो जाता है। स्वच्छता-शुद्धता और तेजी से मानक स्थापित करने में इसका बहुत अधिक महत्व है। यह वर्तनी को समझाने में बहुत सहायता करता है। किसी पाठ के दौरान श्यामपट्ट पर बनाया गया कोई निर्देश-चित्र सम्पूर्ण कक्षा के ध्यान को पाठ की ओर आकृष्ट कर सकता है। श्यामपट्ट पर लिखकर तथा रेखाचित्र बनाकर शिक्षक पाठ की तात्विक बातों पर बल दे सकता है। कुछ रेखाओं के सहारे वह कोई नक्शा या चित्र छात्रों के सामने तत्काल प्रस्तुत कर सकता है।[2]

श्यामपट्ट के उपयोग से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातें- श्यामपट्ट का उपयोग करते समय यदि नीचे लिखी बातें ध्यान में रखी जाएँ तो एक दृश्य साधन के रूप में श्यामपट्ट की प्रभावकारिता और उपयोगिता बढ़ सकती है-

(1) श्यामपट्ट को डस्टर या झाड़न या कपड़े से साफ करें। उसको अंगुलियों या हाथ से साफ नहीं किया जाना चाहिए।
(2) श्यामपट्ट के एक ही ओर खड़े हों।
(3) श्यामपट्ट पर ऊपर के दाएँ कोने से लिखना प्रारम्भ करें और सीधी पंक्तियों में लिखें।
(4) श्यामपट्ट पर बड़े अक्षरों में और साफ-साफ लिखें, जिससे पीछे बैठे हुए छात्र भी आसानी से पढ़ लें।
(5) श्यामपट्ट पर केवल महत्वपूर्ण बातें ही लिखें। यह विसतारपूर्ण कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं होता।
(6) श्यामपट्ट पर सुन्दर, आकर्षक तथा एक-सा लिखें। साथ ही लिखी हुई बातें क्रमबद्ध हों। श्यामपट्ट कार्य व्यवस्थित हो।
(7) श्यामपट्ट नक्शा या रेखाचित्र बना लेने के बाद छात्रों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए संकेतक का प्रयोग अवश्य करें।
(8) प्रतिवर्ष कम-से-कम बार श्यामपट्ट पर रंग अवश्य करा दिया जाना चाहिए।

मिनी टूल किट

(Mini Tool Kit)

प्राथमिक स्तर पर छात्रों को ज्ञान प्रदान करने के लिए ऐसे उपकरणों की भी आवश्यकता पड़ती है जिसे छोटे-छोटे आसानी से ग्रहण कर सकें। अर्थात् उनके प्रयोग से प्राप्त होने वाले ज्ञान को सहज रूप से प्रापत कर लें। इसलिए प्राइमरी विद्यालयों को ऑपरेशन ब्लैक-बोर्ड के अन्तर्गत मिनी टूल किट (लघु उपकरण) प्रदान की गयी है जिसकी सहायता से शिक्षक आसानी से सहायक सामग्री का निर्माण कर सकें तथा शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को भी सहायक सामग्री बनाने के लिए प्रेरित करे तथा इस बात की जानकारी प्रदान करें कि छात्रों द्वारा निर्मित सहायक सामग्री महँगी न होकर घर पर ही प्रयोगविहीन पड़ी वस्तुओं से बना सकते हैं। जैसे- माचिस की खाली डिब्बी, मिट्टी की DELT। आकृति, कंकड़, पत्थर तथा अन्य सामग्री।[3]

मिनी टूल किट का उद्देश्य (Aims of Mini Took Kit)- मिनी टूल किट के प्रयोग करने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

(1) शिक्षक द्वारा अपनी कक्षा में सहायक सामग्री का प्रयोग करके 'साधारणीकरण' विस्थापित करना।
(2) छात्रों को पढ़ने हेतु प्रेरित करना।
(3) छात्रों के ज्ञानात्मक एवं कौशलात्मक पक्ष का विकास करना।
(4) छात्रों को सरलता एवं सहजतापूर्वक ज्ञान प्रदान करना।
(5) कठिन विषयों का आसानी से शिक्षण करना।
(6) छात्रों में सृजनात्मकता का विकास करना।

शिक्षण सामग्री का संग्रहण ही शिक्षण प्रक्रिया की सफलता का परिचायक नहीं है। इसका प्रभावी ढंग से प्रयोग भी आवश्यक है।

इसके लिए शिक्षक को कब कहाँ और कैसे शिक्षण सामग्री का प्रयोग करना है यह जानना भी आवश्यक है। सहायक सामग्री का प्रयोग तीन स्तरों पर किया जाना चाहिये। प्रस्तावना में, प्रस्तुति में एवं पुनरावृत्ति में। क्योंकि इन तीनों स्तरों के लक्ष्य भिन्न होते है, तदानुसार ही सहायक सामग्री का प्रयोग होना चाहिऐ। यदि एक ही प्रकार की सहायक सामग्री का शिक्षक द्वारा निरन्तर प्रयोग किया जाता रहे तो यह ऊबने की प्रवृत्ति कर सकती है। इस कारण सहायक सामग्री प्रयोग में विविधता रखनी चाहिये।

संदर्भ

1. Anderman, E.M. (2011). The teaching and learning 21st century skills. Paper presented at the NRC Workshop on Assessment of 21st Century Skills, National Research Council, Irvine, CA, January 12-13. Available: http://www7.nationalacademies.org/bota/21st_Century_Workshop_Anderman_Paper.pdf [September 2011].
2. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century (2012)
3. Suggested Citation:"References." National Research Council. 2012. Education for Life and Work: Developing Transferable Knowledge and Skills in the 21st Century. Washington, DC: The National Academies Press. doi: 10.17226/13398

कोविड-19 महामारी पर एक व्यापक अध्ययनः भारत में स्कूली शिक्षा पर प्रभाव

योगेन्द्र कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

शिक्षा के बिना किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है; यह व्यक्ति के दिमाग के विकास के लिए एक प्रमुख तत्व के रूप में कार्य करता है। एक विकसित दिमाग ही किसी राष्ट्र के विकास के लिए नए विचारों और विचारों का आविष्कार कर सकता है। हम सभी जानते हैं कि "स्वास्थ्य ही धन है।" यानी स्वास्थ्य वह सब कुछ है जो एक व्यक्ति चाहता है। एक स्वस्थ गरीब व्यक्ति एक अस्वस्थ शरीर वाले अमीर व्यक्ति की तुलना में अधिक अमीर होता है।

आज एक दिन पूरी दुनिया एक कोविड-19 महामारी से लड़ रही है। कोविड-19 को कोरोनावायरस रोग के रूप में भी जाना जाता है यहाँ CO का अर्थ कोरोना है, VI का अर्थ वायरस है और 19 इस संक्रमण के कारण 2019 में आए हैं। यह दिसंबर 2019 में चीन में उत्पन्न हुआ था। पहला मामला चीन के वुहान शहर में पाया गया था और उसके बाद, यह फैल गया चीन के प्रांत में। पलक झपकते ही, यह दुनिया के अन्य सभी हिस्सों में फैल गया।[1] WHO ने अचानक 30 जनवरी 2020 को पब्लिक हेल्थ इमरजेंसी ऑफ इंटरनेशनल कंसर्न (PHEIC) होने की घोषणा की और उसके बाद जब यह महामारी ज्यादातर सभी देशों में बदल गई तो WHO ने 12 मार्च 2020 को कोविड-19 को महामारी घोषित किया।

सभी देशों की अधिकांश सरकारों के पास है कोविड-19 के प्रसार को कम करने के लिए सभी स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को अस्थायी रूप से बंद करने का निर्णय लिया गया। शैक्षणिक संस्थान सामाजिक दूरी बनाए नहीं रख सकते। इसलिए सोशल डिस्टेंसिंग बनाए रखने के लिए स्कूलों और सभी शिक्षण संस्थानों को अस्थायी रूप से बंद करना अनिवार्य है।

वयस्कों की तुलना में बच्चों में कोविड-19 की प्रसार दर अधिक है। भारत में निम्नलिखित लॉकडाउन नियमों के अनुसार, नर्सरी स्तर से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक सभी संस्थान बंद हैं इसलिए उनकी पढ़ाई बुरी तरह प्रभावित होती है। यूनेस्को के अनुसाररिपोर्ट, 29 देशों में 290 मिलियन से अधिक छात्र प्रभावित हैं। यूनेस्को द्वारा घोषित, लगभग 32 करोड़ छात्र (स्कूल और कॉलेज सहित) प्रभावित हो रहे हैं।

वर्तमान परिदृश्य के कारण शिक्षण ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर जा रहा है। कई बार ऑनलाइन पढ़ाई में कुछ रुकावटें भी आ जाती हैं। जैसे इंटरनेट कनेक्शन फेल होना, घर के माहौल में गड़बड़ी, ऐसे में कई छात्र ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर पढ़ाई नहीं कर पा रहे हैं. न केवल निजी स्कूल ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म अपना रहे हैं, बल्कि सरकारी स्कूलों को भी ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म अपनाना पड़ रहा है। कुछ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म हैं वेबएक्स, जूम और गूगल क्लासरूम, स्काइप।

इन प्रौद्योगिकी उपकरणों को अपनाने से, हमारी शिक्षा भविष्य में शिक्षक-केंद्रित दृष्टिकोण से छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बढ़ जाएगी। ये ऑनलाइन उपकरण शिक्षकों और छात्रों को उनके कौशल को बढ़ाने और उनके ज्ञान को विकसित करने में मदद करेंगे। अब हम कह सकते हैं कि यह संकट हमें न केवल इस महामारी से लड़ना सिखा रहा है बल्कि हमें यह भी सिखा रहा है कि अपना भविष्य कैसे बनाना है। भारत सरकार ने छात्रों की सहायता के लिए स्वयं, दीक्षा पोर्टल, ई-पाठशाला, स्माइल, एसटीईएम-आधारित पोर्टल और कई अन्य ई-पोर्टल और ऐप लॉन्च किए हैं।

साहित्य की समीक्षा

हरपन के अनुसार दिसंबर 2019 की शुरुआत में वुहान शहर, हुबेई प्रांत, चीन में एक उपन्यास सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम 2 (SARS-CoV-2) के कारण 2019 (COVID-19) में कोरोनोवायरस बीमारी का प्रकोप पहचाना गया था।

जनता के लिए उपलब्ध जानकारी की। इस साहित्य समीक्षा में सभी प्रेरक कारण, रोगजनन और प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया, महामारी विज्ञान, विकृति विज्ञान, देखभाल और प्रबंधन, नियंत्रण और निवारक तरीकों पर चर्चा की गई है।

दुनिया भर के हर क्षेत्र में कोविड-19 महामारी का प्रभाव दिखाई दे रहा है। इसका भारत और दुनिया भर के शिक्षा उद्योगों पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। इसने वैश्विक ताला लगा दिया है, जिसका छात्रों के जीवन पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। लगभग। 32 करोड़ छात्र कोविड-19 से प्रभावित हैं और भारत में सभी शैक्षणिक गतिविधियों को रोक दिया गया है। कोविड-19 महामारी ने हमें बताया है कि संक्रमण आसन्न है। इसने शिक्षा संस्थानों के सामने न देखे गए चौनलों और रणनीतियों को बनाने और चुनने के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में काम किया है। शिक्षा

क्षेत्र संकट की निरंतरता के कारण एक नए समाधान के लिए संघर्ष कर रहा है और महामारी के खतरे को मिटाने के लिए डिजिटाइज किया गया है।[2]

कोविड-19 के खिलाफ रोकथाम के कदमों के कारण स्कूलों को बंद करने का स्कूली शिक्षा, भलाई और सभी इच्छुक पार्टियों के कामकाज और देश के शैक्षिक ढांचे पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है। जबकि दूर या ऑनलाइन शिक्षा के लिए संक्रमण अब दुनिया भर के कई शैक्षणिक संस्थानों का एक घटक बन गया है, परिवर्तन के अनुसार शैक्षणिक संस्थानों, शिक्षकों, अभिभावकों और छात्रों की निरंतरता में योगदान करने के लिए चर की एक श्रृंखला की उम्मीद है।[3]

कोविड-19 और शिक्षा

बच्चे की पहली पाठशाला घर और पहली शिक्षिका माँ होती है। लेकिन हम जानते हैं कि अगर हम अपने बच्चे के सामाजिक जीवन और उत्पादकता को विकसित करना चाहते हैं तो हमें उन्हें स्कूल भेजने की जरूरत है। हमारे आर्थिक विकास के लिए स्कूल बच्चों की सामाजिक जागरूकता, कौशल और क्षमता को मजेदार तरीकों से बढ़ा रहे हैं। बच्चे केवल कुछ ही समय स्कूल में बिताते हैं और अधिक चीजें सीखते हैं। हमारा बच्चा तब बेहतर सीख सकता है जब वह भौतिक कक्षा में शिक्षकों और साथियों के साथ बातचीत करता है। वे अपने सामाजिक जीवन को विकसित कर सकते हैं और वे अधिक प्रभावी ढंग से सीख सकते हैं। इस कोविड-19 महामारी के कारण, अधिकांश देशों ने अपने स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय बंद कर दिए हैं। ऐसा लगता है जैसे छात्रों का विकास रास्ते में ही रुक गया हो। लेकिन हमारी सरकार की जागरूकता के कारण छात्र ऑनलाइन माध्यम से अपनी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस तरह उनका सीखना बिना किसी रुकावट के एक सतत प्रक्रिया बनता जा रहा है।[4]

कोविड-19 काल में डिजिटल लर्निंग के कुछ फायदे और नुकसान भारत में देखने को मिल रहे हैं।

कोविड-19 काल में डिजिटल लर्निंग के फायदे[5] -

1. सीखना अधिक रोचक, प्रभावी और वैयक्तिकृत होता जा रहा है।
2. भविष्य के दृष्टिकोण से भारत में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना।
3. शिक्षक भी अपने ई-लर्निंग मॉड्यूल को बढ़ा रहे हैं।
4. यह पारंपरिक शिक्षा से बेहतर है।
5. यह लागत प्रभावी है।
6. सीखने के लिए कोई भौगोलिक सीमा नहीं।
7. सीखने के लिए कोई समय प्रतिबंध नहीं।
8. शिक्षक और छात्रों के साथ आमने-सामने की बातचीत।
9. वाहन शुल्क और समय की बचत।

कोविड-19 काल में डिजिटल लर्निंग के नुकसान-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों के पास उचित संसाधन नहीं हैं।
2. तकनीक के बारे में माता-पिता को ज्ञान की कमी।
3. बजट की कमी के कारण भारत सरकार को कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।
4. शिक्षकों को तकनीक के साथ बहुत दोस्ताना व्यवहार करना चाहिए।
5. छात्र कभी-कभी गेम, सोशल मीडिया आदि से विचलित हो जाते हैं।
6. विभिन्न स्तरों के छात्रों को एक अलग प्रकार की डिजिटल कक्षाओं की आवश्यकता होती है।
7. कोई लिखित कार्य प्रदान नहीं करता है।
8. सामग्री को बनाए रखा जाना चाहिए और हैकिंग से सुरक्षित होना चाहिए।
9. प्रभावी आकलन ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर नहीं लिया जा सकता है।

सावधानियां - लॉकडाउन के बाद स्कूलों के लिए

मानव संसाधन विकास मंत्री एमआर। रमेश पोखरियाल ने कुछ दिशानिर्देशों की घोषणा की है जिनका लॉकडाउन के बाद स्कूलों को सावधानीपूर्वक पालन करना चाहिए।

1. लंबे समय तक विधानसभा का सत्र, सेमिनार नहीं होना
2. एक दिन में केवल 30þ स्कूल की क्षमता की अनुमति दी जानी चाहिए
3. स्कूल में दो पालियों में काम हो
4. छात्रों के बीच 6 फीट की दूरी
5. 500 वर्ग फीट के क्लासरूम में 10 विद्यार्थी
6. छात्र के लिए घर पर अध्ययन करने का विकल्प है।
5. घर में पढ़ाई का माहौल नहीं मिलता।

निष्कर्ष

साफ दिख रहा है कि कोरोना वायरस का असर सालों तक रहेगा। भारत ने पहले ही अपने विशाल 4जी नेटवर्क के कारण छात्रों की संख्या को घर पर पढ़ाने की योजना बना ली है। भारत में लगभग हर जगह 4जी कनेक्टिविटी बेहद कम कीमत पर उपलब्ध है। शक्तिशाली नेटवर्क कनेक्शन के कारण छात्र कक्षा के वातावरण में सीख सकते हैं क्योंकि वे सीधे कक्षा में बैठे होते हैं। ऑनलाइन शिक्षण शिक्षण और सीखने में लचीलापन प्रदान करता है और यह कक्षा को प्रेरक बनाने के लिए अधिक उपकरण और तकनीकें भी प्रदान करता है। ऑनलाइन शिक्षण का ध्यान छात्रों पर अधिक है और इसलिए यह पुराने शिक्षक-केंद्रित शिक्षण के बजाय छात्र-केंद्रित शिक्षा को बढ़ावा देता है। भारतीय छात्रों,

शिक्षकों और अभिभावकों को वर्चुअल क्लासरूम की आदत नहीं है। उनके लिए पारंपरिक कक्षा ही सीखने का एकमात्र तरीका था। लेकिन अब अचानक भारतीयों को अपनी पारंपरिक कक्षाओं को ऑनलाइन कक्षाओं में स्थानांतरित करना पड़ रहा है। इस प्रकार, सिस्टम को ऑनलाइन क्लासरूम टूल के लिए हमारे शिक्षक के प्रशिक्षण पर काम करने की आवश्यकता है, ताकि वे छात्रों को अधिक प्रभावी ढंग से पढ़ा सकें और हमारी भावी पीढ़ी का निर्माण कर सकें। भारत इन नाटकीय बदलावों के लिए तैयार नहीं था इसलिए यह हमारे देश की आबादी के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इस प्रकार अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजस्थान के उदयपुर जिले के संस्थानों के पुरुष और महिला दोनों छात्र, माता–पिता और शिक्षक कोविड–19 महामारी के कारण इस लॉकडाउन समय में ऑनलाइन शिक्षण को एक प्रभावी और सबसे उपयुक्त साधन मानते हैं।. स्कूल प्रशासन को अपने शिक्षक को उस स्तर तक प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है जो सुचारू ऑनलाइन शिक्षण प्रणाली को सक्षम बनाता है। भविष्य के दृष्टिकोण से, आभासी कक्षाएं हमारे देश के शैक्षिक विकास में योगदान देंगी। हमें ऑनलाइन कक्षाओं को अपनाने के लिए अपनी सरकार का समर्थन करना चाहिए और अपने छात्रों को उन्हें सर्वश्रेष्ठ भविष्य देने में मदद करनी चाहिए।

संदर्भ

1. COVID-19 pandemic - Wikipedia. (n.d.). Retrieved January 9, 2021, from https://en.wikipedia.org/wiki/COVID-19_pandemic
2. Harapan, H., Itoh, N., Yufika, A., Winardi, W., Keam, S., Te, H., Megawati, D., Hayati, Z., Wagner, A. L., & Mudatsir, M. (2020).
3. Coronavirus disease 2019 (COVID-19): A literature review. Journal of Infection and Public Health, 13(5), 667–673. https://doi.org/10.1016/j.jiph.2020.03.019
4. Impact of Pandemic COVID-19 on Education in India by Pravat Kumar Jena SSRN. (n.d.). Retrieved January 9, 2021, from https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3691506
5. Jena, P. K. (2020). Impact of Pandemic COVID-19 on Education in India. 57

शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

विवेक सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

दर्शन और शिक्षा का गहरा संबंध है, क्योंकि हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण शिक्षा के अंगों को प्रभावित करता रहता है। हम जैसा दर्शन रखते है, वैसे ही शैक्षिक क्रिया करने लगते हैं। किसी भी विज्ञान को सरलता से समझने के लिए उसके अर्थ की विवेचना विभिन्न दृष्टिकोणों से होनी चाहिए। दर्शन के अर्थ को समझने के लिए भी यह जरूरी है कि उसके अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझा जाए- व्युत्पत्ति के अनुसार दर्शन का अर्थ- 'दर्शन' शब्द भारतीय प्राचीन भाषा संस्कृत से निकला है। 'दर्शन' शब्द संस्कृत की 'दर्श' धातु से बना है। जिसका अर्थ है देखना। 'दर्शन पद की व्युत्पति दो प्रकार से हुई है।[1]

दर्शन की परिभाषाएँ

विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय दार्शनिकों, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों एवं धर्म प्रणेताओं द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का अध्ययन 'दर्शन-शास्त्र' के अर्थ को अधिक स्पष्ट करता है-

भारतीय दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ

रवीन्द्र नाथ टैगोर- "सत्यम्, शिवम् एवं अद्वैतम् का समन्वय ही दर्शन है।''

डॉ. राधाकृष्णन्- "दर्शन-शास्त्र यथार्थ के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।''

श्री अरविन्द- "जिसमें सभी विभिन्नताएँ अपनी विभिन्नताओं को खोकर एक रूप हो जाएँ, वही दर्शन है।''

पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ

ब्रारट मैन- "दर्शन अनुभव के विषय में निष्कर्षो का समूह न होकर मूल रूप से अनुभव के प्रति एक दृष्टिकोण या पद्धति है।''

बरट्रेन्ड रसल- "अन्य विद्याओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है।''

ब्रेडले- "दृश्य जगत की अपेक्षा यथार्थ के ज्ञान का प्रयत्न करना ही दर्शन है।

फिक्टे- "दर्शन ज्ञान का विज्ञान है।''

आर. डब्ल्यू सैलर्स- "दर्शन एक व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व और मुनष्य की प्रकृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न है।''

डुकासे- "दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धांत है।''

दर्शन की उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि जहाँ कुछ दार्शनिकों ने समीक्षात्मक दर्शन को ही दर्शन माना है। वहाँ दूसरी ओर कुछ दार्शनिक केवल समन्वयात्मक दर्शन को ही एक मात्र दर्शन मानते हैं। यह दोनों ही मत एकांगी हैं। भारतीय दृष्टि में दर्शन केवल पुस्तकीय विद्या नहीं है, अपितु तार्किक दिव्य दृष्टि, आत्म-ज्ञान, गहन-चिन्तन आदि का परिणाम है।

शिक्षा और दर्शन

मनुष्य का जैसे ही संसार में आगमन होता है, वह इस संसार को जानने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है मनुष्य शिशु के रूप में संसार के भौतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक वातावरण को समझने का प्रयास करने लगता है। इस प्रयास में उसे अनेक प्रकार की जिज्ञासा, सन्देह, कौतूहल, शंका आदि का सामना करना पड़ता है। इसी जिज्ञासा, सन्देह, कौतूहल, शंका आदि के द्वारा दर्शन का जन्म होता है।

संसार में जन्म लेने के बाद मृत्यु तक व्यक्ति इस संसार को समझने का प्रयत्न करता रहता है। इस जगत को देखकर उसके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठते रहते हैं। यह जगत् क्या है? जगत की उत्पत्ति कैसे हुई? जगत को चलने वाला कौन है? कैसा है? जगत् का प्रारम्भ कैसे हुआ? इसका अन्त क्या है? व्यक्ति एक चिन्तनशील प्राणी है। वह स्वयं के बारे में भी चिन्तित रहता है। मानव का जन्म कैसे हुआ? अन्त होने पर मानव का क्या होता है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? दोनों का संबंध क्या है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न व्यक्ति के मन में सदैव उठते रहते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर पाने के प्रयत्न से ही दर्शन की उत्पत्ति हुई।[2]

शिक्षा और दर्शन दोनों ही जीवन के अभिन्न अंग हैं। आदिकाल में तो जीवन और दर्शन में कोई अनतर ही नहीं था। आज भी जीवन और दर्शन साथ-साथ रहते हैं। दर्शन हमें जीवन के प्रति उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाने का परामर्श देता है तो शिक्षा जीने की कला सीखलाती है। हमें वास्तविक जीवन में व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण ही उसका जीवन दर्शन है।

सभ्यता के आदिकाल में शिक्षा और जीवन में भी कोई अन्तर नहीं था। जीवन-यापन के क्रम में ही शिक्षा भी मिलती जाती थी। पहले पेशा भी पैतृक होता था। जीवन-यापन के क्रम में ही पेशा कौशल भी सीखा जाता था। आज दोनों में अन्तर आ गया है। शिक्षालय जो कुछ सिखाता है जीवन में कभी-कभी वह काम ही नहीं आता है इसलिए अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती

हैं इन समस्याओं का समाधान शिक्षा दर्शन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

आज शिक्षा दर्शन का महत्व इसीलिए अधिक बढ़ गया है कि यहाँ शैक्षिक समस्याओं को वैज्ञानिक तरीके से प्रयोग एवं प्रमाण के आधार पर सुलझाने का अथक प्रयास करता है। इस सन्दर्भ में हरबर्ट-स्पैन्सर लिखते हैं- "वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दर्शन ही कर सकता है।

शिक्षा के लिए दर्शन की आवश्यकता स्वाभाविक है। 'दर्शन' शिक्षा का एक प्रमुख आधार है। दर्शन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, विद्यालय-संगठन, अनुशासन आदि को एक निश्चित रूप प्रदान किया जाता है। अत: शिक्षा-योजना को सफल बनाने के लिए दर्शन आवश्यक है।

शैक्षिक दृष्टिकोण से, दर्शन का अध्ययन परमावश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा शिक्ष का पथ-प्रदर्शन किया जाता है। बटलर का कथन है- "दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक है। शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय के लिए निश्चित सामग्री को आधार के रूप में प्रदान करती है।"[3]

दर्शन एवं शिक्षा का पारस्परिक सम्बन्ध

हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण शिक्षा के अंगों को प्रभावित करता रहता है। हम जैसा दर्शन रखते हैं। वैसी ही शैक्षिक क्रिया करने लगते हैं। शिक्षा के विभिन्न अंगों पर दर्शन के प्रभाव को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

शिक्षण विधियों पर दर्शन का प्रभाव

बिना दर्शन के शिक्षण-विधि लक्ष्य विहीन यात्रा के समान है। दर्शन शिक्षण-विधि का लक्ष्य बतलाता है। जीवन कके आदर्शों की प्राप्ति की शिक्षण विधि का उद्देश्य है। स्वीकृत जीवन दर्शन में जिस सिद्धांत का प्रतिपादन होता है। शिक्षण विधि का स्वरूप उसी के अनुकूल बनता है।

उदाहरणार्थ- प्रकृतिवाद के सिद्धांत के अनुसार बालक ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है। अत: इस सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए बालक का स्थान सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। और शिक्षण-विधि भी इसी विचारधारा के अनुकूल बनाई गई है। पुस्तकों के साथ-साथ प्रकृति से स्वयं कुछ सीखने की भी बालक को स्वतंत्रता दी गई है। इस प्रकार शिक्षण-विधियों की प्रेरक शक्ति के रूप में दार्शनिक सिद्धांतों ने उनको अनेक रूप दिए हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षण-विधियाँ, दर्शन से निकलती हैं। विभिन्न दार्शनिक विचारों के परिणामस्वरूप ही शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न शिक्षण-विधियाँ दिखाई देती हैं। उदाहरणार्थ-सुकरात ने अपने दार्शनिक विचारों के अनुसार प्रश्नोत्तर विधि को जन्म दिया। प्लेटो ने 'संवाद विधि' तथा अरस्तू ने 'आगमन विधि' को खोज निकाला। बेकन ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग एवं निरीक्षण को सर्वोत्तम पद्धति मान। रूसों ने बालक को अत्यधिक स्वतंत्रता प्रदान करने का समर्थन किया। इसलिए, उसने स्वानुभव तथा स्वक्रिया पर बल दिया। मॉन्टेसरी ने 'इन्द्रिय यथार्थवाद' के अनुसार पर 'इन्द्रिय प्रशिक्षण' (Sensory Training) को अपनी पद्धति का आधार बनाया। फ्रॉबेल ने अपने दर्शन के अनुसार, किण्डरगार्टन पद्धति को जन्म दिया। इस प्रकार, भिन्न-भिन्न शिक्षा-शास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न पद्धतियों को ग्रहण करने का परामर्श दिया। उन्होंने ऐसा, क्यों किया? इसका उत्तर हमें दर्शनशास्त्र से मिलता है।

अनुशासन व्यवस्था पर दर्शन का प्रभाव

अनुशासन की धारणा को विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा प्रभावित किया जाता है; क्योंकि इसका सम्बनध समाज एवं व्यक्ति के दर्शन से होता है। दर्शन ही इसके विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। उदाहरणार्थ- अनुशासन की स्थापना के लिए प्रकृतिवाद-दण्ड-विधान में प्राकृतिक परिणामों (Natural Consequence) एवं स्वतंत्रता को स्थान देते हैं। प्रयोजनवादी-अनुशासन की स्थापना के लिए आनन्द, रुचि तथा सामाजिक एवं सहयोगी क्रियाओं को स्थान देते हैं। आदर्शवादी मुख्यत: आत्म-नियंत्रण एवं शिक्षक के प्रभाव द्वारा अनुशासन की स्थापना करने कके समर्थक हैं। परन्तु, कुछ आदर्शवादी, जो परमवाद (Absolutism) के पक्षपाती हैं, दमनात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं। अधिकांशत: आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन की धारणा को मानते हैं। अत: दार्शनिक विचारधाराओं के परिणामस्वरूप अनुशासन के विभिन्न रूप-दमनात्मक अनुशासन, प्रभावात्मक अनुशासन, मुक्त्यात्मक अनुशासन, सामाजिक अनुशासद आदि पाए जाते हैं।

यदि हम अनुशासन के अन्तर्गत नैतिक व्यवहार को मानें, तो इस दृष्टिकोण में भी दर्शन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। रस्क (त्नो) ने लिखा है- "प्रकृतिवादी, दर्शनशास्त्र में नैतिक मानदण्डों की प्रामाणिकता को अस्वीकार करके, बालक की जन्मजात या मूलप्रवृत्यात्मक प्रवृत्तियों को मनमाने ढंग से प्रकट होने के लिए अवसर प्रदान करता है। प्रयोजनवादी ऐसे मानदण्डों को सामान्य रूप से अस्वीकार करते हुए, छात्रों के आचरण की सामाजिक स्वीकृति पर ही नियंत्रित करने में आस्था रखता है। दूसरी ओर, आदर्शवादी-मानव-व्यवहार को नैतिक आदर्शों के अभाव में अपूर्ण मानता है और बालकों को सैनिक मानदण्डों को स्वीकार करने के लिए अग्रसर करता है तथा उन्हें धीरे-धीरे आचरण का अंग बनाने के लिए प्रशिक्षण प्रदान करना अपना कर्तव्य मानता है।"[4]

शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का प्रभाव

शिक्षा के उद्देश्य जीवन के उद्देश्यों के आधार पर निश्चित होते हैं। जीवन के उद्देश्य समाज और संस्कृति से प्रभावित होते रहते हैं। उस देश के समाज पर दर्शन का पूर्ण प्रभाव होता। अत: दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करता है।

टी. पी. के शब्दों में- "शिक्षा की प्रत्येक योजना अन्ततोगत्वा व्यावहारिक दर्शन है और जीवन के प्रत्येक बिन्दु को आवश्यक

रूप से स्पर्श करती है। अत: शिक्षा के कोई भी उद्देश्य, जो निश्चित रूप से पथ-प्रदर्शन करने के लिए पर्याप्त रूप से स्थूल है, जीवन के आदर्शों से सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि जीवन के आदर्श सर्वथा भिन्न होते हैं, इसलिए उनकी भिन्नता, शैक्षिक सिद्धांतों में अवश्य प्रतिबिम्बित होगी।''

जैसा कि हम देख चुके हैं, जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नाम 'दर्शन' है। व्यक्ति इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपना जीवन-यापन करता है। अत: जीवन और दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन के दृष्टिकोण के अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। जीवन और शिक्ष में वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा कि दर्शन और जीवन में। अत: जिस प्रकार का हमारा जीवन का दृष्टिकोण होगा, उसी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य हमारे द्वारा निर्धारित किए जायेंगे। यदि हमारा दृष्टिकोण केवल भौतिक विकास करना है और यदि हम भौतिकवादी दृष्टिकोण रखते हैं तो हम शिक्षा का उद्देश्य भौतिक सामग्री जुटाने की कला से अवगत कराना निर्धारित करेंगे। यदि हमारा दृष्टिकोण आध्यात्मिक विकास करना या मोक्ष की प्राप्ति करना है, तो हम शिक्षा के उद्देश्य 'आत्मानुभूति' का निर्धारण करेंगे ताकि हम परम सत्ता से एकाकार काने में समर्थ हो सकें। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस समय लोगों का जीवन के प्रति जैसा दृष्टिकोण रहा, उसी के अनुसार उस काल में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया।[5]

जीवन की मान्यताओं, आदर्शों एवं शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्य पुस्तक एक सशक्त साधन हैं। पाठ्य-पुस्तकों के चयन एवं निर्माण में दर्शन आधार का कार्य करता है। पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव के लिए जीवन की मान्यताओं, आदर्शों एवं सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाता है क्योंकि इनके द्वारा जीवन में मानदण्डों का स्थापना किया जाता है। वेस्ले (Wesley) का मत है- "पाठ्य-पुस्तक, मानदण्डों को प्रतिबिम्बित एवं स्थापित करती है। सम्भवत: यह अधिकार इस बात का संकेत देती है कि शिक्षक को क्या जानना चाहिए और बालकों को क्या सीखना चाहिए। यह शिक्षण-विधियों को प्रभावित करती है तथा विद्वत्ता के बढ़ते हुए मानदण्डों को प्रकट करती है।''

जिन पुस्तकों में जीवन के प्रचलित आदर्शों को प्रतिबिम्बित किया जाता है, उन्हें उपर्युक्त पाठ्य-पुस्तकों की श्रेणी में रखा जाता है। इस प्रकार, पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण एवं उनकी उपयुक्तता का आधार दर्शन होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार दर्शन पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण, चयन एवं उपयुक्तता आदि में आधार का कार्य करता है, उसी प्रकार पाठ्य-पुस्तकें भी दर्शन के निर्माण में महत्वपूर्ण योग देती है। पाठ्य-पुस्तकें, अध्ययन-अध्यापन, तर्क आदि के महत्वपूर्ण साधन हैं, इनके परिणामस्वरूप, नवीन विचारों को जन्म मिलता है। नवीन विचारों या सिद्धांतों द्वारा नवीन दर्शन का जनम होता है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें नवीन दर्शन की निर्माण के आधार पर कार्य करती हैं। शिक्षा एक गतिशील विषय है। इसका रूप स्थिर नहीं। शिक्षा में सरिता का स्वाभाविक प्रवाह होता है। शिक्षा चेतन है, जड़ नहीं। शिक्षा का सम्बन्ध जीवन के कारण उसमें गति और ग्रहण करने की शक्ति है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा एक जीवित क्रिया है। यदि हम एक प्राकृतिक उदाहरणों लें तो शिक्षा का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा। यह उदाहरण उस कमल का है जो सूर्य का प्रकाश पाकर खिल उठता है और सूर्यास्त होने पर कुम्हला जाता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति शिक्षा-रूपी प्रकाश पाकर कमल की भांति खिल उठता है और शिक्षा न मिलने पर अविकसित रहता है।

संदर्भ

1. डॉ0 वी0पी0 चतुर्वेदी, प्राचीन शिक्षा प्रणाली- पृ0 09
2. डॉ0 डी0 चन्द्र, उच्च शिक्षा और स्वामी विवेकानन्द- पृ0 39
3. अमित कुमार शर्मा, भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली, (सम्पादन) सुरेन्द्र पाल, उच्च शिक्षा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2015, पृ0 77
4. डब्लू0 एच0 शार्प, सिलेक्शंस फ्राम एजूकेशनल रिकार्ड्स, खंड-1, पृ0 3
5. राम शकल पाण्डेय, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास- पृ0 45।

भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरूआत

पदम सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

भारत प्रारम्भ से ही विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। 15वीं शताब्दी के अन्त (1498) में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने यूरोप से भारत आने के समुद्री जल मार्ग की खोज की। वह पहला यूरोपीय व्यक्ति था जो जल मार्ग द्वारा भारत के पश्चिमी बन्दरगाह कालीकट पहुँचने में सफल हुआ परिणामत: 1510 में पुर्तगालियों ने भारत में प्रवेश किया। लगभग 100 वर्ष तक इनका यहाँ के व्यापार के क्षेत्र में एकछत्र राज्य रहा। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ (1613) में यहाँ अंग्रेज व्यापारियों का प्रवेश हुआ इनके बाद इसी शताब्दी में क्रमश: डच, फ्रान्सीसी और डेन व्यापारियों का आगमन हुआ। इन यूरोपीय व्यापारियों में संघर्ष होना स्वाभाविक था। अन्त में यहाँ अंग्रेज व्यापारी पैर जमाने में सफल हुए। उस समय भारत की आन्तरिक स्थिति बहुत नाजुक थी। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था, कई अधीनस्थ राज्यों ने तो विद्रोह करना शुरू कर दिया था।[1]

1200 से लेकर 1700 तक तो यहाँ मुस्लिम शासकों और इस्लाम धर्म का वर्चस्व रहा परन्तु उसके बाद एक नए युग की शुरूआत हुई। इतिहासकार इस नए युग (1700 से आज तक) को आधुनिक काल कहते हैं। आधुनिक काल को भी इतिहासकारों ने दो उपकालों में विभाजित किया है- ब्रिटिश काल (1700 से 1947 तक) और स्वतंत्र काल (1947 से आज तक)।

जहाँ तक भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरूआत की बात है, इसकी शुरूआत बहुत पहले 1510 ई0 में पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने कर दी थी। इसके बाद यहाँ 1613 में अंग्रेज ईसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ। उन्होंने यहाँ आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की नींव को मजबूत किया। इनके साथ-साथ फ्रान्सीसी और डेन मिशनरियों ने भी इस कार्य को अपने-अपने तरीकों से किया। हाँ, इसको गति देने और इसमें विकास करने का कार्य अन्त में अंग्रेज ईसाई मिशनरियों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ही किया। इस अध्याय में भारत में आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के विकास में यूरोपीय मिशनरियों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक प्रयासों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है।[2]

यूरोपीय ईसाई मिशनरियों के प्रारम्भिक शैक्षिक कार्य

यूँ तो भारत में यूरोपीय जातियों में सर्वप्रथम पुर्तगाली व्यापारी और पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया था और उनके बाद क्रमश: अंग्रेज, डच, फ्रान्सीसी, डेन और डच व्यापारी एवं ईसाई मिशनरी आए थे, परन्तु अन्त में यहाँ अंग्रेज व्यापारी और अंग्रेज ईसाई मिशनरी ही कायाब हुए इसलिए थोड़ा क्रम भंग करके अंग्रेज ईसाई मिशनरियों के कार्यों का वर्णन अन्त में करना उचित होगा। अस्तु।

पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

1498 में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने भारत के जलमार्ग की खोज की और 1510 में पुर्तगालियों ने भारत के गोआ पर अपना अधिकार कर लिया। गोआ पर अधिकार करने के बाद पुर्तगाली व्यापारियों ने यहाँ व्यापारिक केन्द्र खोलने शुरू किए और ईसाई मिशनरियों ने एक साथ दो कार्य शुरू किए- पहला ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रचार और दूसरा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन। पुर्तगाली मिशनरियों में सेन्ट फ्रान्सिस और जैवियर (St. Francis Xavier) और राबर्ट डी नोविली (Robert De Novili) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने पैदल घूम-घूमकर ईसाई धर्म का प्रचार किया था और शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की थीं।

पुर्तगाली व्यापारियों ने सर्वप्रथम गोआ में अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। पुर्तगाली मिशनरियों ने भी यही से अपना कार्य शुरू किया। यहाँ इन्होंने प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में इन्होंने पुर्तगाली भाषा, स्थानीय भाषा, गणित और स्थानीय शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था की और साथ ही ईसाई धर्म की व्यवस्था की। इन स्कूलों में ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों के बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा दी जाती थी। निर्धन बच्चों को भोजन, वस्त्र और पाठ्यपुस्तकें भी नि:शुल्क दी जाती थी। 1556 में इन्होंने यहाँ एक प्रिन्टिग प्रेस खोला जिसमें धर्म पुस्तकें और पाठ्यपुस्तकें तैयार की जाती थी। और जैसे-जैसे पुर्तगाली व्यापारियों का क्षेत्र बढ़ता गया वैसे-वैसे पुर्तगाली मिशनरियों का कार्य क्षेत्र भी बढ़ता गया। गोआ के बाद इन्होंने दमन, ड्यू हुगली, कोचीन, चटगाँव और बम्बई में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की।[3]

पुर्तगाली मिशनरियों ने भारत में आधुनिक प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक उच्च शिक्षा की भी शुरूआत की। इन्होंने सर्वप्रथम 1675 में गोआ में जैसुएट कॉलिज (Jesuet College) की स्थापना की और उसके बाद 1577 में बम्बई के निकट बाँद्रा में सेंट एनी कॉलिज (St.Anni College) की स्थापना की। इन कॉलिजों में लैटिन भाषा, व्याकरण, तर्कशास्त्र और संगीत की शिक्षा की व्यवस्था की गई और साथ ही ईसाई धर्म की शिक्षा की व्यवस्था की गई। जैसुएट पादरियों से प्रभावित होकर तत्कालीन बादशाह अकबर ने भी आगरे में जैसुएट कॉलिज के स्थापना की थी। परन्तु जैसे ही पुर्तगालियों ने दिल्ली की तरफ आँख उठाई तत्कालीन बादशाह शाहजहाँ ने 1662 में उन्हें मार भगाया। परन्तु

गोआ में उसका प्रभुत्व बरकरार रहा। पुर्तगाली भारत में यूरोपीय शिक्षा प्रणाली की नींव रखने वाले माने जाते हैं।

डच ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

17वीं शताब्दी के मध्य में भारत में हॉलैण्ड निवासी डच व्यापारियों ने प्रवेश किया। इन्होंने अपने व्यापारिक संस्थान समुद्र के किनारे बंगाल में चिनसुरा और हुगली में तथा मद्रास में नागापट्टम् और बिल्लीपट्टम में स्थापित किए। इनके साथ डच ईसाई मिशनरी भी आए थे। इन डच ईसाई मिशनरियों ने कारखानों में काम करने वाले डच नागरिकों और भारतीय नागरिकों, दोनों के बच्चों की शिक्ष के लिए प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में सामान्य भारतीय नागरिकों के बच्चे भी प्रवेश ले सकते थे। इन स्कूलों में इन्होंने डच भाषा, स्थानीय भाषाओं, भूगोल, गणित और स्थानीय कला-कौशलों की शिक्षा की व्यवस्था यूरोपीय पद्धति पर की। इन्होंने विद्यालयों को ईसाई धर्म शिक्षा का केन्द्र नहीं बनाया। परन्तु अंग्रेजों से शत्रुता हो जाने के कारण इन्हें शीघ्र ही भारत छोड़ना पड़ा।

फ्रान्सीसी ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

1667 में भारत में फ्रान्सीसी व्यापारियों ने प्रवेश किया। ये भी अपने साथ फ्रान्सीसी ईसाई पादरी लाए। इन्होंने अपने कारखाने माही, यनाम, कारीकल, चन्द्रनगर और पाण्डिचेरी में स्थापित किए। इन्होंने करखानों के निकट प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की ।इन विद्यालयों की व्यवस्था फ्रान्सीसी ईसाई मिशनरियों के हाथ में थी। इन विद्यालयों में फ्रान्सीसी और स्थानीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। इनमें फ्रान्सीसी माध्यम से शिखा देने हेतु फ्रान्सीसी शिक्षक नियुक्त किए जाते थे और भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने हेतु भारतीय शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। इनमें ईसाई धर्म (कैथोलिक) की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी और इसके लिए प्रत्येक स्कूल में एक पादरी शिक्षक अवश्य नियुक्त किया जाता था।

फ्रान्सीसी ने पाण्डिचेरी में एक माध्यमिक स्कूल की स्थापना भी की। इसमें फ्रान्सीसी भाषा और ईसाई धर्म शिक्षा अनिवार्य थी। परन्तु जैसे ही इनकी राजनैतिक आकांक्षाएँ बढ़ीं अंग्रेजों ने इन्हें कर्नाटक के युद्ध में परास्त कर भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया। इसके बाद इनके द्वारा संस्थापित शिक्षा संस्थाओं को अंग्रेजों ने अपने तरीकों से चलाया।[4]

अंग्रेज ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

भारत में आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकास में सबसे अधिक योगदान अंग्रेज ईसाई मिशनरियों का रहा। 1613 में इस देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटेन का प्रवेश हुआ। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इंग्लैण्ड से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रत्येक जहाज के साथ एक पादरी आता थां इन पादरियों का उस समय एक ही उद्देश्य था- ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रचार। इस कार्य के लिए इन्होंने बंगाल को अपना केन्द्र बनाया। इन्होंने यह कार्य दो माध्यमों से करना शुरू किया- एक शिक्षा के माध्यम से और दूसरा दीन-हीनों की सेवा के माध्यम से। इस कार्य के सम्पादन के लिए इन्हें इंग्लैण्ड के अनेक मिशनरी संगठनों से पैसा प्राप्त होता था, साथ ही इस देश में कार्यरत ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संरक्षण एवं आर्थिक सहयोग प्राप्त था।

अंग्रेज ईसाई मिशनरियों ने यहाँ कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में अनेक धर्मार्थ विद्यालयों (Charity Schools) की स्थापना की। इनमें दो प्रकार के विद्यालय थे- एक ऐसे जिनमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी और दूसरे ऐसे जिनमें स्थानीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। परन्तु दोनों प्रकार के विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी।

प्रारम्भ में यह कार्य कुछ धीमी गति से चला। 1698 में ब्रिटेन की सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जारी किए गए अपने आज्ञा पत्र में कम्पनी को अपनी छावनियों मे पादरी रखने और विद्यालय चलाने की आज्ञा प्रदान की। इससे कम्पनी के संचालकों और पादरियों ने थोड़े अधिक उत्साह से इस कार्य को आगे बढ़ाया और कुछ ही वर्षों में, 1731 तक इन्होंने बंगाल, बम्बई और मद्रास में सैंकड़ों प्राथमिक स्कूलों की स्थापना कर डाली। मद्रास में इन्होंने एक माध्यमिक स्कूल की भी स्थापना की। इन सभी स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। परन्तु इस बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राजनैतिक आकांक्षाएँ आसमान छूने लगीं, वे भारत की आन्तरिक फूट का लाभ उठाकर यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करने की बात सोचने लगे और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी अपनी नीति में कुछ परिवर्तन किया। स्कूलों के माध्यम से धर्म प्रचार पर कुछ अंकुश किया। 1757 के प्लासी और 1764 के बक्सर युद्ध की विजय के बाद कम्पनी तत्कालीन बंगाल, बिहार और अवध प्रान्तों की शासक बन गई। अब उसने ईसाई मिशनरियों को सहायता देने के साथ-साथ स्वयं अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। परन्तु बंगाल में यह कार्य अपनी गति से चलता रहा। इस सन्दर्भ में बंगाल के सीरामपुर के तीन ईसाई मिशनरी- कैरे (Carey), वार्ड (Ward) और मार्शमैन (Marshman) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सीरामपुर त्रिमूर्ति (Serampore Trio) के नाम से प्रसिद्ध थे। 1808 में इन्होंने एक पुस्तिका - 'हिन्दू और मुसलमानों के नाम निवेदन- (Address to Hindus and Muslim) प्रकाशित की। इस पुस्तक में इन्होंने हिन्दू धर्म को अज्ञान और अन्धविश्वासपूर्ण बताया और मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर बताया। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों भड़क उठे। इन्हें शान्त करने के लिए तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो (Lord Minto) ने इन तीनों को बन्दी बना लिया और इनके प्रेस को जब्त कर लिया। साथ ही ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म प्रचार पर रोक लगा दी। इंग्लैण्ड में कम्पनी के इस निर्णय का विरोध शुरू हुआ। वहाँ की पार्लियामेन्ट में दो दल बन गए- एक कम्पनी के निर्णय के समर्थक और दूसरे कम्पनी के निर्णय के विरोधी। परिणामत: 1813 के आज्ञा पत्र में ईसाई मिशनरियों को भारत में

बे रोक-टोक आने का अधिकार दिया गया और कम्पनी को ईसाई मिशनरियों को शिक्षा की व्यवस्था करने की छूट देने का आदेश दिया गया। परोख रूप में यह धर्म प्रचार का भी अधिकार था, और तब से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति तक ये मिशनरियाँ भारत में विद्यालयों की स्थापना और ईसाई धर्म का प्रचार निर्वाध गति से करती रहीं। और चौंकाने वाला तथ्य यह है कि ये मिशनरियाँ आज भी हमारे देश में ये दोनों प्रकार कार्य कर रही हैं। इन मिशनरियों द्वारा चलाई जा रही शिक्षा संस्थाओं के पीछे उद्देश्य कुछ भी हों, परन्तु ये उत्तम श्रेणी की शिक्षा संस्थाएँ हैं, हमारे आकर्षण की केन्द्र हैं।[5]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ईसाई मिशनरियों ने भारत में शिक्षा का प्रसार किया तो ईसाई धर्म के प्रचार के लिए था परन्तु इस प्रयास में उन्होंने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की शुरूआत कर दी- स्कूलों की पाठ्यचर्या निश्चित की, पाठ्यचर्या के अनुकूल पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं और उनका प्रकाशन किया और शिक्षण की पाठ्यपुस्तक प्रणाली की शुरूआत की। ईसाई मिशनरियों ने ही भारत में प्रथम बार क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से जन शिक्षा की व्यवस्था की, विद्यालयों में समय-सारणी के अनुसार शिक्षण कार्य शुरू किया, कक्षा प्रणाली लागू की और कक्षेन्नति के लिए परीक्षा की व्यवस्था की।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तो इस क्षेत्र में दोहरी भूमिका रही। प्रथमतः तो उसने ईसाई मिशनरियों को भारत में शिक्षा की व्यवस्था के लिए प्रोत्साहन दिया और उन्हें आर्थिक सहायता दी, भले ही उसका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार एवं प्रसार रहो हो। द्वितीय उसने भारतीयों की शिक्षा की व्यवस्था करना अपना उत्तरदायित्व समझा और ज बवह इस देश में शासक के रूप में स्थापित हुई तो उसने भारतीयों की शिक्षा की योजना बनाने और उस पर तद्नुकूल व्यय करना शुरू किया, उसकी तद्नुकूल व्यवस्था करनी शुरू की। यहीं से भारत में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य के उत्तरदायित्व की सीमा में आना शुरू हुआ और कम्पनी ने अपने इस उत्तरदायित्व को 1857 तक निभाया।

यहाँ पर अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय शिक्षा का संक्षेप में विस्तार तथा गुण-दोष दिए गए हैं। इस संदर्भ में यद्यपि विद्यानों का एक मत नहीं है परन्तु मोटे तौर पर कुल मिलाकर इसे भारतीयों के हित में नहीं माना जा रहा है।

संदर्भ

1. प्राचीन शिक्षा प्रणाली-डॉ0 वी0पी0 चतुर्वेदी पृ0 09।
2. Kapur, Devesh. 2010. Indian Higher Education. In Clotfelter.
3. भारत की उच्च शिक्षा: एक सिंहावलोकन, प्रो0 एम0एम0 रंगा पृ0 130।
4. दर्शना कुमारी, उच्च शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं राष्ट्र के विकास में येागदान, (सम्पादन) डॉ0 उमेश कुमार शाक्य, भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियां, बुक पब्लिकेशन, लखनऊ, 2016, पृ0 49।
5. ए हिस्ट्री ऑफ मिशंस इन इण्डिया, पृ0 180।

बदलते प्ररिप्रेक्ष्य में शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप

ओमप्रकाश सिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

अंग्रेजों द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति पुस्तकीय थी, जो हमारे देश के अनुकूल नहीं थीं। इस शिक्षा पद्धति ने हमारे देश के विद्यार्थि यों को वास्तविक जीवन से कोसों दूर कर दिया था। गाँधीजी ने इसे गहराई से अनुभव कर व्याव हारिक, वास्तविक एवं देश के अनुरूप शिक्षा पद्धति बनाने के बारे में सोचा, जो उनके लेखों, विचारों एवं प्रयोगों से प्रमाणित होता है। गाँधीजी के विचार के अनुसार मानव-जीवन विभिन्न वृत्तियों और शक् यिों का असंबद्ध संग्रह नहीं है, वह एक पूर्ण इकाई है। मानव जीवन के प्रत्येक कार्य का दूसरे व्यव हारों के साथ अन्योन्याश् रित संबंध है। शिक्षा के क्षेत्र में गाँधीजी की सर्वाधि क महत्वपूर्ण विरासत 'बुनि यादी शिक्षा' अथवा 'नई तालीम' रही है, जो वस्तुत: उनके जीवन दर्शन का प्राण -तत्व था। उनके लिए शिक्षा मात्र साक्षरता नहीं थी, बल्कि मन, शरीर और आत्मा का संपूर्ण विकास था। यह शिक्षा शिल्प पर आधारित थी, जो उनके अहिंसा के आदर्श के अनुकूल थी। महात्मा गाँधी के अनुसार शिल्प शिक्षा लोगों को शोषण, स्वार्थ तथा अनाधिकार ग्रहण से बचाएगी। शिल्प आधारित शिक्षा से नए युग का प्रवर्त न होगा, जिस में जाति एवं सांप्रदायि क घृणा नहीं रहेगी तथा शोषण भी समाप् त हो जाएगा। शिल्प शिक्षा प्रत्येक कामकार के व्यक्ति त्व को कायम ही नहीं रखेगी, बल्कि सहयोग और समूह भावना का भी विकास करेगी।

शास्त्रों ने जीवन-वृत्ति को तीन स्वरूपों में देखा कृ ज्ञान, कर्म, और भक्ति । ये तीनों एक-दूसरे के संपर्क और संसर्ग से जाग्रत होते रहते हैं। गाँधीजी की शिक्षा पद्धति कर्म और ज्ञान के अनन्य संबंध को मानकर चलती है, जिसे 'समवाय' कहते हैं। समवाय के माध्यम से ही हम प्रकृति से भी कुछ सीखते हैं।

ज्ञान और कर्म को हम अलग नहीं कर सकते, क्योंकि कर्म द्वारा ही ज्ञान भी प्राप्त होता है। उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु गाँधीजी ने उद्योग को ही समवाय का केंद्र बनाने पर अपनी सहमति प्रकट की। "समता को बुनने वाला एवं कर्म और संयास को बुनने वाला, अर्थात् कर्म और ज्ञान का अभिन्न संबंध स्थापित करने वाला ही समवाय है।"[1] गाँधीजी का मानना था। मनुष्य का सच्चा शिक्षक मनुष्य स्वयं ही है, अनुभव सबसे बड़ी पाठशाला है।"[2]

'नई' शिक्षा पद्धति की नींव

स्वयं गाँधीजी के शब्दों में- वर्धा का 'मारवाड़ी विद्यालय' जिस का नाम हाल ही में बदलकर 'नवभारत विद्यालय' कर दि या गया है, अपनी रजत जयंती मनाने जा रहा है। जयंती के साथ-साथ 'हरिजन' में जिस प्रकार की शिक्षा योजना के प्रति पादन का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ, उस पर चर्चा करने के लि ए देश के राष्ट्रीय मनोवृत्ति वाले शिक्षाशास्त्रियों की एक परिषद् बुलाने का विचार भी इस उत्सव के आयोजकों को सूझा। परिषद् निमंत्रित करना ठीक होगा या नहीं, इस सम्बन् ध में विद्यालय के मंत्री श्री मन्ना रायण अग्रव ाल ने मुझसे सलाह माँगी और यदि मुझे यह विचार पसंद हो तो उसका अध्यक्ष पद भी ग्रहण करने की मुझसे प्रार्थ ना की। मुझे दोनों ही विचार पसंद आये। इसलिए इस परिषद् का आयोजन आगामी 22-23 अक्तू बर को वर्धा में हो रहा है।"[3]

अत: 22-23 अक्तूबर 1937 को 'वर्धा शिक्षा योजना', 'बुनि यादी शिक्षा' या बाद में जिसे 'नई तालीम' कहा जाने लगा, उसका जन्म इसी परिषद् में हुआ। 'उद्योग द्वारा शिक्षा' का गाँधीजी का यह मूल विचार इस परिषद् ने ही सबसे पहले अपनाया। परिषद् में शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण विचार परिषद ने शिक्षा के विभिन्न पहलओु ंपर चर्चा करके निम्नलिखित विचार प्रकट किए-

1. शिक्षा सबकी हो,
2. शिक्षा नि:शुल्क हो,
3. सबकी शिक्षा एक साथ हो,
4. शिक्षा उद्योग-कें द्रित हो,
5. शिक्षा मातृभाषा में हो,
6. शिक्षा में समग्र शिक्षा की दृष्टि हो, तथा
7. शिक्षा सर्वसुलभ हो। (पाण्डेय, 2014 और गाँधी, 2014)[4]

इन्हीं महत्वपर्णू बिन्दुओं के आधार पर 'नई तालीम' की शुरुआत की गई थी। गाँधीजी का कहना था कि पुरानी तालीम में जितनी अच्छी बातें हैं, वो 'नई तालीम' में रहेंगी, लेकिन उसमें नयापन काफी होगा। 'नई तालीम' यदि सचमुच नयी होगी तो इसका नतीजा यह होगा कि हमारे अंदर जो मायूसी है, उसकी जगह उम्मी दें होंगी, कंगालि यत की जगह रोटी का सामान तैयार होगा। हमारे लड़के-लड़कि याँ पढ़ना-लिखना जानेंगे, साथ ही साथ हुनर भी, क्योंकि उसके जरिए ही वे अक्षर ज्ञान भी हासिल करेंगे।

'नई शिक्षा' पद्धति के सिद्धांत

शिक्षा के संबंध में निश्चि त धारणा तथा उसके क्रियान् वयन को सतत ध्या न में रखे जाने वाले मुख्य तत्वों को हम साधारणत:

उसका सिद्धांत कहते हैं। अत: अब हम 'नई तालीम' पद्धति के सिद्धांतों के बारे में पढ़ेंगे।

1. नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा:- प्रत्येक मानव को शिक्षा पाने का जन्म सद्धि अधिकार है। अंग्रेजों ने जब शिक्षा प्रारंभ की तो उन्होंने कुछ उच्च वर्ग को ही शिक्षि त करना प्रारंभ कि या था, क्योंकि उनका मानना था कि हम योग्य लोगों को शिक्षि त कर रहे हैं, ये शिक्षित व्यक्ति ही अन्य लोगों को शिक्षित कर देंगे।

इस प्रकार शिक्षा ऊपर से नीचे छन-छनकरजनसाधारण तक पहुँच जाएगी। जब गाँधीजी ने 'नई शिक्षा' पद्धति का विचार व्यक्त कि या तो उन्होंने इसके मुख्य सिद्धांत के रूप में अनिवार्य शिक्षा रखी, जिसस` शिक्षा सर्वसाधारण तक पहुँच सके। उनका मानना था कि यदि शिक्षा अनिवार्य होगी, तभी हमारे देश की सांप्रदायिक संकीर्णता, जाति गत भेद-भाव, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि भावनाएँ मिटेंगी। किंतु शिक्षा अनिवार्य रूप से तभी सबको मि ल सकती है, जब वह नि:शुल्क हो, क्योंकि भारत एक गरीब देश है। इसीलिए 'नई तालीम' के मुख्य सिद्धांत के रूप में 8 वर्ष तक के बालकों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का विचार स्वी कार कि या गया, क्योंकि गाँधीजी मानते थे कि विद्यादान का संबंध पैसे से नहीं होना चाहिए। नई तालीम विद्यालय में नि:शुल्कता के चलते विद्यार्थि यों की संख्या बढ़ती गई, क्योंकि इससे अभिव ावकों का बोझ हलका हो गया था।

2. मातृभाषा द्वारा शिक्षा:- 'नई शिक्षा' का दूसरा सिद्धांत बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देना है, क्योंकि शिक्षाविदों द्वारा अनुभव कि या गया कि मातृभाषा द्वारा जिस विषय को कम समय में समझाया जा सकता है, उसे अन्य भाषा द्वारा समझने में अधि क समय बर्बाद हो जाता है। गाँधीजी ने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कहा कि "मुझे गणित, रेखागणित, रसायनशास्त्र एवं ज्योति ष सीखने में चार साल लगे। उतना मैं एक साल में ही सीख लेता, यदि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होता" (राय, 2010)[5]। गाँधीजी की भावना थी कि अपनी भाषा के ज्ञान के बिना कोई सच्चा देशभक्त नहीं बन सकता। मातृभाषा में शिक्षा के बिना हमारे मन में मातृभाषा के प्रति स्नेह कम रहता है। भारत के साहित्य और धर्म को विदेशी भाषा के माध्यम से कभी नहीं समझा जा सकता। यदि मातृभाषा में शिक्षा नहीं मि लती है, तो वह तोता रटंत जैसी शिक्षा है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण हमारी मौलि कता नष्ट हो सकती है।

3. उद्योग-केंद्रित शिक्षा:- उद्योग ज्ञान की जननी हैं। ज्ञान अनुभूति से निकलता है और अनुभूति कर्म से नि कलती है अर्थात् स्पष्ट है की ज्ञान का स्रोत कर्म और उद्योग हैं। लेकि न अंग्रेजी शिक्षा का दुष्परिणाम सामूहि क रूप से हमारे समाज पर पड़ा। ऐसी स्थिति हो गई कि पढ़े-लिखे लोग बदलते परिप्रेक्ष्य में 'नई' शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप 17 अपने पेशे को भूल गए। फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँटता चला गया, जिस में से एक मानसिक कार्य एवं दूसरे श्रम में लगें। इस शिक्षा व्यव स्थान से अधिकतर विद्यार्थी लिपि क और भाष्य कार के अति रिक्त कुछ भी नहीं कर सकते थे। इस शिक्षा से बच्चों की स्वतंत्र वृत्ति के अवसर कम हो गए थे। बच्चे यह शिक्षा पाकर अपने पुश्तैनी धंधे, जैसे कि लुहार, बढ़ई, दर्जी, कृषि, गौ-पालन आदि को नीच काम समझने लगे थे।

इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा ने हमें श्रम का तिरस्का र करना सिखा दि या। उक्त अंग्रेजी शिक्षा के दोषों को देखते हुए गाँधीजी ने उद्योग शिक्षा पर बल दिया, क्योंकि उद्योग के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने पर विद्यार्थि यों का सर्वांगीण विकास होता है। इससे जीवनोपयोगी विविध ज्ञान भी प्राप् त होता है, साथ ही आजीविका का एक समर्थ साधन भी प्राप् त हो जाता है। हमें काम के द्वारा, काम के लि ए एवं काम से ही संपूर्ण जीवन की शिक्षा की जरूरत है। गाँधीजी ने वर्धा शिक्षा सम्मलेन में कहा किकृ "आज मैं जो चीज आपके सामने रखने जा रहा हूँ, वह पढ़ा ई के साथ-साथ एकाध धंधा सिखा देने की चीज नहीं है। मैं तो अब यह कहना चाहता हूँ कि लड़कों को जो कुछ भी सिखाया जाए, वह सब किसी न किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिये ही सिखाया जाए।" (राय, 2010 एवं गाँधी, 2014)[6]

गाँधीजी ने कहा कि लड़के और लड़कियों के र्सवोन्मुखी विकास के लिए जहाँ तक हो सके, शिक्षा किसी-न-किसी ऐसे माध्यम से दी जानी चाहिए जिससे कुछ उपार्ज न भी कि या जा सके। दूसरे शब्दों में, इस उद्योग आधारित धंधे द्वारा दो उद्देश्य सिद्ध होने चाहि ए, एक तो विद्यार्थी अपने परिश्रम के फल द्वारा अपनी पढ़ाई का खर्च अदा कर सके और दूसरे इसके साथ ही स्कूल में सीखे गए उद्योग आधारित धंधों द्वारा उस लड़के या लड़की के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। इनका मानना था कि कपास, रेशम, ऊन की चुनाई से लेकर सफाई, कपास की ओटाई, पिंजाई, कताई, रंगाई, माड़ लगाना, ताना लगाना, दुसूती करना, डिजाइन बनाना, कसीदा करना, कागज बनाना, जिल्दसाजी करना, अलमारी बनाना, खिलौना बनाना, गुड तैयार करना आदि ऐसे धंधे हैं जो आसानी से सीखे जा सकते हैं और साथ ही साथ इन व्यवसायों के लिए बहुत बड़ी पूँजी भी नहीं लगती। (पाण्डेय, 2014)

'नई शिक्षा का वर्तमान स्वरूप

'नई तालीम' पद्धति की जब शुरुआत की गई तो यह मानकर की गई कि यह केवल यांत्रिक शिक्षा या उद्योग की शिक्षा मात्र नहीं है, बल्कि यह तो सर्वांगीण बौद्धिक विकास तथा सांस्कृति क समन्व य की शिक्षा है। बौद्धिक विकास तथा संस्कृति के उच्च आदर्श तक पहुँचना इसका मुख्य उद्देश्य है।

इन उद्देश्यों का प्राप करने हेतु शब्द तथा ग्रंथ उपयोग में नहीं लाए जाएँगे, बल्कि जीवन के प्रत्यक्ष प्रयोगों और प्रकृति के पूर्ण अध्ययन द्वारा समाज की आवश्य कर्ताओ ंकी जानकारी प्राप्त कर प्राकृति क साधनों का मानवीय आवश्य कताओ ं की पूर्ति के लिए

समचि त प्रयोग किया जाएगा। लेकि न समय के साथ 'नई शिक्षा के पठन-पाठन का स्वरूप और शिक्षण प्रद्धति कुछ हद तक वैसी ही चल रही है, यद्यपि कुछ परिवर्त न भी हुए हैं। 'नई शिक्षा' पद्धति का वर्त मान स्वरूप् अग्रलिखित है - विद्यालय सबुह 10:00 बजे प्रारंभ होता है- सबसे पहले बाल सभा होती है, जिसे हम लोग सरकारी विद्यालयों में प्रार्थ ना सभा कहते हैं। यह स्वयं विद्यार्थियों द्वारा की जाती है। इसके उपरांत सभी विद्र्या थी अपनी-अपनी कक्षा में जाने के लिए नि कलते हैं। कक्षा में प्रवेश करने से पहले कक्षा के बाहर अपने जूते-चप्पल प्रकृति में रखते हैं, तत्पश्चात् कक्षा में प्रवेश करते हैं। इसके बाद वे अपनी मेज या बिछावन, जोकि एक तरफ रखे होते हैं, को उठाते हैं और उस पर बैठते हैं। शाम को जाते समय फिर से विद्र्याथी अपनी-अपनी मेज या बिछावन को उठाकर यथावस्था न पर रख देते हैं।

सामान्यत: कक्षाएँ दिन में सबुह 10:00 से शाम 5:00 बजे तक (सोमवार से शुक्रवार) चलती हैं। किंतु शनिवार को 8:00 से 2:00 बजे तक कक्षा चलती है, इसमें भी छोटी कक्षाएँ (कक्षा 1 से 5) 8:30 से 12:30 बजे तक ही चलती हैं। विद्यालय में वर्ष में 288 दिन कार्य किया जाता है।

निष्कर्ष

आधनिुक शिक्षा पद्धति में विद्र्याथी केवल बौद्धिक विकास पर ही बल दि या जाता है। उसके शारीरिक और आध्यात्मि क विकास के प्रति तनि क भी ध्यान नहीं दि या जाता, जिससे बालक का केवल एकांगी विकास होता है। लेकिन 'नई तालीम' पद्धति में बालक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के प्रति पूर्णध्यान दि या जाता है। यदि हम आधनिुक शिक्षा पद्धति पर विचार करें तो वर्त मान समय में बहुत अधिक संख्या में नवयवु क मेडिकल, इजीनियरिंग, कला, विज्ञान एवं अन्य विषयों की शिक्षा लेकर भी बेरोजगार हैं। जिस के कारण सामान्य शिक्षा व्यवस्था से आज लोगों का मोहभगं हो रहा है। अत: हमें गाँधीजी की 'नई तालीम' पद्धति पर एक बार पनु: ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यदि गाँधीजी की 'नई शिक्षा' को सही तरीके से लागू किया जाए तो विद्र्याथी का शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मि क विकास अर्थात उसका सर्वांगीण विकास आसानी से सभंव है। यह शिक्षा शिल्प पर आधारित होने के कारण आम जनमानस के लिए रोजगार प्रदान करने में भी महत्वपर्णू भमिूका निभा सकती है।

संदर्भ

1. पाण्डेय, रामशकल. 2010. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा. पृ0 45।
2. त्रिपाठी, मधुसुदन और त्रिपाठी, ए. कुमार. 2013. महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन (प्रथम संस्करण). ओमेगा पब्लिकेशन्स , नयी दिल्ली, पृ0 89।
3. 2014. बुनियादी शिक्षा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी. जोशी, एम. सी. 2015. गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अंबेडकर. अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद. पृ0 32।
4. 2014. बुनियादी शिक्षा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी. जोशी, एम. सी. 2015. गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अंबेडकर. अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद.पृ0 44।
5. ग्राय, वीरचन्द्र. 2010. गाँधीवादी बुनियादी शिक्षाधबिहार के आईने में (प्रथम संस्करण). मेधा प्रकाशन, नयी दिल्ली दृ पृ0 41।
6. 2014. बुनि यादी शिक्षा . सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी. जोशी, एम. सी. 2015. गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अंबेडकर. अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद.पृ057।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009: एक समावेशी अधिनियम

डॉ० नन्द किशोर वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर,, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

भारतीय शिक्षा प्रणाली आज कई समस्याओं से लड़ रही है, जिसमें साक्षरता दर का कम होना, शिक्षा का गुणात्मक विकास नहीं होना सब तक शिक्षा की पहुँच नहीं होना आदि प्रमुख हैं। ऐसे में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 क वरदान के रूप में है। यह अधिनियम मूलरूप से हर बच्चों तक शिक्षा की पहुँच न केवल सुनिश्चित करता है अपितु 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार के रूप में भी प्रदान करता है। इससे सबसे अधिक प्रभाव समाज के के उन बच्चों पर पडेघ्गा जो किसी भी कारणवश शिक्षा पाने से वंचित रहे गये हैं। यह अधिनियम वास्तविक रूप से शिक्षा के समावेशी प्रसस्त रहता है, क्योंकि इससे सभी एक समान शिक्षा का अवसर मिलता है। इस अधिनियम के पूर्ण रूप से लागू हो जाने के बाद ऐसी आशा की जा सकती है कि इससे न केवल शिक्षा का मात्रात्मक विकास होगा अपितु इसमें जो शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए प्रावधान दिये गये हैं उससे शिक्षा का गुणात्मक विकास भी होगा।[1]

आक्सफोर्ड अंग्रेजी डिक्सनरी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है शिक्षा या अनुभव के माध्यम से तथ्य सूचना और कौशल प्राप्त करना। ज्ञान किसी विषय के सैद्धान्तिक या व्यवहारिक समझ का गठन करता है। मानव समाज के वंशज, वानर व अन्य जानवरों से केवल ज्ञान और उपयोग के कारण अलग है। ज्ञान केवल शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यह बिना कहे ही जाना जा सकता है कि समानता बनाने तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर बाधाओं तथा भेदभाव को दूर करने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है। राष्ट्र की प्रगति और विकास सभी नागरिकों की शिक्षा के अधिकार की उपलब्धता पर निर्भर करता है। क्योंकि शिक्षा ही वह सबसे बड़ा निवेश है जो सामान्य मानव को मानव संसाधन बनाने का कार्य करती है। सही अर्थों में कहें तो मानव संसाधन ही किसी देश के समस्त प्रगति का मूल आधार होता है। इसका उदाहरण हम जापान को ले सकते हैं। वास्तव में यह कहा गया है कि ''जीवन की कीमत को इस प्रकार मापा जा सकता है कि कितनी बार आपकी आत्मा ने आपको अन्दर से झकझोरा है।'' यह शिक्षा ही है जो किसी के जीवन में हलचल मचा सकती है। शिक्षा एक व्यक्ति को अपनी क्षमता का पता लगाने में मदद करती है, जो बदले में एक मजबूत और एकजुट समाज को बढ़ावा देती है। इसका उपयोग करने से इनकार करना किसी भी व्यक्ति को एक पूर्ण इंसान बनने में बाधा उत्पन्न कर सकता है। परिवार, समुदाय और राज्य को बड़े स्तर पर ले जाने के लिए मानव समाज के हर स्तर पर शिक्षा का महत्व बहुत आवश्यक है।

भारत सरकार ने सन् 2009 में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी बाल अधिकार कानून को पूरे देश में लागू किया इसके तहत 5 से 14 वर्ष तक सभी बच्चों को नि:शुल्क व अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इससे पहले सन् 1947 में ही शिक्षा सुविधा को कार्यान्वित करने के लिए संविधान द्वारा सरकार को 10 वर्ष का समय भी दिया था जिसमें देश के सभी बच्चों को शिक्षा सुविधा मुहैया कराने की बात कहीं गयी थी। 1993 में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक क्रान्तिकारी फैसले में तत्कालीन सरकार को जगाया, न्यायालय ने कहा कि संविधान में ''जीवन के अधिकार'' का अर्थ तो तभी है जब व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार मिला हो। इस फैसले के तहत सरकार को 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार देना आवश्यक था। शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने सम्बन्धी कानून के लागू होने से स्वतंत्रता के छ: दशक पश्चात बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का सपना साकार हुआ। यह कानून 01 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इसे बच्चों को ''नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 नाम दिया गया।[2]

समावेशी शिक्षा के मायने और तरीके:-

आजादी के बाद से भारत में हुए शिक्षा व्यवस्था का विकास इस बात की पुष्टि करता है कि भारतीय शिक्षा ने विभिन्न क्षेत्रीय विविधाताओं और भिन्न सीमाओं के बावजूद समावेशी शिक्षा के लिए उपकरण के रूप में कार्य किया है। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य हमारी ऐसी प्रणाली से है जिसमें सभी शिक्षार्थियों को बिना भेदभाव के सीखने के समान अवसर मिले; परन्तु आज भी समावेशी शिक्षा उस मुकाम पर नहीं पहुँची जिस मुकाम पर इसे पहुँचना चाहिए।

वस्तुत: समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालय शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि उन्हें क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही सन्दर्भित करके समझा जाय क्योंकि भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता,

सामाजिक न्याय एवं व्यक्तित्व की गरिमा को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरुपित किया गया है, जिसका इशारा समावेशी शिक्षा की तरफ ही है।

हमारा संविधान जाति वर्ग, धर्म आय एवं लैगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करता है, जिसके प्ररिपेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक वर्गीय, लैगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिससे लोकतांत्रिक स्कूल में बच्चे के समुचित समावेशन हेतु समावेशी शिक्षा के वातावरण का सृजन किया जा सके। इस दृष्टि से जब हम समावेशी शिक्षा को देखते हैं तो यह पाते हैं कि समावेशी शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता निम्न है -

1. समावेशी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के लिए उच्च और उचित उम्मीद के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।
2. समावेशी शिक्षा अन्य छात्रों को अपनी उम्र के बच्चों के साथ कक्षा गतिविधियों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर काम करने हेतु अभिप्रेरित करती है।
3. समावेशी शिक्षा बच्चों को उनके शिक्षा के क्षेत्र में और उनकी स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता-पिता को भी शामिल करने की वकालत करती है।
4. समावेशी शिक्षा अन्य बच्चें, अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ प्रत्येक का एक व्यापक विविधता के साथ दोस्ती का विकास करने की क्षमता विकसित करती है।[3]

इस प्रकार कुल मिलाकर समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है। यह सही मायने में 'सर्व शिक्षा' जैसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है, जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है 'विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की शिक्षा।'' शिक्षा सम्बन्धी सभी आधुनिक चर्चाओं में दिव्यांग बच्चों के लिए हमेशा से ही एक संवेदनशीलता रही है। स्वतंत्र भारत में शिक्षा आयोगों जैसे-कोठारी कमीशन ने भी इस हेतु सुझाव दिया था। अब शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 जो अप्रैल 2010 से लागू है, ने दिव्यांगता वाले बच्चों सहित सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था की है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम:-

आर0टी0ई0 में बोलने और सीखने में अक्षमता आदि की परेशानियों वाले 6 से 14 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए भी पड़ोस के स्कूल में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा की व्यवस्था की गई है। सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के मापदण्डों को भी आर0टी0ई0 अधिनियम 2009 की व्यवस्थाओं के अनुरूप बना दिया है। सर्व शिक्षा अभियान यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक दिव्यांग बच्चे को चाहे वह किसी भी प्रकार की दिव्यांगता से प्रभावित हो, उद्देश्यपूर्ण और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाय। इसके अन्तर्गत किसी को भी शिक्षा देने से इंकार नहीं किया जा सकता इसका मतलब है किसी भी दिव्यांग बच्चे को शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए और उसकी पढ़ाई ऐसे वातावरण में होनी चाहिए; जो उसकी सीख सकने की क्षमता व आवश्यकताओं के अनुरूप हो, समावेशी शिक्षा के लिए सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत जिन पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है वे है-

1. बच्चों की पहचान।
2. शिक्षा सम्बन्धी औपचारिक मूल्यांकन।
3. आवश्यकता के अनुरूप उचित शिक्षा की व्यवस्था।
4. व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित शिक्षा योजना तैयार करना।
5. सहायक और अन्य उपकरणों की व्यवस्था।
6. शिक्षक प्रशिक्षण।
7. बाहरी शिक्षक की सहायता।
8. वस्तु सम्बन्धी अवरोधों को हटाना।
9. अनुसंधान, निगरानी और मूल्यांकन।
10. दिव्यांग लड़कियों पर विशेष ध्यान।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) 2009: एक समावेशी अधिनियम के रूप में:-

संविधान 86वाँ संशोधन/अधिनियम, 2002 ने भारत के संविधान में अन्त: स्थापित अनुच्छेद-21, क, ऐसे ढंग से जैसा कि राज्य कानून द्वारा निर्धारित करता है, मौलिक अधिकार के रूप में 6 से 14 वर्ष की आयु समूह में सभी बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्राविधान करता है? नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा (आर.टी.ई.) अधिनियम-2009 में बच्चों का अधिकार जो अनुच्छेद 21क के तहत परिणामी विधान का प्रनिधित्व करता है, का अर्थ है कि औपचारिक स्कूल, जो कतिपय अनिवार्य मापदण्डों और मानकों को पूरा करता है, में संतोषजनक और एक समान गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्रत्येक बच्चे का अधिकार है।

अनुच्छेद 21 क और आर.टी.ई. अधिनियम 01 अप्रैल 2009 के शीर्षक में ''नि:शुल्क और अनिवार्य'' शब्द सम्मिलित है। नि:शुल्क शिक्षा का तात्पर्य यह है कि किसी बच्चे जिसको उसके माता-पिता द्वारा स्कूल में दाखिला किया गया है, को छोड़कर कोई बच्चा, जो उचित सरकार द्वारा समर्थित नहीं है किसी किस्म की फीस या प्रभार या व्यय जो प्रारम्भिक शिक्षा जारी रखने और पूरा करने से उसे रोके अदा करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। 'अनिवार्य शिक्षा' उचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारियों पर 6-14 आयु समूह के सभी बच्चों को प्रवेश, उपस्थिति और प्रारम्भिक शिक्षा को पूरा करने का प्रावधान करने और सुनिश्चित

करने की बाध्यता रखती है। इससे भारत अधिकार आधारित ढाँचे के लिए उनमें बढ़ा है जो जो आर.टी.ई. अधिनियम के प्राविधानों के अनुसार संशोधन के अनुच्छेद 21 क में यथा प्रतिष्ठापित बच्चे के इस मौलिक अधिकार को क्रियान्वित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों पर कानूनी बाध्यता रखता है।[4]

शिक्षा का अधिकार अधिनियम निम्नलिखित प्रावधान करता है–

- किसी पड़ोस के स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए बच्चों का अधिकार।
- यह स्पष्ट करता है कि अनिवार्य शिक्षा का तात्पर्य 6 से 14 आयु समूह के प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा
- प्रदान करने और अनिवार्य प्रवेश उपस्थिति और प्रारम्भिक शिक्षा को पूरा करने को सुनिश्चित करने के लिए उचित
- सरकार की बाध्यता से है।5
- यह गैर प्रवेश दिये गये बच्चे के लिए उचित आयु कक्षा में प्रवेश किये जाने का प्रावधान करता है।
- यह नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने में उचित सरकारों, स्थानीय प्राधिकारी और अभिभावकों कर्तव्यों और
- दायित्वों और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय और अन्य जिम्मेदारियों को विर्निष्ट करता है।
- यह अन्यों के साथ-साथ छात्र-शिक्षक अनुपात (पीटीआर) भवन और अवसरंचना, स्कूल के कार्य दिवस, शिक्षक के
- कार्य के घंटों से सम्बन्धित मापदण्डों और मानकों को निर्धारित करता है।
- यह राज्य या जिले अथवा ब्लाक के लिए केवल औसत के बजाय प्रत्येक स्कूल के लिए रखे जाने वाले छात्र और
- शिक्षक विर्निष्टि अनुपात करे सुनिश्चित करके अध्यापकों की तैनाती के लिए प्रावधान करता है। इस प्रकार यह
- अध्यापकों की तैनाती में शहरी ग्रामीण संतुलन को सुनिश्चित करता है।
- यह उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता है अर्थात अपेक्षित प्रवेश और शैक्षिक
- आवश्यकताओं के साथ अध्यापक।
- यह (क) शारीरिक दण्ड और मानसिक उत्पीड़न;
- (ख) बच्चों के प्रवेश के लिए अनुवीक्षण प्रक्रियाएँ;
- (ग) प्रति व्यक्ति शुल्क;
- (घ) अध्यापकों द्वारा निजी ट्यूशन और
- (ङ) बिना मान्यता के स्कूलों को चलाया निषिद्ध करता है।
- यह संविधान में प्रतिष्ठापित मूल्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम के विकास के लिए प्रावधान करता है और जो बच्चे के
- समग्र विकास, बच्चे के ज्ञान सम्भाव्यता और प्रतिभा निखारने तथा बच्चे की मित्रवत् प्रणाली एवं बालक केन्द्रित ज्ञान
- की प्रणाली के माध्यम से बच्चे को डर चोट और चिन्ता से मुक्त बनाने को सुनिश्चित करेगा।[6]

निष्कर्ष:-

अत: कहा जा सकता है कि 2009 का शिक्षा का अधिकार कानून एक ऐसा कानून है जिसके बल पर हम समावेशी शिक्षा की तरफ बढ़ सकते हैं। यह कानून वास्तविक रूप में हर एक बालक/बालिका तक शिक्षा की पहुँच प्रदान करता है जो किसी न किसी रूप में शिक्षा नहीं पा रहें हैं। शिक्षा का अधिकार कानून व्यवस्थित रूप से न केवल साक्षरता परक विकास में सहायक होगा अपितु इससे एक समान सामाजिक विकास की भी कल्पना की जा सकती है। इस कानून को देखने के बाद हमारे मन में यह धारणा उभरती है कि यह कानून केवल साक्षरता दर में मात्रात्मक विकास लायेगा। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह भी है कि जब तक हम मात्रात्मक विकास को पूरा नहीं करेंगे तब हम गुणात्मक विकास की राह पर नहीं बढ़ सकते। अत: हम सभी को मिलकर यह प्रयास करना होगा कि यह कानून सफल हो।

संदर्भ

1. पाठक पी0डी0 एवं गुरु शरण दास त्यागी (2016): समसामाजिक भारतीय शिक्षा चिता एवं मुद्दे, आर0 लाल बुक डिपों मेरठ, पृ0 34।
2. भारत (2017): प्रकाशन विभाग, भारत सरकार एवं प्रशासन मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ0 78।
3. मदान, पूनम (2014): उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ0 65।
4. लाल, रमण बिहारी (2016): समकालीन भारत और शिक्षा: विषय और मुद्दे, आर0 लाल बुक डिपों मेरठ, पृ045।
5. लक्ष्मीकांत, एम0 (2016): भारत की राज्य व्यवस्था, टाटा एवं मैग्राहिल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 67।
6. योजना (मई, 2016): प्रकाशन विभाग, भारत सरकार एवं प्रशासन मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ0 45।

भारत में विभिन्न शिक्षा समितियाँ तथा सिफारिश

मुकुंद लाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार की ओर से सर्वप्रथम उच्च शिक्षा की ओर ही गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया गया। 1948 में प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक विश्वविद्यालय आयोग नियुक्ति किया गया। इस आयोग ने उच्च शिक्षा के उद्देश्य, संगठनात्मक संरचना, प्रशासन व वित्तीय प्रबन्ध, पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, शिक्षक का स्थान व महत्व, शिक्षण स्तर, छात्र कल्याण, शिक्षक कल्याण, तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा, ग्रामीण विश्वविद्यालय, परीक्षा प्रणाली, स्त्री शिक्षा तथा धार्मिक-नैतिक-चारित्रिक शिक्षा आदि लगभग समस्त पहलुओं पर विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। इसके कुछ सुझावों को लागू भी कर दिया गया था। राधा कृष्णन कमीशन के बाद भारत की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक तथा राष्ट्रीय स्तर पर सुधार के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) की नियुक्ति 1964 में की गयी। इस आयोग ने भारतीय शिक्षा के लिये एक राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता बताते हुए उच्च शिक्षा के संगठन, प्रशासन, वरिष्ठ विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन प्रणाली, शैक्षिक स्तर का उन्नयन तथा व्यवसायिक शिक्षा आदि पक्षों का गहन अध्ययन करते हुए अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये।[1]

1966 से लेकर 1986 तक भारतीय उच्च शिक्षा ने राजनीतिक उलट फेर के कारण अनेक उतार चढ़ाव देखे, किन्तु 1986 में राजीव गांधी सरकार द्वारा घोषित की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इसे एक स्थायित्व प्रदान किया। इस शिक्षा पर कोठारी आयोग के सुझावों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। अत: विश्वविद्यालयी शिक्षा पर भी राष्ट्रीय आधार पर विचार करते हुए इस नयी शिक्षा नीति में शैक्षिक अवसरों की समानता, जनतंत्र और शिक्षा, यू.जी.सी. मुक्त विश्वविद्यालय, एकेडमिक स्टाफ कॉलेज, स्तर का उन्नयन आदि क्षेत्रों में नवीन महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये है। यू.जी.सी. द्वारा पिछले दो वर्षों में भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के लिये एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम भी लागू किया गया है। इस प्रकार भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था आज तीव्र गति से विकास की ओर उन्मुख हो रही है।

विश्वविद्यालय आयोग (1948-49) आयोग की नियुक्ति

देश की स्वतंत्रता के पहले से ही भारतीय नेताओं का ध्यान शिक्षा में अमूल सुधारों की ओर गया था। यह इसी धारणा का परिणाम था कि गाँधी जी ने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बेसिक शिक्षा योजना का प्रतिपादन किया था। स्वतंत्रता प्राप्त होते ही यह अनुभव किया जाने लगा कि विश्वविद्यालय शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। इसमें अनेक सुधारों की आवश्यकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने भारत सरकार के समक्ष एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया तथा 4 नवम्बर सन् 1948 को विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की।[2] इस आयोग के अध्यक्ष प्रसिद्ध दार्शनिक तथा शिक्षाविद् डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे जो बाद में भारत के उपराष्ट्रपति तथा फिर राष्ट्रपति बने। डॉ. राधाकृष्णन के नाम से इस आयोग को डॉ. राधाकृष्णन आयोग भी कहा जाता है। प्रोफेसर निर्मलकुमार सिद्धान्त आयोग के सचिव थे। सदस्यों में डॉ. ताराचन्द, डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, डॉ. मेघनाद साहा, डॉ. कर्मनारायण बहल जैसे दिग्गज विद्वान थे। दो अमरीकी तथा एक अंग्रेज विद्वान भी इसके सदस्य थे।[3]

आयोग की नियुक्ति के मुख्य उद्देश्य - आयोग के अपने शब्दों में, "भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा के विषय में रिपोर्ट देना तथा उन सुधारों एवं विस्तारों के संबंध में सुझाव प्रस्तुत करना, जो देश की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के लिए वांछनीय हों।''

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने जोरदार शब्दों में कहा कि केवल तकनीकी तथा व्यावसायिक उद्देश्य निर्धारित करने से हम 'राक्षसी राज्य' को जन्म देंगे।

आयोग की जाँच के विषय

1. भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा एवं संधान के उद्देश्य एवं लक्ष्य।
2. भारत में विश्वविद्यालयों के संगठन, विधान, अधिकार एवं कार्यक्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन तथा उनका केन्द्र एवं राज्य सरकार से सम्बन्ध।
3. शिक्षा तथा परीक्षा का उच्चतम स्तर-निर्माण।
4. विश्वविद्यालयों की अर्थव्यवस्था।
5. पाठ्यक्रम तथा विभिन्न संकायों में तालमेल।
6. विश्वविद्यालयों में प्रवेश का स्तर और भारतीय संविधान में समानता के सिद्धान्त का प्रतिपालन।

7. विश्वविद्यालयी शिक्षा की माध्यम भाषा।
8. भारतीय संस्कृति, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ललितकला तथा भाषाओं की उच्चतर शिक्षा।
9. नये विश्वविद्यालयों की स्थापना का आधार।
10. विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा-संस्थानों में सभी विषयों के ज्ञानार्जन तथा अनुसंधान का ऐसा प्रबन्ध कि अपव्यय न हो।
11. विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा।
12. भारत सरकार के अधीन विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षा-संस्थानों की समस्याएँ।
13. अध्यापक-वेतन, सेवा नियम तथा उनके द्वारा अनुसंधान।
14. छात्र-अनुशासन एवं ट्यूटोरियल व्यवस्था, छात्रावास आदि।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट 25 अगस्त, 1949 को भारत सरकार को प्रेषित की। आयोग का प्रतिपादन 18 अध्यायों में विभक्त है तथा 747 पृष्ठों पर लिखा गया है।

1. विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्यः-

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा, "हम न्याय, स्वतंत्रता, समानता एंव बन्धुता की प्राप्ति द्वारा प्रजातंत्र की खोज में संलग्न है। अतः हमारे विश्वविद्यालयों को अनिवार्यतः इन आदर्शों का प्रतीक एवं संरक्षक होना चाहिए।"[4]

आयोग ने उच्च शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए-

1. छात्रों में आध्यात्मिकता का विकास करना।
2. छात्रों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान देना।
3. छात्रों को सुनागरिक बनाना।
4. छात्रों का शारीरिक तथा मानसिक विकास करना।
5. छात्रों मे "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "कृण्वन्तोविश्वमार्यम्" की भावना उत्पन्न करना।
6. छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व के लिए तैयार करना।
7. जीवन तथा ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करना।
8. छात्रों के जन्मजात गुणों को खोज निकालना तथा प्रशिक्षण द्वारा उन गुणों को विकसित करना।
9. छात्रों का चारित्रिक इस प्रकार विकास करना जिससे वे अनुशासित जीवन व्यतीत करना सीख जाएँ।
10. छात्रों को समाज के साथ समन्वय स्थापित करने के योग्य बनाना।

विश्वविद्यालय शिक्षा का स्तर

शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए आयोग ने निम्न सुझाव दिए।

1. छात्र संख्या - छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ को रोकने के लिए, शिक्षण-विश्वविद्यालयों में 3000 और उनसे सम्बद्ध कॉलेजों में 1500 से अधिक छात्र नहीं होने चाहिए।
2. कार्य दिवस - कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में परीक्षा-दिवसों को छोड़कर, एक वर्ष में कम-से-कम 180 दिन शिक्षण-कार्य करना चाहिए।
3. पाठय्क्रम - (1) कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जो 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा समाप्त कर चुके हों।

(2) स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के लिए अध्ययन की अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए।

(3) स्नातकोत्तर उपाधि-स्नातक बनने के 2 वर्ष पश्चात् और "आनर्स कोर्स" के 1 वर्ष पश्चात् दी जानी चाहिए।

(4) विशेषीकृत शिक्षा के दोषों का निवारण करने के लिए विश्वविद्यालयों और माध्यमिक स्कूलों में "सामान्य शिक्षा के सिद्धांत एवं प्रयोग " का शिक्षण आरम्भ किया जाना चाहिए।

(5) शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य और विशेषीकृत शिक्षा में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

4. शोध कार्य - 1. विश्वविद्यालयों में शोध की सुविधाओं में वृद्धि की जाए।

2. विश्वविद्यालयों में ऐसे प्राध्यापक रखने चाहिए जो शोध करने वाले विद्यार्थियों को प्रशिक्षित कर सकें।

5. शिक्षा का माध्यम - 1. उच्च शिक्षा के माध्यम के लिए किसी प्रादेशिक भाषा का प्रयोग किया जाए।

2. प्रादेशिक भाषाओं के विकास पर पूरा-पूरा बल दिया जाए।

6. परीक्षाएँ - आयोग ने विश्वविद्यालयों की परीक्षा-प्रणाली को सबसे अधिक दोषपूर्ण पाया है। अतः "आयोग" ने यह विचार प्रकट किया है- "हमें हस बात का विश्वास है कि यदि हमें विश्वविद्यालय शिक्षा में केवल एक बात के बारे में सुझाव देने को कहा जाए, तो वह सुझाव-परीक्षाओं के सम्बन्ध में होगा।" इस परीक्षाओं को दोष-मुक्त करने के लिए, "आयोग" ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं-

1. छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए यथाशीघ्र "वस्तुनिष्ठ प्रगति-परीक्षाओं" का भण्डार तैयार किया जाना चाहिए।
2. त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स की परीक्षा, 3 वर्ष पश्चात् लेने के स्थान पर, प्रत्येक वर्ष के अन्त में ली जानी चाहिए। यह परीक्षा-"स्वतः पूर्ण इकाईयों" मे ली जानी चाहिए और छात्रों के लिए प्रत्येक इकाई अर्थात प्रतिवर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होना चाहिए।

3. प्रत्येक विश्वविद्यालय में कम-से-कम 5 वर्ष के शिक्षण का अनुभव रखने वाले 3 सदस्यों का एक पूर्णकालीन बोर्ड संगठित किया जाए।

इस बोर्ड की निम्नांकित मुख्य कार्य होने चाहिए- (1) विश्वविद्यालयों एंव उनसे सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों को वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की नवीन योजनाएँ बनाने मे सहायता देना।

(2) उक्त शिक्षकों को पाठ्यक्रम में संशोधन करने के लिए सामग्री की व्यवस्था करना।

(3) सम्बद्धित कॉलेजों के छात्रों की प्रगति का समय-समय पर "प्रगति-परीक्षाओं" द्वारा मूल्यांकन करना।

आयोग की सिफारिशों का मूल्यांकन[5]

विश्वविद्यालय आयोग ने सशक्त, व्यावहारिक तथा रचनात्मक सुझाव दिये। शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट आने तक तो विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों के आधार पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्य होता रहा। विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिश पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) नियुक्त किया गया।

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने आयोग की सिफारिशों को अमूल्य बताया। उन्होंने आयोगन की सिफारिशों में यह गुण भी पाया कि आयोग ने आधुनिकता के साथ-साथ अतीत की सर्वोत्तम उपलब्धि के गुणों को भी सुरक्षित रखने पर बल दिया।

आयोग ने जोर देकर कहा कि यदि हमें 'राक्षस राज्य' स्थापित नहीं करना है तो अवश्य ही हमें नैतिक मूल्यों पर बल दिया होगा।

आयोग ने कॉलेजों में अनुशासन के संबंध में कहा कि हमें अधिक से अधिक छात्र-कल्याण सुविधाएँ छात्रों को प्रदान करनी चाहिए ताकि उनकी शक्ति का सदुपयोग हो सके। अनुशासन केवल कड़े नियमों पर ही आधारित नहीं रहता। विश्वविद्यालय छात्रों के लिए हैं न कि छात्र विश्वविद्यालय के लिए। अतः यह तथ्य हमें भली प्रकार से समझ लेना चाहिए।

आयोग ने ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की ओर सरकार तथा जनता का ध्यान आकर्षित किया। सरकार ने इस संस्तुति को स्वीकार करके 1954 में 'ग्रामीण उच्चतर शिक्षा समिति' (Rural Higher Education Institute Committee) का गठन किया।

तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने विश्वविद्यालय आयोग की संतुतियों के बारे में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किए, "विश्वविद्यालय आयोग के प्रतिवेदन का महत्व अधिकांश रूप में इस बात में है कि वह इस देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करता है और इस आधार पर उसकी शिक्षा संबंधी समस्याओं का विवेचन करता है। यही कारण है कि प्रतिवेदन में अनेक क्रांतिकारी सुझाव देने पड़े हैं। साथ ही प्रतिवेदन का एक गुण यह भी है कि वह अतीत से पूर्ण संबंध-विच्छेद नहीं करता है, अपितु उसमें उपलब्ध सर्वोत्तम गुणों को सुरक्षित रखना चाहिए।"[6]

विश्वविद्यालय की स्वायत्तता के बारे में कोठारी कमीशन की मुख्य सिफारिशें[7]

आयोग ने विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता के सम्बन्ध में नीचे लिखे सुझाव दिए-

1. विश्वविद्यालय के 'निकायों' (Bodies) में नॉन अकादिमक (Non-Academic) तत्वों का प्रतिनिधित्व समाज के व्यापक हितों को व्यक्त करने के लिए आवश्यक है, परन्तु यह उन पर थोपा न जाए।
2. विश्वविद्यालय द्वारा अपने विभागों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की जाए।
3. विश्वविद्यालय के प्रशासन में इस सिद्धांत को ध्यान में रखा जाए कि उत्तम विचारों का जन्म प्रायः निम्न स्तरों पर होता है।
4. प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष के अधीन एक प्रबन्ध-समिति को व्यापक आर्थिक और प्रशासकीय शक्तियाँ प्रदान की जाएँ।
5. कॉलेजों की स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता का आदर उसी रूप में किया जाए, जिस रूप में विश्वविद्यालय अपनी स्वायत्तता का करता है।
6. विश्वविद्यालयों को अपनी स्वायत्तता को कायम रखने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में उनका सबसे महत्वपूर्ण दायित्व यह है कि वे अपने बौद्धिक तथा सार्वजनिक कार्यों को पूरी लगन से करें।

स्वायत्तता की सफलता के आधारभूत सिद्धान्त - शिक्षा आयोग ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है -

1. स्वतंत्रता की भाँति स्वायत्तता भी ऐसी वस्तु है जिसका मूल्य सभी सम्बन्धित पक्षों को शाश्वत

चौकसी के रूप में चुकाना होता है। विश्वविद्यालयों की स्थापना कानून के मातहत की जाती है और उन्हें उतनी ही स्वायत्तता दी जा सकती है जितनी विधिसम्मत हो। इसलिए, विश्वविद्यालय स्वायत्तता का वास्तविक संरक्षक अंततः वह लोकमत होता है जो इस विश्वास को अपना आधार बनाता है कि अपने निर्भयतापूर्ण सत्य-संधान में बौद्धिक सत्यनिष्ठा बनाए रखने वाले स्वायत्त विश्वविद्यालय लोकतंत्र और स्वाधीनता के अडिग शक्ति-स्तंभ है। इस सम्बन्ध में सशक्त लोकमत जगाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अंतर्विद्यालय बोर्ड और बौद्धिक वर्ग के लोगों का-जिनमें से अधिकतर विश्वविद्यालयों के ही पूर्वछात्र हैं-महत्वपूर्ण योग देना है।

दूसरी ओर, विश्वविद्यालयों को भी समझ लेना चाहिए कि प्रभावी स्वायत्तता 'वरदान' स्वरूप प्राप्त हो जाने की आशा विवेकसम्मत नहीं है, उन्हें तो इसे बराबर आर्जित करते रहना और अपने को उसके योग्य बनाए रखना होगा। विश्वविद्यालयों को

स्वायत्तता का अधिकार सत्य के संधान और उसी की सेवा-साधना के फलस्वरूप प्राप्त होता है। इसीलिए, अपनी स्वायत्तता के प्रति किए जाने वाले विधिविरूद्ध दावों का प्रतिरोध करने की उनकी शक्तिक्षमता उतनी ही अधिक होगी जितने अधिक प्रभावशाली ढंग से वे अपने इस कर्त्तव्य का निर्वाह करेंगे और शिक्षोतर प्राधिकरणों द्वारा उनसे की जाने वाली वैध अपेक्षाओं को शिरोधार्य करेंगे। इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे वे अपने बौद्धिक तथा सार्वजनिक दायित्वों का प्रभावपूर्ण रीति से तथा सत्यनिष्ठा पूर्व निर्वाह करेंगे और देश की आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति में योग देंगे वैसे ही वैसे वे समाज और सरकार का आदर भाव अर्जित करते जाएंगे और उन पर बाहर से पड़ने वाले विधिविरूध दबावों तथा अनुचित अपेक्षाओं की संभावनाएँ भी कम होती जाएंगी। यह कोई सरल नहीं है जो शीघ्र तथा सुगमता से किया जा सकता हो। इसमें बहुत समझ, धैर्य तथा पारदर्शिता की आवश्यकता है।[8]

संदर्भ

1. University Education Commission. 1950. Report of the University Education Commission (UEC). New Delhi: Government of India.
2. Education Commission. 1970. Education and National Development: Report of the Education Commission (EC). New Delhi: NCERT
3. National Knowledge Commission. 2009. National Knowledge Commission—Report to the Nation (NKC). New Delhi.
4. उच्च शिक्षा और स्वामी विवेकानन्द- डॉ0 डी0 चन्द्र, पृ0 39
5. एन0एन0 ला, प्रोमोशन आफ लर्निंग इन इण्डिया बाई अर्ली यूरोपियन सेटिलर्स, प0 7
6. ए हिस्ट्री ऑफ मिशंस इन इण्डिया, पृ0 180
7. डब्लू0 एच0 शार्प, सिलेक्शंस फ्राम एजूकेशनल रिकाड्र्स, खंड-1, पृ0 3
8. National Knowledge Commission. 2009. National Knowledge Commission—Report to the Nation (NKC). New Delhi.

भारतीय उच्च शिक्षा के विभिन्न स्वरूप

घासी राम सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

भारतीय उच्च शिक्षा की पृष्ठभूमि बहुत गौरव पूर्ण रही है। भारत विश्व के सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय के देश के रूप में जाना जाता है। उस समय के प्राचीन विश्वविद्यालय तक्षशिला, नालन्दा, उज्जैनी आदि विश्वविद्यालय भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में से एक थे जिसमें से तक्षशिला विश्वविद्यालय (460 बी0सी0) को हूणों ने नालन्दा विश्वविद्यालय को बख्तियार खिलजी ने (1193 ई0) में व सुल्तान इल्तुतमिश ने 1235 ई0 में उज्जैनी विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया जो उस समय गणित साहित्य, दर्शन आदि विषय का मुख्य केन्द्र था। इसके अनेको वर्षों बाद लन्दन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके बाद भारत कई सौ वषों बाद विश्व स्तर के विश्वविद्यालयों का निर्माण न कर सका। इसके बाद भारतीय उच्च शिक्षा पर ब्रिटिश शिक्षा का अधिक प्रभाव पड़ा 19वी शताब्दी के प्रारम्भ में आगरा, नागपर, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई। ये विश्वविद्यालय पश्चिमी शिक्षा अंग्रेजी साहित्य आदि से अधिक प्रभावित थे। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन से पूर्व कलकत्ता, बम्बई व म्रदास विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। 1947 से पूर्व देश में कुल 25 विश्वविद्यालय थे। सन् 2005 तक विश्वविद्यालयों की संख्या 350 व 2009-10 तक इनकी संख्या 480 है। भारतीय उच्च शिक्षा की जो स्थिति हमारे समाज में थी उसे हम निम्न रूपों मे समझ सकते है।

वैदिक कालीन उच्च शिक्षा- वैदिक कालीन उच्च शिक्षा का समय 500 ईसा पूर्व से 3000 ईसा पूर्व तक माना जाता है। वैदिक शिक्षा पद्धति मानवीय सिद्धांतों पर आधारित थी। इस शिक्षा पद्धति पर वेदों का अत्यधिक प्रभाव था। इस शिक्षा पद्धति का मुख्य लक्ष्य व्यक्तित्व का पूर्ण विकास शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक तीनों गुणों के सर्वांगीण विकास से था। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था शिक्षा में आय के मुख्य सेतु गरू दक्षिणा, दान (पशु, अन्न, भूमि, मुद्रा) और भिक्षा थी। उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरूकुलों में होती थी जिसकी प्रवेश आयु 8 से 12 वर्ष होती थी। उच्च शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। उपाधि ग्रहण करने के लिए शास्त्रार्थ विधि का प्रयोग किया जाता था। सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी उत्तर देता था। वास्तव मेवह ज्ञान की जांच की जाती थी। उपनिषद् काल में इस विधि का अत्यधिक प्रयोग किया गया। शास्त्रातार्थ का अर्थ 18 शास्त्रों से था। उत्तर वैदिक काल में गरू वनों में होकर ग्रामों में रहते थे। जिन्हें चरण कहते थे। प्रत्येक चरण में एक परिषद् होती थी। जिसमें विद्यार्थी तर्क-वितर्क करते थे। इस काल में उच्च स्तर पर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। वैदिक कल में आर्युविज्ञान, सैनिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, ज्योति विज्ञान, कृषि, पशुपालन, न्याय शास्त्र, अर्थशास्त्र, नक्षत्र विद्या, पुराण, भूत विद्या आदि उच्च शिक्षा के विषय थे।

बौद्धकालीन शिक्षा- बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उच्च शिक्षा बौद्ध मठों एवं विहारों में होती थी। उच्च स्तर पर भिक्षुओं शिक्षकों का एक पैनल छात्रों की मौखिक रूप से परीक्षा लेता था और परीक्षा में सफल छात्र शिक्षा की समाप्ति के बाद कुछ छात्र (श्रमण या सामनेर) में प्रवेश करते तो कुछ गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे व अन्य शिक्षक (भिक्षु) शिक्षा में प्रवेश करते थे। भिक्षु शिक्षा में प्रवेश से पहले उनकी पुनः परीक्षा होती थी। भिक्षु शिक्षा मे प्रवेश मिलने को उपसम्पदा संस्कार कहा जाता था जिसका अर्थ है गुरू से दूर जाना। बौद्ध कालीन उच्च शिक्षा के मुख्य केन्द्र निम्न थे।

तक्षशिला- यह वर्तमान में पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर से लगभग 35 किमी की दूरी पर स्थित था इसमें प्रवेश के लिए न्यूनतम आयु 16 वर्ष थी। प्रवेश के समय छात्र को 1000 मुद्रायें देनी होती थीं जो वह अपनी सुविधानुसार दे सकता था यदि कोई छात्र मुद्रायें देने में असमर्थ था वह सेवा कार्य करते हुये शिक्षा पापत कर सकता था। इसमें लौकिक शिक्षा संस्कृत व पाली में व अन्य विषय दर्शन, ज्योतिष और अर्थशास्त्र की उत्तम शिक्षा व्यवस्था थी। महान राजनीतिज्ञ चाणक्य (विष्णुगुप्त) इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे। सम्राट चन्द्रगुप्त व महान चिकित्सक जीवक भी इसी विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे। यह विश्वविद्यालय संसार का सबसे पहला विश्वविद्यालय था। यह 550 ई0 पूर्व से 460 ई0 तक बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहा। 5वीं शताब्दी के बीच में (460 ई0) को हूणों ने इसे नष्ट कर दिया।

नालन्दा विश्वविद्यालय- यह विश्वविद्यालय वर्तमान समय में भारत के पटना नगर से लगभग 75 किमी0 की दूरी पर स्थित था। यहां महात्मा बुद्ध के प्रिय शिष्य सारि पुत्र पैदा हुए थे। गुप्त वंश के सम्राट कुमार गुप्त प्रथम ने इसके ज्यादातर इमारतों का निर्माण करया। इस विश्वविद्यालय के मध्य में एक बहु मंजिला विशाल पुस्तकालय था जिसके तीन भाग थे रत्नसार, रत्नोदधि व रत्नरंजक। रत्नसार में सभी कलाओं से सम्बन्धित पुस्तक, रत्नोदधि में विज्ञान सम्बंधित व रत्नरंजक से सभी कलाओं से सम्बंधित

पुस्तक पायी जाती थी। इस विश्वविद्यालय में दर्शन, व्याकरण ज्योतिष, कला, शिल्प, गणित आयुर्वेद चिकित्सा की शिक्षा प्रमुख रूप से प्रदान की जाती थी। मूर्धन्य नागार्जुन इसी विश्वविद्यालय के शिक्षक थे। इसमें विदेशी छात्र भी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे। 12वीं शताब्दी के अन्त में 1193ई0 में कुतुबद्दीन ऐबक के सेनापति बख्तियार खिलजी ने इसे नष्ट कर दिया।

विक्रमशिला व उज्जैनी विश्वविद्यालय- विक्रमशिला की स्थापना राजा पाल वंश के राजा धर्मपाल ने की थी। यह विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म व दर्शन शास्त्र, कर्म काण्ड, तन्त्र शास्त्र, राजनीति शास्त्र की शिक्षा के लिये प्रसिद्ध था। जिसे 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बख्तियार खिलजी ने नष्ट करा दिया तथा पुस्तकालय को आग लगा दी थी। उज्जैनी विश्वविद्यालय जो 13वीं शताब्दी के लगभग मध्य तक उच्च शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यह विश्वविद्यालय गणित के साथ साहित्य व दर्शन के लिये भी प्रसिद्ध था। इसको सुल्तान इल्तुतमिश ने 1235 ई0 में नष्ट कर दिया था।

मुस्लिमकालीन शिक्षा- आठवीं शताब्दी में भारत पर मुसलमानों ने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। प्रारम्भ में इन आक्रमणकारियों का मुख्य उद्देश्य भारत की सम्पदा को लूटना था। परन्तु बाहरवीं शताब्दी के अंत में मोहम्मद गोरी प्रथम मुस्लिम शासक बना। मुस्लिमों का शासन काल भारत में लगभग 6 शताब्दियों तक रहा। इस दौरान आक्रमणकारियों ने भारत के प्राचीन शिक्षा केन्द्रों को नष्ट किया तथा शिक्षा के नाम पर इन लोगों का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार प्रसार करना था। मुस्लिम काल में उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी। मदरसों में प्रवेश से पूर्व मकतब (प्रारम्भिक) शिक्षा पूर्ण होनी अनिवार्य थी। मदरसों में विभिन्न विषयों के विद्वान व योग्य नियमित रूप से छात्रों को पढ़ाते थे। मदरसों का प्रबन्ध मुख्यतः व्यक्तिगत प्रबन्ध समितियों अथवा मुस्लिम समाज के धनी व सम्मानित नागरिकों द्वारा किया जाता था।[1]

सत्रहवीं शताब्दी में मुस्लिम सत्ता के पतन के दिनो में यूरोप निवासी भारत में आये और यहां बस गये। उन्होंने शिक्षा माध्यम से धर्म का प्रचार किया तथा सन् 1575 में उच्च शिक्षा की दृष्टि से चॉल में प्रथम जेसुइट कालेज की स्थापना की। इसके बाद बन्दौरा में सेन्ट एन कालेज खुला और गोला बेसिन में भी उच्च शिक्षा के कालेज स्थापित हुए। इन कालेजों में ईसाई, धर्म संगीत, व्याकरण और तर्क-शास्त्र का पठन-पाठन होता था। डचों ने लंका में एक कालेज स्थापित किया। डेन (Denes) लोग भारत में उच्च शिक्षा के सर्वप्रथम संस्थापक माने जाते है। उच्च शिक्षा से तात्पर्य शैक्षिक संरचना व शैक्षिक पिरामिड के विविभन्न स्तरों में सबसे ऊंचे स्तर की शिक्षा से है। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत मानव जाति ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में अब तक जो प्रगति की है, उसका अध्ययन किया जाता है।[2]

इस प्रकार उच्च शिक्षा एक प्रकार से सभी प्रगतिशील मार्गों को खोजने, उन पर मानव जाति को चलने हेतु प्रेरित एवं मार्गदर्शन करने तथा उन मार्गों में आये हुए अवरोधों का निराकरण करने की शिक्षा है।[3]

शिक्षा की प्रगति-1905-1921

सन् 1905 से 1921 के बीच देश में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना हुई। इन शिक्षा संस्थाओं हो हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं यथा:

(1) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ

(2) सामान्य शिक्षा संस्थाएँ

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की प्रगति या निर्माण

प्रथम काल:

देश के राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा को व्याहारिक रूप प्रदान करने के लिए गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता में "राष्ट्रीय शिक्षा समिति'' की स्थापना की। समिति ने प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा में सुधार करने की दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई जिसको क्रियान्वित रूप देने के लिए पश्चिमी बंगाल में 11 तथा पूर्वी बंगाल में 40 हाई स्कूल स्थापित किये जिनमें मातृभाषा के माध्यम द्वारा उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त समिति ने पूरा में 'समर्थ विद्यालय' तथा कलकत्ता में 'राष्ट्रीय कॉलेज' की स्थापना की। इसके अतिरिक्त समिति ने कलकत्ता में एक टेक्निकल इन्स्टीट्यूट' भी स्थापित किया। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं के निर्माण में गुरूदास बनर्जी के अतिरिक्त रासबिहारी घोष तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाम विशेष रूप से उल्लेखीय हैं। 1904 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में (बोलपुर) एक ब्रह्मचर्य आश्रम स्थापित किया जो आज भारतीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित दिखाई देता है। इसी समय प्राचीन वैदिक संस्कृति की शिक्षा के लिए स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में आर्य प्रतिनिधि सभा ने वृन्दावन एवं हरिद्वार में गुरुकुल स्थापित किये। सन् 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग की प्रेरणा से मुसलमानों ने अपनी पृथक् राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की। सन् 1910 तथा 1911 में गोपालकृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने के लिए धारसभा के समक्ष प्रस्ताव रखे। प्राथमिक शिक्षा की प्रगति पर विशेष प्रभाव पड़ा। सन् 1911 में बंगाल विभाजन की योजना रद्द हो जाने पर राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन शिथिल पड़ गया। कलकत्ता का नेशनल कॉलेज तथा अन्य राष्ट्रीय विद्यालय बंद हो गये।

द्वितीय काल:

सन् 1911 में रोलैट ऐक्ट एवं अमृतसर में जालियाँवाला बाग के भीषण हत्याकांड से क्षुब्ध होकर कांग्रेस ने महात्मा गांधी के

नेतृत्व में एक अगस्त, सन् 1920 को सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया। सन् 1920 में गांधाजी ने कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में जनता तथा नवयुवकों से अपील की कि वे सरकारी विद्यालयों को बहिष्कार कर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना का प्रयास करें। फलस्वरूप देश के शहस्त्रों विद्यार्थियों ने स्कूलों एवं कॉलेजों की त्याग कर आंदोलन में भाग लेना प्रारंभ कर दिया। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों ने उसके राष्ट्रीयकरण की माँग की किन्तु जब उन्हें सफलता न मिली तो उनकी शिक्षा-व्यवस्था करने के लिए मौलाना मोहम्मद अली ने अलीगढ़ में 'जामिया-मिलिया इस्लामिया' नामक विश्वविद्यालय स्थापित किया, जिसे सन् 1925 में दिल्ली में स्थानान्तरित कर दिया गया। अलीगढ़ का अनुकरण का चार माह के अंदर देश के अन्य भागों में राष्ट्रीय स्कूलों एवं कॉलेजों यथा-बिहार, विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, बंग्ला राष्ट्रीय विद्यालय आदि की स्थापना की गयी। सन् 1916 में आचार्य कार्वे पूना में 'इंडियन वीमेन्स यूनिवर्सिटी' को स्थापित कर चुके थे। सन् 1922 तक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की कुल संख्या 1257 को हो गयी थी, जिसमें 80464 विद्यार्थी अध्ययन कर रहे थे।

प्राचीन संस्कृति साहित्य, वैज्ञानिक सिद्धांतों का भण्डार था। उसमें विशेषकर गणित, नक्षत्र विज्ञान और वैमानिकी पर अद्‌भुत जानकारी मिलती है।'' ऐसे ही आविष्कारीय एवं खोजी ज्ञान के साथ दुनिया विकाश पथ पर आगे बढ़ती जा रही है। भारत के इस प्राचीनतम ज्ञान को अनेक देशों ने अपने यहां की उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से शामिल कर लिया है। आज भारत भी अपने ही प्राचीन ज्ञान एवं अनुभवो को उच्च शिक्षा में शामिल कर अन्य विकसित देशों की भांति विकास पथ पर बढ़ना चाहता है तो देश में रहकर ही उसका विरोध करने वाली अराजक शक्तियां इस राष्ट्र विकास के पथ में बाधा बनकर खड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में डॉ0 कलाम के विचार को पुनः उद्धृत करना समीचीन रहेगा। ''तेजस्वी मन'' में उन्होंने लिखा है- ''जब हम भारत को उसके गौरव के साथ उसके अतीत को आधार मानकर स्वीकार करेंगे तभी हम शान्ति और समृद्धि से भरपूर भविष्य की उम्मीद रख सकते है।''[4] वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों में राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं सांस्कृतिक गौरव को पुनः जाग्रत और स्थापित करना होगा। शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य का हल स्वयं जागयक होकर सभी सामाजिक और वैश्विक बुराइयों का हल निकालें, यह समय की आवश्यक मांग भी है और स्वयं (राष्ट्र) के विकास की कुंजी भी।[5] शिक्षक जो सदैव से व्यक्ति निर्माण की भूमिका निभाता चला आया है

संदर्भ

1. अमित कुमार शर्मा, भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली, (सम्पादन) सुरेन्द्र पाल, उच्च शिक्षा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2015, पृ0 77
2. डॉ0 महावीर प्रसाद गुप्ता, डॉ0 ममता, भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें-पृ054।
3. दर्शना कुमारी, उच्च शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं राष्ट्र के विकास में येागदान, (सम्पादन) डॉ0 उमेश कुमार शाक्य, भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियां, बुक पब्लिकेशन, लखनऊ, 2016, पृ0 49
4. ब0प्र0 मजेजी, प्राचीन भारत की विज्ञान शिक्षा- पृ0 215
5. डॉ0 डी0 चन्द्र, उच्च शिक्षा और स्वामी विवेकानन्द- पृ0 39

भारत में शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ

दिलीप कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एल0एड0, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

प्राचीन काल में शिक्षा के क्षेत्र में भारत अग्रणी था। विश्वविद्यालय शिक्षा की व्यवस्था सर्वप्रथम भारत में प्रारम्भ हुई परन्तु उन दिनों शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं थां गुरूकुल शिक्षा पद्धति तत्कालीन सन्दर्भ में सर्वोत्तम थी। शिक्षण संस्थायें स्वतंत्र रूप से शिक्षण एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध करती थी। शिक्षण एवं प्रशिक्षण का स्तर उच्च था। छात्रों की संख्या बहुत कम होती थी। अनुशासन एवं प्रशासन की समस्या नहीं थी। कालांतर में शासकों ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु इस शिक्षण व्यवस्था में परिवर्तन किया। गौरवमयी परम्परा समाप्त हो गयी परन्तु एकाकी प्रकाशपुंज अपनी चमक बनाये रखने में समर्थ रहे। किसी भी देश में विकास कार्यक्रमों के समुचित क्रियान्वयन के लिए शिक्षा की प्रशासकीय व्यवस्था का चुस्त होना आवश्यक है। आंग्ल शासन काल में भी समयानुकूल अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु शैक्षिक प्रशासन की ओर सरकार ने ध्यान दिया था और इसमें सुधार हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे। स्वतंत्रोतर भारत में शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं उसकी प्रशासकीय व्यवस्था में आवश्यकतानुसार सुधार हेतु प्रयास किये गये।[1]

भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ भारतीय शिक्षा का विघटन प्रारम्भ हुआ। अंग्रेज शासकों ने अपने निहित स्वार्थी को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किया। भारतीय शिक्षा व्यवस्था स्थानीय समाज के हितों के प्रति उदासीन होती गयी। मैकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा का उद्देश्य आंग्ल शासन के लिए अपेक्षाकृत अल्प वेतन पर स्थानीय क्लर्क उपलब्ध कराना था जो विदेशी शासकों के हित साधन हेतु अधिक सचेष्ट रहते थे। उच्च शिक्षा की सुविधा अधिकांशत: अंगेजों के प्रति वफादारधनिक वर्ग के लिए ही उपलब्ध थी और प्रशासन में उच्च पद आंग्ल शासन के प्रति वफादर व्यक्तियों को ही प्राप्त होता था। अत: आंग्ला शिक्षा पद्धति ने भावी समाज के विभिन्न वर्गा में परस्पर सन्देह उत्पन्न कर विदेशी शासन के प्रति साधन में सफलता प्राप्त की एवं सामाजिक विषमताओं उग्र होती गयी। विदेशी प्रशासक समाज के अल्पसंख्यक प्रभावी वर्ग की एक लम्बी फौज खड़ी करने के लिए 1853-54 तक बहुत से विद्यालयों की स्थापना की जा चुकी थी। अंग्रेजों का यह दृष्टिकोण व्यापारिक था। उसके लिये अपने राष्ट्र का हित सर्वोपरि था। अतएव उन्होंने शिक्षा व्यवस्थ में सुधार लाने और उसे स्थानीय आवश्यकताओं से जोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया।

वर्ष 1919 के विधेयक के अनुसार शिक्षा का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय सरकार के हाथों से निकल प्रान्तीय सरकारों के हाथ में आ गया। उपरोक्त परिवर्तन आंग्ल शासन के हित साधन हेतु सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। धन के अभाव में प्रान्तीय सरकार शिक्षा व्यवस्था के समुचित संकलन में असमर्थ रही। सीमित साधनों के कारण शिक्षण एवं प्रशिक्षण के समुचित संकलन में असमर्थ रही। सीमित साधनों के कारण शिक्षण एवं प्रशिक्षण को निम्न प्राथमिकता प्रदान की गयी। प्रान्तीय शिक्षा व्यवस्था ने प्रादेशिकता को प्रोत्साहन प्रदान किया। राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ गयी और राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी शासन का विरोध लगभग समाप्त हो गया। राष्ट्रीय सरकार सम्पूर्ण देश के लिए समान शिक्षा नीति का प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन करने में असमर्थ थी। परिणामस्वरूप शैक्षिक विकास एवं प्रसार में रूकावट सी आ गयी। शिक्षण एवं प्रशिक्षण स्थानीय समाज के हितों से उत्तरोत्तर विमुख होता गया। शिक्षित एवं प्रशिक्षित अधिकारी वर्ग औपनिवेशिकों के राष्ट्रीय हितों की रक्षा में सहयोग करना अपने स्वार्थी की पूर्ति के लिए अनिवार्य समझने लगा। पलायनवादी दृष्टिकोण भी राष्ट्रीय हितों के लिए घातक सिद्ध हुआ। स्वतंत्र भारत में नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी गयी। विभिन्न आयोगों ने शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था हेतु सुझाव प्रस्तुत किये। कोठारी आयोग ने 20 वर्ष के अन्दर देश में सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था करने का सुझाव दिया। इस आयोगन ने अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षा की प्रशासकीय व्यवस्था में एकरूपता लाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। राज्यों को नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया और तकनीकी शिक्षा का उच्च स्तर बनाये रखने का उत्तरदायित्व संघ सरकार को सौंप गया। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना शैक्षिक विकास की दिशा को प्रदर्शित करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में शिक्षा सुविधा का तीव्र गति से प्रसार हुआ है। भारत में समस्त शिक्षा प्रशासन प्रमुख रूप से तीन इकाइयों में विभाजित है।

1. केन्द्र सरकार
2. राज्य सरकार
3. स्वायत्तशासी संस्थायें।

भारतीय संविधान के अनुसार शिक्षा राज्य सूची के अन्तर्गत है। प्रारम्भिक शिक्षा (प्राथमिक एवं मिडिल) का संचालन ग्रामीण क्षेत्रों में जिला प्रशासन द्वारा किया जाता है। उपनगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध सामान्यत: राज्य की माध्यमिक शिक्षा परिषदों द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय विद्यालयों का प्रबनध एक अखिल भारतीय संगठन द्वारा किया जाता है। भारत में विश्वविद्यालयों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गयी है। यद्यपि

शैक्षिक मामलों में विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है तथापि वित्तीय नियंत्रण द्वारा राज्य/केन्द्रीय सरकार उनके प्रशासन पर अंकुश रखती है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा एंव केन्द्रीय विद्यालय पब्लिक स्कूल महाविद्यालय एवं विश्व-विद्यालय उच्च शिक्षा प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा शैक्षिक प्रशिक्षण महिला शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा को सम्मिलित किया जा सकता है। प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा में संस्कृत पाठशाला, मदरसा एवं नर्सरी पाठशालाओं भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रथम आठ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा उसके पश्चात् 2 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा और बाद में 3 वर्षीय स्नातक पाठ्क्रम एवं दो वर्ष की स्नातकोत्तर शिक्षा का प्राविधान किया गया है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद छात्र को अपनी रूचि के अनुसार रोजगार परक व्यावसायिक पाठ्क्रमों में जाने का अवसर प्रदान किया जाता है। उच्च स्तरीय शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र के लिए प्रशासक वैज्ञानिक अध्यापक एवं विचारक आदि तैयार करना होना चाहिए जो तत्कालीन समाज के उद्देश्यों एवं मानव हितों के प्रति उदासीन न हो। कृषि एवं कृषि प्राविधिकी में शिक्षण प्रदान करने के लिए कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्व-विद्यालयों की स्थापना की गयी है। तकनीकी शिक्षा के लिए कुछ विशिष्ट संस्थान स्थापित किये गये हैं। शोध की सुविधा विश्व-विद्यालयों, तकनीकी संस्थाओं शोध संस्थाओं एवं क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं में उपलब्ध है।

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ

शिक्षा की प्रगति में राष्ट्र उन्नति कर रहा है, फिर भी, अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति निर्धारित अवधि में नहीं हो पा रही है। इस प्रगति में कुछ बाधक समस्याएँ हैं[2]-

1. राजनीतिक कठिनाइयाँ (समस्याएँ)- स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद देश में उथल-पुथल रहा। इसके कई कारण थे-

(क) सैकड़ों देशी रियासतों को भारत संघ में मिलना पड़ा।

(ख) भारत के दो विभाग- भारत और पाकिस्तान हो गए।

(ग) पाकिस्तान से भागे हुए विस्थापितों को भारत में शरण देनी पड़ी।

(घ) देश के बँटवारा के कारण वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गई। फलतः सरकार इन्हीं उधेड़-बुन में फँसी रह गई और निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा पर कम ध्यान दिया गया।

2. भौगोलिक कठिनाइयाँ- प्राथमिक शिक्षा प्रसार में भौगोलिक परिस्थितियाँ कम बाधक नहीं हैं।

(क) देश के अधिकांश भाग पहाड़ी है।, जहाँ गाँव एक दूसरे से अधिक दूरी पर है। यहाँ आने-जाने के मार्ग भी अत्यंत दुर्गम हैं, जिनसे शिक्षा-प्रसार में असुविधा उत्पन्न होती है।

(ख) हमारे देश में आवागमन के साधन भी उत्तम नहीं हैं। गाँवों में तो इसका पूर्णतः अभाव है जिस कारण कई गाँवों के लिए एक स्कूल की स्थापना कठिन साबित हुआ।

(ग) देश के बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ प्राथमिक विद्यालय के छात्रों एवं शिक्षकों को हमेशा अस्वस्थता का सामना करना पड़ता है। अतः ऐसे स्थानों पर विद्यालय खोलना अत्यधिक कठिन है।

3. पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता- प्रायः प्राथमिक-शिक्षा के पाठ्यक्रम छोटे-छोटे बालकों की रूचि एवं मानसिक स्तर के अनुपयुक्त होते हैं। वे अत्यंत नीरस एवं अनाकर्षक होते हैं जिस कारण छात्रों की पाठ में दिलचस्पी नहीं मिलती। फलतः वे स्कूल जाने से मुकरते हैं।

4. प्रशासनिक कठिनाइयाँ- प्रशासन संबंधी निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित हुई-

(क) अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के उत्तरदायित्व को स्थानीय जिला परिषद् तथा नगरपालिका को सौंपा गया। परंतु आर्थिक अभाव के कारण वे समुचित सहयोग न देकर केंद्र का मुख जोहती रहीं। साथ-ही-साथ विभाग एवं परिषद् की नीति में मेल न खाने से भी प्राथमिक शिक्षा को कभी-कभी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

(ख) सरकार द्वारा शालाओं की कोठरियों, फर्नीचर इत्यादि की पर्याप्त एवं समुचित व्यवस्था का अभाव रहा।

(ग) निश्चित समय तक शाला में बच्चों को ठहराने का कोई प्रबंध भी नहीं रहा। अतः निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का समुचित प्रसार न हो सका।

5. भाषा की कठिनाई- भारत में 1961 की जनगणना के अनुसार 845 भाषाएँ बोली जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में संपूर्ण देश के बच्चों को किसी खास भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना कठिन है। साथ ही, भारत में बहुत-सी ऐसी जातियाँ है। जिनकी न कोई भाषा ही है और न तो साहित्य ही। इस प्रकार की आदिवासी जातियों को किसी प्रकार शिक्षा प्रदान की जाए यह भी कठिन समस्या है।

6. समाजिक समस्याएँ- हमारे देश में प्राथमिक शिक्ष प्रदान करने में अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो निम्नलिखित हैं-

(क) हमारे समाज में अभी भी वर्ग भेद, छुआछूत और जाति भेद चरम सीमा पर है।

(ख) बाल-विवाह की प्रथा के कारण बालक एवं बालिकाएँ बालपन में ही शिक्षा ग्रहण करने से मुँह मोड़ लेते हैं।

(ग) अधिकांश अभिभावक बालिका को शिक्षा-प्रदान करना दुश्चरित्रता का कारण समझते हैं।

(घ) हमारे देश की प्राथमिक शालाओं में भी सहशिक्षा को हेय की दृष्टि से लोग देखते हैं।

(ड़) हमारे देश में अभी भी पर्दा-प्रथा का प्रचार ग्रामों में रहने के कारण माता-पिता अपनी पुत्रियों को विद्यालय भेजने में संकोच करते हैं।

1. आर्थिक कठिनाइयाँ- हमारे देश में नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षण में आर्थिक बाधाएँ भी कम नहीं हैं। यहाँ की जनसंख्या दिन-दूरी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही हैं सरकार इन बढ़ी हुई जनसंख्या के भोजन का प्रबंध करे या कि विद्यालय स्थापना और शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था। दूसरी बात, बालकों के अभिभावक भी प्राय: गरीब ही हैं जो अपने छोटे बच्चों को भी विद्यालय न भेजकर जीविकोपार्जन में लगाए रहते हैं। तीसरी बात, अधिकांश माता-पिता अशिक्षित हैं जो छोटे बालक की शिक्षा के महत्व को नहीं समझते तथा लड़कियों की शिक्षा के प्रति उदासीन भाव रखते हैं।
2. राज्यों की अनिश्चित नीति- यह सत्य है कि वर्तमान युग में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए काफी कोशिश की जा रही है। देश के सभी राज्य इस ओर अपने साधनों को लगाकार प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नीति है। संपूर्ण देश में सर्वव्यापी एवं सुसंगठित योजना का निर्माण नहीं किया गया है।
3. केंद्र की दोष पूर्ण नीति- भारतीय संविधान में 'नीति-निर्देशक' सिद्धांत के अनुसार यह आशा व्यक्त की गई थी कि 1961 तक 14 वर्ष के प्रत्येक बालक के लिए शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य कर दिया जायेगा। लेकिन इसे न तो अभी तक सफलता मिली और न ही निकट भविष्य में सफलता मिलने की आशा है। इसका प्रमुख कारण है कि केंद्रीय सरकार अन्य देशों की देखा-देखी भावुकता या आदर्श के आधार पर अपनी नीति को निर्धारित करती है। प्राथमिक शिक्षा या अनिवार्य शिक्षा पर केंद्र को जितना ध्यान देना चाहिए, उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

अध्यापकों की समस्या- नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रसार धन एवं नवीन स्कूलों की स्थापना से किया जा सकता है। इन स्कूलों के शिक्षकों की पूर्ति करना कठिन कार्य है। अनिवार्य शिक्षा को लागू करने के लिए विशाल संख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता है। अनुमानित 28 लाख शिक्षकों की आवश्यकता इन विद्यालयों में होगी, जबकि अभी 7,23,225 शिक्षक ही उपलब्ध है। लगभग सवा सात लाख प्राथमिक विद्यालयों के वेतन की पूर्ति एवं वृद्धि में सरकार हाथ-पाँच पसारने लगती हैं, तो 28 लाख प्राथमिक शिक्षकों की वेतन वृद्धि एवं आपूर्ति में कहीं सरकार का दिवाला न निकल जाए।

शिक्षा में सुधार:- शिक्षा में सुधार के कुछ सुझाव इस प्रकार है[3]-

1. व्यस्क स्त्रियों की शिक्षा-व्यवस्था- भारत में साक्षर स्त्रियों की संख्या 12.8 प्रतिशत है जिसमें अधिकांश साक्षर स्त्रियाँ शहरों में हैं। अत: गाँवों एवं शहरों की व्यस्क स्त्रियों को साक्षर एवं शिक्षित किया जाए।
2. ग्रामीण जनता का उत्थान- आज गाँवों की अधिकांश जनता अशिक्षित है। उनकी आर्थिक अवस्था भी दयनीय है। अत: सरकार एवं धनी व्यक्तियों के सहयोग से उन्हें शिक्षित किया जाए तथा आर्थिक अवस्था में सुधार लाया जाए।
3. रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता एवं बाल-विवाह का अंत- भारतीय समाज को रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता एवं बाल-विवाह की दुरवस्था से बचाने के लिए सरकारी अधिनियम का निर्माण हो तथा बड़ी-बड़ी सभाओं में तत्संबंधी अभिभाषण एवं वाद-विवाद का प्रबंध हो, जिससे अंधी जनता को ज्ञान का प्रकाश दिखाई पड़े।
4. समाजिक कुप्रथा का अंत- समाज में फैली हुई कुप्रथाओं-बाल-विवाह, पर्दा प्रथा इत्यादि को समाप्त करने में जनता सहयोग दे।[4]
5. सरकार एवं धनी व्यक्तियों का आर्थिक सहयोग- स्त्री-शिक्षा के समग्र विकास के लिए सरकार एवं धनी व्यक्ति अधिकाधिक रूप से या अन्य प्रकार के आर्थिक सहयोग दें।
6. सदाचरण एवं जीवन निष्ठ-शिक्षा- प्रत्येक शिक्षिका को अच्छे आचरणों को अवलंबन बनाना चाहिए जिसकी नकल कर छात्राएँ वर्तमान फैशन के दुर्गुणों को त्याग कर शिक्षा को जीवन निष्ठ बनावें और योग्य माताएँ एवं आदर्श पत्नी बनने की भरपूर कोशिश करें।

संदर्भ

1. राम शकल पाण्डेय, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास-पृ0 34 ।
2. डॉ0 महावीर प्रसाद गुप्ता, डॉ0 ममता, भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें- पृ0 66।
3. Ministry of Human Resources Development. 2010. Report of Committee to Advise on the Renovation and Rejuvenation of Higher Education (CARHE). New Delhi: Government of India.
4. Raza, Moonis. 1990. Education, Development & Society. New Delhi: Vikas Publishing House.

वैश्वीकरण में भौतिक विज्ञानों की भूमिका

ज्ञान प्रकाश सिंह

सहायक आचार्य, भौतिक विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया, उ0प्र0

मनुष्य सदा से सृष्टि के पीछे छिपे सत्य की खोज में रहा है। उसे प्रकृति की बनावट, उसकी कार्यशैली तथा उसके मूल सिद्धांतों को जानने की तीव्र इच्छा रही है। प्रकृति के कार्य के नियमों को समझे बिना प्रकृति की शक्तियों को अपने सुख के लिए प्रयोग में लाना असंभव था। अतः इसके लिए मनुष्य की आकांक्षाओं तथा प्रकृति की कार्य दशाओं में संबंध आवश्यक था परंतु दूसरी ओर यह खतरा भी था कि प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल कार्य करने में कहीं संपूर्ण जीवन ही नष्ट न हो जाए, परंतु संसार के भौतिक नियमों का भेद उसकी यथार्थता तथा उसकी कार्यप्रणाली सदा शाश्वत चुनौती का विषय रहा है। उच्च वैज्ञानिक जैसे आइंस्टीन भी अपने जीवनपर्यंत कठिन परिश्रम के बाद यही अनुभव करते रहे कि "विस्तृत रेतीले मैदान में से कुछ ही पत्थर के टुकड़े उठा पाया हूं।" प्रत्येक विषय की अपनी अलग अलग ही प्रकृति होती है। किन्ही भी दो विषयों की तुलना हम उनकी प्रकृति के आधार पर ही कर सकते हैं विज्ञान विषय की प्रकृति को हम कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं के आधार पर इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं।[1]

विज्ञान का अर्थ

व्यापक अर्थ में किसी भी विषय ज्ञान वस्तु ज्ञान या व्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। पहले लोग विज्ञान में भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान और गणित के ज्ञान को सम्मिलित मानते थे और अब सामाजिक अध्ययन, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान आदि को भी विज्ञान की संज्ञा देने लगे हैं।

वस्तुतः विज्ञान शब्द वि+ज्ञान से बना है। जिसका अर्थ एक विशेष प्रकार का ज्ञान पुरस्कृत ज्ञान अथवा विशिष्ट ज्ञान है। साइंस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के स्कायर से हुई है जिसका अर्थ है- जानना, लेकिन साइंस शब्द विज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार विज्ञान शब्द का अर्थ उस ज्ञान से है जो बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाए और शब्दों के माध्यम से दूसरों तक प्रेषित किया जाए अर्थात विज्ञान शब्द का अर्थ सार के रूप में ज्ञान से है।

विज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने विज्ञान शब्द को परिभाषित करने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों का सहारा लिया है। जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकाः- "विज्ञान नैसर्गिक घटनाएं और उनके बीच संबंधों का सुव्यवस्थित ज्ञान है।"

सामान्य अर्थः- "ज्ञान का क्रमबद्ध रूप विज्ञान है। अथवा सामान्य ज्ञान का संगठित रूप विज्ञान है।"

आइंस्टीनः- "हमारी ज्ञान अनुभूतियों की अस्त-व्यस्त विभिन्नता की एक तर्कपूर्ण विचार प्रणाली निर्मित करने के प्रयास को विज्ञान कहते हैं।"

डैंपियरः- "विज्ञान प्राकृतिक विषय का व्यवस्थित ज्ञान और धारणाओं के बीच संबंधों का तार्किक अध्ययन है।"

आधुनिक जीवन में विज्ञान का महत्व

आजकल प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा किए जाते हैं। प्राचीन काल में मनुष्य का जीवन अंधकार में था। जब तक बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था तो लोग घर में दीपक तथा लैंप जलाकर रहते थे। परंतु आज घर घर में बिजली का प्रयोग किया जा रहा है। बिजली के आविष्कार ने हमारी सामाजिक स्थिति में क्या परिवर्तन किया है, इसे हर व्यक्ति जानता है। पहले जिन कार्यों को हाथ से किया जाता था, आज उन्हें बिजली के यंत्रों से किया जाता है। आज खेतों की जुताई के लिए ट्रैक्टरों का उपयोग किया जाता है और खेतों में कीटनाशकों के छिड़काव के लिए भी मशीनों का प्रयोग किया जाता है, परंतु प्राचीन काल में खेतों की जुताई के लिए लकड़ी के हलों तथा बैलों का प्रयोग किया जाता था और कीटाणुओं से फसल की रक्षा के लिए दिन-रात सजग तथा सचेत रहना पड़ता था।

आधुनिक युग में लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक रेलगाड़ी, हवाई जहाज, कार, मोटरसाइकिल आदि से बहुत कम समय पहुंच जाते हैं, परंतु प्राचीन काल में लोग पैदल, बैल गाड़ियों आदि के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत अधिक समय में पहुंचता थाआज लगभग सभी जगह बिजली पहुंच चुकी है जबकि उस समय दीपक मशीनों का प्रयोग किया जाता था अब विज्ञान के चमत्कार का दृश्य सभी लोगों के सम्मुख जगमगाता है। विज्ञान के द्वारा ही जेट प्लेन आकाश में उड़ते हैं।

आधुनिक जीवन में विज्ञान शिक्षण की उपयोगिता

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। आज हमारे कार्य करने व रहन-सहन के सभी तरीके वैज्ञानिक साधनों पर आधारित है।

वर्तमान सभ्यता उन्नति की जिस चरम सीमा तक पहुंच गई है उसका सारा श्रेय विज्ञान को ही दिया जाता है। जीवन का ऐसा कोई भी छेत्र नहीं बचा है जिसे विज्ञान में प्रभावित न किया हो।

एक विद्वान ने लिखा है,- "विज्ञान ने संसार में बहुत परिवर्तन कर डाला है विज्ञान के चमत्कारों ने प्रकृति को बहुत पीछे खदेड़ दिया है विज्ञान की सहायता से मानव ने समय तथा दूरी पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है विज्ञान ने मनुष्य के जीवन को अधिक से अधिक आनंद देने का प्रयास किया है। अंधों को देखने के लिए आंखें दी हैं, बहनों को चुनने के लिए कान दिए हैं, पंगु को चलने के लिए पैर दिए हैं, मनुष्य को पक्षियों के समान आकाश में उड़ने की शक्ति भी है, मछलियों की तरह सागर में तैरने और पृथ्वी पर त्वरित गति से चलने में समर्थ बनाया है।

आज मनुष्य सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर बैठे हुए अपने मित्र से बातचीत कर सकता है सारांश यह है कि विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक पहलू में एक महत्वपूर्ण क्रांति उपस्थित कर दी है। विज्ञान ने प्रकृति के अनेक ऐसे रहस्य को खोल दिया है जिन तक मनुष्य का पहुंचना असंभव ज्ञात होता था इस संबंध में एक विद्वान ने लिखा है कि:-

> "Science has revealed to us to immensity of the Universe with its innumerable stars] planets] satellites as well as the secrets of infinitely of infinitely words in atoms germs and microbes- it has revealed to us chaos and Cosmos microcosm- And to this science has revealed to us the secret forces of nature which we can harness for our benefit And enjoyment- "

पहले मनुष्य का सहारा समय अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही चला जाता था लेकिन आज यंत्रों के द्वारा कार्य शीघ्रता पूर्वक होने लगे हैं। जिसके फलस्वरूप सब लोगों को सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए पर्याप्त समय मिलने लगा है।[2]

भाप के अविष्कार ने हमारे आर्थिक जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। हमारे दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुएं भाप से चलने वाले कारखानों में बनती हैं। सबसे अधिक क्रांति लाने का श्रेय बिजली के अविष्कार को जाता है। प्राचीन युग एक अंधकारमय युग था। तब टिमटिमाते दीपक घर में जला करते थे और आज प्रत्येक घर विद्युत के प्रकाश से जगमगाया करता है।

बिजली ने हमारे दैनिक जीवन को अत्यंत सुलभ और आनंदमय बना दिया है। विद्युत से टेलीविजन चला कर घर बैठे बैठे लोग देश विदेश के समाचार देखते हैं। बिजली के द्वारा कारखाने तथा प्रेस में कार्य करने की अपेक्षा अधिक तेजी से होने लगा है। बिजली के द्वारा संसार के विभिन्न भागों से हमारा संपर्क बना रहता है।

आज वायुयान के द्वारा संसार के सभी राष्ट्र एक दूसरे के समीप आ गए हैं। संसार के किसी भी स्थान पर यदि कोई दुर्घटना हो जाती है तो वायुयान द्वारा वहां तुरंत ही सहायता पहुंचा दी जाती है। अब भारत से वायुयान द्वारा यूरोप तथा अमेरिका कुछ ही घंटे में पहुंचा जा सकता है।[3]

आज मानव रॉकेट द्वारा चंद्रमा के अंदर पहुंच चुका है। विज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। माइक्रोस्कोप, चलचित्र टेलीस्कोप एवं मैजिक लालटेन की सहायता से कठिन से कठिन विषय को हल करके पढ़ाया जाता है। टेलीविजन के आविष्कार ने शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य (Objectives of teaching Of Science)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि किसी भी विषय को पढ़ाने से पहले उस विषय के लिए कुछ उद्देश्य निर्धारित कर लेना आवश्यक होता है। यही बात विज्ञान विषय के लिए भी सत्य है विद्यार्थियों के व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन करने के लिए यह आवश्यक है कि पढ़ाने से पहले कुछ उद्देश्यों को निर्धारित कर लिया जाए तथा उन्हीं उद्देश्यों के आधार पर विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान किया जाए। उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिए कुछ निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:-

- उद्देश्यों को बालकों की आवश्यकताओं तथा रुचिओं की पूर्ती करनी चाहिए।
- उद्देश्यों से सीखने वाले व्यवहार में परिवर्तन किया जाना चाहिए।
- उद्देश्यों से बालकों की प्रगति का मूल्यांकन करने में सहायता मिलनी चाहिए।
- उद्देश्यों को प्रजातंत्र य शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बनाया जाना चाहिए।

उद्देश्यों में सहायक सामग्री को छांटने के लिए तथा उसके संगठन के लिए सहायता मिलनी चाहिए।

हॉलैंड निवासी शिक्षा शास्त्री रूड लूब्बस के अनुसार वैश्वीकरण व प्रक्रिया है जिसमें सीमा पार आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों को स्थापित करने और बनाए रखने में भौगोलिक दूरी का कोई महत्व नहीं रह जाता"

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एंथोनी गिड्डेंस के अनुसार, "वैश्वीकरण दूरी और समय को सीमित करने का प्रयास है जिसमें संप्रेषण के माध्यम से तुरंत ही पूरे विश्व में एक साथ ज्ञान एवं संस्कृति का आदान प्रदान किया जा सकता है।"

डेविड हेल्ड और एंथोनी मैकग्रा के अनुसार, "वैश्वीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में मान्यता दी जा सकती है जिसके माध्यम से भूमंडलीय, सामाजिक संबंधों और आदान-प्रदान को अच्छी तरह से अंतर महाद्वीपीय और अंतर क्षेत्रीय क्रियाओं, अन्त:क्रियाओं तथा शक्तियों के आदान प्रदान करने वाले नेटवर्क के रूप में बदला जा सकता है।"

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर वैश्वीकरण का अर्थ और प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय है:-

- वैश्वीकरण को संभव बनाने में संप्रेषण की आधुनिकतम प्रणाली ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- विश्व के सभी व्यक्तियों और समुदायों के बीच किसी क्षेत्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय सीमा की परवाह न करते हुए आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने और बनाए रखने में वैश्वीकरण से उचित सहायता मिली है।
- वैश्वीकरण से समय एवं दूरी संबंधित सभी प्रकार के अवरोध समाप्त किए जा सकते हैं।
- वैश्वीकरण का उद्देश्य संसार के सभी व्यक्तियों और समुदायों के बीच ज्ञान और संस्कृति का आदान प्रदान करना है।
- दुनियां के विभिन्न क्षेत्रों और महाद्वीपों में विराजमान व्यक्तियों और समुदायों के बीच की दूरी को वैश्वीकरण इतना कम कर देता है कि वे आपस में सामाजिक संबंधों, अन्त:क्रियाओं तथा सुख सुविधाओं के आदान-प्रदान में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करते।

वैश्वीकरण के संबंध में उपयुक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वैश्वीकरण को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है, "वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हर समय और दूरी के सभी अवरोधों को समाप्त करके विष्णु के किसी भी स्थान में स्थित व्यक्तियों एवं समुदायों को राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भलीभांति अंतर संबंधित कर सकते हैं।"

वैश्वीकरण में भौतिक विज्ञानों की भूमिका

वैश्वीकरण आधुनिक समय की एक ऐसी वास्तविकता एवं आवश्यकता है जिसे प्रत्येक देश ने स्वीकार किया है। वैश्वीकरण के कार्यों में भौतिक विज्ञानों की मुख्य भूमिका रही है। भौतिक विज्ञानों की विकसित तकनीकी के कारण हुई प्रगति तथा नवीन खोजों में निम्नलिखित बिंदुओं का योगदान रहा है:-

- भूमि, वायु तथा जल मार्गों के द्वारा यातायात अथवा आवागमन को अधिक से अधिक बेहतर बनाने से संबंधित परिवहन साधनों की खोज और विकास।
- मुद्रित सामग्री का विकास तथा लिखित शाब्दिक सामग्री के माध्यम से संप्रेषण का प्रारंभ।

रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, संदेश प्रणाली, टेलीग्राफ, टेलीप्रिंटर, वीडियो कैमरा, मोबाइल टेलीफोन, फोटोग्राफी एवं गतिशील चलचित्र, उपग्रह संचार प्रणाली सुविधाएं, टेली कॉन्फ्रेंसिंग आदि वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप उपलब्ध प्रभावी संचार एवं संप्रेषण प्रणाली सभी भौतिक विज्ञान की ही देन है।[4]

भौतिक विज्ञान में होने वाले अन्वेषण एवं नवीन खोजों के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार की संप्रेषण प्रणाली संचार प्रणाली तथा आवागमन के साधनों के द्वारा मानव जीवन में एक नई क्रांति आई है तथा आधुनिक मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुविधाएं प्रदान करके मानव जीवन को खुशहाल तथा आरामदायक बनाया गया है। उन्नत संप्रेषण तथा संचार तकनीकी ने समय तथा दूरी के सभी अवरोध समाप्त कर दिए हैं।

अत: विश्व के सभी देश एक दूसरे से प्रत्येक क्षेत्र जैसे व्यापार, संचार, यातायात, निर्यात, चिकित्सा, कृषि, पशुपालन आदि के संबंध में नवीन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा एक दूसरे की सहायता तथा सहयोग कर सकते हैं। आज विश्व के किसी भी कोने में रहने वाला व्यक्ति तथा समुदाय अपने आप को विश्व के अन्य व्यक्तियों तथा समुदायों से पूर्ण रूप से अंता संबंधित तथा आत्मनिर्भर हैं।

यदि किसी देश में कोई घटना जैसे भूचाल आना बाढ़ आना, आतंकवाद, बम ब्लास्ट होना, राष्ट्रों में होने वाले आपसी अनबन का संबंध केवल एक अकेले देश तक सीमित नहीं रहता है बल्कि इसके विश्वव्यापी परिणाम होते हैं तथा सभी देशों को इसकी जानकारी हो जाती है।

उपर्युक्त वर्णित आधुनिक सुविधाओं में विश्व के सभी व्यक्तियों, समुदायों तथा राष्ट्रों को आपस में अन्त: संबंधित करके "वसुधैव कुटुंबकम" की अवधारणा को साकार किया है। यह सभी भौतिक विज्ञान के द्वारा ही संभव हुआ है।

संदर्भ

1 Bederson, Benjamin (editor), More Things in Heaven and Earth: A Celebration of Physics at the Millennium, New York: Springer Verlag, 1999. A collection of review articles, some historical.

2 Francisco Flores, "Einstein's 1935 derivation of $E = mc^2$," Studies in History and Philosophy of Modern Physics, Vol. 29, pages 223-243 (1998)

3 Gerald Holton, Advancement of Science,

4 Gerald Holton, Advancement of Science,

हमारे दैनिक जीवन में भौतिक विज्ञान की भूमिका

डॉ० सुयश कुमार श्रीवास्तव

सहायक आचार्य, भौतिक विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया, उ0प्र0

हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सदी में रह रहे हैं और हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान की शुरूआत ने हमारे जीवन को बदल दिया है। जब लोगों को विज्ञान के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, तब भी उनका जीवन विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के सिद्धांतों द्वारा संचालित होता था। जब हम आग जलाते हैं, तो यह एक रासायनिक प्रक्रिया है; जब हम भोजन करते और पचाते हैं, तो यह जैविक प्रक्रिया है; जब हम एराथ पर चलते हैं, तो यह भौतिकी के नियमों द्वारा शासित होता है; जब भूकंप आता है, तो यह एक भूकंपीय गतिविधि होती है; जब हम पृथ्वी की सतह के विभिन्न इलाकों और रत्नों के बारे में बात करते हैं, तो यह भूविज्ञान से संबंधित होता है। हमारे जीवन की कोई एक गतिविधि नहीं है, जो विज्ञान के हमारे एक या दूसरे क्षेत्र को परिभाषित करती है। इसी तरह, भौतिकी हमारे दैनिक जीवन को नियंत्रित करती है और हमारे द्वारा की जाने वाली कई गतिविधियों और हमारे दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली चीजों में शामिल होती है। यहां हम चर्चा करेंगे कि कैसे भौतिकी हमारे दैनिक कार्यो को चलाने में अपनी भूमिका निभा रही है और हमें अपने कामों, कामों और कर्तव्यों को सुचारू रूप से और प्रभावी ढंग से करने में सहायता करती है।

भौतिकी को प्राकृतिक विज्ञान माना जाता है क्योंकि यह पदार्थ, बल, ऊर्जा और गति जैसी चीजों से संबंधित है। जैसा कि ये सभी दैनिक जीवन से संबंधित कार्य से संबंधित हैं, इसलिए, हम कह सकते हैं कि भौतिकी अध्ययन करती है कि ब्रह्मांड कैसे काम करता है, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर कैसे घूमती है, बिजली कैसे गिरती है, हमारा रेफ्रिजरेटर कैसे काम करता है और बहुत कुछ। संक्षेप में, भौतिकी परिभाषित करती है कि हमारे आसपास सब कुछ कैसे काम करता है। जब विज्ञान से कुछ अलग नहीं किया जा सकता है और हमारी दुनिया खुद को भौतिकी के चमत्कार से अलग नहीं कर सकती है। जब हम अपने चारों ओर देखते हैं तो हमें बहुत सी चीजें दिखाई देती हैं जो भौतिकी के सिद्धांतों पर काम करती हैं। भौतिकी के ज्ञान का उपयोग करके हम अपनी अनेक गतिविधियों की व्याख्या कर सकते हैं। यहां, हम कुछ उदाहरणों पर चर्चा करेंगे, जो हमें यह जानने में मदद करेंगे कि कैसे भौतिकी हमारे जीवन में हर दिन अपनी भूमिका निभा रही है।

टहलने में

चलने की सरल क्रिया में भौतिकी के कई सिद्धांत शामिल हैं। इसमें वजन की अवधारणा, न्यूटन के जड़त्व के तीन नियम, घर्षण, गुरुत्वाकर्षण नियम और संभावित और गतिज ऊर्जा शामिल हैं। जब हम चलते हैं तो वास्तव में हम एक उल्टे लोलक की तरह कार्य करते हैं। जब हम पैर को जमीन पर रखते हैं, तो यह हमारी धुरी बन जाता है और हमारा द्रव्यमान हमारे उदर में केंद्रित होता है, जो एक चाप के आकार का वर्णन करता है। जब हम जमीन पर पैर रखते हैं, तो हम वास्तव में वजन डालते हैं यानी उह और जमीन पर पीछे की ओर बल लगाते हैं, क्योंकि हमारे वजन की प्रतिक्रिया के रूप में, जमीन एक विरोधी बल द्वारा प्रतिक्रिया करती है जो प्रकृति में लंबवत होती है, पैर पर जो हमें धीमा कर देती है और यह धीमा हो जाता है यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि हमारा पैर हमारे पेट के करीब न आ जाए। जब पैर चल रहा होता है, तो गतिज ऊर्जा अधिकतम होती है और संभावित ऊर्जा शून्य होती है, लेकिन, जब पैर पेट या चाप के सबसे करीब पहुंचता है, तो संभावित ऊर्जा अपने अधिकतम तक पहुंच जाती है। जब एक और कदम उठाया जाता है, तो संचित संभावित ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है और यह प्रक्रिया जारी रहती है। हम एक अपूर्ण लोलक के रूप में कार्य करते हैं, क्योंकि समस्त स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित नहीं होती है। अगला कदम उठाने के लिए संचित संभावित ऊर्जा द्वारा केवल 65 प्रतिशत ऊर्जा प्रदान की जाती है, शेष 35 प्रतिशत जैव रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा प्रदान की जाती है। (कुंजिग, 2001)[1]

जब हम चलते हैं तो हम वास्तव में भौतिक दृष्टि से कुछ कार्य करते हैं, जैसे F*S, जब हम कुछ बल लगाते हैं और इसके परिणामस्वरूप हम कुछ दूरी तय करते हैं तो हम वास्तव में कार्य करते हैं। चलने के दौरान न्यूटन के गति के तीन नियम लागू होते हैं। गति का प्रथम नियम कहता है कि कोई वस्तु तब तक विराम अवस्था में रहती है जब तक उस पर कोई बल नहीं लगाया जाता है। जब हम विश्राम में होते हैं तो जड़त्व अधिकतम होता है। जड़ता की स्थिति से बाहर निकलने के लिए शरीर को सबसे अधिक बल की आवश्यकता होती है, यानी जब हम चलना शुरू करते हैं। जब हम पहले कदम की बात करते हैं तो ऊर्जा पैर से शरीर के ऊपरी हिस्से में स्थानांतरित हो जाती है और हम चलने लगते हैं, चलने की प्रक्रिया के दौरान जमीन पर पैर रखने पर जड़ता बढ़ती रहती है और पैर को ऊपर ले जाने पर घट जाती है। गति का दूसरा नियम कहता है कि ं=थ/उ यानी त्वरण सीधे उस

बल के समानुपाती होता है जो हम चलते समय उपयोग करते हैं या लगाते हैं, इसलिए, जब हम अधिक बल लगाएंगे, तो हमारा त्वरण बढ़ जाएगा। गति का तीसरा नियम क्रिया और प्रतिक्रिया के बारे में है, जब हम जमीन पर पैर रखते हैं तो हम उस पर बल लगाते हैं और इसके परिणामस्वरूप जमीन शरीर पर प्रतिक्रियात्मक ऊर्ध्वाधर बल लगाती है। (पेट्रीसिया एन क्रेमर, 2011)[2]

खाना बनाने में

ऊष्मप्रवैगिकी भौतिकी की एक शाखा है जो गर्मी, तापमान और इसके कारण किए गए कार्य से संबंधित है। ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है जिसे एक माध्यम से दूसरे माध्यम में स्थानांतरित किया जा सकता है अर्थात ऊष्मा हस्तांतरण। ऊष्मा हस्तांतरण के लिए, ऊष्मा गर्म सतह से ठंडी सतह की ओर यात्रा करती है। जब हम पैन को पानी या किसी और चीज के साथ जलते हुए स्टोव पर रखते हैं, तो स्टोव की लौ में ऊर्जा ठंडे पैन को छूती है, यह गर्मी को पैन में स्थानांतरित करना शुरू कर देती है और इसे हूटर बना देती है। इस घटना को चालन कहा जाता है। संवहन तरल और गैसों में अणुओं की गति की एक प्रक्रिया है। जब हम तवे को गर्म करते हैं तो तवे के तल पर पानी के अणु गर्म होने लगते हैं, एक समय ऐसा आता है जब उन्हें पर्याप्त ऊर्जा मिल जाती है और वे अपने आसपास के अणुओं से अधिक गर्म हो जाते हैं, तब वे पानी की सतह पर जाने लगते हैं। सतह पर पानी के अणु गर्म पानी से ठंडे और भारी होते हैं, कम ऊष्मा ऊर्जा के कारण नीचे की ओर जाने लगते हैं, यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि सारा पानी समान तापमान पर नहीं आ जाता।[3]

खाना पकाने की प्रक्रिया एक खुली व्यवस्था है, क्योंकि इसमें पदार्थ और ऊर्जा दोनों की हानि होती है। ऊष्मप्रवैगिकी के शून्य नियम के अनुसार ऊर्जा का संरक्षण किया जाना चाहिए, हमारे मामले में लौ द्वारा खोई गई ऊर्जा का उपयोग बर्तन द्वारा पानी गर्म करने के लिए किया जाता है और इस प्रकार कुल ऊर्जा संरक्षित रहती है। यदि हम प्रेशर कुकर का उपयोग करते हैं तो यह भोजन में रासायनिक परिवर्तन लाने के लिए अणुओं की गतिज ऊर्जा का उपयोग करके भोजन में सहज परिवर्तन लाने के लिए ऊष्मा ऊर्जा का उपयोग करता है; इस प्रकार ऊष्मप्रवैगिकी के नियम को संतुष्ट करता है कि कार्य ऊर्जा के कारण स्वत:स्फूर्त कार्य होते हैं। (लाथब्रिज, 2013)[4]

फल और सब्जियां काटने में

जब हम फल और सब्जियां काटते हैं, तो हमें कभी यह एहसास नहीं होता कि इस सरल कार्य में भौतिकी शामिल हो सकती है, लेकिन निश्चित रूप से यह है। किसी भी चीज को काटने के लिए हमें चाकू पर दबाव डालना पड़ता है। जब हम दबाव बढ़ाते हैं तो हम किसी वस्तु को आसानी से काट सकते हैं। दबाव बल और क्षेत्र पर निर्भर है यानी सीधे बल पर निर्भर है और क्षेत्र पर व्युत्क्रमानुपाती है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब हम अधिक बल लगाते हैं तो हम किसी वस्तु को आसानी से काट सकते हैं, लेकिन यदि उसी बल को मोटे किनारों वाले चाकू से लगाया जाए तो हम ऐसा नहीं कर सकते। अनुभवों से हम सीखते हैं कि जिन चाकुओं के किनारे कम सतह वाले होते हैं, वे किसी वस्तु को आसानी से काटने में मदद कर सकते हैं। इसी तरह, हम कुंद चाकू की तुलना में तेज चाकू से आसानी से काट सकते हैं। कुंद चाकू अपने खुरदरे किनारों के कारण अधिक घर्षण प्रदान करता है; इस प्रकार किसी वस्तु को काटना मुश्किल हो जाता है।

देखने में

हमारी आंखें ईश्वर का एक अनुपम उपहार हैं। इस छोटे से अंग से हम दुनिया के अजूबे देखते हैं। जब हम शरीर के अंगों और उनके कार्यों के बारे में बात करते हैं, तो यह सामान्य अवधारणा है कि हम जीव विज्ञान के बारे में बात कर रहे हैं। लेकिन, हम इस तथ्य की उपेक्षा कर देते हैं कि हमारे शरीर के अंग भी भौतिकी और रसायन विज्ञान के नियमों के तहत काम कर रहे हैं। अगर हम देखने के भाव की बात करें तो हमें पता चलता है कि हमारी आंखें हमारे आसपास की चीजों को देखने के लिए कैमरे का काम करती हैं। हमारी आँखों का लेंस उत्तल होता है अर्थात यह प्रकाश को अभिसरित या केंद्रित करता है। जब प्रकाश हमारी आंख में प्रवेश करता है, तो कॉर्निया और लेंस प्रकाश को केंद्रित करते हैं। आईरिस आंख में प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करता है और आईरिस रेटिना पर एक छवि बनाता है, जो वास्तविक और उलटी होती है यानी कैमरे की तरह। प्रकाश की छवि को फोटोरिसेप्टर द्वारा विद्युत संकेत में परिवर्तित किया जाता है, और ऑप्टिक तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में भेजा जाता है। दृष्टि केंद्र विद्युत संकेत का विश्लेषण करता है और इसे उसके मूल रूप में व्यवस्थित करता है अर्थात आंख से देखा जा सकता है। हम जो छवि देख सकते हैं वह उस वस्तु से परावर्तित प्रकाश की मात्रा के कारण है। यही कारण है कि हम अंधेरे में नहीं देख पाते हैं।[5]

आँख वस्तुओं के विभिन्न आकार और रंगों को देख सकती है। प्रकाश सात रंगों से मिलकर बना होता है, जब यह किसी वस्तु जैसे लाल रंग की किताब पर पड़ता है, तो यह सभी रंगों को अवशोषित कर लेता है और लाल रंग को परावर्तित कर देता है। इससे हमें यह समझने में मदद मिलती है कि इस किताब का कवर लाल रंग का है। जब प्रकाश किसी सफेद वस्तु पर पड़ता है तो वह सभी रंगों को परावर्तित कर देता है और इसलिए वह सफेद दिखाई देता है (प्रकाश को हम श्वेत प्रकाश भी मानते हैं)। इसी तरह, जब प्रकाश काली वस्तु पर पड़ता है तो वह सारा प्रकाश अवशोषित कर लेता है और कुछ भी परावर्तित नहीं करता है, इसलिए वह वस्तु काली दिखाई देती है।[6]

दरवाजे खोलना और बंद करने में

हिंग वाले दरवाजों को खोलने और बंद करने में भी भौतिकी शामिल है। दरवाजे के खुलने और बंद होने में शामिल परिघटना बल आघूर्ण है। बल आघूर्ण एक अक्ष या आलम्ब के चारों ओर किसी वस्तु को घुमाने के लिए आवश्यक बल है। जब हम हैंडल का उपयोग करके एक दरवाजा खोलते हैं, तो हिंज से सबसे दूर की जगह पर, हम टॉर्क, िॐ=थ'स `पद ळि उत्पन्न करके आसानी से दरवाजा खोल सकते हैं, जहां स डोर नॉब या हैंडल से हिंज की दूरी है। (पाठ 27a% टॉर्क (केवल िच), 2013)[7]

यदि घुंडी कब्जे के पास स्थित है, तो हमें अधिक बलाघूर्ण लगाना पड़ता है, इस प्रकार कम कोणीय त्वरण उत्पन्न होता है। जब हम दरवाजे पर लंबवत बल लगाते हैं, तो बड़ा कोणीय त्वरण उत्पन्न होता है। जब हम डोर नॉब पर बल लगाते हैं, तो डोर को अपनी धुरी पर घुमाने के लिए मजबूर करते हैं और इस प्रकार टॉर्क के सिद्धांत पर काम करते हैं। जब हम दरवाजे को दक्षिणावर्त खोलते हैं तो टोक धनात्मक होता है और यदि हम इसे वामावर्त खोलते हैं तो नकारात्मक होता है। (ब्रोहोलोम, 1997)[8]

हर दिन भौतिकी अवधारणाओं का उपयोग

अलार्म घड़ी द्वारा

सुबह उठने के साथ ही भौतिकी आपके दैनिक जीवन में शामिल हो जाती है। अलार्म घड़ी की भनभनाहट आपको अपने शेड्यूल के अनुसार सुबह उठने में मदद करती है। ध्वनि एक ऐसी चीज है जिसे आप देख नहीं सकते, लेकिन सुन या अनुभव कर सकते हैं। भौतिकी ध्वनि की उत्पत्ति, प्रसार और गुणों का अध्ययन करती है। यह क्वांटम मैकेनिक्स की अवधारणा पर काम करता है।

भाप वाला प्रेस द्वारा

जैसे ही आप सुबह उठते हैं और अपने स्कूल/ऑफिस की तैयारी शुरू करते हैं, आपको एक इस्त्री करने वाले कपड़े की आवश्यकता होती है, और यहीं पर फिजिक्स की भूमिका आती है। स्टीम आयरन एक ऐसी मशीन है जो इसे बनाने के लिए बहुत सारे भौतिकी का उपयोग करता है। भाप के लोहे में प्रयुक्त भौतिकी का सबसे प्रमुख सिद्धांत "हीट" है। ऊष्मा, ऊष्मप्रवैगिकी में, एक गर्म पदार्थ से ठंडे पदार्थ में ऊर्जा हस्तांतरण का एक प्रकार है। इस्त्री एक गर्म धातु आधार- एकमात्र प्लेट होने से काम करती है।

बॉलपॉइंट कलम द्वारा

चाहे आप अपने कार्यस्थल पर हों या अपने स्कूल में, बॉल प्वाइंट पेन आपका हथियार है। अगर फिजिक्स नहीं होता तो आप एक पेपर पर बॉल प्वाइंट पेन से नहीं लिख पाते। इस मामले में, गुरुत्वाकर्षण की अवधारणा खेल में आती है। जैसे-जैसे आपकी कलम कागज पर चलती है, गेंद मुड़ती है और गुरुत्वाकर्षण स्याही को गेंद के शीर्ष पर नीचे ले जाता है जहाँ इसे कागज पर स्थानांतरित किया जाता है।

कार सीट-बेल्ट द्वारा

क्या आपने कभी गौर किया है कि आपकी कार का सीट-बेल्ट किस सिद्धांत पर काम करता है? खैर, यह फिर से भौतिकी है। जब आप अपनी कार की सीट-बेल्ट कसते हैं, तो यह "जड़ता" की अवधारणा पर काम करती है। जड़ता किसी शरीर की आराम या गति की स्थिति को बदलने की अनिच्छा या आलस्य है। कार की टक्कर की स्थिति में, आपकी सीट-बेल्ट आपके शरीर को आगे की दिशा में जाने से रोकने में मदद करती है; जैसा कि आपका शरीर गति की जड़ता के कारण रोके जाने का विरोध करता है।

निष्कर्ष

यहाँ, हमने भौतिकी का एक सीमित उदाहरण देखा है, लेकिन जीवन विज्ञान की इस शाखा द्वारा नियंत्रित होता है। भौतिकी बहुत सारी प्राकृतिक घटनाओं को नियंत्रित करती है और कार, रेफ्रिजरेटर, माइक्रोवेव और एस्केलेटर जैसी कई मानव निर्मित चीजों को भी परिभाषित करती है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि हमारी दुनिया भौतिक विज्ञान द्वारा शासित है।

संदर्भ

1 Kunzig, R. (2001). The Physics of Walking. *DISCOVER Vol. 22 No. 07*.

2 Patricia Ann Kramer, A. D. (2011). The Energetic Cost of Walking: A Comparison of Predictive Methods. *PLoS ONE*, *6(6)*, doi: 10.1371/journal.pone.0021290.

3 ouchmath. (2011, January 25). *THE PHYSICS OF COOKING*. Retrieved from OUCH MATH: http://ouchmath.wordpress.com/2011/01/25/the-physics-of-cooking/

4 Lathbridge, A. (2013, June 06). *Thermodynamics of Cooking*. Retrieved from Science fare: http://sciencefare.org/2013/06/26/thermodynamics-of-cooking/

5 Edmondson, R. (2005, November 11). *How are we able to see things?* Retrieved from MyUniversalFacts: http://www.myuniversalfacts.com/2005/11/how-are-we-able-to-see-things.html

6 Pappas, t. (2010, April 29). *How Do We See in Color?* Retrieved from Live Science: http://www.livescience.com/32559-why-do-we-see-in-color.html

7 *Lesson 27a: Torque (AP Only)* . (2013, March 12). Retrieved from studyphysics.ca: http://www.studyphysics.ca/2007/20/ap_torque/27_ap_a_torque.pdf

8 Broholom, C. (1997, October 20). *Opening a door.* Retrieved from John Hopkins University: http://www.pha.jhu.edu/~broholm/l18/node3.html

दैनिक जीवन और रसायन में संबंध

सलीम सिद्दिकी

सहायक आचार्य, रसायन विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया, उ0प्र0

संपूर्ण ब्रह्माण्ड रसायनों का विशाल भंडार है। जिधर भी दृष्टि जाए, हमें विविध आकार प्रकार की वस्तुएं नजर आती हैं। ये सभी किसी न किसी प्रदार्थ से निर्मित हैं। ये ठोस, द्रव या गैस अविस्था में हो सकती हैं। मोटे तौर पर समूर्चे ब्रह्माण्ड में दो ही चीजें विद्यमान हैं; पदार्थ तथा विद्युतचुंबकीय विकिरण। पदार्थ वह है जिसका कोई आकार प्रकार हो तथा जिसमें द्रव्यमान यानि संहित हो। तारों, ग्रहों, नक्षत्रों, धूर्मकेतुओं तथा उपग्रहों में रसायन की ही सत्ता है। मानव जीवन में रसायनों की कमोबेश हमेशा से भूर्मिका रही है।[1]

सभ्यता की विकास-यात्रा के साथ यह भूर्मिका बढ़ती गयी है। देखा जाए तो जीवन तथा रसायनों का अन्योन्यश्रित संबन्ध है। प्रकारान्तर से देखा जिाए तो जीवन की समूर्ची प्रक्रिया ही रासायिनक अभिक्रियाओं की देन है। जीविन के समस्त लक्षण रासायिनक प्रक्रियाओं की अनुर्गूंजि हैं। पृथ्वी पर पेड़ पौधे उग रहे हैं, जीव जिन्तु चल फिर रहे हैं। कहीं बादलों की उमड़-घुमड़ है तो कहीं बिजिली की कड़क हैं। भूमंडल पर कहीं आंधी-तूफान अपनी उपिस्थति दजिर्ण करा रहे हैं तो कहीं भूर्कप, ज्वालामुखी तथा सुनामी की आहट है। इन सभी भौगोलिक प्रक्रियाओं में रसायन अपने अपने ढंग से अपना काम कर रहे हैं। सजीवों में पोषण, वृदि, पाचन, उत्सजिर्नन, प्रजनन की प्रक्रियाएं रासायिनक अभक्रियाएं ही हैं। मानवि के संवेदी अनुभवों जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध, इन सभी के पीछे रासायिनक क्रियाएं उत्तरदायी हैं।

रसायन विज्ञान का सम्बन्ध हमारी रोजमरा की जिन्दगी से है। शुरुआत सुबह की चाय से करते है जिो कि दूध, चीनी, चाय-पत्ती के साथ उबला हुआ जलीय घोल है। पश्चमी देशों में बिना दूध की चाय लेने का प्रचलन है जिसे काली चाय यानी ब्लैक टी कहा जिाता है। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जिरूरतें पूरा करने में रसायनों की भूमिका है। दैनिंक इस्तेमाल की चीजें, जैसे साबुन, तेल, ब्रश, मंजिन, कंघी, शीशा, कागज, कलम, दवात, स्याही, दवाइयां, प्लार्स्टिक, रसायनविज्ञान की देन हैं। धर्म-कर्म, पूजा- पाठ स्नान, ध्यान, धूप दीप, नैवेद्य, अगरबत्ती, रोली, रक्षा, तथा कर्पूर इत्यादि, सबमें रसायन व्याप्त हैं। उत्सवों तथा तीज त्यौहारों में दीये, मोमबत्ती तथा पटाखों के पीछे रसायन ही हैं। यातायात, परविहन तथा दूरसंचार के पीछे रसायनों की भूर्मिका है।

ऊर्जा के विविध स्रोत जैसे कोयला, पेटरोल, डीजिल, मिट्टी का तेल, नैप्था, तथा खाना चाय, हर सुबह की शुरुआत पकाने की गैस, विविध रासायिनक यौगिकों के उदाहरण हैं। मानव जीवन को आरामदायक बनाने में रसायनविज्ञान ने अप्रतिम भूर्मिका निभायी है। हमारे रोजिमरा के जीवन में इस्तेमाल होने वाले औजार, उपकरण तथा युक्तियां जैसे कुसी, मेजि, टी.वी., फ्रिजि, घड़ी, कुकर, इस्तरी, मिक्सर, ए.सी., चूल्हा, बरतन, कुकिंग गैस, रंग-रोगन (Paints), विानिर्णस, कपड़े, वर्णक (Pigments) तथा रजिंक (Dyes), अपमाजकर्ण कीटनाशक, विविध सौंदयर्ण प्रसाधन सामिग्रयां, सब रसायनविज्ञान की देन हैं। वास्तव में देखा जिाए तो इक्कीसवीं सदी में रसायनों की पहुंच कल-कारखानों, उद्योग-धंधों से लेकर हमारे चूल्हें चौके तथा ग्रामीण भारत के खेत खिलहानों तक, जीवन के हर क्षेत्र में हो चुकी है।

जीवन के हर क्षेत्र में रसायन विज्ञान उपिस्थत है। आज हमें रोजमर्रा के जीवन में अनेक चीजों की जरूरत होती है। इनमें से अधिकांश र्निमत हैं जो बाजारों में बिकती हैं। रसोईघर में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएं, चाहे वह कोई उपकरण हो या खाद्य पदार्थ, उन पर रसायन की अमिट छाप है। स्टिनलेस स्टील के बर्तन हों या काँच के गिलास, सभी रसायन हैं जिनके निर्माण में रसायन विज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। केक बनाना हो या पेस्टिरी, डबलरोटी बनानी हो या नानखटिाई, सिरका बनाना हो या अचार, फल संरिक्षत करना हो या फिर फिल का रस, इन सबमें किसी न किसी रसायन की भूर्मिका है। चाहे हम दियासलाई इस्तेमाल करें या लाइटर, नहाने के लिए साधारण साबुन इस्तेमाल करें या खुशबूर्दार, कपड़े धोने के लिए साबुन इस्तेमाल करें या कोई अपमार्जक, सभी में रसायन ही हैं।[2]

महिलाओं की प्रसाधन सामग्री हो या श्रृंगार की अन्य वस्तुएँ, उनके निमार्ण में रसायन-विज्ञान ही अपना काम करता है। अच्छी फिसल प्राप्त करना हो, उसे कीड़े मकोड़ों से बचाना हो, हमें रसायनों की मदद लेनी होती है। चाहे विह देसी खाद के रूप में हो, या रासायिनक उर्वरक हों या कीटिनाशकों का प्रयोग। आरोग्य के लिए हमें औषिधयों की मदद लेनी होती है। रोग के नदान के लए पैथोलाजी लैबों में जाँच में रसायन ही काम आते हैं। सुंदर तथ टिकाऊ कपड़ों के लिए हमें कृत्रिम रेशे के कपड़े नायलॉन, पॉलीस्टिर, डेक्रिॉन से प्राप्त होते हैं। घर में सजिाविटि करने, दीविारों को पेंटि करने, फिनीचर पर पॉलिश और विार्निश करने के लिए प्रयुक्त सामग्री में हम किसी न किसी रसायन का उपयोग करते हैं। सामान्य कैमरा हो या पोलोरायड, विभिन्न रासायिनकर्की क्रयाओं से ही हम चित्र उतारने में सफिल होते है।

वस्तुतः रसायनों का सम्बन्ध प्रत्येक गैस, द्रव्य या ठोस पदार्थ से है। जिस वातावरण में हम रहते हैं तथा सांस लेते हैं विह

विविध रसायनों से ही निमत है। वायुमंडल में नाइटरोजिन, आक्सीजन, कार्बनडाईआक्साइड, तथा आर्गन गैसें मौजूद है। चूकि रसायनों का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसिलए अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसे कई शाखाओं में विभाजित करते हैं। इसमें से आठ मुख्य शाखाएँ इस प्रकार हैं।

1. अकाबर्निक रसायन (Inorganic Chemistry)
2. काबर्निक रसायन (Organic Chemistry)
3. भौतिक रसायन (Physical Chemistry)
4. जीवि रसायन (Bio Chemistry)
5. औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry)
6. औषधीय रसायन (Medicinal Chemistry)
7. नाभिकीय रसायन (Nuclear Chemistry)
8. कृषि रसायन (Agricultural Chemistry)

इन 8 शाखाओं में से तीन मूलभूत शाखाएँ हैं- अकाबर्निक, काबर्निक तथा भौतिकी रसायन। अन्य शाखाएँ देखा जिाए तो एक तरह से इन तीनों शाखाओं के विकास एव विस्तार के फलस्वरूप बनी हैं। चाहे धातुकमर्ण हो, युद हो, औषिध निमार्ण हो, या फिर रासायिनक उद्योग-धन्धे। आदि काल में मनुष्य का जीविन सरल था तथा आवश्यकताएं बहुत सीमित थीं। वह अपनी जरूरतों के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर था। कंद मूल खाकर निर्वाह करता, छालों के वस्त्र धारण करता। कुदरती जलस्रोतों से जिल प्राप्त करता। इलाजि के लिए वानस्पितक स्रोत पर निर्भर था। भोजपत्रों पर लिखता तथा पौधों से रंग लेकर चित्रकारी करता।

सभ्यता के विकास के साथ जीवन शैली में बदलाव आया, आवश्यकताएं बदली तथा बढ़ी। ऐसे में रासायिनक तकनीकी से समुन्नत सामग्रयां खोजी गयीं। प्राकृतिक पदार्थ की नकल करके उसी तरह की सामग्री कृत्रिम रूप से तैयार की जाने लगी। आज हमारा खानपान, रहन सहन, यातायात, संचार, जीवनशैली इस तरह की हो गयी है कि हर कदम पर हमें रसायनों का इस्तेमाल करना पड़ता है। रसायनों ने हमारे जीवन को अपने आगोश में ले लिया है। यह इतनी तेजी से विकसत हो रहा है और नित्य इतनी नई-नई खोजें हो रही हैं कि एक लेख में उन सभी का विस्तार से उल्लेख मुश्किल है। फिर भी कुछ चीजों का जिक्र यहां करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

आहार तथा रसोई में रसायन

भोजन प्राणियों के जीवित रहने के लिए ही नहीं अपितु वृदि के लिए भी जरूरी है। भोजन हमें स्वास्थ्य और जीवन प्रदान करता है। शरीर एक इंजन की तरह है जो कि बिना ईंधन के चलायमान नहीं हो सकता। यह ईंधन कोयला, पेटिरोल या डीजिल कुछ भी हो सकता है। उसी प्रकार इंजनरूपी शरीर के लिए भोजन ईंधन है। हमारे आहार के छह मुख्य रासायिनक घटिक हैं। ये हैं; कार्बोहाइडरेट्स, प्रोटीन, विटामिन्स, खनिज लवण एवं जल।

कार्बोहाइडरेट्स, कार्बन, आक्सीजन और हाइडरोजन से बने हुए यौगिक होते हैं। चावल, आलू, चीनी, रोटी, चुकन्दर आदि कार्बोहाइडरेट्स बहुल स्रोत हैं। दूसरा खाद्य समूह है प्रोटीन का। ये हमारे शरीर के अंगों, उपांगों तथा ऊतकों तरह तरह के मसाले जो स्वाद तथा जायके वाले रसायनों के भंडार हैं। का निर्माण करते हैं। प्रोटीन हमें दूर्ध, पनीर, अंडा, मांस, मछली, दालों, तथा कुछ मात्रा में गेहूँ, सेब आदि से प्राप्त होता है। प्रोटीन, कार्बन, हाइडरोजन और नाइटिरोजन से बने जटिल यौगिक होते हैं। कुछ प्रोटीनों में सल्फर और फाफोरस भी होता है। प्रोटीन, कोशिकाओं में एन्जाइम तथा हार्मोन्स का कार्य करते हैं। लिपड एक बृहत घटिक है जिसमें तमाम तरह की विसा भी शामिल हैं। ये हमें ऊर्जा प्रदान करते हैं। शरीर की पेशियों के निमार्ण में वसा की अहम भूर्मिका होती है। मक्खन, घी, तेल, मछली और मांस, विसाक पमुख स्रोत हैं। शरीर विसा यानी चबी को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करता हैं। चबी भी शरीर के लिए आविश्यक रासायिनक पदार्थ को शरीर के विभिन्न अंशों तक ले जिाती है। विटामिन्स, कार्बन के एमीन होते हैं जो जैविक गतिविधियों के नितांत जरूरी होते हैं। ये हमें वानस्पितक स्रोतों से प्राप्त होते हैं। खनजि लविण हमें फलों तथा तरकारियों से मिलते हैं तथा जैविक प्रक्रियाओं के लिए ये बहुत जरूरी हैं। ये सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, वगैरह के लविण होते हैं। पानी एक अहम घटिक है। हमारे शरीर का 65% जल होता है। जीवन की सभी क्रियाएं जल में ही संपादित होती है। इसीलिए कहा जिाता है कि जीविन, काबर्णन के कुछ निश्चत यौगिकों का जलीय रसायन होता है। काव्यात्मक रूप से जिल को जीविन का पालना कहते हैं। रसोई के विविध मसालों का अद्भुत विज्ञान होता है। स्वाद तथा जायके का अपना अलग ही विज्ञान है।[3]

हमारे घरों में तमाम रसायन प्रयोग में लाए जिाते हैं। पेटि की शिकायत में सिरका का सेविन गुण कारी माना जिाता है। सिरका वास्तवि में एसीटिक एसिड (CH_3COOH) होता है। खाने का सोडा यानी सोडियम बाइकाबोनेटि ($NaHCO_3$), धाविन सोडा (Na_2CO_3), खाने का नमक (NaCl), सेंधा नमक (Kcl), फिटिकरी (K_2SO_4-Al_2SO_4-$24H_2O$), बटिरियों में गंधक का अम्ल (H_2SO_4), बुझा चूर्ना यानी $Ca(OH)^2$, अल्कोहिलक पये पदाथोर में इथेनॉल (C_2H_5OH), रसायनों के उदाहरण हैं। फूर्लों की सुगंध में फ्लेवोन्स तथा फ्लेवोनायड्स, रास्पबेरी की गंध में आयोनिन, केले की गंध के पीछे आइसोएमाइल एसीटिटि, तथा नींबू की ताजगी के पीछे लिमोनिन यौगिक की भूर्मिका होती है जबकि इसके खट्टिपन के लिए सिटिरक अम्ल जिम्मेदार होता है।

एसिडटी होने पर हम जो एन्टिासिड दवाइयां लेते हैं उनमें मैग्नीशियम हाइडरॉक्साइड यानी डह $(OH)^2$ होता हौ यह आमाशय में मौजिूर्द हाइडरोक्लोरिक अम्ल से अिभक्रिया करके मैगनीशियम क्लोराइड (लविण) तथा पानी बनाता है। इस तरह पेटि में अम्लता कम हो जिाती है और हमें जिलन तथा खट्टिी डकार से राहत मिलती है। संगमरमर तथा खिड़या मिट्टि में कैल्शियम काबोर्णनेटि फल तथा तरकारियां, रसायनिों के अभदुत उदाहरण ($CaCO_3$)

यौगिक मिलता है। टूर्थ पेस्टि का मुख्य घटिक एल्यूर्मिनयम आक्साइड (Al_2O_3) होता है जिसे एल्युमिना के नाम से भी जिनते हैं। माउथ विाश में प्राय: आयोडीन के यौगिक होते हैं जो कीटाणुनाशक गुण रखते हैं।[4]

साबुन तनथा अपमिनार्जक साफ सफाई के लिए साबुन के इस्तेमाल का दजर्ण इतिहास तकरीबन 2800 ई.पू. का है। बेबीलोन में हुई खुदाई में साबुन सदृष्टश पदार्थ पाए गए हैं। दूसरी सदी ई. में यूनानी चिकित्सक गालेन ने क्षारीय घोल से साबुन

निमार्ण का उल्लेख किया है। आज हर घर में साबुन का इस्तेमाल होता है चाहे वह शहर हो या फिर गांव देहात। साबुन, स्टिीएरिक एसिड, पमिटिक एसिड, ओलिक एसिड तथा लिनोलेइक एसिड जैसे विसीय अम्लों के सोडियम या पोटैशियम लविण होते हैं। साबुन निमार्णण की प्रक्रिया को साबुनीकरण कहा जिाता है। सोडियम वाले साबुन ठोस तथा कठोर होते हैं जब कि पोटैशियम वाले साबुन मृदु तथा द्रव होते है। साबुन का प्रयोग करने से पानी का पृष्ठ तनावि कम हो जिाता है जिससे विह कपड़े के रेशों की तह में जिाकर गंदगी दूर करने में कामयाब हो जिाता है। लेकिन अगर पानी की प्रकृति मृदु न होकर कठोर है तो साबुन झाग नहीं दे पाता क्योंकि पानी में उपस्थित कैल्शियम तथा मैग्नीशियम रूपी अशुदयां साबुन से अभिक्रिया करके सुंदरता में कांच लाजवाब तथा मोहक है।[5]

साबुन, सयादयों से साफसफाई के काम आ रहे हैं। लवण बना लेती हैं तथा साबुन व्यर्थ जाता है। इस खामी से बचने के लिए अपमार्जिक विकिसत किए गए। इन पर पानी की प्रकृति का प्रभाव नही पड़ता। इनमें जल-मृदकुारी (water softener), पृष्ठ सक्रियक (surfactant), विरंजिक एंजिाइम (bleaching eæyme), चमक लाने वाले पदार्थ (optical brighteners) तथा खुशबूदार पदार्थ सहित दूसरे कई अभिकमक मिलाए गए होते हैं। साबुन तथा अपमार्जकों का अपना एक पूर्रा का पूर्रा विज्ञान है तथा पूर्री दुनिया में इन्हें कारगर, बेहतर तथा सुरिक्षत बनाने के लिए शोध होता रहता है। आज हमारे देश में साबुन तथा अपमार्जक का कुल कारोबार हजािरों करोड़ का है जिनमें देशी तथा विदेशी कंपिनयां लगी हुई हैं सौंदर्य प्रसाधन में सौन्दर्य प्रसाधन में रसायनों का अद्भुत संगम है। ये प्राय: सभी घरों में इस्तेमाल किए जिाते हैं। कुछ खास का जिक्र यहां किया जा रहा है।

क्रीमिन या कोल्ड क्रीमिन: जैतून या कोई खनिज तेल, मोम, पानी और बोरेक्स के मिश्रिण से चेहरे के लिए क्रीम बनती है जिसमें कोई सुगन्ध, इत्र आदि डाल दिया जिाता है। पुष्पों की सुगन्ध लाने के लिए अल्कोहल, एल्डिहाइड, कीटोन, फिनाल इस्तेमाल किया जिाता है। पाउडर: इसमें खिड़या, टैलकम, जिंक आक्साइड, चिकनी मिट्टी का चूर्ण माँड़ (स्टार्च), रगेन का पदार्थ, सुगन्ध आदि होते है। लिपिस्टक: अधिकतर यह किसी मोम से बनाई जिाती है जिसमें तारकोल से निमर्णत रंग सामग्री पड़ी होती है। मिश्रिण में चिकनाई लाने के लिए कोई तेल मिला दिया घरेलू कीटाणुनाशक सौंदर्य प्रसाधन के विविध रसायन जाता है। नेलपॉलिलश: यह जिल्द सुखने विाला एक प्रकार का रोगन होता है जिसमें रंग लाने के लिए टाइटेनियम आक्साइड (TiO_2) मिला दिया जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि हमारे दैनिक जीवन के हर क्षेत्र में रसायनों की बहुत बड़ी तथा व्यापक भूर्मिका है तथा आने वाले दिनों में यह भूर्मिका बढ़ती ही जिाने विाली है।

संदर्भ

1. फ्रॉम केविमैन टिंू केमिस्टिरी, ह्यू डब्ल्यू. साल्जिबगर्ण, अमेरिकन केमिकल सोसायटिी, वाशिंगटन डीसी, 1991
2. तत्व-नये पुराने, रामचरण मेहरोत्रा, रमाशंकर राय, राष्टिरीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नयी दिल्ली, 1989
3. तत्व-नये पुराने, रामचरण मेहरोत्रा, रमाशंकर राय, राष्टिरीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नयी दिल्ली, 1989
4. जल: जीविन का आधार, कृष्ण कुमार मिश्रि, नेशनल बुक टिरस्टि, नयी दिल्ली, 2001.
5. साबुन एविं अपमार्जक, सुबोध महंती, डरीम 2047, विज्ञान प्रसार, अगस्त 2011
6. लिनरग साइंस, भाग-3, दि विल्डर्ण आफि केमिस्टिरी, इंदुमती रावि, सी.एन.आर. रावि, जवाहरलाल नेहरू सेंटिर फिर एडवांिस्ड साइंटिफिक रिसचर्ण, बंगलौर, 2005

रसायन विज्ञान का विकास एवं का महत्त्व

विश्व प्रताप शुक्ल

सहायक आचार्य, रसायन विज्ञान विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

पुरातन भारत में लोगों को आधुनिक विज्ञान वेफ उभरने से बहुत पहले से अनेकों वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी थी। वह उस ज्ञान का उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में करते थे। रसायन का विकास प्रमुखतः 1300 से 1600 CE में कीमिया और औषध रसायन के रूप में हुआ। आधुनिक रसायन ने अट्ठारहवीं शताब्दी में यूरोप में कुछ ऐल्किमी परम्पराओं वेफ पश्चात् आकार प्राप्त किया जो यूरोप में अरबों द्वारा लाई गई थीं। दूसरी संस्कृतियों, विशेषकर चीनी और भारतीय में, अपनी अलग ऐल्किमी परंपराएँ थी। जिनमें रासायनिक प्रक्रम और तकनीक की जानकारी अधिक थी।[1]

पुरातन भारत में रसायन को रसायन शास्त्रा, रसतन्त्रा, रसक्रिया अथवा रसविद्या कहा जाता था। इनमें धतु-कर्म, औषध कान्तिवर्धक, काँच, रंजक इत्यादि सम्मिलित थे। सिंध में मोहनजोदाड़ो और पंजाब में हड़प्पा में की गई योजना बद्ध खुदाई से सिद्ध होता है कि भारत में रसायन के विकास की कहानी बहुत पुरानी है। पुरातात्विक परिणामों से पता चलता है कि निर्माण के लिए पक्की ईटों का उपयोग होता था। और मिट्टी वेफ बर्तनों का उत्पादन अध्कि मात्रा में किया जाता था। इसे प्राचीनतम रासायनिक प्रक्रम माना जा सकता है जिसमें वाँछनीय गुण प्राप्त करने के लिए पदार्थों को मिलाकर ढाला और अग्नि द्वारा गरम किया जाता था। मोहनजोदाड़ो में ग्लेश किए हुए मिट्टी वेफ बर्तनों वेफ अवशेष प्राप्त हुए हैं। निर्माण कार्य में जिप्सम सीमेंट का उपयोग किया गया है जिसमें चूना, रेत; और सूक्ष्म मात्रा में $CaCO^3$ मिलाया गया है। हड़प्पा वेफ लोग फेएन्स बनाते थे जो एक प्रकार का काँच होता है जिसका उपयोग आभूषणों में किया जाता था। वह सीसा, चाँदी, सोना और ताँबा जैसी धतुओं को पिघलाकर और पफोर्जन द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाते थे। वह टिन और आर्सेनिक मिला कर शिल्प बनाने वेफ लिए ताँबे की कठोरता सुधरते थे। दक्षिण भारत में मस्की (1000 – 900 BCE) तथा उत्तर भारत में हस्तिनापुर और तक्षशिला (1000 - 200 BCE) में काँच की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। काँच और ग्लेश को रंगने वेफ लिए धतुओं वेफ ऑक्साइड मिलाए जाते थे।

भारत में ताँबे के धतु-कर्म का प्रारंभ उपमहाद्वीप में ताम्र युग वेफ प्रारंभ से ही शुरू हो गया था। अनेक पुरातात्विक प्रमाण हैं जिनसे इस मत को बल मिलता है कि ताँबे और लोहे क निष्कर्षण की तकनीक भारत में ही विकसित हुई थी।

ऋगवेद वेफ अनुसार 1000 - 400 BCE में चर्म संस्करण और कपास को रंगने का कार्य होता था। उत्तर भारत के काली पॉलिश वाले मिट्टी वेफ बर्तनों की सुनहरी चमक को दोहराया नहीं जा सका और यह अब भी एक रासायनिक रहस्य है। इन बर्तनों से पता चलता है कि भट्टियों का ताप कितनी दक्षता से नियंत्रित किया जाता था। कौटिल्य वेफ अर्थशास्त्रा में समुद्र से लवण प्राप्त करने का वर्णन है।

पुराने वैदिक साहित्य में वर्णित अनेकों पदार्थ और कथन आधुनिक विज्ञान की खोजों से मेल खाते हैं। ताँबे बर्तन, लोहा, सोना, चाँदी वेफ आभूषण और टेराकोटा तश्तरियाँ तथा चित्राकारी किए हुए मिट्टी वेफ सलेटी बर्तन, उत्तर भारत के बहुत से पुरातत्व स्थलों से प्राप्त हुए हैं। सुश्रुत संहिता में क्षारकों का महत्व समझाया गया है। चरक संहिता में पुरातन काल वेफ उन भारतीयों का उल्लेख है जिन्हें सल्फर यूरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल और ताँबे, टिन और जस्ते वेफ ऑक्साइड ताँबे, जस्ते और लोहे वेफ सल्पेफट एवं सीसे तथा लोहे वेफ कार्बोनेट बनना आता था।

रसोपनिषद में बारूद बनने का विवरण है। तमिल साहित्य में भी गंध्क, चारकोल साल्टपीटर ;पोटैशियम नाइट्रेट, पारा और कपूर वेफ उपयोग से पटाखे बनने का विवरण है।

नागार्जुन एक महान भारतीय वैज्ञानिक हुए हैं। वह एक विख्यात रसायनज्ञ, ऐल्वेफमिस्ट तथा धतुविज्ञानी थे। उनकी रचना रसरत्नाकर पारे वेफ यौगिकों से संबंध्ति है। उन्होंने धातुओं, जैसे सोना, चाँदी, टिन और ताँबे वेफ निष्कर्षण की भी विवेचना की है। 800 ब्म् के आस -पास एक पुस्तक रसारनवम् आई। इसमें विभिन्न प्रकार की भट्टियों, अवनों और व्रूफसिबलों वेफ अलग-अलग उद्देश्यों वेफ लिए उपयोगों की विवेचना की गई है। इसमें उन विधियों का विवरण दिया है जिनसे ज्वाला वेफ रंग से धातु को पहचाना जाता था।

कक्रपाणि ने मर्क्यूरिक सल्पफाइड की खोज की। साबुन की खोज का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। उन्होंने साबुन बनाने के लिए सरसों का तेल और कुछ क्षार उपयोग किए। भारतीयों ने अट्ठारहवीं शताब्दी CE में साबुन बनाना प्रारंभ कर दिया था। साबुन बनाने वेफ लिए अरंड का तेल महुआ वेफ बीज और कैल्सियम कार्बोनेट का उपयोग किया जाता था।

अजन्ता और ऐलोरा की दीवारों पर पाई गई चित्राकारी, जो अनेकों वर्ष बाद भी नई जैसी लगती है, पुरातन भारत में विज्ञान का ज्ञान शिऽर पर होना सिद्ध करती हैं। वराहमिहिर की वृहत संहिता जिसे छठी शताब्दी CE में लिख गया था एक प्रकार का विश्वकोश है। इसमें दीवारों, छतों, घरों और मंदिरों पर लगाए जाने

वाले लसदार पदार्थ को बनाने की जानकारी है। इसे केवल पौधें, पफलों, बीजों और छालों वेफ रस से बनाया जाता था जिन्हें उबाल कर गाढ़ा करने वेफ बाद उनमें कई प्रकार के रेजिन मिलाए जाते थे। ऐसे पदार्थों का वैज्ञानिक तरीवेफ से परीक्षण करने वेफ पश्चात् उनकी उपयोगिता का आकलन करना रोचक होगा।[2]

अथर्ववेद (1000 BCE) जैसे कई प्रतिष्ठित ग्रंथों में रंजकों का वर्णन है जिनमें हल्दी, मदेर, सूरजमुखी, हरताल, करमीज और लाख शामिल हैं। रंगने वेफ गुण वाले कुछ अन्य पदार्थ जो उपयोग में आते थे वह थे कम्पलसिका, पातंगा, जटुका। वराहमिहिर की वृहत संहिता में इत्रा तथा कान्तिवर्ध्कों का भी उल्लेख है। वेफश रंगने का रंग बनाने वेफ लिए पौध, जैसे नील तथा खनिज जैसे लौह चूर्ण, काला लोहा या स्टील तथा भारत में इस अवधरणा का आगमन कि द्रव्य अविभाज्य कणों से बना होता है, BCE की अन्तिम सदी में दार्शनिक चिन्तन वेफ एक भाग की तरह हुआ। 600 BCE में जन्मे आचार्य कणाद जिनका वास्तविक नाम कश्यप था, 'परमाण्विक सिद्धांत' के प्रस्तावक थे। उन्होंने अति सूक्ष्म अविभाज्य कणों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इन कणों को उन्होंने परमाणु के समतुल्यद्ध नाम दिया। उन्होंने 'वैषेशिका सूत्रा' पुस्तक लिखी। उनवेफ अनुसार सभी पदार्थ छोटी इकाइयों का समूह हैं जिन्हें परमाणु कहते हैं। यह अनादि-अनन्त, अविभाज्य, गोलाकार, अति-गुणग्राही तथा मूल अवस्था में गतिशील होते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस अवेफली इकाई का बोध मनुष्य की किसी भी ज्ञानेन्द्री द्वारा नहीं होता। कणाद ने यह भी बताया कि परमाणु अनेक प्रकार वेफ होते हैं और पदार्थों वेफ विभिन्न वर्गों के अनुसार इनमें भी भिन्नता होती है। उन्होंने कहा कि अन्य संयोजनों वेफ अतिरिक्त दो या तीन परमाणु भी संयोजित हो सकते हैं। उन्होंने इस सिद्धांत की अवधरणा जॉन डाल्टन (1766 - 1844) से लगभग 2500 वर्ष पूर्व दे दी थी।

चरक संहिता भारत का सबसे पुराना आयुर्वेद का ग्रंथ है। इसमें रोगों वेफ उपचार का विवरण दिया है। कणों वेफ आकार को छोटा करने की संकल्पना की विवेचना चरक संहिता में स्पष्ट रूप से की गई है। कणों वेफ आकार को अत्यध्कि छोटा करने को नैनोटेक्नोलौजी कहते हैं। चरक संहिता में धतुओं की भस्मों का उपयोग रोगों वेफ उपचार में किए जाने का वर्णन है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि भस्मों में धतुओं वेफ नैनो कण होते हैं।

ऐल्किमी के क्षीण हो जाने वेफ पश्चात्, औषध् रसायन स्थिर अवस्था में पहुँच गया परंतु बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रा वेफ आने और उसका प्रचलन होने से यह भी क्षीण हो गया। इस प्रगतिरोध्क काल में भी आयुर्वेद पर आधरित औषध-उद्योग का अस्तित्व बना रहा, परंतु यह भी धीरे-धीरे क्षीण होता गया। नयी तकनीक सीखने और अपनाने में भारतीयों को 100 - 150 वर्ष का समय लगा। इस समय बाहरी उत्पाद देश में प्रवेश कर गए। परिणामस्वरूप देशज पारंपरिक तकनीक धीरे-धीरे कम होती गई। भारतीय पटल पर आधुनिक विज्ञान उन्नीसवीं शताब्दी वेफ अंतिम भाग में उभरा। उन्नीसवीं शताब्दी वेफ मध्य तक यूरोपीय वैज्ञानिक भारत में आने लगे तथा आधुनिक रसायन का विकास होने लगा।

उपरोक्त वर्णन से आपने जाना कि रसायन द्रव्य वेफ संघटन, संरचना, गुणधर्म तथा परस्पर क्रिया से संबंधित है। पदार्थ वेफ मौलिक अवयवों-परमाणुओं तथा अणुओं वेफ माध्यम से अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है। यही कारण है कि रसायन विज्ञान 'परमाणुओं तथा अणुओं का विज्ञान' कहलाता है। क्या हम इन कणों (परमाणु एवं अण) को देख सकते हैं, उनका भार माप सकते हैं और उनकी उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं? क्या किसी पदार्थ की निश्चित मात्रा में परमाणुओं और अणुओं की संख्या ज्ञात कर सकते हैं और क्या हम इन कणों की संख्या एवं उनवेफ द्रव्यमान वेफ मध्य मात्रात्मक संबंध प्राप्त कर सकते हैं? इस एकक में हम ऐसे ही कुछ प्रश्नों के उत्तर जानेंगे। इसवेफ अतिरिक्त हम यहाँ पर यह भी वर्णन करेंगे कि किसी पदार्थ वेफ भौतिक गुणों को उपयुक्त इकाइयों की सहायता से मात्रात्मक रूप से किस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

रसायन विज्ञान का महत्त्व

विज्ञान में रसायन विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो प्राय: विज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। रसायन विज्ञान के सिद्धांतों का व्यावहारिक उपयोग विभिन्न क्षेत्रों जैसे मौसम विज्ञान, मस्तिष्क की कार्यप्रणाली, वंफप्यूटर प्रचालन तथा उर्वरकों, क्षारों, अम्लों, लवणों, रंगों, बहुलकों, दवाओं, साबुनों, अपमार्जकों, धातुओं, मिश्र धतुओं आदि सहित नवीन सामग्री वेफ निर्माण में लगे रासायनिक उद्योगों में होता है।

रसायन विज्ञान राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव वेफ जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने हेतु भोजन, स्वास्थ्य- सुविध की वस्तुएँ और अन्य सामग्री की आवश्यकताओं को पूरा करने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। विभिन्न उर्वरकों, जीवाणुनाशकों तथा कीटनाशकों की उत्तम किस्मों का उच्च स्तर पर उत्पादन इसवेफ कुछ उदाहरण हैं। रसायन विज्ञान प्रावृफतिक स्रोतों से जीवनरक्षक औषधें वेफ निष्कर्षण की विध्याँ बताता है और उनवेफ संश्लेषण को संभव बनाता है। ऐसी औषधें वेफ उदाहरण हैं, वैफन्सर की चिकित्सा में प्रभावी औषध्याँ (जैसे-सिसप्लाटिन तथा टैक्सोल) और एड्स से ग्रस्त रोगियों वेफ उपचार हेतु उपयोग में आनेवाली औषधि एजिडोथाईमिडिन (AZT)। रसायन विज्ञान राष्ट्र वेफ विकास में भी अत्यध्कि योगदान देता है। रासायनिक सिद्धांतों की बेहतर जानकारी होने वेफ बाद अब विशिष्ट चुंबकीय, विद्युतीय और प्रकाशीय गुणधर्मयुक्त पदार्थ संश्लेषित करना संभव हो गया है, जिसवेफ फलस्वरूप अतिचालक सिरेमिक, सुचालक बहुलक, प्रकाशीय पफाइबर (तंतु) जैसे पदार्थ संश्लेषित किए जा सकते हैं। रसायन विज्ञान ने उपयोगी वस्तुएँ

जैसे अम्ल, क्षार, रंजक, बहुलक इत्यादि बनाने वाले उद्योग स्थापित करने में सहयता की है। यह उद्योग राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और रोजगार उपलब्ध कराते हैं।[3]

रसायन विज्ञान का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह जीवन वेफ सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। रसायनज्ञ पदार्थों की संरचना, गुणधर्मों और परिवर्तनों वेफ बारे में अध्ययन करते हैं। सभी पदार्थ द्रव्य द्वारा बने होते हैं। वे तीन भौतिक अवस्थाओंदृठोस, द्रव और गैस वेफ रूप में पाए जाते हैं। इन तीनों अवस्थाओं में घटक-कणों की व्यवस्था भिन्न होती है। इन अवस्थाओं वेफ अभिलाक्षणिक गुणधर्म होते हैं। द्रव्य को तत्त्वों, यौगिकों और मिश्रणों वेफ रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। किसी तत्त्व में एक ही प्रकार वेफ कण होते हैं, जो परमाणु या अणु हो सकते हैं। जब दो या अध्कि तत्त्वों वेफ परमाणु निश्चित अनुपात में संयुक्त होते हैं, तो यौगिक प्राप्त होते हैं। मिश्रण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं और हमारे आसपास उपस्थित अनेक पदार्थ मिश्रण हैं। जब किसी पदार्थ वेफ गुणधर्मों का अध्ययन किया जाता है, तब मापन आवश्यक हो जाता है। गुणधर्मों को मात्रात्मकत: व्यक्त करने वेफ लिए मापन की पति और मात्राकों की आवश्यकता होती है, जिनमें राशियों को व्यक्त किया जा सवेफ। मापन की कई पद्धतियाँ हैं, जिनमें अंग्रेशी पद्धति और मीटरी पद्धति का उपयोग विस्तार में किया जाता है। परंतु वैज्ञानिकों ने पूरे विश्व में एक जैसी पति जिसे, SI पद्धति' कहते हैं, का सर्वमान्य प्रयोग करने की सहमति बनाई। चूँकि मापनों में आँकड़ों को रिकॉर्ड करना पड़ता है और इसमें सदैव वुफछ न वुफछ अनिश्चितता बनी रहती है, इसलिए आँकड़ों का प्रयोग ठीक से करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। रसायन विज्ञान में राशियों वेफ मापन में 10दृ31 से 1023 जैसी संख्याएँ आती हैं। इसलिए इन्हें व्यक्त करने वेफ लिए वैज्ञानिक संवेफतन का उपयोग किया जाता है। प्रेक्षणों में सार्थक अंकों की संख्या को बताकर अनिश्चितता का ध्यान रखा जा सकता है। विमीय विश्लेषण से मापी गई राशियों को मात्राकों की एक पद्धति से दूसरी पति में परिवर्तित किया जा सकता है। अत: परिणामों को एक पद्धति के मात्राकों से दूसरी पद्धति के मात्राकों में परिवर्तित किया जा सकता है।

संदर्भ

1 G.A. Somerfield Students' Chemical Information Project Chemy Britain (1968)

2 F.A. Tate Progress toward a computer-based chemical information system Chem. Engng News (1967)

3 W.C. Davenport CAS computer-based information services Datamation (1968)

दैनिक जीवन में गणित का महत्व

डॉ० अजय सिंह

सहायक आचार्य, गणित विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया, उ0प्र0

शिक्षा के क्षेत्र में गणित का अत्यधिक महत्व है। गणित का हमारे दैनिक जीवन में गणित के संबंध है। आधुनिक युग में सभ्यता का आधार गणित ही है। मातृभाषा के अलावा ऐसा कोई विषय नहीं है जो दैनिक जीवन में इतना अधिक संबंधित हो। गणित को व्यापार का प्राण एवं विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है।

वर्तमान समय में गणित को विद्यालय के पाठ्य विषयों में विशेष स्थान प्रदान किया गया है। इसका प्रमुख कारण है कि गणित विद्यार्थी को अपनी जीविका कमाने के योग्य बनाने के साथ वो उसके ज्ञान में वृद्धि करता है तथा जीवन के विभिन्न कार्यों को सीखने और करने में सहायता करता है।

गणित का अर्थ

'गणित' शब्द बहुत प्राचीन है तथा वैदिक साहित्य में इसका बहुत ही ज्यादा उपयोग किया गया है। गणित शब्द का शाब्दिक अर्थ है- "वह शास्त्र जिसमें गणना की प्रधानता हो।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गणित अंक, आधार, चिन्ह आदि संक्षिप्त संकेतों का वह विधान है जिसकी सहायता से परिमाण दिशा तथा स्थान का बोध होता है।

गणित विषय का प्रारंभ गिनती से ही हुआ है और संख्या पद्धति उसका एक विशेष क्षेत्र है, जिसकी सहायता से गणित के अन्य शाखाओं का विकास किया गया है। प्राचीन भारत में गणित में संख्याएं, गणना, ज्योतिष एवं क्षेत्र गणित सम्मिलित थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि हिंदू गणित के अंतर्गत परीकर्म, व्यवहार क्षेत्र गणित, राशि, भिन्न संबंधी परिकर्म, वर्ग, घन, चतुर्घात तथा विकल्प यानी क्रमचय और संचय आदि का ज्ञान रखते थे।

प्राचीन काल से ही शिक्षा में गणित का सदा उच्च स्थान रहा है। गणित के बारे में तो जैन गणितज्ञ श्री महावीर आचार्य जी ने अपनी सीगणित सार संग्रह' नामक पुस्तक में अत्यंत प्रशंसा की है। गणित सार संग्रह में वह लखते हैं, "लौकिक, वैदिक तथा सामाजिक जो भी व्यापार हैं उन सब में गणित का प्रयोग है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र पाकशास्त्र, गंधर्वशास्त्र, नाट्य शास्त्र, आयुर्वेद, भवननिर्माण शास्त्र आदि विषयों में तथा छंद, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, ललित कलाओं आदि समस्त विधाओं में गणित अत्यंत उपयोगी है। सूर्य आदि ग्रहों की गति ज्ञात करने में, दिशा तथा समय ज्ञात करने में, चंद्रमा के परिलेख आदि में गणित का प्रयोग करना पड़ता है। द्वीपों, समुद्रों, पर्वतों की संख्या, लोक अंतर्लक, ज्योतिरलोक, सभा भवनों एवं गुंबदकार मंदिरों के परिमाण तथा अन्य बातें गणित की सहायता से जानी जाती हैं।"[1]

नेपोलियन जैसे महान शासक एवं राजनीतिज्ञ के कथन अनुसार- "गणित की उन्नति के साथ देश की उन्नति का घनिष्ठ संबंध है। "प्लेटो ने तो अपनी पाठशाला के द्वार पर यहां तक लिख रखा था- "जो व्यक्ति रेखागणित को नहीं समझते वह पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करने के धेय से प्रवेश न करें।

गणित की विभिन्न परिभाषाएं

- मार्शल एच स्टोन के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित कैसी अमूर्त व्यवस्था का अध्ययन है जोकि अमूर्त तत्वों से मिलकर बनी है इन तत्वों को मूर्त रूप से परिभाषित किया गया है।"
- बरटेंड रसैल के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित ऐसा विषय है जिसमें यह भी नहीं जानते कि हम किसके बारे में बात कर रहे हैं और ना ही यह जान पाते हैं कि हम जो कह रहे हैं वह सत्य है"
- गैलीलियों के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित वह भाषा है जिसमें परमेश्वर ने संपूर्ण जगत के ब्रह्मांड को लिख दिया है।"
- लॉक के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित वह मार्ग है जिसके द्वारा बच्चों के मन या मस्तिष्क में तर्क करने की आदत स्थापित होती है"।
- गौस के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित विज्ञान की रानी है।"
- बेल के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित को विज्ञान का नौकर माना जाता है।"
- गिब्स के अनुसार गणित की परिभाषा, " गणित एक भाषा है।"
- बेकन के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित सभी विज्ञानों का मुख्य द्वार एवं कुंजी है।"
- कांट के अनुसार गणित की परिभाषा, "एक प्राकृतिक विज्ञान केवल उसी स्थिति में विज्ञान है जब तक इसका स्वरूप गणितीय है।"

- बार्थलॉट के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित सभी वैज्ञानिक शोधों का एक अति महत्वपूर्ण उपकरण है।"
- कॉमेट के अनुसार गणित की परिभाषा, "वह सभी वैज्ञानिक शिक्षा जो गणित को साथ लेकर नहीं चलती अनिवार्यत: अपने मूल रूप से दोषपूर्ण है।"
- होगमेन के अनुसार गणित की परिभाषा, "गणित सभ्यता और संस्कृति का दर्पण है।"

गणित के अर्थ के संबंध में प्रमुख बिंदु

- गणित घटनाओं का विज्ञान है
- गणित स्थान तथा संख्याओं का विज्ञान है।
- गणित माप तौल मात्रा तथा दिशा का विज्ञान है
- गणित में मात्रात्मक तथ्यों और संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
- गणित आगमनात्मक तथा प्रायोगिक विज्ञान है
- गणित विज्ञान की क्रम बद्ध संगठित तथा यथार्थ शाखा है।
- गणित के अध्ययन से मस्तिष्क में तर्क करने की आदत पनपती है।
- गणित व विज्ञान है जिसमें आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- गणित तार्किक विचारों का विज्ञान है।

गणित की प्रकृति

प्रत्येक विषय को पढ़ाने की कुछ उद्देश्य तथा उसकी संरचना होती है जिसके आधार पर उस विषय की प्रकृति निश्चित होती है। गणित विषय की संरचना अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक मजबूत तथा शक्तिशाली होती है जिसके कारण गणित अन्य विषयों की तुलना में अधिक स्थाई एवं महत्वपूर्ण है।

किसी विषय की संरचना जैसे-जैसे कमजोर होती जाती है उस विषय की सत्यता मान्यता तथा पूर्व कथन की क्षमता भी उसी क्रम में घटती जाती है।किसी निश्चित ढांचे या संरचना के आधार पर प्रत्येक विषय की प्रकृति का निर्धारण किया जाता है तथा उसको पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाता है। गणित विषय की प्रकृति एक अलग प्रकृति है जिसके आधार पर हम उसकी तुलना अन्य विषयों से कर सकते हैं।

किन्ही दो या दो से अधिक विषयों की तुलना का आधार पूर्ण विषय की प्रकृति ही है जिसके आधार पर हम उस विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। गणित की प्रकृति को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा भरी बातें समझा जा सकता है।

- गणित के ज्ञान का आधार हमारी ज्ञानेंद्रियां हैं।
- गणित में अमूर्त प्रत्यय को मूर्त रूप में परिवर्तित किया जाता है साथ ही उसकी व्याख्या भी की जाती है।
- गणित में संख्याएं, स्थान, दिशा तथा मापन या माप तौल का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।
- गणित के अध्ययन के माध्यम से प्रत्येक ज्ञान तथा सूचना स्पष्ट होती है तथा उसका एक संभावित उत्तर निश्चित होता है।
- गणित के अधीन से बालकों में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का विकास होता है।
- गणित की अपनी भाषा है। यहां भाषा से तात्पर्य गणितीय पदों, गणितीय प्रत्यय सूत्र सिद्धांत तथा संकेतों से है जो विशेष प्रकार के होते हैं तथा गणित की भाषा को जन्म देते हैं।
- गणित के ज्ञान का आधार निश्चित होता है जिससे उस पर विश्वास किया जा सकता है।
- गणित के माध्यम से विद्यार्थियों में स्वस्थ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है।
- गणित का ज्ञान यथार्थ, क्रमबद्ध, तार्किक तथा अधिक स्पष्ट होता है जिससे उसे एक बार ग्रहण करके आसानी से भुलाया नहीं जा सकता।
- गणित के नियम, सिद्धांत तथा सूत्र सभी स्थानों पर एक समान होते हैं जिससे उसकी सत्यता की जांच किसी भी समय तथा किसी भी स्थान पर की जा सकती है।
- गणित के अध्ययन से आगमन तथा निगमन और सामान्य करण की योग्यता विकसित होती है।
- गणित में संपूर्ण वातावरण में पाई जाने वाली वस्तुओं के परस्पर संबंध तथा संख्यात्मक निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिससे प्रकृति प्रेम भी बढ़ता है।
- गणित के विभिन्न नियमों सिद्धांतों सूत्रों आदि ने संदेह की संभावना नहीं रहती है।
- गणित की भाषा से परिभाषित उपयुक्त तथा स्पष्ट होती है।
- गणित के ज्ञान का उपयोग विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा अन्य विषय के अध्ययन में किया जाता है।
- गणित की सूचनाओं को आधार मानकर संख्यात्मक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

गणित का महत्व

हमारे चारों ओर का जीवन तथा हमारे दिन प्रतिदिन का व्यवहार पूर्ण रूप से गणित से भरा हुआ है। प्रत्येक बात को समझाने के लिए हमें थोड़ी बहुत गणित की आवश्यकता पड़ती है। दैनिक जीवन में हमें घर बाहर, बाजार, क्रय विक्रय, आय व्यय

आदि सभी गणित के ज्ञान की आवश्यकता होती है। गणित के बिना हमारा जीवन गूंगे, बहरे तथा अंधे संसार के समान हो जाएगा। गणित के ज्ञान से रहित व्यक्ति न तो परिवार को सुचारू रूप से चला सकता है और न ही समाज में कुछ कर सकता है। यदि छात्रों को आरंभ से ही प्रारंभिक गणित का ज्ञान नहीं कराया जाता तो वे अपने जीवन में अनुभवों को समझने समझाने में असमर्थ रहे होते।[2]

निश्चिता और आत्मनिर्भरता की दृष्टि से गणित का महत्त्व

गणित ऐसा विषय है जो व्यक्ति को निश्चितता सिखाता है। गणित छात्रों में दृढ़ता तथा आत्मविश्वास उत्पन्न करता है। सत्य अथवा असत्य की शुद्धि और अशुद्ध की जांच गणित के माध्यम से ही होती है। गणित छात्रों में आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास उत्पन्न करता है। इसी कारण पाठ्यक्रम में गणित को इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त

प्रकृति अध्ययन के लिए गणित का महत्व

गणित मानव मस्तिष्क की भांति प्रकृति में भी है। गणित प्रकृति की सबसे बड़ी विशेषता परिवर्तन एवं विचरण है। गणित एक कलन है जो कि विचरण का अध्ययन करती है। इसी कारण कलन को प्रकृति का गणित कहा जाता है। प्राकृतिक घटनाओं जैसे सूर्य, चंद्रमा, तारों के निकलने तथा छिपने का समय, उसकी स्थिति एवं दिशा आदि के ज्ञान में गणित विशेष उपयोगी सिद्ध होता है।

गणित का सौंदर्यात्मक महत्व

गणित का सौंदर्य सरलता पूर्णता आदि में निहित होता है। यंग ने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में लिखा है "गणित का अध्ययन उचित तथा स्थूल रूप से किया जाता है तो छात्र उसकी सौंदर्य का आनंद लेने में समर्थ होते हैं।"

गणित का बौद्धिक महत्व

मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए गणित शिक्षण का अत्यंत महत्व है। जैसे ही गणित की कोई समस्या आपके समक्ष आती है तो आपका मस्तिष्क समस्या को समझने तथा उसे हल करने में क्रियाशील हो जाता है। गणित की हर समस्या के लिए मानसिक प्रयास की आवश्यकता होती है तथा उस के माध्यम से छात्र की विचार करने, तर्क करने, विश्लेषण करने तथा विवेचना करने की शक्तियों का विकास होता है।

नियमित तथा विविधता की दृष्टि से गणित का महत्व

गणित ऐसा विषय है जिसकी शिक्षण से छात्रों में अनियमितता एवं विधिवत रूप से कार्य करने का अभ्यास होता है क्योंकि जब तक गणित में क्रियाओं को नियम तथा विधि पूर्वक हल नहीं किया जाता तब तक शुद्ध परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार गणित नियमित रूप से तथा विधिवत रूप से कार्य करने की क्षमता छात्रों में उत्पन्न करता है।

शुद्धता तथा स्पष्टता में गणित का महत्व

स्पष्टता तथा शुद्धता की दृष्टि से गणित एक ऐसा विषय है जिसकी किसी अन्य विषय से समानता नहीं की जा सकती। अधिकतर अन्य सभी विषयों में अनुमानों से काम चल जाता है परंतु गणित में अनुमानों का कोई स्थान नहीं है। अत: गणित से छात्र को शुद्धता का भी ज्ञान होता है।

आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति में गणित का महत्व

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति भी विज्ञान की ही देन है परंतु विज्ञान भी गणित के बिना नहीं चल सकता। इसी कारण से गणित का पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान है। आर्थिक क्षेत्र में व्यवसाय, उद्योग, यातायात, कृषि व्यापार आदि में से कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो कि गणित के बिना चल सके। स्वयं विज्ञान भी गणित पर आधारित है। समाज में प्रगति के लिए भी गणित का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

गणित का अंतरराष्ट्रीय महत्व

गणित का अध्ययन विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग की भावना की वृद्धि करता है। सभी देशों के गणितज्ञ वैज्ञानिक किसी नए नियम सिद्धांत अथवा शोध कार्य पर परस्पर मिलकर विचार विनिमय करते हैं और उसे संपूर्ण मानव जाति के हित के लिए उपयोग में लाते हैं।

गणित का उपयोगात्मक महत्व

व्यवहारिक जीवन में गणित की उपयोगिता अन्य विषयों की तुलना में बहुत अधिक है। दैनिक जीवन में क्रय-विक्रय माप तोल जोड़ना घटाना आए व्याधि का लेखा-जोखा आदि सभी व्यक्तियों को करना पड़ता है। इस प्रकार घर, दफ्तर, व्यापार, सभी जगह गणित की आवश्यकता पड़ती है। अत: गणित संबंधी घटनाओं के बिना दैनिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त बिंदु के आधार पर हम गणित की प्रकृति को समझ सकते हैं तथा निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वास्तव में गणित की संरचना अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक स्वर्ण है जिसके आधार पर विद्यालय शिक्षा में गणित ज्ञान की आवश्यकता दृष्टिगोचर होती है।[3]

रोजर बेकन ने ठीक ही कहा है, "गणित सभी विज्ञानों का सिंह द्वार और कुंजी है।"

गणित की प्रकृति के संबंध में स्कॉटिश दार्शनिक हैमिल्टन ने लिखा है- "नियमों सिद्धांतों एवं उपकरणों का प्रयोग एवं प्रसार सर्वव्यापी हो गया है जिनकी आधारशिला गणित ही है। वर्तमान

समय में इंजीनियरिंग तथा तकनीकी व्यवसायियों को अधिक महत्वपूर्ण तथा पुत्र प्रतिष्ठित माना जाता है। इन सभी विषयों का ज्ञान एवं प्रशिक्षण गणित के द्वारा ही संभव हो सका है। लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना का आधार भी गणित ही है।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमाने के लिए गणित के ज्ञान की आवश्यकता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य ही होती है तभी वह अपना जीवन यापन कर सकता है तथा अपने जीवन को सरल और सरस बना सकता है।"

संदर्भ

1 Buckley, P.A., & Ribordy, S.C. (1982, May). *Mathematics anxiety and the effects of evaluative instructions on math performance.* Paper presented at the Midwestern Psychological Association, Minneapolis, MN.

2 Buxton, L. (1981). *Do you panic about maths? Coping with maths anxiety.* London: .. Heinemann Educational Books.

3 Sandman, R. (1979). Mathematics Attitude Inventory [Assessment test]. Minneapolis, MN: Minnesota Research and Evaluation Center.

गणित शिक्षण के विभिन्न उद्देश्य

राजीव कुमार शर्मा

सहायक आचार्य, गणित विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया, उ0प्र0

शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाया जाता है तथा विद्यार्थियों का मानसिक, नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास किया जाता है. उक्त विकास में शिक्षा संस्थानों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि विद्यार्थी का अधिकांश समय शिक्षा संस्थानों में ही व्यतीत होता है. हालांकि विद्यार्थियों के विकास में परिवार, समाज, विभिन्न संस्थानों, सोशल मीडिया तथा संगठनों का योगदान भी होता है जिनके सम्पर्क में विद्यार्थी आता है.

शिक्षा संस्थानों में विभिन्न विषयों के अध्यापन का अपना अपना महत्त्व तथा उपयोगिता है. प्रत्येक विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करने का एक मकसद होता है. प्रत्येक विषय का अध्ययन करके उस मकसद को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखा जाता है. इन विषयों को पढ़ाने के लिए दोनों पक्षों पर ध्यान दिया जाता है. सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष. यदि हम सैद्धान्तिक पक्ष पर ही अधिक बल देते हैं तो विद्यार्थी को जीवन में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. इसलिए विद्यार्थी के दोनों पक्षों पक्षों सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष के विकास पर बल देना चाहिए।[1]

गणित शिक्षा की अनिवार्यता

अधिकांश विद्यार्थी मैट्रिक पास करके जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, उनको जीविकोपार्जन हेतु दूकानों, कुटीर उद्योग, किर्यालयों, फैक्ट्रियों, बैंकों तथा विभिन्न व्यवसायों में काम करना पड़ता हैं. आज का युग तकनीकी युग है तथा हस्त कार्य के बजाए मशीनों, कम्प्यूटरों तथा तकनीकी के इस्तेमाल का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. हर व्यवसाय में संख्याओं, लाभ-हानि, गुणा-भाग, प्रतिशत, ब्याज तथा संख्याओं की गणना करने की आवश्यकता होती है. यदि विद्यार्थी गणित में पिछड़ा हुआ रह जाता है तो ऐसे विद्यार्थी को जीवन में नीचा देखना पड़ता है. इस प्रकार के विद्यार्थी को किसी व्यवसाय काम देने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता है. किसी भी प्रतियोगिता परीक्षा में गणित, मानसिक क्षमता की परीक्षा ली जाती है. बहुत से माता-पिता, अभिभावक यह सोचते हैं कि विद्यार्थी को इंजीनियर, डाक्टर, आई. ए. एस. , आर. ए. एस. अथवा इसी प्रकार के किसी व्यवसाय में तो भेजना नहीं है तो फिर गणित के ज्ञान की क्या आवश्यकता है?

उच्च प्राथमिक कक्षाओं से पहले विद्यार्थियों का मानसिक विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता है. उनको इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता है कि कौनसा विषय लें जो उनके लिए लाभदायक हो सकता है. प्राय: विद्यार्थी अपने सहयोगियों, सहपाठियों और मित्रों की सलाह से विषय चुन लेते हैं और आगे जाकर उनकों उसमें कठिनाईयां महसूस होती है तो उसे छोड़ देते हैं. गणित विषय को अनिवार्य करने पर ऐसी कठिनाई महसूस नहीं होती है. यो भी हर व्यवसाय में गणित के ज्ञान की आवश्यकता होती है. मजदूर से लेकर जोक मुश्किल से अपनी आजीविका चलाता है वित्तमंत्री तक जिसे करोड़ों रुपयों के बजट का अवलोकन करना पड़ता है और हिसाब रखना पड़ता है, बड़े बड़े उद्योगपतियों मुकेश अंबानी, अनिल अंबानी जो अरबों रूपयों का व्यवसाय करते हैं कहने का तात्पर्य यह है कि हर मनुष्य को गणित के ज्ञान की आवश्यकता होती है. इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गणित की आधुनिक युग में मनुष्य को कदम कदम पर आवश्यकता होती है और उसके लिए उपयोगी हो सकती है. अन्य सब विषयों की उपयोगिता गणित के बिना अधूरी है. इसलिए गणित का स्कूल के पाठ्यक्रम में सर्वाधिक महत्त्व है.[2]

गणित का व्यावहारिक जीवन में उपयोग

दैनिक जीवन में गणित का हरक्षेत्र में, हर छोटे-छोटे कार्यों में जैसे बाजार में कोई वस्तु के क्रय विक्रय करने, बस किराया चुकाने, मजदूरी चुकाने, दूध का हिसाब करने, रसोईघर के सामान को खरीदने, ब्याज की गणना, पुस्तकें खरीदते समय, बट्टा का हिसाब लगाने, वस्तुओं के खरीदने बेचने में लाभ-हानि की गणना करने में हर कहीं गणना करने की आवश्यकता होती है. किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले मनुष्य जैसे डाक्टर, वकील, इंजीनियर, व्यापारी, मजदूर, किसान, कंडक्टर, क्लर्क, व्याख्याता, शिक्षक, पटवारी, लेखपाल (एकाउन्टेन्ट) इत्यादि को कहीं न कहीं गणित के ज्ञान की आवश्यकता होती है. इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग में गणित ही मुख्य आधार है. विज्ञान की जितनी भी खोजें हुई हैं जैसे भाप का इंजन, कंप्यूटर, टेलीफोन, हवाई जहाज इत्यादि जितनी भी खोजें हुई है और उन अत्याधुनिक सुविधाओं का हम उपभोग कर रहें हैं उनमें गणित का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है.

व्यावहारिक जीवन में गणित की इतनी अधिक उपयोगिता समझते हुए य। यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों में गणित के प्रति रुचि जाग्रत करें और उसका सदुपयोग समझाएं. गणित को सरल विधि तथा प्रभावशाली ढंग से पढ़ाएं जिससे विद्यार्थियों का जीवन उन्नत और प्रगतिशील बनें. हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि

विद्यार्थी गणित शिक्षा संस्थानों में ही सीखता है वह हर कहीं घर-परिवार, समाज, विभिन्न संगठनों के अनुभव और आवश्यकता के आधार पर गणित का ज्ञान प्राप्त करता रहता है. अत: प्रत्येक शिक्षक का दायित्व है कि गणित को रुचिकर व उपयोगी बनाने में अपना सहयोग दें[3].

गणित शिक्षण के उद्देश्य:- गणित शिक्षण के निम्न उद्देश्य हो सकते है-

सांस्कृतिक उद्देश्य

समाज की संस्कृति और विरासत को आगे बढ़ाने में भी गणित का योगदान है. गणित के सहयोग से मनुष्य में तर्कशक्ति का विकास होता है. आज का युग तकनीकी और विज्ञान का युग है, बिना गणित के ज्ञान के मनुष्य विज्ञान और तकनीकी ज्ञान को समझ भी नहीं सकता है तथा उसे समाज के लिए उपयोगी नहीं बना सकता है. समाज में जो पुरानी रूढ़िवादी प्रथाएं हैं जैसे ऊँच-नीच, गरीबी, अज्ञानता, निरक्षरता, बाल विवाह, अन्धविश्वास इत्यादि को हटाने में गणित का महत्त्वपूर्ण योगदान है क्योंकि गणित के द्वारा तर्कशक्ति का विकास होता है. इसलिए हर परम्परा को तर्क के आधार पर देखता और समझता है तथा और तर्क के आधार पर अगर कोई परम्परा सही है तो ही उसे स्वीकार करता है और अपनाता है. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में भी गणित का महत्त्वपूर्ण योगदान है क्योंकि समस्याओं के समाधान में चिन्तन और तर्क शक्ति की आवश्यकता होती है. चिन्तन और तर्कशक्ति का सबसे अधिक विकास गणित और तर्कशास्त्र से सम्भव है और तर्कशास्त्र में भी गणित के नियमों और सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है. इस प्रकार वर्तमान समाज को आधुनिक, प्रगतिशील और व्यापक विचारधारा युक्त बनाने में गणित का अतुलनीय योगदान है.

गणित पढ़ाने के लिए तर्कशक्ति के विकास का ध्यान रखना सूचनाओं को याद रखने की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है. अत: शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थियों पर इस बात का फोकस रखना चाहिए कि उन्हें तथ्यों को याद कराने की बजाए उनमें तर्कशक्ति का विकास हो. केवल गणित का सैद्धांतिक ज्ञान व व्यावसायिक ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि गणित का ज्ञान इस प्रकार कराया जाना चाहिए कि वह समाज और देश की प्रगति में किस प्रकार तथा कैसे अधिक से अधिक उपयोगी हो सकता है. अर्थात् शिक्षा संस्थानों से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसके व्यवहार से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वह एक सभ्य तथा व्यावहारिक नागरिक है तथा समाज के लिए उपयोगी हो सकता है. वैज्ञानिक युग के लिए उसे गणित का अच्छा ज्ञाता होना चाहिए परन्तु समाज व देश के लिए भी उसे विज्ञान से अधिक उपयोगी और व्यावहारिक साबित करनेवाला होना चाहिए. आज कि शिक्षा का यह मुख्य उद्देश्य होना चाहिए.[4]

अनुशासनिक उद्देश्य

(1.) गणित शिक्षण से विद्यार्थियों में अनेक मानसिक और अनुशासनात्मक गुणों का विकास होता है. इसके अध्ययन से छात्र-छात्राओं में तर्क शक्ति, चिन्तन, वाद-विवाद, पक्ष-विपक्ष में अपनी बात रखना, सत्य का अन्वेषण करना, निर्णय लेना, क्रमबद्ध अध्ययन, कठिन परिश्रम करने की क्षमता, समय का पालन करना, गम्भीरता, धैर्य आदि गुणों का विकास होता है.

(2.) गणित के अध्ययन से छात्र-छात्राओं में ध्यान, धारणा, एकाग्रता की शक्ति का विकास होता है क्योंकि विद्यार्थी गणित के प्रश्नों को हल करने के प्रति समर्पित होता जाता है तो उसमें अनजाने में ही एकाग्रता, ध्यान जैसे गुणों का विकास हो जाता है जिसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बहुत तपस्या करके अर्जित करते हैं, गणित की समस्याओं का हल करना और बार-बार अभ्यास करना, कठिन से कठिन प्रश्नों को हल करना भी एक तपस्या ही है और तप से ही ध्यान और एकाग्रता जैसे गुण अर्जित होते हैं.

(3.) गणित से विवेक तथा कल्पना शक्ति भी जाग्रत होती है. गणित को हल करने में कल्पना शक्ति का सहारा लेना पड़ता है इसमें कई तरह की कल्पना की जाती है परन्तु की विशेष समस्या को हल करने के लिए कौनसी कल्पना उपयुक्त हो सकती है इसके लिए विवेक की आवश्यकता होती है. इससे विद्यार्थी में गणित के द्वारा विवेक और कल्पना शक्ति का विकास होता है.

(4.) गणित के सतत अभ्यास और अध्ययन से विद्यार्थियों में आत्म-विश्वास अर्थात् अपने आपको पहचानने, अपनी छिपी हुई प्रतिभा और शक्तियों को पहचानकर उन्हें प्रकट करने में सहयोग मिलता है. ज्यों ज्यों विद्यार्थी का आत्मविश्वास अर्थात् अपनी आत्मशक्ति, अपनी छिपी हुई योग्यता प्रकट होती जाती है त्यों त्यों उसे बाहरी सहायता जैसे पुस्तकीय ज्ञान तथा शिक्षकों पर निर्भरता कम होती जाती है तथा स्वयं के चिन्तन एवं मनन पर विश्वास बढ़ता जाता है, अपनी सोई हुई आत्म-शक्ति जाग्रत होती जाती है.

(5.) गणित के अध्ययन से कठिन परिश्रम और क्रमबद्धता का विकास होता है क्योंकि केवल परीक्षा के दिनों में रटकर पास करना मुश्किल है. अत: विद्यार्थी सत्र के आरम्भ से ही गणित में कठिन परिश्रम तथा नियमित अध्ययन करता है और इन्हीं गुणों के कारण गणित पर अच्छी पकड़ हो सकती है अर्थात् गणित का गहरा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है.

(6.) गणित से विद्यार्थी चरित्रवान और अध्यवसायी बनता है. दरअसल झूठ, पाखंड, आलस्य, बेईमानी जैसे दुर्गुण विद्यार्थी

में तभी प्रवेश करते हैं जब कि उसके पास फालतू समय होता है और फालतू समय को वह बुरे मनुष्यों के साथ व्यतीत करता है, गणित के विद्यार्थियों के पास हमेशा समय की कमी रहती है. जो भी समय रहता है उसे अध्ययन करने, सत्य का अन्वेषण और गणित पर अच्छा अधिकार रखने में व्यतीत करता है. इस प्रकार उसमें स्वतः ही चारित्रिक, अध्ययनशील, सत्यनिष्ठ जैसे मानवीय गुणों का विकास होता है.

(7.) गणित के विद्यार्थी में सादगी, सरलता का प्रवेश हो जाता है. दरअसल अच्छे कार्य को कठिन परिश्रम से करने पर उसमें सरलता व सादगी जैसे गुणों का विकास होता है. कठिन परिश्रम और कठिन समस्याएं मनुष्य को विनम्र व सरल बना देती हैं क्योंकि ज्यों-ज्यों हम कठिन समस्याओं का करते हैं तो हमारे अन्दर अहंकार मिटता जाता है और हम समझते हैं कि अभी तो मैंने बहुत कम ज्ञान प्राप्त किया है, सीखा है. गणित का ज्ञान तो अथाह समुद्र हैं औ उसमें गोते लगाते हैं तो उससे सरलता, सादगी और विनम्रता जैसे गुणों का विकास होता जाता है और हमारा अहंकार कम होता जाता है.[5]

मानसिक और बौद्धिक शक्ति का विकासः-

गणित की समस्याओं को हल करने के लिए विद्यार्थी को मस्तिष्क का प्रयोग करना पड़ता है. ज्यों ज्यों विद्यार्थी समस्याओं को हल करता है उसमें जिज्ञासा और लगन बढ़ती जाती है. नई दृ नई समस्याओं और कठिन से कठिन समस्याओं का समाधान करने से विद्यार्थी की मानसिक और बौद्धिक शक्ति का विकास होता हैं. परन्तु इसके लिए उसमें लगन व उत्साह का होना आवश्यक होता है. जब वह किसी समस्या को हल करने में असफल हो जाता है तथा बार-बार उसे हल करने का प्रयास करता है और इस सूत्र को याद रखता है "Try and Try again you will success at last" अर्थात् चरेवेति चरेवेति यानि आगे बढ़ते रहो तो इससे विद्यार्थी में मानसिक और बौद्धिक शक्ति का विकास होता.

निष्कर्ष

मानव जीवन में कोई कार्य क्यों किया जाता हैं? भारतीय दर्शन में उसे मोक्ष या आनंद कहा गया है. गणित का अध्ययन भी अपनी चरम सीमा पर प्राप्त होने लगता है तो उसे आनन्द की प्राप्ति होती है मोक्ष की प्राप्ति होती है. महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांग-योग में बताया है कि "यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग बताया है. समाधि ही आनंद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की अन्तिम स्थिति है. हमारा साधन कोई सा भी हो सकता है. गणित से भी आप ध्यान, धारणा, समाधि अर्थात् आनंद की स्थिति का अनुभव कर सकते हैं. यह समाधि की स्थिति का ज्ञान हम हमारे सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर ही बता रहें हैं क्योंकि व्यक्तिगत रूप से हमें समाधि का अभी अनुभव नहीं हुआ हैं. परन्तु हमारे ऋषियों-मुनियों ने यही मार्ग अपने अनुभव और तप के आधार पर बताया है और उसे मान लेने तथा मोक्ष की अवस्था, बोध की अवस्था का अनुभव करने, अपने अस्तित्व का बोध करने में ही हमारा कल्याण है और दूसरों का भी कल्याण है.

संदर्भ

1 National Council of Teachers ofMathematics. (1989). *Curriculum and evaluation standards for school mathematics*. Reston, VA: National Council of Teachers of Mathematics.

2 Perina, K. (2002). The sum of all fears. *Psychology Today, 35(6),* 19.

3 Furner, J. M., & Duffy, M. L. (2002). Equity for all students in the new millennium: Disabling math anxiety. *Intervention in School & Clinic, 38(2),* 67-75.

4 Hsiu-Zu H. (2000). The affective and cognitive dimensions of math anxiety: A crossnational study. *Journal for Research in Mathematics Education, 31(3),* 362-380.

5 Prescott, J. 0. (2001). We love math! *Instructor, 110,* 24-27, 76.

आदिवासी साहित्य विमर्श

डॉ० अभय नाथ सिंह

प्राचार्य, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय रकसा, रतसर, बलिया (उ0प्र0)

आदिवासी शब्द की उत्पति बहुत पहले हुई है, आदि का अर्थ है 'मूल' एवं निवासी का अर्थ 'निवास करने वाला' अर्थात किसी देश या स्थान विशेष पर निवास करने वाले प्राचीन एवं मूल निवासी को आदिवासी कहा जाता है। जनजातियाँ देश की मूलनिवासी थीं, जब आर्यों का अभी भारत में आगमन नहीं हुआ था। जनजातियों का आदिम जीवन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से समृद्ध और प्रगतिशील था। इस भूमि के वे आदिपुत्र थे, उनके बड़े-बड़े राज्य थे। विविधता से संपन्न एवं समृद्ध उनकी संस्कृति थी। परम्परा रूढ़ि और रहन-सहन के अनुरूप उनकी जीवन-शैली थी, धर्म और देवी-देवता थे। उनका अपना सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वज्ञान था। राज्य शासन की पद्धति थी प्रगल्भ बोली भाषाएँ थीं और इन बोली भाषाओं में लिपिबद्ध साहित्य भी था। आदिवासी विमर्श, साहित्य में चित्रित एक सामाजिक आन्दोलन है।

हमारे देश को आजादी मिले दशक बीत चुके हैं, किन्तु आदिजनों को आजादी नहीं मिली है। वे सुरक्षा और सम्मान से वंचित अपमानजनक जीवन जीने को अभिशप्त हैं। आदिवासी अस्मिता को लेकर विद्वानों में बहस छिड़ी है। एक वर्ग चाहता है कि, आदिजनों को उनके अलग-अलग अंचलों में स्वतंत्रतापूर्वक रहने दिया जाए तथा हमें उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए। लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि, उनके विकास का कोई प्रयत्न ही न किया जाए वरन् उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ा जाना चाहिए। महाराष्ट्र की आदिवासी कविता, अपनी भाषा के लिए अभी भी संघर्ष कर रही है। शहरी भाषा में बोलकर उच्चवर्गीय बनने का प्रयत्न करते समय उसका खालीपन जान लेने से, कवि अब अपनी बोली में लिख रहा है। सोनवणे की 'भिल्लारी', लक्ष्मण टोपले की 'वारली', रवी कुरसंगे की 'परधानी', उषा किरण की 'आमची गोंडी', डाहयाभाई बाठू की 'डंगी' ऐसे कितने नाम बताएँ? सूची लम्बी है। कविता केवल अपनी बोली में ही नहीं बोलती, वह तो अपना दुख वैश्विक होने की प्रतीति दिलाती है।

देश की शासन और प्रशासन व्यवस्था आदिवासी समाज को मुख्यधारा में निश्चित रूप में लाना चाहती है। परंतु वास्तविकता कुछ और है। इन्हें मुख्यधारा में लाने के शासन प्रशासन के प्रयास आदिवासियों को जीवनधारा से ही हटाने के षड़यंत्र में लगे हैं क्या? ऐसी आशंका होती है। भालचंद्र जोशी की कहानी 'पहाड़ों पर रात' इसी वास्तविकता का दस्तावेज है, जो आदिवासी विकास के नाम पर उनके साथ किए जा रहे छल-प्रपंच का वास्तव रूप बयान करती है। ''एक आवेदन पत्र लिखवाने के लिए भालचंद्र जोशी की इस कहानी के आदिवासी पात्र जिस तरह सरकारी कर्मचारियों के पास दौड़ते रहते है, उसे देखकर इस बात पर आशंका होती है कि उन्हें विकास के नाम पर मदद मिल पाएगी?. .... बूढ़ा आदिवासी जिस तरह दौड़-भाग करके अपना आवेदन पत्र लिखवाता है तथा सरकारी अधिकारियों के आश्वासन पर रोज जाकर दफ्तर के बाहर खड़ा हो जाता है, उसे देखकर यही लगता है कि प्रशासन के द्वारा उन्हें विकास एवं मुख्यधारा में लाने का भद्दा मजाक किया जा रहा है।'' बाद में वही प्रशासन व्यवस्था का एक और ढोंग देखने को मिलता है कि-''आदिवासी समाज सरकार द्वारा निर्धारित मुख्यधारा में शामिल होने से घबराते हैं।'' वस्तुतः शासन प्रशासन के इस ढोंग को आसानी से समझा जा रहा है।

आदिवासी विमर्श का औचित्य

अगर देखा जाय तो भारत का इतिहास विदेशी आक्रमणकारियों का इतिहास कहलाता है, जैसे कि आर्य ग्रीक, इरानी, कुषाण, शक, हूण, मुस्लिम तथा अंग्रेज आदि। वैसे तो मूल निवासियों की संख्या कहने को 85 प्रतिशत है, पर इतिहास में कहीं भी उसका कोई नामोनिशान नहीं है। इसका प्रमुख कारण हैं- यहाँ के अधिकतर इतिहासकार भी उसी अल्पसंख्यक वर्ग से संबंध रखते हैं, दूसरा वे शासक भी हैं, उन्होंने भारत के मूल निवासियों के गौरवशाली इतिहास को बिल्कुल ही आंखों से ओझल कर दिया है। ''आदिवासी जंगल में रहता है, और उसको कुछ दिन के बाद वहाँ से बेदखल कर दिया जाता है। क्योंकि उसके पास कोई सबूत या पट्टा ही नहीं है।''[1] ''उन्हें जो यह आदिम जाति का नाम दिया गया है, उससे ही उनकी वर्तमान दशा का पता चल जाता है। वे वनों में छोटी-छोटी झोपड़ियों में रहते हैं, वे जंगली फल, कंद मूल खाते हैं। उनकी सामाजिक अर्थव्यवस्था में खेती का नगण्य स्थान है। खाद्य सामग्री का वहाँ नितांत अभाव है। अतः उन्हें भरपेट भोजन नसीब नहीं होता। यह उनकी नियति है। वे लगभग पूर्ण नग्न अवस्था में रहते हैं।''[2] राजनैतिक उदासीनता, दरिद्रता और प्राकृतिक आपदायें, उनके कष्ट, सरकारी दस्तावेजों में आंकड़े संगोष्ठियों के विषय और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस के शीर्षक बनकर रह गए हैं। जनसंख्या के उस हिस्से की उपेक्षा कर उसे हाशिये पर डाल दिया गया है। जो पहले से ही उपेक्षा का शिकार है।

आदिवासियों ने किस तरह स्वयं के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा करते हुए, जंगल पर्वतों में प्रकृति की शरण में जीते रहने की शैली को अपनाए रखा। अपनी अनूठी आदिम संस्कृति की

अक्षुण्णता, मानवता के मूलभूत सरोकारों को तथाकथित मुख्य समाज की सभ्यता से प्रदूषित नहीं होने दिया तथा अपनी अनूठी आदिम संस्कृति, मानवता आदि को बचाए रखा।''[3] किन्तु आज विकास के नाम पर उन्हें उजाड़ा जा रहा है। ''अंग्रेजी सरकार ने भी रेलवे के निर्माण और युद्ध आदि के दौरान अपनी साम्राज्यवादी जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगलों का जबरदस्त दोहन किया। देश के कुल जंगल का साठ प्रतिशत क्षेत्र आदिवासी बहुल जिलों के अन्तर्गत आता है। नए वनों में भी आदिवासियों के अधिकारों को तय नहीं किया गया, इसीकारण ये लोग जंगल में अतिक्रमणकारी बन गए। यानि यह माना गया कि, ये लोग जंगल में गैरकानूनी रूप से कब्जा जमा रहे हैं।''[4]

पर्यावरण को सुरक्षित और सन्तुलित रखने वाली इन आदि जातियों को औद्योगिक विकास के जहरीले दंशों को झेलना पड़ रह है। मुनाफा कमाने के लिए गांव के गांव उजाड़े जा रहे हैं। बाजार की सुविधा तथा शहरी विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों को नीलाम किया जा रहा है, जो इन आदिवासियों के जीवन का मूलआधार है। भोली-भाली मासूम जनता इस चक्रव्यूह में फंसती जा रही है। ''आजाद भारत में अंग्रेजों से भी बढ़कर अपना ही प्रशासन आज जंगल में रह रहे आदिवासियों और दलितों के साथ गुलाम से भी बदत्तर व्यवहार कर रहा है, तो अब ये चुप कैसे रह सकते हैं, पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने 3 मई, 2002 को जो निर्देश दिया कि वन पर जो साढ़े बारह लाख हेक्टेयर भूमि अतिक्रमित है उसे समय सीमा के अन्दर 30 सितम्बर, 2002 तक खाली होना है।

यही आदेश देश के विभिन्न राज्यों के वन क्षेत्रों में वर्षो से रह रहे गांववासियों के लिए मौत का ऐलान था। कई राज्यों में घर उजाड़ना, खेती नष्ट करना, सीधे गोलीबारी द्वारा निर्मम हत्याएँ-यह कैसी आजादी? केरल, मध्यप्रदेश में गोली से लोगों को भूना गया, राजस्थान में खड़ी फसल नष्ट कर दी गई। कई राज्यों में हाथियों द्वारा घर ढहा दिये गये।''[5] ये स्थितियाँ सोचने को मजबूर करती हैं कि, ये मुल्क उनका भी है या नहीं, वे किसके प्रति और क्यूं वफादार हों। जहाँ सरकार भू-माफिया तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मिलीभगत से उनके जीवन का आधार ही समाप्त कर रही है। ये सब तिकड़मबाजी ऊपरी कमाई के लिए है। जिससे भोले-भाले आदिवासी अनजान है। ''उजाड़ने में कमाई और अब उसकी भरपाई के लिए वृक्षारोपण के बहाने फिर विश्व बैंक के झपट पड़ने का सिलसिला जारी है। जिसमें गांव के चन्द लोगों को भी जोड़ लो तो गोस्त उपरैला लोग खा जाए और ग्रामीणों को रोजगार के बहाने कुछ हड्डियाँ फेंक दो ताकि कुत्ते की तरह वे हड्डियाँ चबाते रहे।''[6] और विरोध किए जाने पर सरकार किसी को भी नक्सली घोषित कर सकती है। आम आदमी नक्सली और सरकारी हिंसा के बीच पिस रहा है, क्योंकि न्यायपालिका में उनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है।

कथाकार संजीव समकालीन हिंदी साहित्य जगत में उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। जो जमीन से जुड़े संवेदनशील जनवादी कथाकार है। उनके कथा साहित्य में आदिवासी जीवन व्यापक संदर्भ में उजागर हुआ है। आदिवासी जीवन को लेकर साहित्य सृजन करने वाले अन्य समकालीन कथाकारों में मनमोहन पाठक, धीरेन्द्र जैन, मधुकर सिंह, रज्जन त्रिवेदी, विनोद कुमार, भगवानदास मोरवाल, हरीराम मीणा, रणेंद्र, रामनाथ सिवेंद्र, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रमुख हैं। संजीव ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से उपेक्षित आदिवासियों की पीड़ा को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान किया है। सभ्यता का नकाब ओढ़े अधिकारी एवं राजनेताओं, जमींदारों, पूंजीपतियों, सामंती मनोवृत्ति वाले वर्ग की अमानवीयता, क्रूरता, बर्बरता को संजीव ने अपनी कहानियों के माध्यम से बेनकाब कर दिया है। संजीव ने उपेक्षित आदिवासी वर्ग की अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ न्याय एवं सच्चाई की लड़ाई चित्रित कर सच्ची मानवता की पहल की है। इस संदर्भ में डॉ0 गिरीश काशिद कहते हैं, ''संजीव केवल आंचलिक कथाकार नहीं, वे उपेक्षित अभिशप्त संदर्भों को वाणी देने वाले सशक्त रचनाकार हैं।''[7] संजीव के तीस साल का सफरनामा', 'आप यहाँ हैं', 'प्रेतमुक्ति', 'ब्लाक होल', 'खोज', 'सागर सीमांत', 'भूमिका और अन्य कहानियाँ', 'गुफा का आदमी', और 'डायन' और अन्य कहानियाँ' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिसकी कहानियाँ आदिवासी, दलित, महिला, मजदूर, किसान, देहाती, शहरी, मध्यमवर्ग, जमींदारी, राजनीति, सामंतवादी, साम्प्रदायिकता, नक्सलवाद, बाजारवाद आदि के समकालीन यथार्थ को बेबाकी से उजागर करती हैं।

आदिवासियों के पास उनके जीवन जीने के साधन जंगल, जमीन, जल तीनों थे। उसने अपने सांस्कृतिक विरासत को सदियों से संभालकर कायम रखा था और वह आत्मसम्मान के साथ जीवन जीता रहा लेकिन आज उसकी सामाजिक संरचना, प्राकृतिक जीवन, स्वतंत्रता और सांस्कृतिक जीवन विकास के नाम औद्योगीकरण के नाम पर हो रहे विस्थापन से खतरे में आ गया है। 'टीस' कहानी संथाल आदिवासियों की इसी पीड़ा को प्रस्तुत करती है। कहानी के केंद्र में कोंकड़डीहा गांव है। यहाँ की जमीन में वन और खनिज संपत्ति का पर्याप्त मात्रा में भंडार होने के कारण कोयला, मिल मालिक, वन अधिकारी, सरकारी अफसर, गांव के मुखिया आदि सभी मिलकर आदिवासियों को डरा-धमकाकर तरह-तरह के लालच देकर शराब पिलाकर सस्ते दामों पर उनकी जमीन पर कब्जा जमाते हैं। आदिवासी की वन संपदा से युक्त कृषि योग्य उर्वरा जमीन मिल मालिकों के हाथ जाकर कोयला खादानों में तब्दील हो जाती है। इस प्रकार भूमिहीन हुए आदिवासियों को रोजी-रोटी के लिए शहरों में विस्थापित होना पड़ता है। परिणामत: उनका लोकजीवन और सांस्कृतिक विरासत नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हुआ है। इसी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहानी नायक सिबू काका कहता है, ''आज कनाई चला गया, आज खोकन.... आज गंशा.....। अब न मांदल बजेंगे, न बांसुरी। न झॉझ

बजेगी, न झूमर पाएगा। फीका-फीका रह जाएगा मनसा पूजा, छता, पंचमी, जगरनाथपुर और सरहुल का उत्सव।''[8]

हवाओं का विद्रोह' नाटक और आदिवासी विमर्श

विभुकुमार लिखित 'हवाओं का विद्रोह' नाटक की प्रमुख पात्र लक्ष्मी आत्महत्या करती है, वह आत्महत्या क्यों करती है, इसी को यहाँ स्पष्ट किया गया है। लक्ष्मी आदिवासी समाज की सबसे ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की है। वह 8-10 साल तक सरकारी आश्रम विद्यालय में पढ़ती है। इन दिनों वह कई बड़े-बड़े शहर देखती है। कई बार मुख्यमंत्री, राज्यपाल, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के सामने नृत्य और गीत प्रस्तुत करती है और इस तरह लक्ष्मी का अपने गांव के प्रति आकर्षण कम होने लगता है। उसके मन में गांव के प्रति वितृष्णा और घृणा का भाव पैदा हो जाता है। गांव की मैली-कुचली जिंदगी के प्रति उपेक्षा का भाव उसके मन में घर करने लगता है। उसे अपने माँ-पिता का व्यवहार भी पसंद नहीं आता। उसकी छोटी बहन सरिता भी विद्यालय जाती है, उसकी भी यही स्थिति हो जाती है। लक्ष्मी बड़ी हो जाने पर उसके पिता उसकी शादी घाटी के सबसे अच्छे लड़के के साथ करते है। शादी के कुछ महीने बाद ही लक्ष्मी को पता चल जाता है कि उसके सारे सपने चूर-चूर होने वाले है। उसकी कभी सास से तो कभी पति से हर रोज झड़प होने लगती है। लक्ष्मी आठ-दस साल तक विद्यालय में एक दूसरी तरह की जिंदगी से अभ्यस्त होने के कारण वह उस वातावरण में रम नहीं पाती। सचमुच, वह गांव के लिहाज से निकम्मी हो जाती है। वह निर्णय करती है कि अब इस गांव में नहीं रहेगी। वह चाहती है कि शहर जाकर बच्चों की पढ़ाई-लिखाई अच्छी तरह से होगी और श्वसुर जी का इलाज भी होगा। परंतु लक्ष्मी की इन बातों से पति सहमत नहीं होता। उल्टे वह लक्ष्मी को लात-घूसों से मारता है। लक्ष्मी विवश होकर आत्महत्या करने का निर्णय लेती है और काफी रात होने पर गले में साड़ी बांधकर पेड़ की डाल से लटककर आत्महत्या करती है। लक्ष्मी अपनी आत्महत्या की इस कहानी को पुरूष-1 के समान बयान करती है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक सरकार द्वारा आदिवासियों को शिक्षित बनाने के प्रयासों की विफलता उजागर करती है। इन्हें दी जाने वाली शिक्षा उन्हें अपने परंपरागत जीवन और संस्कार से अलग-थलग कर देती है। फलतः शिक्षा पाने के बाद वे अपनी जिंदगी में वापस नहीं जा पाते, जाते हैं तो अपने को वहाँ अनुपयुक्त पाते हैं। दूसरी ओर अधूरी शिक्षा के चलते आधुनिक परिवेश के उपयुक्त भी नहीं बन पाते। वे कहीं के नहीं रह पाते, न घर के न घाट के। 'हवाओं का विद्रोह' नाटक सरकार द्वारा आदिवासियों एवं अविकसित जनजातियों को शिक्षित बनाने के प्रयासों 'आयातित शिक्षा' का यह बहुत बड़ा गंभीर दोष कई प्रसंगों, घटनाओं के माध्यम से व्यापक रूप से उभरकर अन्य नाटकों की अपेक्षा मन पर अमिट प्रभाव अंकित करता है। प्रस्तुत कृति आदिवासियों के जीवन की मात्र करूण गाथा ही नहीं है, बल्कि उनके जीवन स्तर को ऊँचा करने वाली व्यवस्था की अंदरूनी पर्तों को खोलती है। प्रस्तुत नाटक में लक्ष्मी, सरिता, हरिया, पुरूष-1, पिता, माँ, प्रिन्सिपल, चड्ढो, राय, शर्मा, प्राचार्य, रामप्यारी, स्त्री, पत्नी, आदि कई पात्र हैं, जो विविध भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ

1. वामन मेश्राम, मूलनिवासी बहुजन सिद्धान्त संकल्पना स्वरूप एवं व्यवहार, पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ. 5
2. डॉ0 अम्बेडकर संपूर्ण वाङमय खण्ड-10, डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, दिल्ली, पृ0 20
3. सं0बी0पी0 वर्मा, अरावली उद्घोष आदिवासी संस्मरण, 'पथिक' जून 2010, अंक 88, पृ0 88
4. कमल नयन चौबे, जनसत्ता, संपादकीय 'जंगल के दावेदार' 20 मई 2010
5. सं0 जिम्मी सी0 डाभी, हम दलित, जुलाई 2005, अंक 7, पृ0 14
6. सं0 जिम्मी सी0 डाभी, हम दलित, जुलाई 2005, अंक 7, पृ0 15
7. कथाकार संजीव जनधर्मी, डॉ0 गिरिश काशिद
8. संजीव, 'टीस' दस प्रतिनिधिक कहानियाँ

ब्रिटिश भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन

नीति वर्मा

एम.ए. (इतिहास) आर.बी. कॉलेज, दलसिंहसराय, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

आलेख का सारतत्त्वः

भारत में क्रान्तिकारी आंदोलन ने संगठित रूप, 19वीं सदी अन्त और 20वीं सदी के प्रारम्भ में धारण किया। क्रान्तिकारी आंदोलन भी राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ समानान्तर चलता रहा। क्रान्तिकारी आन्दोलन के उत्थान के मुख्यतः वही कारण थे, जिनसे राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद का उदय हुआ। अन्तर केवल यह था कि आतंकवादी अधिक शीघ्र परिणाम चाहते थे। वे प्रेरणा जिसे उग्रवादी दल लोकप्रिय बनाया था और धीमे प्रभाव की नीति जिसे उदारवादियों ने अपनाया था, में विश्वास नहीं करते थे। क्रांतिकारी यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय जीवन में जो भी उपयुक्त तत्त्व हैं, जैसे कि धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताएँ, नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति, उन सभी को विदेशी शासन समाप्त कर देगा। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में क्रांतिकारियों के राजनैतिक दर्शन को निश्चित रूप से वर्णन करना सम्भव नहीं, परन्तु उन सबका एक उद्देश्य, मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना था। उनका साधनों के विषय में विश्वास था कि पाश्चात्य साम्राज्यवाद केवल पश्चिमी हिंसक साधनों से ही समाप्त किया जा सकता है। इसीलिए इन लोगों ने बम तथा पिस्तौल का प्रयोग किया। उन्होंने आयरलैण्ड से भी प्रेरणा प्राप्त की। देश में क्रान्तिकारी लोगों ने गुप्त सभाएं बनाई। तरुण लोगों को इनमें दीक्षा दी तथा उनमें देश पर न्यौछावर होने की भावना भरी। इन लोगों ने हथियार बाँटे, हथियारों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया और बम बनाने सिखाए। यूरोपीय प्रशासकों की हत्या करके, इन लोगों ने उनका मनोबल कम करने, प्रशासन को ठप्प करने तथा स्वतन्त्रता के भारतीय अथवा यूरोपीय विरोधियों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। क्रान्तिकारियों के लिए अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हत्या करना, डाका डालना, बैंक, डाकघर अथवा रेलगाड़ियाँ लूटना सभी कुछ वैध था और इसका प्रयोग करने में उन्होंने जरा भी हिचक नहीं दिखलाई। वे साधन में नहीं साध्य में विश्वास करते थे।

प्रमुख शब्दावलीः राष्ट्रीयता, आन्दोलन, स्वतन्त्रता, गीता रहस्य, स्वतन्त्रता और अधिकार, गदर आन्दोलन, अधिनियम, संवैधानिक विकास, हिंसा, परिवर्तन, शांति, असहयोग अहिंसावाद, सम्पूर्ण क्रांति।

प्रस्तावनाः

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात भद्रलोक समाज से ही हुआ। श्री पी. मित्रा ने एक गुप्त क्रान्तिकारी सभा का, जिसे 'अनुशीलन समिति' कहते थे, गठन किया। बंगाल के विभाजन के पश्चात् विदेशी माल का बहिष्कार तथा स्वदेशी आन्दोलन, जोर पकड़ गया जिसके फलस्वरूप बंगाल में वह राजनैतिक जागृति आयी जो पहले कभी देखेने को नहीं मिली थी। इस आन्दोलन का उद्देश्य शीघ्र ही विभाजन को रद्द करवाना ही नहीं अपितु स्वराज्य की प्राप्ति बन गया। वारीन्द्र कुमार घोष ने 1905 में 'भवानी मन्दिर' नाम की पुस्तिका लिखी। जिनमें क्रान्तिकारी कार्यों को संगठित करने के लिए केन्द्र बनाने के लिए विस्तृत जानकारी दी गयी थी, इसके बाद 'वर्तमान रणनीति' प्रकाशित की गयी। 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' नाम की पत्रिकाओं में भी अंग्रेज विरोधी विचार प्रकाशित किए जाने लगे। अरविन्द घोष, वारीन्द्र कुमार घोष तथा भूपेन्द्र चन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा संपादित युगांतर में कहा गया था कि शक्ति का मुकाबला शक्ति से करना चाहिए। इसी तरह ब्रहवंध उपाध्याय ने 'संध्या' का संपादन किया। वीरेन्द्र कुमार चट्टोपाध्याय ने तलवार नामक पत्र निकाला। इसी प्रकार एक अन्य पुस्तिका 'मुक्ति कौन पाथे' (मुक्ति किस मार्ग से) में भारतीय सैनिकों से भारतीय क्रान्तिकारियों को हथियार देने का आग्रह किया गया। बंगाल के युवकों को शक्ति की द्योतक भवानी की पूजा करने को कहा गया ताकि वे मानसिक, शारीरिक, आत्मिक तथा नैतिक बल प्राप्त कर सकें। कर्म करने पर भी बल दिया गया। बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ जिनके फलस्वरूप हिंसक घटनाएँ हुई, 1906 से आरम्भ हुई, जब क्रान्तिकारियों ने धन की व्यवस्था करने के लिए कुछ डकैतियों के षड्यन्त्र रचे। इसके बाद 1907 में पूर्व बंगाल तथा बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नरों की हत्याओं के असफल प्रयत्न किए गए 30 अप्रैल, 1908 को मुजफ्फरपुर जिले आधुनिक बिहार के न्यायाधीश श्री किंग्जफोर्ड की हत्या करने का प्रयास किया गया। उन्होंने मुख्य प्रेसीडेंसी दण्डनायक के रूप में युवकों को छोटे-छोटे अपराधों के लिए बड़ी-बड़ी सजाएँ दी थीं। इन पर बम मारने का कार्य प्रफुल्ल चाकी तथा खुदीराम बोस को दिया गया। गलती से बम श्री केनेडी की गाड़ी पर गिर गया, जिससे दो महिलाओं की मृत्यु हो गयी। प्रफुल्ल चाकी तथा बोस पकड़े गए। चाकी ने आत्महत्या कर ली परन्तु बोस पर अभियोग चला और उन्हें फाँसी दी गयी।

अवैध हथियारों की तलाशी के सम्बन्ध में सरकार ने मानिकटोला उद्यान में तथा कलकत्ता में तलाशियाँ लीं तथा 34 व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया, जिसमें दो घोष बन्धु, अरविन्द तथा वारीन्द्र सम्मिलित थे। इन पर अलीपुर षड्यन्त्र काण्ड का मुकदमा बना। मुकदमे के दिनों में सरकारी गवाह नरेन्द्र गोसाई की जेल में हत्या कर दी गयी। कलकत्ता में फरवरी 1909 में सरकारी वकील की हत्या कर दी गयी तथा 24 फरवरी, 1910 को उप पुलिस

अधीक्षक की कलकत्ता उच्च न्यायालय से बाहर आते समय हत्या कर दी गयी। देश में इन घटनाओं से उत्तेजना फैल गयी। तिलक इन बंगाली आतंकवादियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। रौलेट कमेटी की रिपोर्ट ने 1906 और 1917 के मध्य बंगाल में 110 डाकें तथा हत्या के 60 प्रयत्नों का उल्लेख किया था। महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन बंगाल के बाद क्रान्तिकारी आंदोलन महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा फैला। विद्रोह समिति की 1918 की रिपोर्ट में यह कहा गया था कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रथम आभास महाराष्ट्र में मिलता है, विशेषकर पूना जिले के चितपावन ब्राह्मणों में। ये ब्राह्मण महाराष्ट्र के शासकों शिवाजी तथा शाहू के पेशवाओं के वंशज थे। महाराष्ट्र पेशवाओं का ही राज्य था, जिसे लॉर्ड हेस्टिंग्ज के अधीन ईस्ट इंडिया कम्पनी ने समाप्त कर दिया था। स्वराज्य के प्रति प्रेम की उग्र भावना इन ब्राह्मणों में बनी रही और इसीलिए इनके मन में असन्तोष रहा और पुनः शक्ति प्राप्त करने का स्वप्न बना रहा। श्री बाल गंगाधर तिलक ने जो स्वयं भी चितपावन ब्राह्मण थे, 1893 में गणपति त्यौहार तथा 1895 में शिवाजी त्यौहार मनाया। इससे महाराष्ट्र के लोगों में स्वराज्य के प्रति कुछ-न-कुछ प्यार और अंग्रेजों के लिए विरोधी तत्व अंकुरित हुए। 22 जून, 1897 को यूरोपीयों की प्रथम राजनैतिक हत्या पूणे में हुयी, जिसके लिए दो चितपावन ब्राह्मण, दामोदर और बालकृष्ण जिन्हें प्रायः चापेकर बन्धु भी कहा जाता है, उत्तरदायी थे।

पूणे में प्लेग समिति के प्रधान श्री रैण्ड इस हत्या का निशाना तो थे, परन्तु लैफ्टिनेन्ट एमहर्स्ट भी अकस्मात मारे गए। इस हत्या का तात्कालिक कारण यह था कि प्लेग समिति ने प्लेग ग्रस्त व्यक्तियों के लिए असैनिक घरों में सैनिकों को भेजा। बाल गंगाधर तिलक ने अपने समाचार पत्र 'मराठा' में इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था, 'आजकल' नगर में फैली प्लेग अपने मानवीय रूपान्तरों से अधिक दयालु है। बाद में चापेकर बन्धु पकड़े गये, दोषी पाए गये तथा फाँसी पर लटका दिये गए। शासक वर्ग ने अंग्रेजों के विरुद्ध लेख लिखने के लिए तिलक को भी उत्तरदायी ठहराया तथा 18 मास का कड़ा कारावास दिया। तिलक की ओर से समकालीन राष्ट्रवादियों तथा उत्तरकालीन भारतीय इतिहासकारों ने दलीलें दी हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि तिलक के लेखों तथा भाषणों ने चापेकर बन्धुओं को हिंसा की प्रेरणा दी। तिलक ने जेल में ही 'गीता रहस्य' लिखा। श्याम जी कृष्ण वर्मा पश्चिमी भारत के काठियावाड़ प्रदेश के वासी थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी तथा बैरिस्टर बने। उन्होंने भारत लौटकर कई रियासतों में काम किया, परन्तु अंग्रेज पोलिटिकल रैजिडेंटों आचरण दुखी होकर उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए कार्य करने का दृढ़ निश्चय किया तथा अपने कार्यक्षेत्र के लिए लन्दन नगर को चुना। कृष्ण वर्मा ने 1905 में भारत स्वशासन समिति का गठन किया जिसे प्रायः 'इंडिया हाउस' की संज्ञा दी जाती थी। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने एक मासिक पत्रिका 'इंडियन सोशलॉजी' भी आरम्भ की। उन्होंने विदेश आने वाले योग्यता प्राप्त भारतीयों के लिए एक-एक हजार रुपये की 6 फैलोशिप भी आरम्भ की। इण्डिया हाउस शीघ्र ही लन्दन में रहने वाले भारतीयों के लिए आन्दोलन करने का एक केन्द्र बन गया। वी.डी. सावरकर, हरदयाल और मदनलाल ढींगरा जैसे क्रान्तिकारी इसके सदस्य बन गए। वी. डी. सावरकर भी, जो पूणे के फरग्यूसन कॉलिज के एक स्नातक थे, कृष्ण वर्मा की फैलोशिप का लाभ उठा कर जून 1906 लन्दन को चल पड़े। सावरकर ने उससे पहले 1904 में नासिक में 'मित्र मेला' नाम की एक संस्था आरम्भ की थी, जो शीघ्र ही मेजिनी के 'तरुण इटली' की भाँति एक गुप्त सभा 'अभिनव भारत' में परिवर्तित हो गयी थी। इंडिया हाउस को इन तरुण तथा उत्तेजित युवकों ने अंग्रेज विरोधी तथा भारत समर्थक प्रचार का केन्द्र बना दिया। इंडिया हाउस ने मई, 1908 में 1857 के विद्रोह की स्वर्ण जयन्ती मनाने का निश्चय किया।

सावरकर ने इस विद्रोह को भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी। यह विचार उन्होंने अपनी पुस्तक 'द इंडियन वार वॉफ इंडिपेंडस' में व्यक्त किए। इसी प्रकार 'द ग्रेव वारनिंग' नाम की एक लघु पुस्तक भी लन्दन में बांटी गयी तथा उसकी कुछ प्रतियाँ भारत भेजी गईं। मदन लाल ढींगरा ने 1909 में कर्नल विलियम कर्जन वाइली की, जो इंडिया आफिस में राजनैतिक सहायक थे, गोली मारकर हत्या कर दी। इस पर अंग्रेजी सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। मदन लाल ढींगरा पकड़े गये और उन्हें फाँसी दी गयी। इसके बाद सावरकर को बन्दी बना लिया गया और आजन्म निष्कासन का दण्ड सुनाया गया। श्यामजी ने भी लंदन छोड़ दिया तथा पेरिस चले गये। इस प्रकार इंडिया हाउस की गतिविधियाँ बन्द करनी पड़ी। नासिक के अप्रिय जिला दण्डनायक की 21 दिसम्बर, 1909 को हत्या कर दी गयी। अभिनव भारत सभा के पश्चिमी भारत में दो अन्य कांड, नवम्बर 1909 में अहमदाबाद बम कांड तथा 1910 में सतारा षड्यन्त्र कांड, भी हुए। इसके बाद भी कई कांड होते रहे। अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी आन्दोलन पंजाब में भी बंगाल और महाराष्ट्र की तरह शिक्षित वर्ग इन क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित हुआ। पंजाब सरकार का सुझाव था कि चिनाब नहर तथा बारी दोआब नहर के पास बस्तियों में भूमिकर बढ़ाया जाना चाहिए। इससे इस प्रदेश की ग्रामीण जनता में बहुत रोष जागा। इस विधेयक को केन्द्रीय सरकार ने, जिसे पंजाब विधान परिषद् ने पारित कर दिया था, अपने निषेधाधिकार की शक्तियों का प्रयोग करके रद्द कर दिया था, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने इस आन्दोलन के दो प्रमुख नेताओं, लाला लाजपत राय तथा सरदार अजीत सिंह को बन्दी बना लिया तथा 1818 के रेग्युलेशन के अधीन देश से निर्वासित कर दिया। 6 माह पश्चात् अजीत सिंह छोड़ दिये गये तथा वह फ्रांस भाग गए।

लालचन्द पुलक तथा भाई परमानन्द को भी भिन्न-भिन्न अवधि के लिए जेल दण्ड दिया गया। लॉर्ड हार्डिंग की दिसम्बर 1912 में राजयात्रा के समय चाँदनी चौक में बम मारा गया, जिससे उनके सेवक मारे गए। बिहार, उड़ीसा तथा यू.पी. में मुजफ्फरपुर तथा निमेज हत्या काण्ड, तथा बनारस में भी षड्यन्त्र रचे गए। यद्यपि शेष प्रांतों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के क्रान्तिकारी इतिहास में गदर आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। पंजाब के लाला हरदयाल एक महान बुद्धिजीवी तथा प्रचण्ड क्रान्तिकारी थे। वही गदर दल के प्राण थे। उन्होंने 1 नवम्बर, 1913 को संयुक्त राज्य अमरीका के सॉन फ्रांसिस्को नगर में गदर दल का गठन किया। रामचन्द्र तथा बरकतुल्ला ने उनकी इसमें सहायता की। 'गदर' नाम की इस दल ने एक साप्ताहिक पत्रिका भी चलाई, जो सन् 1857 के गदर की स्मृति में स्थापित की गयी थी। इस दल ने यह तत्त्व सामने लाने का प्रयत्न किया कि विदेशों में भारतीयों का सम्मान इसलिए नहीं होता क्योंकि हम परतन्त्र हैं।

अमेरिकी प्रशासन ने अंग्रेजों के कहने पर लाला हरदयाल के विरुद्ध मुकदमा बना दिया और उन्हें अमरीका से भागने पर बाध्य किया। लाला हरदयाल तथा उनके साथी प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने पर जर्मनी चले गए। उन्होंने बर्लिन में भारतीय स्वतन्त्रता समिति का गठन किया। उनका उद्देश्य यह था कि विदेश में रहने वाले भारतीयों को भारत की स्वतन्त्रता के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करने चाहिए, जैसे भारत में स्वयंसेवकों को भेजकर भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए तैयार करना, भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए विस्फोटक पदार्थ भेजना और यदि सम्भव हो तो भारत पर सैनिक आक्रमण करना इत्यादि। पंजाब में प्रसिद्ध 'कामागाटामारु काण्ड' ने एक विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी। एक बाबा गुरदत्त सिंह ने एक जापानी 'जलपोत कामागाटामारु' को भाड़े पर लेकर 351 पंजाबी सिक्खों तथा 21 मुसलमानों को कनाडा के बैनकूवर नगर ले जाने का प्रयत्न किया। इसमें उद्देश्य यह था कि ये लोग वहाँ जाकर एक स्वतन्त्र जीवन का रसास्वादन करके भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेंगे। इन यात्रियों को कनाडा सरकार ने बन्दरगाह में उतरने की अनुमति नहीं दी और जहाज 27 सितम्बर, 1914 को पुनः कलकत्ता बन्दरगाह लौट आया। इन यात्रियों को विश्वास था कि अंग्रेजी सरकार के दबाव के कारण ही कनाडा सरकार ने उन्हें लौटाया है। बाबा गुरदत्त सिंह को गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वह भाग गए। एक विशेष गाड़ी में शेष यात्रियों को बैठा कर पंजाब लाया गया। इन असन्तुष्ट व्यक्तियों तथा अन्य लोगों ने लुधियाना, जालन्धर तथा अमृतसर में बहुत से डाके डाले जो कि राजनैतिक प्रकृति के थे। बाद में लाहौर षड्यन्त्र मुकदमों से यह स्पष्ट हो गया कि पंजाब में रक्तपात होते-होते बचा। स्थिति से निबटने के लिए अंग्रेजी सरकार ने 1907 में राजद्रोह सभाओं को रोकने का अधिनियम, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, भारतीय फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम, 1908 का समाचार-पत्र (अपराधों के लिए प्रोत्साहन) अधिनियम, 1910 का समाचार पत्र अधिनियम, तथा अन्य भिन्न-भिन्न अधिनियमों को मिलाकर 1915 के भारत रक्षा अधिनियम बना दिए। इन क्रान्तिकारी गतिविधियों में प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त पर कुछ काल के लिए विराम आया, जब सरकार ने भारत रक्षा अधिनियमों के अधीन पकड़े गये राजनैतिक बन्दी छोड़ दिए। दूसरे, भारत सरकार अधिनियम 1919 द्वारा दिये गये सुधार लागू किए और क अनुरंजन का वातावरण बन गया था। इसके अतिरिक्त उस समय महात्मा गाँधी एक राष्ट्रीय नेता के रूप में आगे आए। उन्होंने अहिंसावाद से भारत को स्वतन्त्र करवाने का बीड़ा उठवाया। देश में इन सभी कारणों से क्रान्तिकारी गतिविधियों में कुछ धीमापन आया। अरविन्द घोष 'अलीपुर षड्यंत्र' केस से मुक्त होने के बाद पाण्डिचेरी चले गये और वहाँ उन्होंने एक आश्रम स्थापित किया। उनके द्वारा लिखी दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है- 'सावित्री' और 'द लाइफ डिवाईन'। इसके बाद अरविन्द घोष का आंदोलन से जुड़ाव समाप्त हो गया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण 1922 के बाद असहयोग आन्दोलन के पूर्णतया असफल होने से क्रान्तिकारी आन्दोलन में पुनः उग्रता आई। बंगाल में पुरानी अनुशीलन तथा युगान्तर समितियाँ पुनः जाग उठीं तथा उत्तरी भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों में क्रान्तिकारी संगठन बन गए। परन्तु प्रमुख बात यह थी कि अब यह समझा गया कि एक अखिल भारतीय संगठन होने तथा अधिक उत्तम तालमेल होने से अधिक उत्तम परिणाम निकल सकते हैं। समस्त क्रान्तिकारी दलों का अक्तूबर 1924 में कानपुर में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें सचिन्द्रनाथ सान्याल, जगदीशचन्द्र चटर्जी तथा रामप्रसाद बिस्मिल जैसे प्राचीन क्रान्तिकारी नेताओं तथा भगतसिंह, शिव वर्मा, सुखदेव, भगवतीचरण वोहरा तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे तरुण नेताओं ने भाग लिया।

1928 में इसके फलस्वरूप 'भारत गणतन्त्र समिति' बिहार, यू. पी, दिल्ली, पंजाब तथा मद्रास जैसे प्रान्तों में इसकी शाखाएँ स्थापित की गयी। गोपीनाथ साहा ने 1923-24 में एक ब्रिटिश अधिकारी डे की हत्या कर दी। अपने पत्र 'बंदी जीवन' सचिन सान्याल के द्वारा क्रान्तिकारी विचारधारा का प्रसार किया। यू.पी. के क्रान्तिकारियों ने 9 अगस्त, 1925 को सहारनपुर, लखनऊ लाइन पर काकोरी जाने वाली गाड़ी को सफलतापूर्वक लूटा। इस 'काकोरी काण्ड' के अभियोग में जनता ने बहुत सी सहानुभूति का प्रदर्शन किया। विधान परिषद में भी प्रस्ताव रखे गए। उनके नेता रामप्रसाद बिस्मिल यह कहते हुए कि ''मैं अंग्रेजी राज्य के पतन की इच्छा करता हूँ'' प्रसन्नतापूर्वक फाँसी पर लटक गए। इसी तरह रोशनलाल वन्देमातरम् गाते हुए शहीद हो गए। भगत सिंह के नेतृत्व में, पंजाबी क्रान्तिकारियों ने साइमन आयोग के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए लाला लाजपतराय पर किए गये लाठी चार्ज के फलस्वरूप हुयी मृत्यु का बदला लेने के लिए लाहौर के सहायक पुलिस कप्तान श्री साण्डर्स की हत्या कर दी। प्रतिक्रिया स्वरूप पुलिस ने जनसाधारण पर दमन-चक्र चलाया। लोगों में यह भावना सी हो गयी कि क्रान्तिकारी तो निकल भागते हैं और जनता पिस जाती है। इस पर भारत गणतन्त्र सेना (इंडियन रिपब्लिकन कमेटी) ने दो स्वयंसेवकों को गिरफ्तार होने के लिए भेजा जिसके अनुसार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली में केन्द्रीय विधान सभा भवन में 8 अप्रैल, 1929 को वाली बेंचों पर बम मारे और गिरफ्तार हो गए। दरअसल उनकी इच्छा किसी की हत्या करने की नहीं थी। वे केवल फ्रांसीसी विप्लवकारियों के उस कथन को सत्य करना

चाहते थे कि 'बधिरों को सुनाने के लिए अत्यधिक कोलाहल करना पड़ता है।' चूँकि विधान सभा में बम मारने के किए फाँसी नहीं दी जा सकती थी। सरकार ने इस काण्ड को साण्डर्स हत्या काण्ड अथवा लाहौर षड्यन्त्र काण्ड से जोड़ दिया तथा भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को फाँसी दे दी। भगत सिंह एक नास्तिकवादी समाजवादी थे। उन्होंने एक निबंध प्रकाशित किया कि मैं नास्तिक क्यों हूँ। उन्होंने घोषणा की थी कि मैं बम-पिस्तौल में विश्वास नहीं करता और पूरी व्यवस्था बदलना चाहता हूँ। बंगाल में इसी प्रकार सूर्यसेन ने चटगाँव शस्त्रागार पर धावा किया (अप्रैल, 1930) तथा अपने आप को प्रान्तीय स्वतन्त्र भारत सरकार का प्रधान घोषित कर दिया। इस घटना में दो महिला क्रान्तिकारी कल्पना दत्त और प्रीतिलता वाडेडर शामिल थी। इन क्रान्तिकारियों ने अपनी वीरता के प्रत्यक्ष प्रमाण तो दिये, परन्तु इससे कोई स्पष्ट लाभ नहीं हुआ। सूर्यसेन अन्त में पकड़े गये और 1933 में फाँसी पर लटका दिये गए। क्रिप्स सद्भाव मण्डल की असफलता (अप्रैल 1942), तथा कांग्रेस का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित करना (14 जुलाई, 1942), तथा गाँधीजी और उनके सहयोगियों की गिरफ्तारी (9 अगस्त, 1942) पुनः क्रान्तिकारियों को अपनी गतिविधियाँ आरम्भ करने पर बाध्य कर दिया। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में अगस्त 1942 में एक लोकप्रिय विद्रोह हो गया। इसमें गाँधीजी के अंहिसावाद अनुयायियों तथा हिंसावादी क्रान्तिकारियों दोनों ने मिलकर विदेशी जुए को उतार फेंकने का असफल प्रयत्न किया। इस आन्दोलन के मुख्य नायक सुभाषचन्द्र बोस तथा जयप्रकाश नारायण थे। जयप्रकाश नारायण तथा इनके सहयोगियों ने आन्तरिक तोड़-फोड़ की नीति अपनाई तथा सुभाष बाबू ने देश से बाहर जाकर जर्मनी तथा जापान की सहायता से भारतीय राष्ट्रीय सेना (आजाद हिन्द फौज) का गठन कर भारत पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। देश की स्वतंत्रता के बाद ही यह क्रान्तिकारी आंदोलन थमा।

निष्कर्षः

अबतक के विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन काल में कई प्रमुख क्रांतिकारी आन्दोलन की उपस्थिति एवं प्रभाव रहा है। वस्तुतः बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन ही प्राथमिक रूप में भारत को स्वतंत्र कराने में महत्वपूर्ण रहा है, लेकिन 1857 का गदर आन्दोलन भी कम महत्वपूर्ण नहीं था, भले ही इतिहासकारों ने उसे असफल घोषित किया है।

संदर्भः

1. Hindu-Muslim Question and Our Freedom Struggle: 1857- 1935, K.M. Ashraf. New Delhi, Sunrise Pub., 2005.
2. Glimpses of Indian Women in the Freedom Struggle, Jyotsnamoyee Mohanty, 1996.
3. Gandhi and Indian Freedom Struggle, Mazhar Kibriya. 1999.
4. Encyclopaedia of Indian Freedom Struggle, S. Ram and R. Kumar. New Delhi, Commonwealth Pub., 2008.
5. Working Class and Freedom Struggle: Madras Presidency, 1918-1922, K. Venugopal Reddy. New Delhi, Mittal, 2005.
6. Indian Freedom Struggle : The Pathfinders From Surendranath Banerjea to Gandhi, B. Krishna. New Delhi, Manohar, 2002.
7. The Satyamurti Letters, Vol. II: The Indian Freedom Struggle through the Eyes of a Parliamentarian, edited by K.V. Ramanathan. New Delhi, Dorling Kindersley for Pearson Longman an Imprint of Pearson Education, 2008.
8. Women's Movement and Freedom Struggle, edited by Raj Kumar, Rameshwari Devi and Romila Pruthi. Jaipur, Pointer, 2000.
9. Role of Press and Indian Freedom Struggle : All through the Gandhian Era, A.S. Iyengar. New Delhi, A.P.H. 2001.
10. History of Indian Freedom Struggle, Kailash Khanna. New Delhi, Commonwealth Pub., 2004.
11. Emancipation of Dalits and Freedom Struggle, edited by H.C. Sadangi. Delhi, Isha Books, 2008.
12. Freedom Fighters of India, edited by Lion M.G. Agrawal. Delhi, Isha Books, 2008.
13. Emancipation of Dalits and Freedom Struggle, edited by H.C. Sadangi. Delhi, Isha Books, 2008.
14. Glimpses of Freedom Struggle: Politics in CP Berar 1927-29, Shubha Johri. 1997.
15. Swadeshi Movement in Bengal and Freedom Struggle of India, Sankari Prasad Basu. Kolkata, Papyrus, 2004.
16. An Encyclopaedic Dictionary of Freedom Movement 1757- 1947, edited by A.N. Kapoor, V.P. Gupta and Mohini Gupta. New Delhi, Radha, 2004.
17. Battle of India's Freedom Movement, P.K. Goyal, Delhi, Vista International, 2005.
18. They Too Fought for India's Freedom The Role of Minorities, edited by Asghar Ali Engineer. Gurgaon, Hope India, 2006.
19. Planter Raj to Swaraj : Freedom Struggle & Electoral Politics in Assam, Amalendy Guha. New Delhi, Tulika, 2006.

शुल्बसूत्रों में वर्णित गणितीय विषयों का आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण

डॉ० आभा द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, वैशाली महिला महाविद्यालय, हाजीपुर

वैदिक वाङ्मय तथा वैदिक संस्कृति, दोनों ही यज्ञ-प्रधान हैं। यज्ञ के लिए वेदि आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के यज्ञों के लिए पृथक-पृथक आकार की वेदि का विधान है। अतएव वेदि निर्माण के लिए रेखागणित, अंक गणित, ज्यामिति आदि के ज्ञान की आवश्यकता हुई। फलतः वैदिक ऋषियों ने अंकगणित, रेखागणित, ज्यामिति, भूमिति तथा बीजगणित आदि से संबंधित सिद्धान्तों तथा प्रमेयों का आविष्कार कर उन्हें सूत्रबद्ध किया। भूमि, आदि के नाप के लिए जो 'शुल्ब' अर्थात् रज्जु अथवा रस्सी प्रयोग की जाती थी, उसके आधार पर इन सूत्रों का नाम 'शुल्बसूत्र' पड़ा। ये ग्रन्थ वर्तमान ज्यामितिशास्त्र का प्राचीनतम रूप हैं। ये शुद्ध रूप से गणितशास्त्रीय वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं। इनमें गणितशास्त्र के अंग ज्यामितिशास्त्र से सम्बद्ध अनेक प्रमेय उपलब्ध होते हैं। इनमें छोटी-बड़ी सभी प्रकार की वेदियों के निर्माण की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। ईसा से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्ण लिखे गए ये ग्रन्थ भारतीय ऋषियों के वैज्ञानिक चिन्तन के प्रतीक हैं।

गणितशास्त्र के प्रमुख रूप से तीन विभाग हैं-

(1) अंकगणित,

(2) रेखागणित,

(3) बीजगणित

इन तीन प्रमुख शाखाओं के आधार पर ही गणित की अन्य शाखाएँ- स्थितिशास्त्र (Statics), गतिशास्त्र (Dynamics), द्रवस्थितिशास्त्र (Hydrostatics), त्रिकोणमिति, खगोलीय त्रिकोणमिति (Spherical Trigonometry), चलन-कलन (Calculus), आदि पल्लवित हुई है। गणित के मूलभूत सिद्धांत उक्त तीन शाखाओं में ही निहित हैं। खगोलविद् गणितज्ञ हीथ (Heath) ने अपनी पुस्तक 'Greek Mathematics' में कहा है "प्रारंभिक खगोलविदों ने प्रत्यक्ष रूप में गोले की ज्यामिति का कभी प्रयोग नहीं किया फिर भी उनकी गणनाओं में थोड़ी बहुत गोलीय त्रिकोणमिति के जैसी आकृति थी" (The early spheric did not deal with the geometry of the sphere as such still less did it contain anything of the nature of the spherical trigonometry)[1]।

अन्य अनेक विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य में गणित तथा विज्ञान विषयक ज्ञान की विद्यमानता को सप्रमाण सहर्ष स्वीकार किया है। किसी भी क्षेत्र में विकास के लिए 'आधार' की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज गणित का जो विकसित रूप हमारे समक्ष उपस्थित है, उसकी जड़ें अत्यन्त प्राचीन हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि शुल्बसूत्र जैसे प्राचीन शास्त्र आधुनिक विकसित गणित की आधारशिला रहे हैं। शुल्बकाल तक गणित का पर्याप्त विकास चुका था। 'ज्यामिति' के लिए उस समय 'क्षेत्रगणित' अथवा 'क्षेत्रविद्या' शब्द प्रयुक्त होते थे। 'क्षेत्रविद्या' या 'क्षेत्रगणित' शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस शास्त्र में स्थान विशेष की नाप जोख संबंधी गणना की जाती है। यह नाप-जोख मात्र भूमि की ही नहीं की जाती थी अपितु समस्त ब्रह्माण्ड की नाप जोख इस शास्त्र में सम्मिलित थी। इस दृष्टिकोण से आधुनिक ज्यामिति की अपेक्षा वैदिक क्षेत्रगणीत का क्षेत्र अधिक विस्तृत था।

क्षेत्रविद्या की आवश्यकता सामान्यतया वेदि निर्माण कार्य के लिए पड़ती थी। पाश्चात्य ज्यामिति का आरंभिक क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। उसका विकास बहुत बाद में हआ। इसके क्षेत्र की सीमितता का अनुमान इसके नाम से ही लग जाता है। आङ्ग्ल भाषा में ज्यामिति को 'ज्योमेट्री (Geometry) कहा जाता है। यह दो शब्दों 'Geo' तथा 'Metry' से मिलकर बना है। 'Geo' का तात्पर्य भूपटल से है तथा 'Metry' का अर्थ है नापना। इस प्रकार भूमि नापने की विद्या को 'Geometry' कहा गया है। जबकि वैदिक क्षेत्रगणित के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों आदि की स्थिति संबंधी गणित विद्या भी सम्मिलित थी। हम कह सकते हैं कि वैदिक क्षेत्रगणित का विषय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड था।

'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' के आधिकारिक तथा प्रसिद्ध लेखक अब्राहम सिडनबर्ग ने बेबीलोन से लेकर मिस्त्र से ग्रीस तक प्राचीन विश्व के सभी गणितों के प्रेरक का श्रेय 'शुल्बसूत्रों' को दिया है।[2] वास्तव में भारत को बौधायन (पाइथागोरस) प्रमेय, दशमलव पद्धति, विश्व को शून्य की देन, तथा अनन्तता/असीमता की परिकल्पना के लिए श्रेय दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, द्वि-आधारी (Binary) संख्या पद्धति, जो कि कम्प्यूटर के लिए अपरिहार्य रूप से आवश्यक है, मौलिक रूप से वैदिक मन्त्रों के छन्दों में प्रयुक्त होती थी।[3]

शुल्बसूत्रों में ज्यामितीय समस्याएँ प्रायः उनके बीजगणितीय प्रतिरूप के साथ प्रस्तुत की गयी हैं। इनमें दी गयी संरचनाएँ ज्यामितीय तथा सूक्ष्म बीजगणितीय विचारों प्रस्तुत एवं अन्तर्दृष्टि को प्रतिबिम्बित करती हैं, जिसे आधुनिक समय में यूक्लिड से संबंधित किया जाता है। बल्कि, आयत के समक्षेत्र वर्ग का

शुल्ब-निर्माण कई सदी पश्चात् यूक्लिड द्वारा दिए गए निर्माण के बिल्कुल समान है। शुल्बग्रन्थों में बीजगणितीय तथा अंक-सिद्धान्त सम्बन्धी समस्याओं के लिए भी ज्यामितीय हल प्राप्त होते हैं।

पाइथागोरस के नाम से प्रसिद्ध बौधायन सूत्र[4] अन्य सभ्यताओं, यथा- बेबीलोन, आदि को भारत से कई वर्षों पश्चात् ज्ञात हुआ। परन्तु, उन सभ्यताओं में इस प्रमेय की संख्यात्मकता पर विशेष बल था, न कि समुचित ज्यामितीय पक्ष पर। जबकि शुल्बसूत्रों में दोनों पक्षों पर गहन विचार किया गया है, विशेष रूप से ज्यामितीय पक्ष पर। शुल्बसूत्रों में इसका प्रयोग न केवल विविध आकृतियों, चतुरस्रवेदि, समकोणवेदि, समद्विभुजाकृति वेदि, विषम चतुर्भुजाकृति वेदि के निर्माण में किया गया है, बल्कि विषम क्षेत्रफल के दो वर्गों के योग एवं वियोग, समक्षेत्रफल के दो वर्गों के योग, आयत के समक्षेत्र वर्ग में परिवर्तन, जैसी प्रक्रियाओं में भी इस सूत्र का विलक्षण बौद्धिक प्रयोग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह एक सूक्ष्म तथा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, जिसका अ० सिडनबर्ग[5] ने विस्तृत विश्लेषण किया है।

ज्यामिति तथा ज्यामितिक बीजगणित में निपुणता व ज्ञान के अतिरिक्त वैदिक सभ्यता गणित के परिकलन संबंधी क्षेत्र में भी उतनी ही शक्तिशाली थी। उन्होंने भिन्नों (fractions) तथा अव्यक्त संख्या के अंकणित का भी पर्याप्त प्रयोग किया, संख्याओं के लिए व्यक्त आसन्नमान की खोज की, यथा-दो का वर्गमूल, π का मान, तथा क्षेत्रमिति पर अनेक उल्लेखनीय परिणामों का उपयोग किया। शुल्बसूत्रों से आरम्भ करते हुए सभी प्राचीन भारतीय गणित-साहित्य का एक विलक्षण लक्षण यह है कि वे सभी पूर्ण रूप से छन्दों (कारिकाओं) में लिखे गए हैं- यह एक अतुलनीय चमत्कार है। सूत्रों को पद्यशैली में रचने की यह परम्परा सरलता से स्मरण करने में सहायक थी। साथ ही, यह सुनिश्चित करती है कि लेखन सामग्री की कमी तथा नश्वरता के पश्चात् भी ज्ञान का केन्द्रीय व सबसे महत्त्वपूर्ण भाग अगली पीढ़ियों में मौखिक रूप से संप्रेषित हो सके।

600 ई० पू० से 300 इस्वी सन् की कालावधि में ग्रीक ने गणित के क्षेत्र में गहन योगदान दिया। उसने स्वयंसिद्ध कथनों के मार्ग की नींव रखी, जो कि आधुनिक गणित की विशेषता है; यूक्लिडियन ज्यामिति को ऊँचाई तक पहुँचाया, त्रिकोणमिति की खोज की, संख्या-सिद्धान्त में प्रभावशाली आरम्भ किया एवं शुद्धगणित की अन्तर्निहित सुन्दरता तथा लालित्य को उजागर किया। यूक्लिड द्वारा स्थापित ठोस नींव पर आधारित ग्रीक ज्यामिति ने आगे चलकर कोणीय उच्च ज्यामिति में आर्किमिडीज ने समाकलन से परिचय कराया तथा गणित व भौतिकी के क्षेत्र में अन्य अनेक प्रमुख योगदान दिया।[6] ग्रीक के इस चमकदार विकास-काल के पश्चात् आधुनिक पुनर्जीवन तक के लिए पश्चिम में सर्जनात्मक गणित में वास्तविक रूप से ठहराव आ गया।

दूसरी ओर, भारतीय योगदान जो कि पृथ्वी पर मानव सभ्यता के प्राचीनतम काल से आरम्भ होता है शक्तिशाली तथा अनवरत रूप से 16वीं-17वीं शताब्दी तक प्रवाहित होता रहा; प्रमुख रूप से अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के क्षेत्र में। बल्कि ग्रीक के ह्रास के पश्चात् कुछ सदी तक केवल भारत में तथा कुछ सीमा तक चीन में, सर्जनात्मक तथा मौलिक गणितीय क्रियाएँ प्रचुरता में उपलब्ध रहीं। भारतीय गणित से परिचित उत्तरकालीन विद्वानों ने इसे (भारतीय गणित को) उच्च सम्माननीय स्थान दिया। उदाहरण स्वरूप- स्पेन के एक आश्रम (976 ई०) में प्राप्त हुई पाण्डुलिपि में अभिलिखित है[7]-

> "The Indians have an extremely subtle and penetrating intellect, and when it comes to arithmetic, geometry and other such advanced disciplines, other ideas must make way for theirs. The best proof of this is the nine symbols with which they represent each number no matter how large."

इसी प्रकार का आदर तथा प्रशंसा साइरियन विद्वान् सेवरस सेबॉट के द्वारा सन् 662 में किया गया है।[8]

शून्य, दाशमिक स्थानमान पद्धति तथा गणना प्रणाली :

वैदिक कालीन गणितज्ञों ने विश्व को 'शून्य' तथा 'दाशमिक स्थानमान पद्धति/ दशमलव पद्धति' रूपी अनमोल उपहार दिया है। यह गूढ़, गहन अत्यधिक गुमनाम भरतीय नवनिर्माण, प्रायोगिक आविष्कार के रूप में संक्षिप्त विचारों तथा उपादेयता की पूर्णबुद्धिमत्ता के लिए विश्व-इतिहास में अद्वितीय तथा अविजित है। दशमान पद्धति में भी सर्वाधिक महत्त्व शून्य का है, क्योंकि यह पद्धति शून्य के प्रयोग पर ही आधारित है। गणित, विज्ञान तथा विशेषत: संगणक (Computer) व सूचना तथा प्रसार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की जो प्रगति आज हो रही है, उसकी कल्पना भी शून्य के बिना नितान्त असम्भव है।

दशमलव चिह्नांकन प्रमुख रूप से दो बौद्धिक कुञ्जियों से अपनी शक्ति प्राप्त करता है- (i) स्थान-मान की संकलप्ना से तथा (ii) अंक के रूप में 'शून्य' की स्वीकृति से। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि शून्य का आविष्कार कब हुआ।

परन्तु इसका सर्वप्रथम प्रयोग पिङ्गल के 'छन्द:सूत्र' में मिलता है, जिसकी रचना लगभग 200 ई० पू० मानी गयी है। शून्य का आविष्कार वैदिक ऋषि गृत्समद ने किया था।[9] यह एक ऐसा संकेत है जो 'कुछ नहीं' का प्रतिनिधित्व करता है। प्रो० जी० बी० हाल्स्टेड ने शून्य की स्थानमान की शक्ति को अपने वक्तव्य में इस प्रकार उजागर किया है- "शून्य चिह्न के सृजन की महत्ता कभी भी अतिरंजित नहीं की जा सकती। इस अगम्भीर कुछ नहीं को न केवल स्थानीय निवास तथा एक संज्ञा, एक चित्र, एक चिह्न देना बल्कि सहायक/ उपयोगी शक्ति देना, हिन्दु जाति की विशेषता रही है, जब से यह अस्तित्व में आयी। यह ऐसा है जैसे निर्वाण को विद्युत संयंत्र में मुद्रित कर देना। कोई भी गणितीय निर्माण,

बुद्धिमत्ता तथा शक्ति के सामान्यतया अग्रसर होने के लिए, इससे अधिक शक्तिशाली नहीं हुआ।"[10]

प्रयुक्त चिह्नों की संख्या में तथा लिखित संख्या के द्वारा गृहीत स्थान में दशमलव की एक अनोखी तथा महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है, बड़ी संख्याओं को सरलतापूर्वक व्यक्त करने की योग्यता है तथा इन सबसे बढ़कर संगणनीय / परिकलनीय सुविधा है। यथा- बारह अंकचिह्नों की रोमन संख्या - DCCCLXXXVIII, दशमलव पद्धति में आसानी से केवल '888' रूप में लिखी जा सकती है। मौलिक अंकगणित में अधिकांश मानक परिणाम भारतीय उद्गम के हैं।[11] इसके अन्तर्गत मूलभूत अंकगणितीय प्रक्रियाओं की स्वच्छ, व्यवस्थित तथा सीधी-सपाट तकनीक आती हैं, यथा- योग, वियोग, गुणा, भाग, वर्ग, धन, वर्गमूल, घनमूल निकालना, भिन्नों तथा अव्यक्त संख्या के साथ संचालन प्रक्रिया के नियम, अनुपात तथा समानुपात के अनेक नियम, आदि। शुल्बसूत्रों में इन सभी का प्रयोग स्पष्टत: किया गया है; जोकि आधुनिक गणित में भी समान रूप से प्राप्त होते हैं।

वैदिक विद्वानों की यह गणितीय परम्परा बाद के बाल में भी अनवरत चलती रही एवं गणित के नित नूतन आयामों का स्पर्श करती रही। इस परम्परा में अनेक विख्यात गणितज्ञ हुए जिनका योगदान गणितविद्या के विस्तार, गहराई एवं गुणवत्ता की दृष्टि से उत्कृष्ट था। आर्यभट्ट प्रथम (ई०स० 476), भास्कर प्रथम (ई०स० 600), ब्रह्मगुप्त (ई०598), महावीर (ई०स० 850), आर्यभट्ट द्वितीय (ई०स० 950), श्रीधराचार्य (ई०स० 991), श्रीपति (ई०स० 999), भास्कर द्वितीय (ई० स०1114), नारायण (ई०स० 1350), आदि अपने काल के विख्यात गणितज्ञ एवं गणित के इतिहास में स्वर्णिम नाम हैं।

ब्रह्मगुप्त ने सभी अंकगणितीय प्रक्रियाओं को बीस प्रकार में विभाजित किया तथा आठ प्रकार के प्रतिगणित संकल्पनाओं को प्रस्तुत किया।[12]

परिकर्मविंशतिं य: सङ्कलिताद्यां पृथग्विजानाति।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणक:
स:।।

वे बीस प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं-

(1) संयोग, (2) वियोग, (3) गुणा, (4) भाग, (5) वर्गमूल, (6) घन, (7) घनमूल, (8-13) समानयन (reduction) के पाँच नियम (जो भिन्न के पाँच मानक प्रकार से सम्बद्ध है), (14) त्रैराशिक (तीन का नियम), (15) व्यस्त - त्रैराशिक

(तीन का प्रतिलोम नियम), (16) पाँच का नियम, (17) सात का नियम, (18)नौ का नियम, (19) ग्यारह का नियम, (20) विनियम अथवा आदान-प्रदान। तथा आठ संकल्पनाएँ इस प्रकार हैं- (1) मिश्रण, (2) अनुक्रम या श्रेणी, (3) समतल आकृतियाँ, (4) उत्खनन, (5) संग्रह, (6) आरा, (7) टीला तथा (8) छाया।

गुणन तथा भाग की लम्बी भारतीय प्रक्रियाओं से यूरोप बहुत बाद में, लगभग 14वीं शताब्दी तक परिचित हुआ। विश्व हमारे भिन्नों की प्रक्रियाओं के नियमों का इतना आदि हो गया कि इस तथ्य को अनदेखा कर दिय गया कि उनमें ऐसे भाव निहित हैं जो कि मिस्त्र- जो गणित के इतिहास में कुछ सर्वाधिक प्रतिभाशाली मस्तिष्क रखता है, दोनों के लिए अपरिचित थे। अंकगणित की आधारशिला में भारतीयों द्वारा प्राप्त किया गया श्रेष्ठता तथा कौशल मुख्यत: इस कारण था क्योंकि दशमलव अंकनपद्धति आधुनिक अंक गणित के सभी मुख्य मत की आरम्भिक खोज की कुञ्जी है। उदाहरण स्वरूप, वर्गमूल तथा घनमूल निकालने की आधुनिक प्रक्रिया, आर्यभट्ट द्वारा 5वीं शताब्दी में वर्णित, चतुरतापूर्वक स्थानमान तथा शून्य का विचार एवं $(क+ख)^2$ व $(क+ख)^3$ का बीजगणितीय विस्तरण का प्रयोग करती है।[13]

यूरोप इन विधियों से 16वीं शताब्दी ईसवी में परिचित हुआ। सुनिश्चित विधियों के अतिरिक्त भारतीयों ने अवर्ग (non-square) संख्याओं का आसन्न वर्गमूल निर्धारित करने के लिए अनेक उत्तम विधियों का भी आविष्कार किया। उत्तर-वैदिक भारतीय गणित की आरम्भिक अवस्था संबंधी हमारे ज्ञान में अन्तराल होने के कारण दशमलव अंकनप्रणाली की उत्पत्ति संबंधी सुनिश्चित विवरण ज्ञात नहीं है। शून्य की अवधारणा का अस्तित्व महर्षि पिङ्गल (200 ई० पू०) के समय से विद्यमान था। स्थानमान की योजना अप्रत्यक्ष रूप से प्राचीन संस्कृत पारिभाषिक-शब्दों में उपस्थित थी, जिसके फलस्वरूप भारतीय बड़ी से बड़ी संख्याओं का वैदिक काल से ही सरलतापूर्वक प्रयोग कर रहे थे।

संख्या दस के अठ्ठारह गुणज (10^{18}) तक के लिए आरम्भिक वैदिक साहित्य में पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं- शत (10^2), सहस्त्र (10^3), अयुत(10^4), लक्ष (10^5), प्रयुत (10^6), कोटी (10^7), अर्बुद (10^8), अब्ज (10^9), खर्व (10^{10}), निखर्व (10^{11}), महापद्म (10^{12}), शंख (10^{13}), जलधि (10^{14}), अन्त्य (10^{15}), महाशंख (10^{16}), परार्ध (10^{17})।[14] इन शब्दों को सुव्यवस्थित तथा सुनियंत्रित ढंग से संयोजन करने पर इससे भी बड़ी संख्या का नाम प्राप्त कर सकते हैं। मेधातिथि ने उपर्युक्त संख्याओं को दस के गुणकों में अंकित किया है। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के एक मंत्र से 10^{14} को 'लोक' नाम से प्रकट किया गया है। वास्तव में इन बड़ी संख्याओं को सुव्यवस्थित रूप में अंकित करने का श्रेय मेधातिथि को दिया जाता है।[15] वैदिक काल के प्रसिद्ध ऋषियों में इनकी गणना होती है। ऋक, यजु: तथा अथर्ववेद के अनेक मंत्र के द्रष्टा मेधातिथि हैं।

रामायण में 10^{55} तक के लिए शब्द है तथा जैन-बौद्ध के मूल साहित्य में 10^{140} तक की बड़ी संख्याओं का निरन्तर प्रयोग, स्थान तथा समय की उनकी गणना के लिए, प्राप्त होता है। बौद्ध ग्रन्थ

ललित विस्तार (ई० पू० प्रथम शतक) में राजकुमार गौतम तथा गणितज्ञ अर्जुन के बीच हुई स्पर्धा के सन्दर्भ में तल्लक्षण (10^{53}) के उल्लेख का उदाहरण है। साथ ही, इस ग्रन्थ में अत्यन्त सूक्ष्म मानक का नाम श्परमाणुरजश है जो एक अंगुल पर्व[16] के 10^{-7} के बराबर है। इतनी बड़ी संख्याओं की अभिव्यक्ति अन्य देशों के समकालीन शास्त्र अथवा साहित्य में प्राप्त नहीं होती है। यहाँ तक कि प्रतिभाशाली ग्रीक के पास भी डलतपंक (10^4) से बड़ी संख्या के लिए कोई संज्ञा अथवा पारिभाषिक शब्द नहीं था, जबकि रोमन पारिभाषिकी 10^3 (Mille) पर ही रूकी हुयी थी।[17] दस को गणना प्रणाली का आधार बनाना, संस्कृत संख्यात्मक पद्धति की संरचना तथा बड़ी संख्याओं के लिए भारतीय प्रेम ही दशमलव पद्धति के निर्माण का अवश्यम्भावी कारण रहा होगा। अ० सीडनबर्ग के शब्दों में- "यहाँ चौंकाने वाला तथ्य यह है कि यहाँ (भारत में) प्रमाण उपस्थित हैं। ऐसे तथ्यों के लिए कुछ लोग निरर्थक ही प्राचीन बेबीलोन की ओर देखते हैं। हो सकता है प्राचीन बेबीलोनियन अथवा उनके पूर्वजों के पास उनके सूत्रों के लिए प्रमाण रहा हो; परन्तु कोई भी उन प्रमाणों को प्राचीन बेबीलोन में खोज नहीं सका है।"[18]

समीकरण क^2 - च ख^2 = 1 का सबसे छोटा धनात्मक पूर्णसांख्यिक समाधान भी बहुत बड़ा हो सकता है। च = 61 के लिए यह 1766319049, 226153980 है। इस गहन उचित समस्या के प्रारम्भिक भारतीय समाधान का श्रेय, आंशिक रूप से, बड़ी संख्याओं के लिए भारतीयों का पारम्परिक मोह तथा उनके (बड़ी संख्याओं के) साथ खेल सकने की योग्यता को जाता है। अच्छी अंकन पद्धति अथवा संकेत चिह्न के अभाव के कारण ग्रीक गणित के संगणनीय पक्ष में सशक्त नहीं हो पाया। ग्रीक गणित के पतन के लिए उत्तरदायी सम्भावित कारकों में से यह भी एक था।[19]

आर्किमिडीज (287-212 ई०पू०) ने अच्छी अंकन पद्धति के महत्त्व को समझा अवश्य तथा उसे विकसित करने के लिए उल्लेखनीय प्रगति भी की; परन्तु भारतीय दशमलव पद्धति का पूर्वानुमान करने में असफल रहा। जैसा कि एक प्रसिद्ध फ्रांसी गणितज्ञ लैपलेस (1749-1827) ने कहा है-"इस आविष्कार का महत्त्व और अधिक सहर्ष प्रशंसित होगा जब कोई ऐसा विचार करता है कि यह पुराकाल के दो महानतम व्यक्तियों- आर्किमिडीज तथा अपोलोनियस, से परे था।"

दशमलव पद्धति यूरोप में अरब के माध्यम से संचारित हुयी। संस्कृत शब्द 'शून्य' अरबी में 'सिफ्र' (sifr) के रूप में अनूदित हुआ जो कि जर्मनी में 13वीं शताब्दी में 'सिफ्रा' (cifra) रूप में परिचित हुआ जिससे 'Cipher' शब्द बना। 'Zero' शब्द संभवत: अरबी sifr के लैटिन संस्करण 'zephirum' से आया। द्वितीय सहस्राब्दी का प्रथम प्रमुख यूरोपीय गणितज्ञ, पीसा का लियोनार्डो फिबोनाकी (1180-1240) ने यूरोप में भारतीय सांख्यिक पद्धति के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। परिणामत: भारतीय अंकन प्रणाली तथा अंकगणित यूरोप में 16वीं-17वीं सदी की कालावधि में मानक बन गए।[20]

दशमलव पद्धति ने व्यापार तथा अर्थव्यवस्था को एवं ज्योतिष व गणित को भी प्रेरित कर गतियुक्त किया। यह संयोग नहीं है कि यूरोप में गणितीय तथा वैज्ञानिक नवचेतना का आरम्भ भारती अंकन प्रणाली के उनके द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात् ही हुआ। वस्तुत:, निश्चित ही दशमलव अंकन पद्धति सभी आधुनिक सभ्यता का आधार स्तम्भ है। पाश्चात्य विद्वान सेवेरस सेबॉख्ट ने ई०स० 662 में प्राचीन भारतीयों की गणितीय तथा वैज्ञानिक उच्च चेतना व ज्ञान की प्रशंसा इन शब्दों में की है-

> "I will omit all discussion of the science of the Indians, a people not the same as the Syrians; of their subtle discoveries in astronomy, discoveries that are more ingenious than those of the Greeks and the Babylonians; and of their valuable methods of calculation which surpass description."

बीजगणित - एच० हैन्कल का कथन है[21] "सचमुच यदि कोई बीजगणित से सभी प्रकार के जटिल परिमाणों के लिए गणितीय प्रक्रिया का उपयोग करना समझता है, चाहे व्यक्त या अवयक्त संख्याएँ हों या ब्रह्माण्डीय विस्तार, तो हिन्दुस्तान के विद्वान् ब्राह्मण बीजगणित के वास्तविक आविष्कारक हैं।"

वैदिक कर्मकाण्डों की उत्पत्ति के समय यद्यपि जटिल एवं परिष्कृत ज्यामिति आविष्कृत हुई, उसकी स्वयं-सिद्धता तथा आगे का विकास ग्रीक द्वारा किया गया। ज्यामिति के क्षेत्र में अपोलोनियस (260-170 ई०पू०) के समय तक ग्रीक द्वारा प्राप्त की गयी ऊँचाई किसी भी परवर्ती प्राचीन अथवा मध्यकालीन सभ्यता के समानान्तर नहीं थी। परन्तु ज्यामिति में विकास शीघ्र ही निष्क्रिय बिन्दु पर पहुँच गया। ग्रीक ज्यामिति तथा आधुनिक यूरोप में अन्तिम बड़ा नाम पैपस (Pappus-300 ई० स०) के समय के दौरान आवर्ती चतुर्भुज (Cyclic Quadrilaterals) पर ब्रह्मगुप्त (ई०स० 598) का देदीप्यमान प्रमेय ज्यामिति के इतिहास में अकेला ही एकमात्र रत्न स्थापित करता है।[22]

अतिरिक्त विकास के लिए एक नयी तकनीक की आवश्यकता थी; बल्कि गणित में पूर्णत: एक नए प्रवेश मार्ग की आवश्यकता थी। यह आवश्यकता गणित के जिस नयी शाखा/विद्या के आविर्भाव तथा विकास के द्वारा उपलब्ध करायी गयी, वह है- बीजगणित। भारत में शाब्दिक अथवा चिह्नांकित बीजगणित के प्रत्यक्ष रूप से बाहर आने तक, यह कई प्राचीन सभ्यताओं के गणित में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान था। प्रमुख बीजगणितज्ञ तथा गणित इतिहास अ० सिडेनबर्ग ने ऋग्वैदिक कर्मकाण्डों में परिष्कृत तथा गूढ गणित के उत्स को चिह्नित किया है एवं कहा है- "मूल बिन्दु यह है कि प्राचीन बेबीलोनियन गणित का प्रबल पक्ष उसका संगणनीय स्वरूप है.... शुल्बसूत्रों में (ज्यामितीय तथा संगणनीय) दोनों पक्ष

हैं तथा यही स्थिति शतपथ ब्राह्मण में भी है।[23]

शुल्बसूत्रों में बीज रूप से निहित यह विद्या आर्यभट्ट (ई०स०476) तथा ब्रह्मगुप्त (598 ई०स०) के समय तक भारत में चिह्नांकित अथवा प्रतीकात्मक बीजगणित गणित की पृथक् शाखा के रूप में विकसित हो चुकी थी तथा इसके केन्द्रिय आधारस्तम्भों में से एक थी। तब से अब तक अनेक अवस्थाओं से होते हुए विकसित होने के पश्चात्, आज बीजगणित आधुनिक गणित में, स्वाधिकृत स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में तथा अन्य (विज्ञान, आदि) क्षेत्रों में भी अपरिहार्य साधन के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वास्तव में 20वीं शताब्दी 'गणित के बीजगणितीकरण' की ओजस्वी अवस्था का साक्षी बना। बीजगणित, गणितज्ञों को, सुरुचिपूर्ण सरलता, सूक्ष्मता, स्पष्टता तथा तकनीकी सामर्थ्य प्रदान करता है। उदाहरण स्वरूप, संख्या 103 का वर्ग निकालने के लिए बीजगणितीय सूत्र $(क+ख)^2 = क^2 + 2कख + ख^2$ का प्रयोग करके इसे इस प्रकार लिख सकते हैं- $(100+3)^2 = 1002 + 2\times100\times3+32=10000 + 600+9=106091$। अतएव, कहा जा सकता है कि बीजगणित के कुछ आधारभूत सूत्रों के उपयोग से कुछ अंकगणितीय प्रक्रियाएँ अलिखित, मानसिक रूप से ही हल की जा सकती हैं।

यह प्रशंसनीय एवं ध्यातव्य है कि भारतीयों ने बीजगणित के महत्त्व को कितनी शीघ्र / पूर्व पहचान लिया; जिसे आगे चलकर ब्रह्मगुप्त, भास्कर, जैसे अग्रणी भारतीय गणितज्ञों ने उनके द्वारा नवस्थापित इस विद्या की महत्ता की उद्घोषणा की तथा पृथक् शाखा के रूप में स्थापित किया। शुल्बसूत्रों में रेखीय (linear), समकालिक (simultaneous) तथा अपरिमिति (indeterminate) समीकरणों के समाधान प्राप्त होते हैं। उत्तरकाल में अज्ञात परिमाण की शक्ति के अनुसार समीकरणों को विभाजित किया गया। उदा०[24]_

यावत् तावत्	सरल (Simple)
वर्ग	द्विघाती (Quadratic)
घन	त्रिघाती (Cubic)
वर्ग-अवर्ग	अर्धद्विघाती (Bi&quadratic)

समीकरणों को अन्य क्रम से भी विभाजित किया गया-

1. एकवर्ण समीकरण - जिसमें एक अज्ञात है।
2. अनेकवर्ण समीकरण - जिसमें अनेक अज्ञात हैं।
3. भावित समीकरण - जिसमें अज्ञातों का गुणनफल समाहित है।

बक्शली पाण्डुलिपि (सन् 200) में द्विघाती समीकरणों का समाधान ($ax^2+bx+c = 0$ होता है) आर्यभट्ट तथा ब्रह्मगुप्त दोनों को ज्ञात था। वर्ग को पूर्ण करने की आज की पद्धति श्रीधराचार्य (सन् 10वीं शती) की देन है।[25]

चतुराहतवर्गसमैः रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्
अव्यवतिवर्गरूपैः उक्तौ पक्षौ ततो मूलम् ।।

अर्थात्, दोनों पार्वों को अज्ञात के वर्ग के गुणांक के चौगुना से गुणा करना चाहिए-

$$ax^2 + bx + c = 0$$
$$x4a$$
$$4a^2x^2 + 4abx + 4ac + b^2 = 0 + b^2$$
$$4a^2x^2 + 4abx + b^2 = b^2 - 4ac$$
$$(2ax+b)^2 = b^2 - 4ac$$
$$2ax = b \pm b^2 - 4\,ac$$
$$x = b + b^2 - 4aC \div 2a$$

शुल्बकाल से ही प्रथम कोटि के अपरिमित समीकरण भारतीय गणितज्ञों एवं खगोलशास्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करते रहे। फलस्वरूप उत्तरकालीन गणितज्ञों ने इन्हें हल करने के लिए विस्तृत नियम बनाए। द्वितीय कोटि के अपरिमित समीकरणों को 'वर्गप्रकृति' कहा गया है। वे $nx^2+1=y^2$ प्रकार के हैं। भास्कर द्वितीय ने अपरिमित समीकरणों को हल करने के लिए चक्रवाल पद्धति (Cyclic method) को आविष्कृत किया। भास्कर के अनुसार $61x^2 +1 = 4^2$ का हल है- $x = 226153980$ तथा $y = 1766319049$ यह चौंकाने वाला विषय है कि इसी समीकरण को फ्रांसी गणितज्ञ फारमेट (Farmet, ई०स० 1657) ने फ्रांन्सियल को चुनौति के रूप में दिया था किन्तु स्वीट्जरलैण्ड के गणितज्ञ इयूलर (Euler) ने ई०स० 1732 में इसका हल ढूँढा अर्थात् भास्कर द्वितीय के 700 वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात्।[26]

इस चक्रवाल पद्धति का अध्ययन उप्पशला विश्वविद्यालय के सेलेनियस के क्लास 01 (class of Selenius) ने किया और उन्होंने लिखा है "इस चक्रवाल पद्धति से यूरोपीय पद्धतियों को हजार से भी अधिक वर्षों तक अपनाया गया और यह अन्य सभी प्राच्य कार्यों से श्रेष्ठ निकली। मेरे मतानुसार भास्कर के काल में या उसके बहुत बाद तक इस तरह की उच्च श्रेणी की गणितीय जटिलताओं को हल करने में कोई भी यूरोपीय गणितज्ञ समर्थ नहीं हुआ।"[27]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक कालीन मनीषियों ने अज्ञात परिमाणों तथा अंकगणितीय प्रक्रियाओं को निर्दिष्ट करने के लिए प्रतीक चिह्नों का योजनाबद्ध प्रयोग आरम्भ किया। चारों अंकगणितीय प्रक्रियाएँ 'यु', 'क्ष', 'गु', 'भ' के द्वारा निर्दिष्ट की जाती थीं जो कि तदनुरूप संस्कृत शब्दों श्युतश (जोड़), 'क्षय' (घटाव), 'गुणा' तथा 'भाग' के प्रथमाक्षर हैं। इसी प्रकार करणी के लिए 'क' का प्रयोग होता था तथा विभिन्न अज्ञात चल (Variables) के लिए विभिन्न रंगों के नाम के प्रथमाक्षर का प्रयोग किया जाता था। संकेतचिह्नों द्वारा प्रस्तुतीकरण का यह प्रारम्भ गणित के द्रुतगामी प्रगति में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। हालांकि, चिह्नों का प्रारम्भिक प्रयोग डायोफैन्टस (Diophantus) के ग्रीक मूलपाठ में भी दृष्टिगोचर होता है, तथापि बीजगणितीय रचना भारत में ही पूर्ण विकास को प्राप्त हुई।[28]

सर्वप्रथम 'समीकरण' शब्द का प्रयोग ब्रह्मगुप्त ने किया। भारतीयों ने ही समीकरण को वर्गीकृत किया, तथा विस्तृत अध्ययन किया, अंकगणितीय प्रक्रियाओं के नियमों तथा शून्य के साथ ऋणात्मक संख्याओं को भी प्रस्तुत किया, अव्यक्त संख्याओं पर परिणामों की खोज की, एकघाती (linear) तथा द्विघाती समीकरणों के हल का वर्णन किया, अंकगणितीय तथा ज्यामितीय श्रेणी के लिए सूत्र दिया, सावधि श्रृंखला के संकलन से युक्त तादात्म्यों के लिए भी सूत्र दिए, क्रमचय तथा संयोजन (permutations and combinations) पर अनेक उपयोगी परिणामों का प्रयोग किया जिनमें दत्त तथा दब्त के लिए सूत्र भी सम्मिलित हैं। ऋणात्मक संख्याओं को सम्मिलित कर संख्या पद्धति को विस्तार देना गणित के विकास महत्त्वपूर्ण कदम था। भारतीय विभिन्न प्रकार के द्विघाती समीकरणों (धनात्मक गुणांकों के साथ) के लिए एकीकृत समाधान देने में समर्थ थे। यथा - $ax^2 + bx = c$, $ax^2 + c = bx$, $bx + c = ax^2$ । भारतीय यह पहचानने वालों में प्रथम थे कि द्विघाती समीकरण के दो मूल होते हैं।[29]

गणित के इतिहास पर काजोरी का व्यापक रूप से अभिनन्दित मूललेख में भारत पर अध्याय में इस टिप्पणी के साथ निष्कर्ष दिया गया है- "...जिस सीमा तक भारतीय गणित ने हमारे समय के विज्ञान में प्रवेश किया है, वह असाधारण है। आधुनिक समय की अंकगणित तथा ज्यामिति का रूप तथा उत्साह- दोनों ही अनिवार्य रूप से भारतीय हैं। संख्या की हमारी अंकनपद्धति को सोचें, हिन्दुओं के द्वारा पूर्णता को पहुँचायी गयी भारतीय अंकगणितीय प्रक्रियाओं को सोचें जो कि उतनी ही पूर्ण हैं। जितनी कि हमारी अपनी, उनके सुरूचिपूर्ण बीजगणितीय विधियों को सोचें तथा इसके बाद निर्णय करें कि क्या गंगातटीय ब्राह्मण कुछ श्रेय के अधिकारी नहीं हैं।"[30]

भारतीय शास्त्रों में च के लिए प्रशंसनीय सन्निकट मान दिए हैं, आर्यभट्ट (ई०स० 476) द्वारा 3.1416, माधवाचार्य (14वीं शताब्दी ई०) द्वारा 3.14159265359, नीलकण्ठ (ई०स० 1500) द्वारा 355/113 । करणपद्धति नामक एक अज्ञात ग्रन्थ (जो कि पुतुमन सोमयाजिन द्वारा 15वीं शताब्दी में रचा गया माना जाता है) में π का मान 3.14159265358979324 दिया गया है, जो कि दशमलव के सत्रह अंकों तक सही है।[31] सरल अनुपात तथा समानुपातों से युक्त संख्याओं को हल करने के लिए उपयुक्त तीन का नियम- त्रैराशिक तथा इसका प्रतिलोम नियम- व्यस्त त्रैराशिक भी भारतीयों की देन है। इस नियम को यूरोप में अंकगणित का स्वर्णिम नियम (Golden rule of Arithmetic) कहा जाता है।[32]

आधुनिक समय के संख्यावाचक क्रम 1 से 9 तक का आविष्कार भी भारतीयों ने 2000 वर्ष से भी पूर्व कर लिया था। इन अंकों के बिना तो आज गणित की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अधिकांश ब्राह्मी शिलालेखों (300 ई० पू०) में संख्यावाचक शब्द प्राप्त होते हैं। ये शिलालेख संख्यावाचकों के उपलब्ध प्रमाणों में सबसे प्राचीन हैं। ब्राह्मी संख्यावाचकों में 1 से 9 तक के अंकों को निर्दिष्ट करने के लिए विशेष संकेत चिहन हैं।[33] फ्रांसी गणितज्ञ लैपलेस ने इन चिह्नों की महत्ता को इन शब्दों में प्रकट किया है - "The ingenious method of expressing every possible number using a set of ten symbols (each symbol having a place value and an absolute value)emerged in India. Its simplicity lies in the way it facilitated calculations and placed arithmetic foremost among useful inventions."

यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज अनेक प्रमुख गणितज्ञों, यथा- श्रीधर, पद्मनाभ, जयदेव तथा माधव के मौलिक ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं किए जा सके हैं। अनुवर्ती भाष्यों में उनके महनीय कार्यों तथा समाधानों की, प्रासंगिक सन्दर्भ रूप में वर्णन के माध्यम से, केवल कुछ झलकियाँ ही प्राप्त होती हैं। अनेक परवर्ती साहित्य में माधवाचार्य के योगदान का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमें एक महान ज्योतिषी नीलकण्ठ सोमयाजी (1445-1545 ई०) की तन्त्रसंग्रह (1500 ई०) भी है। ज्येष्ठदेव (1500-1610ई०) की युक्तिभाष (1540ई०) तथा अज्ञात की करणपद्धति सम्मिलित हैं। नीलकण्ठ ने हमारे सौरमण्डल का सूर्यकेन्द्रीय प्रतिमान, कॉपरनिकस से पूर्व ही दे दिया था।[34]

अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति तथा त्रिकोणमिति में भारतीय योगदान अरब तथा पारसियों से होता हुआ यूरोप पहुँचा। 1000 वर्षों से भी अधिक की निद्रा के पश्चात् यूरोप ने अपनी समृद्ध ग्रीक सम्पत्ति की पुनर्खोज की तथा असाधारण भारतीय विकास के कुछ फलदायी परिणाम अर्जित किए। इसकी नींव दो महान् गणितीय सभ्यताओं के मिश्रण पर स्थापित हुयी - ग्रीक के ज्यामितीय तथा स्वयंसिद्ध कथनों की परम्परा तथा भारतीयों की बीजगणितीय एवं संगणनीय परम्परा- जिसके कारण यूरोप में गणितीय नवचेतना का जागरण सम्भव हो सका।

20वीं शताब्दी की कालावधि में, विशेष रूप से उत्तरार्द्धकाल में भारतीयों ने गणित के अनेक अग्रणी क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि यह तथ्य आधुनिक विद्यार्थियों के मध्य सुपरिचित नहीं है; आंशिक रूप से इसलिए क्योंकि गणित के सीमान्त विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रम की पहुँच से ये कहीं अधिक परे, विस्तार को प्राप्त हो चुके हैं। यद्यपि भारतीयों ने गणित के तीव्र विकास में जो कि 17वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य हुआ, वास्तव में बिल्कुल भी भाग नहीं लिया। यह समयावधि राष्ट्रीय जीवन में आयी अस्थिरता (विदेशी आक्रमणों के कारण) तथा निष्क्रियता से सादृश्य रखती है। परिणामस्वरूप जबकि उच्च विद्यालय का गणित, विशेष रूप से अंकगणित, बीजगणित तथा क्षेत्रमिति अधिकांशतः भारतीय मूलोत्पत्ति हैं; तथापि महाविद्यालय तथ विश्वविद्यालय के गणित पाठ्यक्रमों में कोई विरले ही किसी भारतीय नाम से परिचित होता होगा। चूँकि उस गणित के अधिकांश भाग 17वीं शताब्दी के अन्त से आरम्भिक 20वीं शताब्दी के मध्य निर्मित हुए। परन्तु क्या हमें भारत की सहस्राब्दियों की संस्कृति तथा महानता को केवल कुछ शताब्दियों की उपेक्षा तथा दुर्बलता के कारण भूल जाना चाहिए?

सन्दर्भ :

1. सरलत्रिकोणमितिः -पं स. शर्मा, पृ. 177
2. A. Seidenberg, The Origin of Mathematics in 'Archive for History of Exact Sciences, 1978.
3. David Osborn, Science of the Sacred, Intro. pg.-13, pub. by - Lulu. com.
4. बौ.शु. सू. 1. 48
5. A. Seidenberg, The Geometry of Vedic Rituals in 'Agni, The Vedic Ritual of the Fire Altar', Vol. II, ed. F. Staal.
6. Mathematics in Ancient India (article)- Amartya Kr. Dutta in RESONANCE, April 2002, pg.-7.
7. The Universal History of Numbers - Georges Ifrah, John Wiley and Sons, 2000; The Gest of The Peocock; Non-European Roots of Mathematics- G.G. Joseph.
8. A concise History of Science in India- S.N. Sen, Chap-3 Mathematics, ed. D.M. Bose, S.N. Sen and B.V. Subarayappa.
9. प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प, पृ. 14-19; संस्कृत में विज्ञान- डॉ. वि.श. गुलेरी, पृ. 21
10. On the Foundations and Techniques of Arithmatic- G.B. Halsted, 1912
11. Mathematics in Ancient India- A.K. Dutta, pg.-8
12. संस्कृत में विज्ञान- डॉ. वि.श. गुलेरी, पृ.19
13.. Mathematics in Ancient India- A.K. Dutta, pg.-9
14. History of Mathematics- The Indian Contribution - V.Krishnamurthy, article Jan 2007.
15. संस्कृत में विज्ञान- पं. वि.श. गुलेरी, पृ. 25 ।
16. Scientific Heritage of India, pg. - 57, , उद्धृत-डॉ. वि.श.गुलेरी, पृ. 27
17. Mathematics in Ancient India- A.K. Dutta, pg.-10
18. The Geometry of Vedic Rituals- A. Seidenberg, 1983 Mathematics in Ancient - India- A.K. Dutta, pg. -10.
19. Mathematics in Ancient India- A.K. Dutta, pg.-10
20. वही, पृ. 10-11 ।
21.. H. Hankel- " Indeed if one understands by algebra the application of arithmatical operations to complex magnitudes of all sorts, whether rational or irrational or irrational numbers or space magnitudes, then the learned Brahmins of Hindustan are the real inventors of algebra." - quoted by A.K. Dutta, pg.-11.
22. A concise History of Science in India- S.N. Sen, Chap-3 Mathematics, 22 ed. D.M. Bose, S.N. Sen and B.V. Subharayappa.
23. A. Seidenberg, The Origin of Mathematics in Archive for History of Exact Sciences, 1978; and The Geometry of Vedic Rituals in Agni, The Vedic Ritual of Fire Altar, Vol. II, ed. F.Staal.
24. संस्कृत में विज्ञान- पं. वि.श. गुलेरी, पृ. 36
25. वहीं, पृ. 36-37
26. तदेव, पृ. 39
27. Cultural Heritage of India-ed. P Ray & S.N. Sen, The Ramkrishna Mission, Chap.4- Post-Vedic Mathematics, S.N. Sen & A K Bag, pg. 49.
28. Mathematics in Ancient India- A.K. Dutta, pg. 12.
29. वही, पृ. 13
30. History of Mathematics- F. Cajori.
31. The History of Ancient Indian Mathematics - C.N Srinivasiengar, 1967.
32. संस्कृत में विज्ञान- पं. वि.श.गुलेरी, पृ. 33
33. Science of Sacred- David Osborn, Vedic Mathematics or Not, pg.-46.
34. Mathematics in India- A.K. Dutta, pg. 17.

भारत में महिला सशक्तिकरणः महिला स्वयं सहायता समूहों की भूमिका

कौमुदी राय

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Abstract:

स्वयं सहायता समूह प्रारंभ से ही महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कार्य कर रहे हैं। गरीबी को कम करने और महिला सशक्तीकरण की अपनी प्रणाली में, भारत सरकार ने महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आवश्यकता निवारण और महिला सशक्तिकरण के महिला आधारित संग्रहण मॉडल की विशेषताएं क्या हैं जिन्हें देश में साकार किया जा रहा है? गरीब महिलाओं को समूहों में कैसे बनाया जाता है? समूह कैसे काम करता है? साथ ही, इन मॉडलों की निराश्रित स्थिति को हल्का करने और महिला सशक्तिकरण के प्रति क्या प्रतिबद्धता रही है? इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए द्वितीयक डेटा का उपयोग किया जाता है। एसएचजी गरीबी उन्मूलन में मदद करते हैं और एसएचजी कोविड 19 से लड़ने में भी योगदान करते हैं। यह पत्र महिला सशक्तिकरण में

Keywords: SHG, विनाश, सशक्तिकरण, गरीबी, उन्मूलन

परिचयः

महिलाएं देश के आर्थिक विकास के लिए बुनियादी हैं और अगर भारत की बात आती है, जहां अभी भी लगभग 70 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती है; वे देहाती अर्थव्यवस्था के फलने-फूलने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। किसी भी मामले में, यह ध्यान रखना दयनीय है कि अभी भी देश के बड़े हिस्से में महिलाओं के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है और उन्हें आवश्यक मानवाधिकारों के एक हिस्से से भी वंचित रखा जाता है। ऐसी स्थिति में, लगभग 32 साल पहले शुरू किए गए महिला स्वयं समूह ग्रामीण भारत में महिलाओं को सक्षम बनाने के लिए वह सब कुछ कर रहे हैं जो वे कर सकते हैं और उनके लिए बहुआयामी भावनात्मक रूप से सहायक नेटवर्क के रूप में दृढ़ता से आगे बढ़ रहे हैं, आर्थिक विकास को बढ़ावा दे रहे हैं और श्प्रसारश सुनिश्चित करने के लिए एक वातावरण बना रहे हैं। 1990 के दशक में गरीबी उन्मूलन के लिए विकास के प्रभावश पर प्रकाश डाला गया है। यह मैक्रो-रणनीति उत्पादन अविभाज्यता [राव 1994] के उद्भव में योगदान करती है। गरीबों को गरीबी उन्मूलन के लिए इन प्रोत्साहनों का जवाब देने में सक्षम होना चाहिए [व्यास और भार्गव 1995]। हालाँकि, गरीब समूहों में निर्माण दृढ़ गुणों को छिपा सकते हैं। इसके अलावा, प्रशासन और वास्तविक प्राप्तकर्ताओं के बीच बीच-बीच की श्रृंखला को कम करने और उनकी सौदेबाजी की शक्ति में सुधार करने के लिए शत्रुतापूर्ण से निराश्रित कार्यक्रमों की व्यवस्था और निष्पादन में गरीबों के समर्थन की आवश्यकता है [राव 1994]। इसके अलावा, प्रतिष्ठानों के संयुक्त परिवार के ढांचे, समर्थक ग्राहक कनेक्शन और पारंपरिक व्यवसाय-आधारित संगठन जो गरीबों को मानकीकृत बचत देते हैं, जमीनी स्तर पर अलग हो रहे हैं। तदनुसार, गरीब लोगों के हितों की रक्षा के लिए जमीनी स्तर पर एक संस्थागत निर्वात है [गलब 1999]। इस विशिष्ट स्थिति में, इस बात के उदार प्रमाण हैं कि महिलाओं को मितव्ययिता और ऋण सेवाओं के इर्द-गिर्द व्यवस्थित करना गरीबी को कम करने के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण को सक्षम करने के लिए सर्वोत्तम तकनीकों में से एक है। [विश्व बैंक 1995, 2000/2001]। इस प्रकार, पूर्ण पैमाने और छोटे पैमाने की चिंताएं महिलाओं के हित में वृद्धि की पेशकश कर रही हैं, मितव्ययिता और ऋण सेवाओं के संबंध में केंद्रित समूहों को एक साथ रखा गया है।

भारत में SHGS की वृद्धिः

भारत सरकार निम्नलिखित परियोजनाओं के माध्यम से वित्तीय सुधार की स्वीकृति के लिए स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को आगे बढ़ा रही हैः दीन दयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएम), देश में ग्रामीण विकास मंत्रालय के तहत रणनीतिक लक्ष्य के साथ देश की गरीब महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (SHGs) में व्यवस्थित करना और वित्तीय अभ्यास करने के लिए उन्हें लगातार बनाए रखना और समर्थन करना जब तक कि वे अपनी व्यक्तिगत संतुष्टि में सुधार करने और सेवा की आवश्यकता से बाहर आने के लिए कुछ अपरिभाषित समय सीमा में वेतन में स्पष्ट वृद्धि हासिल नहीं कर लेते। कार्यक्रम की योजना यह सुनिश्चित करने की है कि किसी भी घटना में प्रत्येक ग्रामीण गरीब परिवार इकाई (लगभग 9 करोड़) से एक महिला भाग ले, महिलाओं के एसएचजी और उनके गठजोड़ को एक निश्चित समय अवधि के भीतर ओवरलैप में लाया जाए। यह कार्यक्रम दिल्ली और चंडीगढ़ को छोड़कर सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में चरणबद्ध तरीके से चलाया जा रहा है। 31 मई, 2019 तक, कार्यक्रम के तहत 54.07 महिला

महिला स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में 5.96 करोड़ महिलाओं को इकट्ठा किया गया है। डीएवाई-एनआरएलएम कार्यक्रम के तहत, प्रत्येक एसएचजी और सामुदायिक निवेश के लिए 10,000-15,000 रुपये की दर से रिवॉल्विंग फंड (आरएफ) स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) और उनके संघों को पैसे की उम्र के लिए स्वतंत्र कार्य करने के लिए सहायता निधि (सीआईएसएफ) प्रति एसएचजी रुपये 2,50,000 की सीमा दी जाती है। एसएचजी इसी तरह खेत और गैर-खेत दोनों क्षेत्रों में वेतन सृजन गतिविधियों को करने के लिए अलग-अलग नौकरी परिवार इकाइयों को लेने के लिए ऋण प्राप्त करने के लिए बैंकों से जुड़े हुए हैं।

आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय के तहत दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (डीएवाई-एनयूएलएम) ने उचित आधार पर शहरी गरीब परिवार इकाइयों की गरीबी और लाचारी को कम करने की योजना बनाई है। मिशन को आदेश दिया गया है कि गरीब लोगों के लिए ठोस जमीनी स्तर की नींव तैयार की जाए। सोशल मोबलाइजेशन एंड इंस्टीट्यूशन डेवलपमेंट (एसएम एंड आईडी) खंड के तहत, शहरी गरीबों की स्व-सहायता समूहों (एसएचजी) और उनके संघों में रणनीतिक सभी समावेशी सामाजिक तैयारी, किसी भी दर पर प्रत्येक शहरी गरीब परिवार इकाई से एक हिस्सा, आदर्श रूप से महिलाएं, के तहत लाकर एसएचजी नेटवर्क। ये समूह गरीब लोगों की मौद्रिक और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने में मदद करते हैं। स्व-रोजगार कार्यक्रम (एसईपी) के तहत, बैंक अग्रिमों को प्राप्त करने वाले सभी एसएचजी के लिए 7 प्रतिशत से अधिक की ब्याज दर पर प्रीमियम सबवेंशन उपलब्ध है। अतिरिक्त 3 प्रतिशत ब्याज सबवेंशन उन सभी महिला एसएचजी के लिए अतिरिक्त रूप से उपलब्ध है जो समय पर अपने क्रेडिट की प्रतिपूर्ति करती हैं। (महिला एवं बाल विकास मंत्रालय 12-जुलाई-2019)

महिला सशक्तिकरण:

सशक्तिकरण शब्द को उस पद्धति के रूप में वर्णित किया जाता है जिसके द्वारा महिलाएं निर्णयों के लिए नियंत्रण और जिम्मेदारी लेती हैं। सशक्तिकरण अधिक प्रमुख गतिशील बल और नियंत्रण और परिवर्तनकारी गतिविधि के लिए, अधिक प्रमुख सहयोग को प्रेरित करने वाली जागरूकता और सीमा निर्माण की एक प्रक्रिया है। महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं की शक्ति को उनकी विशाल क्षमता का विवेक करके और उन्हें गर्व, अधिकारों और दायित्वों की भावना के साथ निश्चितता और कौशल के माध्यम से एक आलीशान और पूर्ण जीवन शैली को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ने का आग्रह करना। सशक्तिकरण के केंद्र घटकों को कार्यालय (किसी के उद्देश्यों को चिह्नित करने और उन पर अनुवर्ती कार्रवाई करने की क्षमता), लिंग शक्ति संरचनाओं पर ध्यान, आत्मविश्वास और आत्म-आश्वासन के रूप में चित्रित किया गया है। नैरोबी में अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में एक विचार के रूप में सशक्तिकरण प्रस्तुत किया गया था। 1985. बैठक ने सशक्तिकरण को "सामाजिक बल का पुनर्वितरण और महिलाओं के लिए संसाधनों के नियंत्रण" के रूप में चित्रित किया। यह "मौजूदा शक्ति संबंधों को चुनौती देने और शक्ति के स्रोतों पर महत्वपूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने की प्रक्रिया है"। सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो कई दृष्टिकोणों को शामिल करती है जैसे जागरूकता में सुधार, मौद्रिक, सामाजिक और राजनीतिक संसाधनों तक पहुंच बढ़ाना आदि। गरीब और विकासशील राष्ट्र वैश्वीकरण का प्रभाव लंबे समय में किसी न किसी संरचना में महिलाओं की स्थिति पर देखा जाता है

आर्थिक, व्यापार, लेखा, कृषि प्रबंधन और शरिया प्रशासन का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। IJEBASE&ISSN: 2808-4713 द्य संयुक्त राष्ट्र ने भी पिछले वर्षों में इस मुद्दे पर विश्व समुदाय का उचित ध्यान आकर्षित करने के लिए आश्चर्यजनक तरीके से कड़ी मेहनत की है। महिला सशक्तिकरण महिलाओं की गुणवत्ता में विस्तार के लिए संकेत देता है, उदाहरण के लिए, गहरा, राजनीतिक, सामाजिक या वित्तीय। "महिला अधिकारिता" का सबसे प्रसिद्ध स्पष्टीकरण किसी की गतिविधियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने की क्षमता है। इस प्रकार सशक्तिकरण वास्तविक अर्थों में होता है जब महिलाएं गतिशीलता में विस्तारित नियंत्रण और रुचि प्राप्त करती हैं जो संसाधनों तक उनकी बेहतर पहुंच को बढ़ावा देती है, इसमें अक्सर अपनी क्षमताओं में विश्वास पैदा करने में सक्षम बनाना शामिल होता है।

भारत में महिला सशक्तिकरण:

वर्ष 2001 को भारत सरकार द्वारा एक सपने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए "महिला अधिकारिता वर्ष" (स्वशक्ति) के रूप में घोषित किया गया था, जहां महिलाएं पुरुषों की तरह समान साथी हैं। चूंकि भारत का संविधान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को समानता प्रदान करता है। पहले आम जनता में महिलाओं की स्थिति दयनीय थी और यहाँ तक कि आम जनता में डर, कायरता, पुरुष शक्ति और पर्दा प्रथा जैसे कई कारणों से महिलाएँ किसी भी कार्य या रोजगार के लिए प्रयास करने के लिए तैयार नहीं थीं लेकिन इस बिंदु पर समय बदल गया है। आज की महिलाएं शुरुआती दिनों की तरह नहीं हैं। वर्तमान में, वे लगातार वित्तीय स्वायत्तता, अपने स्वयं के चरित्र, उपलब्धियों, आम जनता में समकक्ष स्थिति और अधिक प्रमुख अवसर के दृष्टिकोण और आवश्यकता के लिए तैयार हैं। इसके अलावा, भारत सरकार ने स्वयं सहायता को समायोजित किया है उन्हें समूह (SHG) इस लक्ष्य के साथ कि स स्वतंत्र कार्य, अग्रणी सुधार और समृद्धि के माध्यम से उनकी वित्तीय स्वतंत्रता पर उचित विचार किया जाना चाहिए जो अंतत: उनकी प्रतिबद्धता को प्रेरित करता है। स्वयं सहायता समूहों को एक अद्भुत साधन के रूप में विकसित किया गया है ताकि प्रांतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की आवश्यकता

को कम किया जा सके और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए। स्वयं सहायता समूहों को व्यापार बैंकों, सह-रोजगार योग्य बैंकों, प्रांतीय देहाती बैंकों, नाबार्ड और गैर सरकारी संगठनों की प्रणाली के माध्यम से आम तौर पर आपूर्ति की जाती रही है। संचालित और गरीब लोगों के लिए धन संबंधी प्रशासन की व्यवस्था में एक सतत कार्यप्रणाली और आम जनता में उनकी स्थिति को और अद्यतन करना। इस प्रकार एसएचजी न केवल ग्रामीण जरूरतों को कम करने के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि देश के रिजर्व फंड को आगे बढ़ाने के लिए लाभदायक व्यवसाय को बढ़ाने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, वर्तमान परीक्षा एसएचजी के विकास पर विचार करने और महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करने और एसएचजी में शामिल होने के बाद महिलाओं के वित्तीय सुधार का अध्ययन करने के लिए है। परीक्षा के लिए डेटा द्वितीयक स्रोतों से एकत्र किया गया है, उदाहरण के लिए विभिन्न पुस्तकें, जर्नल, पेपर, वितरित लेखन, साइट और वार्षिक रिपोर्ट।

स्वयं सहायता समूह और महिला अधिकारिता:

देश के कई क्षेत्रों में महिलाओं और स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को विशेष रूप से निर्णय लेने में गतिशीलता के स्तर तक ले जाने में प्रगति की है। हमारे देश में SHG महिलाओं के कल्याण के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया है, SHG का गठन उद्देश्यों को प्राप्त करने और सभी ग्रामीण उन्नति कार्यक्रमों में नेटवर्क सहयोग प्राप्त करने के लिए एक व्यवहार्य विकल्प है। एसएचजी अतिरिक्त रूप से ग्रामीण महिलाओं को छोटे पैमाने पर ऋण प्रदान करने और उन्हें अभिनव गतिविधियों में एक साथ प्रोत्साहित करने के लिए एक उपयुक्त रचना है। (अब्दुल, 2007)। कम करने के लिए और महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए, भारत में छोटे पैमाने के खाते, स्वयं सहायता समूह (SHG) और कार्यकारी समूहों को क्रेडिट देना भी शुरू हो गया है। स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) एक समूह बनाने के लिए एक छोटा स्वैच्छिक संघ है। यह बीस व्यक्तियों से अधिक नहीं का आकस्मिक और समरूप समूह है। एसएचजी में अधिकतम 20 सदस्य होते हैं क्योंकि 20 से अधिक व्यक्तियों वाले किसी भी समूह को भारतीय कानूनी ढांचे के तहत नामांकित किया जाना चाहिए। यही कारण है कि उन्हें संगठन, अपवित्रता, व्यर्थ प्रबंधकीय उपयोग और लाभ के इरादे से दूर करने के लिए आकस्मिक होना निर्धारित है। वास्तव में, यह गरीबी उन्मूलन के लिए एक घरेलू विकसित मॉडल है जो एक ही समय में अपने व्यक्तियों के जीवन को बेहतर तरीके से सक्षम और आकार देने का प्रयास करता है। समूहों को समरूप होने पर भरोसा किया जाता है ताकि व्यक्तियों में टकराव की रुचि न हो और सभी व्यक्ति बिना किसी डर के खुलकर भाग ले सकें। स्वयं सहायता समूह (एसएचजी)

विकास ने भारत में देश के ऋण वितरण ढांचे में एक शांत उथल-पुथल को सक्रिय कर दिया है। एसएचजी ने ग्रामीण गरीबों को उनके वित्तीय सशक्तिकरण के लिए ऋण देने के लिए एक सम्मोहक माध्यम के रूप में प्रदर्शित किया है। स्वयं सहायता समूह एसएचजी ने ग्रामीण गरीबों को उनके सामाजिक आर्थिक सशक्तिकरण के लिए ऋण देने के लिए सफल तंत्र दिखाया है। एसएचजी की महिला सदस्य विज्ञापन और गैर-पारंपरिक उद्यम जैसे गैर-परंपरागत कार्य पर निकली हुई प्रतीत होती हैं। महिलाओं ने इस हद तक अपने काम पर शक्ति में सुधार किया है। महिलाओं के प्रवेश और उनके निवेश कोष, क्रेडिट और वेतन पर अधिकार में सुधार हुआ है। डवाकरा के एसएचजी में शामिल होने के बाद महिलाओं को स्थानांतरित करने और अधिकारियों और अन्य महिलाओं के साथ जुड़ने के अवसर में सुधार हुआ है। डवाकरा समूहों ने स्वयं पहल नेतृत्व की स्थिति की उम्मीद करने के लिए महिलाओं के लिए कार्यप्रणाली का विस्तार किया है। SHG की महिला सदस्यों द्वारा परिवार व्यवस्था और निवारक तकनीकों का विनियोग उनके पुनर्योजी निर्णय पर महिलाओं के नियंत्रण में सुधार को प्रदर्शित करता है। कुल मिलाकर, स्पष्ट रूप से महिलाएं अपने काम, संसाधनों (बचत, ऋण और आय), स्थानांतरित करने और संवाद करने के अवसर, पहल, और अवधारणात्मक निर्णयों पर कुछ हद तक शक्ति में सुधार कर सकती हैं। तदनुसार, अधिकारिता के श्क्षमताश मापन के संबंध में कुछ हद तक सुधार हुआ है। लेकिन, सशक्तिकरण के 'शक्ति के साथ' आयाम में कोई सुधार नहीं हुआ है। यह बाजार, एक्सप्रेस, नेटवर्क और परिवार के अपने लिंग, स्थिति, वर्ग और अन्य हितों के वीजा-ए-विज प्रतिष्ठानों की व्यवस्था करने के लिए महिला सदस्यों की कुल गतिविधियों की गैर-हाजिरी से स्पष्ट है। महिलाएं अपने जीवन से जुड़ी कुछ समस्याओं का स्वतंत्र रूप से सामना कर सकती हैं। यह एसएचजी में रुचि के कारण प्रभावित सशक्तिकरण के 'अंदर की शक्ति' माप को प्रदर्शित करता है

स्वयं सहायता समूह गरीबी उन्मूलन में मदद करते हैं:

महिलाएं हमारी आम जनता की सबसे कम भाग्यशाली और सबसे शक्तिहीन आबादी में से हैं। वे अपने सुधार के लिए प्रशासन द्वारा प्रस्तावित विभिन्न रचनात्मक योजनाओं का प्रतिफल प्राप्त नहीं कर सकते। उनकी आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने के लिए स्वयं सहायता समूहों की योजना भारत में कई वर्ष पहले शुरू की गई थी। देश के विभिन्न क्षेत्रों में, स्वयं सहायता समूह, जो किसी भी ग्रामीण या अर्ध-शहरी क्षेत्र में महिलाओं के आकस्मिक संबंध हैं, महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, रणनीतिक, संस्थागत और गहन रूप से संलग्न करने के लक्ष्य के साथ बहुत अच्छी तरह से काम कर रहे हैं। भारत में हजारों की संख्या में अधिकांश महिलाएं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से अपने जीवन, अपने परिवार और अपने समाज का निर्माण कर रही हैं। SHG आंदोलन का प्राथमिक उद्देश्य नियमित आधार पर आय बढ़ाने के लिए कुछ उद्यम स्थापित करना और निम्न आय वर्ग के परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है। ये समूह किसी प्रकार की दीर्घकालिक

आर्थिक गतिविधि से जुड़े होते हैं, जो उन्हें निर्णय लेने और वित्तीय रूप से अच्छी तरह से सुसज्जित करने में नेतृत्व के गुणों को बनाता है और प्रेरित करता है। एसएचजी गरीबी उन्मूलन में मदद करते हैं, कुछ कारणों पर प्रकाश डाला जाएगा। संपार्श्विक की कमी। (2) वे उद्देश्यों के वर्गीकरण के लिए उचित ऋण प्राप्त कर सकते हैं और उचित ऋण लागत पर (3) वे देश में ग्रामीण गरीबों के संघ के निर्माण खंड हैं

कोविद 19 स्थिति में महिला स्वयं सहायता समूहः

27 भारतीय राज्यों में लगभग 20,000 एसएचजी द्वारा 19 मिलियन से अधिक कवर बनाए गए हैं, जिसमें 100,000 लीटर से अधिक सैनिटाइजर और लगभग 50,000 लिटर हैंड वॉश शामिल हैं। चूंकि उत्पादन विकेंद्रीकृत है, ये चीजें जटिल समन्वय और परिवहन की आवश्यकता के बिना व्यापक रूप से बिखरी हुई आबादी तक पहुंच गई हैं। बाजार संचालन समारोह और मूल्य निर्धारण की स्थिति में देश भर में महिला स्वयं सहायता समूह घातक बवअपक19 स्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ राज्यों का योगदान इस प्रकार हैः भारत में महिला स्वयं सहायता समूहों ने COVID-19 (कोरोना वायरस) महामारी की लोगों की उच्च उम्मीदों को पूरा किया है। वे मास्क, सैनिटाइजर और रक्षात्मक हार्डवेयर की कमी को पूरा कर रहे हैं, नेटवर्क किचन चला रहे हैं, झूठ से जूझ रहे हैं और किसी भी सूरत में बैंकिंग और मौद्रिक 82 दे रहे हैं

इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक, बिजनेस, अकाउंटिंग, एग्रीकल्चर मैनेजमेंट एंड शरिया एडमिनिस्ट्रेशन। IJEBASE&ISSN: 2808-4713। https://radjapublika-com/indeñ-php/IJEBAS79 दूर के लिए जवाब। कवर और व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई) की कमी को पूरा करने के लिए पूरे देश में एसएचजी उग्र रूप से काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, ओडिशा में, गरीब ग्रामीण महिलाएँ जो कभी स्कूल की पोशाक सिलने में व्यस्त थीं, अब मास्क सिल रही हैं। हाल के सप्ताहों में, इन महिलाओं ने अपने लिए कुछ हासिल करते हुए 1 मिलियन से अधिक सूती मास्क वितरित किए हैं, पुलिस संकाय और स्वास्थ्य कर्मियों को सुसज्जित किया है। केरल में, कुदुम्बश्री आयोजन, 4.4 मिलियन लोगों के साथ महिलाओं की देश की सबसे समयनिष्ठ नेटवर्क नींव में से एक है और काफी लंबे समय तक उनके पीछे भोजन का अनुभव प्रदान करने के लिए, इनमें से कुछ रसोई को चलाने का प्रशासन का नियमित निर्णय था। इन समूहों ने अपने प्रयासों में काफी वृद्धि की है और वर्तमान में राज्य भर में 1,300 रसोई घर चला रहे हैं, साथ ही अलग-थलग और कमीशन से बाहर रहने वालों को भी पोषण पहुंचा रहे हैं।

श्रीनगर, 19 अप्रैल (स्कूप न्यूज)-जम्मू और कश्मीर ग्रामीण आजीविका मिशन (जेकेआरएलएम), कश्मीर ने संक्रामक क्राउन संक्रमण (कोविड-) के प्रसार से लड़ने में संगठन की मदद करने के लिए कश्मीर डिवीजन के महिला स्वयं सहायता समूहों को साथ लेकर 2.82 लाख फेस मास्क तैयार किए हैं। 19) रोग। इन स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों द्वारा केवल पिछले ग्यारह दिनों में 2.82 लाख से अधिक फेस मास्क वितरित कर अलग-अलग संगठनों को सौंपे गए हैं। अतिरिक्त मिशन निदेशक कश्मीर जेकेआरएलएम साजिद येहया नकाश ने एसएचजी के काम की सराहना करते हुए कहा कि चूंकि दुनिया भर में कोरोना संक्रमण का खतरा बढ़ रहा है इसलिए खुले स्थानों में मास्क पहनना अनिवार्य हो गया है। इस उपक्रम में यs SHG सदस्य नेटवर्क योद्धाओं के रूप में उभरे हैं जिन्होंने संगठन के साथ घनिष्ठ संबंध में COVID-19 के खिलाफ लड़ाई के लिए ऊर्जावान रूप से कदम से कदम मिलाकर काम किया।

निष्कर्षः

एसएचजी में भागीदारी ने महिला ऋण की पहुंच का विस्तार किया है। इससे कपड़े पहनने वाली महिलाओं को साहूकारों पर अपनी निर्भरता कम करने में मदद मिली है। कैजुअल क्रेडिट सेगमेंट में लोन की लागत में गिरावट आई है। अतिरिक्त प्रमाण के साथ इसकी पुष्टि की जानी चाहिए क्योंकि कस्बे की अर्थव्यवस्थाओं में औपचारिक वित्तीय ढांचे के प्रवेश के कारण कुछ समय बाद ऋण लागत में गिरावट आई है। ऋण तक पहुंच ने महिलाओं को उनके उपयोग के साथ-साथ सृजन की जरूरतों को पूरा करने में मदद की है। महिलाओं ने स्वयं सहायता समूहों से प्राप्त ऋण को नई आर्थिक गतिविधियों और/या पुरानी गतिविधियों को मजबूत करने में निवेश किया है। उन्होंने घरेलू स्तर पर व्यावसायिक विविधीकरण और विस्तार को जोड़ा है। महिलाओं द्वारा किए गए गैर-कृषि अभ्यासों ने परिवारों को कम जोखिम वाली गतिविधियों से आय प्राप्त करने में मदद की। इस प्रकार परिवारों की आय की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है। SHGs को बेसहारा मदद और महिला सशक्तिकरण से निपटने के तरीके के रूप में मान्यता दी गई है। क्या अधिक है, महिला सशक्तिकरण जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने चरित्र, बल और संभावना को समझने का लक्ष्य रखता है? जैसा कि हो सकता है, वास्तविक सशक्तिकरण तभी संभव है जब एक महिला ने वित्तीय संपत्ति, अधिक निश्चितता और आत्म-प्रेरणा, अधिक गुणवत्ता, अधिक स्वीकार्यता और पारिवारिक मामलों में स्थिति और सहयोग के माध्यम से अधिक समावेशन तक पहुंच का विस्तार किया है। इस तथ्य के बावजूद कि यह एक सतत और विश्वसनीय प्रक्रिया है, हालांकि महिलाओं को अपने सामान्य घटनाक्रम के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता के लिए अपने दृष्टिकोण का निर्माण करना चाहिए। स्वयं सहायता समूहों की पहचान गरीबी को कम करने के तरीके के रूप में की गई है और महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी पहचान, शक्ति और क्षमता को साकार करना है। लेकिन वास्तविक सशक्तिकरण की कल्पना तभी की जा सकती है जब एक महिला ने मौद्रिक संपत्ति, अधिक निश्चितता और आत्म

प्रेरणा, अधिक गुणवत्ता, अधिक स्वीकार्यता और पारिवारिक मामलों में स्थिति और ब्याज के माध्यम से अधिक योगदान तक पहुंच बढ़ाई है। हालांकि यह एक नियमित और सामान्य तकनीक है, लेकिन महिलाओं को अपने समग्र विकास के लिए स्वैच्छिक रूप से अतिरिक्त परिश्रम की आवश्यकता के लिए अपने दृष्टिकोण का निर्माण करना चाहिए। एसएचजी में महिला सशक्तिकरण पर प्रभाव डालने की क्षमता है

संदर्भः

खांडेकर। (2020)। मुक्ति और सांस्कृतिक अधिकारिता के लिए महिलाओं को शिक्षित करनाः सुधामूर्ति के तीन हजार टांके का एक महत्वपूर्ण अध्ययन। जर्नल ऑफ क्रिटिकल रिव्यूज, 7(4), 443-456.

खुर्शीद, एन. (2015)। कश्मीर में महिला और स्वयं सहायता समूह। इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 4(6), 319-331.

कोंडल्स। (2018)। आंध्र प्रदेश में स्वयं सहायता समूहों द्वारा महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का एक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च, 12(3), 349-361.

कुमार एट अल। (2015)। तमिलनाडु में विरुधुनगर जिले के विशेष संदर्भ में स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के माध्यम से महिला अधिकारिता पर एक अध्ययन। जर्नल क्लिनिकल मेडिसिन, 7(3), 122-135।

कुमार एल।, रेमेश।, और यूनिस, एम। (2015)। दीमापुर के नागालैंड जिले में ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों का प्रभाव। जर्नल ऑफ इंटरनेशनल डेवलपमेंट, 2(3), 182-197।

कुमार, आई.वाई, और राव, एस.डी. (2011)। नेतृत्वः महिला सशक्तिकरण का निर्धारक। एससीएमएस जर्नल ऑफ इंडियन मैनेजमेंट, 11 (2), 5-10।

लोपामुद्रा।, और प्रसाद, एस। (2012)। पांडिचेरी के ग्रामीण क्षेत्र के विशेष संदर्भ में महिला स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) की वित्तीय संभावनाओं और समस्याओं की समीक्षा। जर्नल ऑफ पॉपुलेशन इकोनॉमिक्स, 25 (1), 175-189।

लू, डब्ल्यू.सी. और हसन। (2011)। ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने वाले माइक्रो-क्रेडिट कार्यक्रमों के माध्यम से एसएचजी और उनकी आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने में एनजीओ की भूमिका। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कॉमर्स, आईटी एंड मैनेजमेंट, 1(2), 156-63।

दुग्ध उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नींव

नविता कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग भू0 ना0 मं0 वि0 वि0, लालू नगर मधेपुरा

भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है और अन्नदाता खेत में अनाज उत्पादन से लेकर पशु पालन कर बड़े पैमाने पर दूध का उत्पादन करता है। यहां भैंस के दूध का सबसे अधिक उत्पादन होता है इनके अलावा यहां गाय का दूध भी खूब उत्पादन होता है जिनका भारी मात्रा में सेवन किया जाता है। केंद्रीय पशुपालन और डेयरी मंत्रालय के मुताबिक दुग्ध क्षेत्र में लगभग 8 करोड़ से ज्यादा किसानों को सीधे रोजगार प्रदान करता है इसमें मुख्य रूप से छोटे और सीमांत तथा भूमिहीन किसान हैं। डेयरी सहकारी समिति अपनी बिक्री का औसतन 75 प्रतिशत किसानों को प्रदान करती है और 2 करोड़ से अधिक किसान डेयरी सहकारी समितियों में संगठित हुए हैं और 1.94 लाख डेयरी सहकारी समितियों दूध गांवों से दूर एकत्र कर रही है। भारतीय दुग्ध उत्पाद से जुड़े एक आंकड़े के मुताबिक देश में 70 प्रतिशत दूध का उत्पादन छोटे सीमांत और भूमिहीन किसानों को पशुपालन से जोड़कर दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए तमाम योजनाएं चलाई जा रही है जिसमें गाय,बकरी,भैंस पालन कर सिर्फ आजीविका ही नहीं चला सकते हैं बल्कि दूध उत्पादन बढ़ाने में भी योगदान दे रहे हैं। यही कारण है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्र में कई दुग्ध प्लांट भी लगने लगे हैं जिससे दूध को प्रसंस्करण करके दूसरे राज्यों में भेजा जा रहा है।

एक समय था जब दूध,दही,छाछ और घी के अलावा देश में दूध से बने उत्पाद दूसरे देश से आयात किया जाते थे इसमें ताजा मक्खन, दूध एवं क्रीम पाउडर के रूप में किए जाते थे। पहले मक्खन भी हमारे देश में आयात होता था 1955 में भारत का मक्खन आयात प्रतिवर्ष लगभग 500 टन था लेकिन 1975 तक दूध और दूध से बने उत्पादों के सभी आयात बंद कर दिए गए थे क्योंकि देश तब तक दूध उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर हो गया था। दुग्ध उद्योग के तहत सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएं है। देश में लगभग 500 से अधिक डेयरी प्लांट है जहां विभिन्न प्रकार के डेयरी उत्पाद तैयार किए जाते हैं। आने वाले समय में देश में इसके और बढ़ने की संभावना है। पिछले कुछ वर्षों में यह क्षेत्र 72 प्रतिशत रोजगार के विकल्प के रूप में सामने आया है। देश के अधिक से अधिक लोग डेयरी फार्म से जुड़कर ना सिर्फ दुग्ध उत्पादन को बढ़ा रहे हैं बल्कि उसे प्रोसेस कर अन्य उत्पाद भी कर रहे हैं।

इस तरह दूध की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है ऐसे में डेरी कारोबार कर रहे लोगों के सामने अच्छा अवसर है। आज मांग के अनुरूप उसकी पूर्ति करने के लिए काफी बदलाव करना होगा। इसलिए डायरी कारोबार से जुड़े स्मार्ट तकनीकों को भी अपनाने लगे हैं खासकर के पशुओं के चारे, पोषण गर्भधारण और कुछ उत्पाद की कार्यविधि के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध होती है। विशेषज्ञों की मानें तो नई तकनीक के बिना दूध की मांग पूरी करना संभव नहीं होगा। दूध की स्थिति की बात करें तो कोरोना काल में भी जब देश में लॉकडॉन हुआ तो अमेरिका और यूरोप के कुछ हिस्सों में कई टन दूध और उसके उत्पादन को फेंकना पड़ा। जबकि भारत में विशाल सरकारी नेटवर्क और लाखों डेयरी किसानों ने लॉकडाउन के दौरान भी पूरे देश में दूध की कमी नहीं होने दी दूध की खपत होती रही। अन्य सहकारी समितियों ने किसानों से अधिशेष दूध खरीदने के लिए अतिरिक्त मील की दूरी तय की। सरकार ने भी किसानों और समितियों के दूध की खपत के लिए दुग्ध स्पेशल ट्रेन चलाई जो आज भी देश के कई हिस्सों में नियमित रूप से दूध पहुंचा रही है। इस तरह 1950 तथा 1960 के दशक के दौरान भारत दूध की कमी वाला देश था और ज्यादातर आयात पर निर्भर था इस समस्या को दूर करने के लिए सरकार ने 1965 में एनडीडीबी की स्थापना की डॉ कुरियन से पूरे देश में डेयरी सहकारी मॉडल को दोहराने का अनुरोध किया। 1970 एनडीडीबी ने डेयरी सहकारी नेटवर्क का विस्तार करने डेरी बुनियादी ढांचे का निर्माण करने और डेयरी सहकारी समितियों में महिलाओं को भी भागीदारी बढ़ाने के लिए डॉ कुरियन के नेतृत्व में ऑपरेशन फ्लड नामक एक विशाल डेयरी विकास कार्यक्रम शुरू किया गया।

ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम ने भारत को दूध की कमी वाले देश से दुनिया के अग्रणी दुग्ध उत्पादक के रूप में बदल दिया इन्हीं प्रयासों के चलते 1998 में भारत आत्मनिर्भर बना और दूध उत्पादन में अमेरिका को पीछे छोड़ दिया 2018 में वैश्विक दूध उत्पादन में लगभग 22 प्रतिशत का योगदान दिया। इसके अलावे डेयरी क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है जो भारत में लगभग 80 मिलियन भूमिहीन छोटे और सीमांत के कृषि परिवारों की आर्थिक स्थिति को बढ़ाता है। क्षेत्र ग्रामीण कृषि परिवारों की आर्थिक स्थिति को बढ़ाता है यह क्षेत्र खासकर के ग्रामीण गरीबी व समानता को कम करने और गरीब परिवारों को पोषण भी सुनिश्चित करने में मदद करता है। पशुधन क्षेत्र भी भारत के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 4.11 प्रतिशत और कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 25 प्रतिशत का योगदान देता है जबकि डेयरी क्षेत्र कुल पशुधन उत्पादन में लगभग 67 प्रतिशत का योगदान कर के एक प्रमुख हिस्से का दावा करता है। राष्ट्रीय लेखा

सांख्यिकी 2019 के अनुसार विशेष रुप से दूध उत्पादन धान, गेहूं और दालों के संयुक्त उत्पादन का 20.6 प्रतिशत से अधिक है।

यह क्षेत्र विशेष रूप से महिलाओं और आर्थिक रुप से वंचित समूहों के लिए स्वरोजगार के अवसर भी प्रदान करता है। वार्षिक रूप से 8.4 मिलियन छोटे और सीमांत किसान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आजीविका के लिए डेयरी क्षेत्र पर निर्भर है जिनमें लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। इस प्रकार यह दर्शाता है कि यह क्षेत्र महिला सशक्तिकरण और समावेशी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है खास करके विकासशील देशों में दुग्ध उद्योग क्षेत्र का अधिक विकास महिलाओं की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ा सकता है और लैंगिक और समानता ओं की खाई को दूर कर सकता है। इस प्रकार दुग्ध उद्योग क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 में दुनिया को बदलने और जिस ग्रह में हम लोग रहते हैं उसकी रक्षा के लिए घोषित एसडीजी तक पहुंचने में भारत को करने के लिए एक महत्वपूर्ण चालक बना। इसके अलावा दूध के पोषण मूल को भी ध्यान में रखते हुए वर्ष 2018 में सभी राज्यों को एक सलाह जारी की गई थी कि दूध को मध्यान भोजन योजना और आंगनबाड़ियों के अन्य कार्यक्रम और स्वास्थ्य के साथ-साथ महिलाओं की चल रही योजनाओं में शामिल किया जाए और देश में कुपोषण से निपटने के लिए बाल विकास विभाग खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग से भी अनुरोध किया गया कि दूध को पीडीएस प्रणाली में शामिल किया जाए इससे दूध की खपत बढ़ने की संभावना है।

भारत दूध उत्पादन में आत्मनिर्भर है परंतु भारत में केवल 10 राज्य कुल दूध उत्पादन का लगभग 81 प्रतिशत उत्पादन करते हैं और केवल 9 राज्यों ने राष्ट्रीय स्तर के बराबर दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता हासिल की है। आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में दूध उत्पादन कुछ राज्यों में केंद्रित है इसलिए कि उनके मजबूत डेयरी सहकारी नेटवर्क है और उनसे संबंधित राज्यों में किसानों को दूध का उच्च पारिश्रमिक कीमत प्राप्त होता है इसको रोकने के लिए भारत सरकार को शेष बचे संभावित जिलों और राज्यों दूध उत्पादन और खरीद बढ़ाने के लिए एक उपयुक्त डेयरी विकास नीति तैयार करने की आवश्यकता है इसका तात्पर्य है कि छोटे और भूमिहीन किसानों के बीच डेयरी को बढ़ावा देना दूध की उपलब्धता बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है कि खासकर दूध की कमी वाले क्षेत्रों में जरूरत है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसका विशेष महत्व

1. यह ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका का प्रमुख स्रोत है विशेषकर भूमिहीन और छोटे सीमांत कृषक पशुपालन के माध्यम से अपनी पारिवारिक आय बढ़ा सकते हैं
2. पशुपालन और कृषि संबंधी प्रक्रिया है आपस में जुड़ी हुई है पशुओं के लिए भोजन कृषि से प्राप्त होता है तो पशु भी किसी को विभिन्न प्रकार की आदतें जैसे खाद्य ढुलाई आदि प्रदान करते हैं।
3. पशुपालन से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी तथा छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या का को दूर किया जा सकता है।
4. पशुपालन में अधिकतर महिलाएं शामिल होती है यह श्रम क्षेत्र में महिलाओं भागीदारी को बढ़ावा देकर महिला सशक्तिकरण में योगदान देता है।
5. पशु उत्पाद ग्रामीण निर्धनों के लिए प्रोटीन एवं पोषक तत्वों के प्रमुख स्रोत हैं।

इस प्रकार कृषि से जुड़े उद्योगों का विकास बहुत ही सहायक होगा क्योंकि इससे रोजगार के अनेक वैकल्पिक अफसरों में वृद्धि होती है। योग कहे तो उद्योग किसी भी देश चाहे बित विकसित हो या फिर विकासशील यह अर्थव्यवस्था की आधारशिला होती है। खास करके भारत में श्रमिकों की बहुलता पाई जाती है इसलिए पिछली हुई अर्थव्यवस्था हंसकर के ग्रामीण क्षेत्रों में यह उद्योग जो सामाजिक आर्थिक रूप से एक जनसमूह की की आय में वृद्धि करके उनके जीवन स्तर को भी ऊंचा करते हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रो रिकार्डो, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन
2. अल्फ्रेड वेबर, औधोगिक अर्थशास्त्र।
3. प्रो कींस, श्रम अर्थशास्त्र।
4. रोजेंस्टीन रोदान एवं नर्कसे,भारतीय अर्थशास्त्र।
5. जी एल शर्मा, सामाजिक मुद्दे,रावत पब्लिकेशस नई दिल्ली।
6. www.indianfarmer.com
7. www.timesdarpan.com
8. www.agriculturestudyy.com
9. www.livehindustan.com

आर्थिक विकास एवं भारतीय बैंकिंग प्रणाली

स्मिता कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा

भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में बैंक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है यह किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और यह राष्ट्र निर्माण के लिए इसके कार्य प्रणाली आवश्यक है। बैंकिंग किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है और किसी भी अन्य उद्योग की तरह इसके भी अपने मानक दस्तावेज के समूह और प्रक्रियाएं, यह प्रक्रिया सुनिश्चित करते हैं कि बैंक आसानी और दक्षता के साथ लेनदेन करें। बैंकिंग सिद्धांत एक केंद्रीय आंकड़ा होने की आवश्यकता पर आधारित है जो किसी देश की सभी बैंकिंग गतिविधियों को प्रसारित करता है। इस संख्या को सिर्फ बैंक या सेंट्रल बैंक कहा जाता है और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए विशिष्ट कानूनों और नीतियों द्वारा शासित होता है।

बैंक प्रणाली और कार्य

1 क्रेडिट की उन्नति भारतीय बैंकिंग क्षेत्र व्यक्तियों और संस्थाओं को ऋण देने में सबसे सक्रिय क्षेत्रों में से एक है या विभिन्न प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जैसे कृषि लघु उद्योग व्यापारिक, उद्यम, रियल स्टेट आदि को धन उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2 व्यवसाय विकास भारतीय बैंकिंग क्षेत्र शाखाओं की स्थापना के माध्यम से विदेशों के साथ मजबूत संबंध विकसित करके व्यापार विकास में बहुत मदद करता है। भारतीय बैंक विभिन्न स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय व्यवसायिक घरानों को भुगतान की सुविधा भी प्रदान करके व्यापार और वित्तीय की सुविधा भी प्रदान करते हैं।

3 वित्तीय सुरक्षा भारतीय बैंकिंग प्रणाली प्रतिस्पर्धी दरों पर ऋण प्रदान करके विश्वसनीय प्रेषण सेवाओं का भुगतान करके लोगों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है। यह लोगों को अपना पैसा बचाने और इसे विभिन्न वित्तीय साधनों जैसे सरकारी प्रतिभूतियों दीर्घकालिक बांड आदि में निवेश करने में मदद करते है।

4 नगद प्रबंधन बैंकिंग प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है यह बैंकों को त्वरित नगद और धन हस्तांतरण प्रदान करने की अनुमति देता है। यह बैंकों को विभिन्न व्यापारिक घरानों और बड़ी संख्या में औद्योगिक इकाइयों द्वारा किए गए धन हस्तांतरण का प्रबंधन करने में मदद करता है।

5 वित्तीय स्थिरता भारतीय बैंकिंग क्षेत्र मनी और नगद जमा तथा बैंक के माध्यम से सुरक्षित और सुरक्षित वित्तीय सेवाएं प्रदान करता है।

आर्थिक विकास में बैंकिंग सेवाओं के योगदान

- बचता का एकत्रीकरण:- वित्तीय संस्थाओं बचत करता उसे उनकी छोटी-छोटी बचतों का संग्रहण करती है। घटनाओं का यह कार्य है कि यह लघु बचत को एकत्रित कर इसे उत्पादक कार्यों में लगाती है। इस तरह इन संस्थाओं का लघु बचत संगठन की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है
- पूंजी निर्माण:- पूंजी निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से ही संभव होता है यह संख्याएं अपने द्वारा संकलित कोशो का निर्माण करता है विकासशील एवं अल्प विकसित देशों में इन संख्याओं की विशेष भूमिका होती है। लेकिन इस देशों में वित्तीय बाजार का समुचित विकास नहीं होता है तथा बचत दर भी काफी नीची रहती है। ऐसी स्थिति में बैंकिंग सेवाएं लोगों में बैंकिंग क्षेत्र का विकास करती है और बचतों के प्रभाव को उत्पादक कार्यों की ओर प्रोत्साहित करती है जिसमें पूंजी निर्माण की दर ऊंची उठती है।
- जोखिम विस्तार:- यह अनेक बचत करता से धनराशि संग्रहित करती है तथा उससे उचित विनियोजन करती है। संस्थाओं का बड़ा आकार विरोध स्तरीय विनियोजन विशेषज्ञों की सेवाएं आदि के कारण इन संस्थाओं द्वारा किए गए विनियोजन से जोखिम का विस्तार हो जाता है जिसका लाभ छोटे बचत कर्ताओं का होता है यह बचत करता भी बड़े पैमाने पर बच्चों का लाभ उठाते हैं।
- नए कोषों का निर्माण:- यह अपनी वित्तीय गतिविधियों से नए कोशो का शिलान्यास सड़क का निर्माण करती है। बैंक अपनी जमा क्रियाओं के माध्यम से मुद्रा का निर्माण करते हैं या अन्य वित्तीय मदद संस्थाएं भी विभिन्न तरीके से प्रत्यक्ष कोशो का निर्माण करती है इस तरह वित्तीय बाजार में उपलब्ध वित्तीय कोषों के भंडार में काफी वृद्धि करती है इस विधि के उपरांत ही कोशो में तो वृद्धि नहीं होती परंतु साख निर्माण के द्वारा व्यवसायिक सौदा के निपटारे में वृद्धि अवश्य होती है।

- उद्योग एवं व्यापार:- यह ऋण के माध्यम से व्यवसाय व उद्योगों की नीति आवश्यकता की पूर्ति करती है। एक और यह संस्थाएं व्यवसाय व उद्योग की बचत व को विनियोग में परिवर्तित करती है तो दूसरी और उसकी वित्तीय मांग की पूर्ति करती है।
- वित्तीय बाजार में तरलता:- यह संस्थाएं बड़ी आसानी से किसी भी परिसंपत्ति को शीघ्रता से नगद धनराशि में परिवर्तित कर देती है यह संस्थाएं वित्तीय बाजार में तरलता बनाए रखने में सहायक होती है बैंक जैसी वित्तीय संस्था है अपनी मांग के अनुरूप तरलता बनाए रखने का प्रयास करती है। वित्तीय संस्थाओं द्वारा अल्पकालीन उधार दिया जाता है जो तरलता बनाए रखने में सहायक होता है।
- वित्तीय बाजार में स्थिरता:- ऐसी संस्थाएं है इसमें विभिन्न परिसंपत्तियों वह दाताओं में क्रय-विक्रय करती है जिसमें वित्तीय बाजार में मुद्रा की मांग एवं पूर्ति के मध्य समन्वय स्थापित होता है। विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों एवं व्यापारिक विलो में लेनदेन करके भी बैंकिंग संस्थाएं वित्त बाजार से स्थिरता प्रदान करती है।
- ऋण दाताओं के लिए लाभकारी संस्थाएं:- ऋणदाताओ से संपर्क कर और वित्तीय निधियों को जमा कर उन्हें ब्याज के रूप में प्रतिपल प्रदान करती है तथा स्वयं जोखिम लेकर उधारकर्ता को धनराशि ऋण के रूप में देती है तथा ब्याज के रूप में प्रतिफल प्राप्त करती है इससे बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में विस्तार होता है।

इस तरह बैंकिंग प्रणाली में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना वर्ष 1975 में प्रख्यापित अध्यादेश और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 के प्रावधानों के तहत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और उत्पादक गतिविधियों के विकास हेतु ऋण अन्य सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की गई थी। भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का मुख्य लक्ष्य उन ग्रामीण लोगों को ऋण प्रदान करना है जो आर्थिक रूप से पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं है विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसान कारीगर खेतिहर मजदूर और यहां तक इसमें छोटे उद्यमी भी शामिल है। इस उद्योगों के विकास से गांव में बेरोजगारी की समस्या का बहुत हद तक समाधान किया जा सकता है। उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुएं ग्रामीणों को कम कीमत पर प्राप्त हो सकेगी और उन्हें इन वस्तुओं को खरीदने में भी सहूलियत होगी। गांव में बैंकों के माध्यम से ग्रामीण इलाकों का विकास होगा।

इस प्रकार बैंक आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विकासशील और विकसित देशों की आर्थिक विकास के लिए एक उचित वित्तीय क्षेत्र का विशेष महत्व है केंद्रीय बैंकिंग क्षेत्र जो वित्तीय क्षेत्र की हड्डी का निर्माण करता है एक बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के विकास की गतिशीलता के लिए अच्छी तरह से संगठित और कुशल होना आवश्यक है कोई भी विकसित देश पहले वाणिज्य बैंकिंग की सुदृढ़ प्रणाली स्थापित किए बिना प्रगति नहीं कर सकता है। एक विकासशील देश के लिए बैंकिंग की एक सुदृढ़ प्रणाली का महत्व है। बैंक अर्थव्यवस्था को कैसे चलाते हैं या बैंकिंग क्षेत्र आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। क्रेडिट के प्राथमिक आपूर्तिकर्ता के रूप में यह लोगों को कार और घर खरीदने और व्यवसाय का उपकरण खरीदने उनके संचालन का विस्तार करने और उनको पूरा करने के लिए धन प्रदान करता है। बैंक उन लोगों के बीच मधयस्ता करते हैं जिनके पास अतिरिक्त पैसा है और जिन्हें पैसे की जरूरत है। बैंक बड़ी संख्या में लोगों को सस्ता कर्ज उपलब्ध कराता है यह उद्योगपतियों को सस्ते कर्ज देकर उद्योगों को भी बढ़ावा देते हैं। भारत में बैंकिंग क्षेत्र देश की वित्तीय प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है। यह क्रेडिट इंफ्रास्ट्रक्चर और निवेश प्रदान करके देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। बैंकिंग क्षेत्र किसी भी देश के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए विकास की गति को रफ्तार देने हेतु बैंक प्रणाली आवश्यक है बैंक अपने ग्रामीणों को जोड़ने महिला सशक्तिकरण, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण या सरकारी योजनाओं का लाभ सीधे ग्रामीण को देने डिजिटल लेनदेन को बढ़ावा देकर ग्रामीणों की पहुंच दुनिया के बाजारों तक करने। बिचौलियों की भूमिका को खत्म करने का काम कर करती है। बैंक ग्रामीणों को वित्तीय रूप से साक्षर भी बना रहे हैं लेकिन आत्मनिर्भरता का भाव अपने समाज में उत्पन्न होना चाहिए क्योंकि आत्मनिर्भर भारत के निर्माण के लिए सरकार के साथ-साथ समाज व संगठन के सभी वर्गों का सहयोग आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 जी0 सी0 सिंघई, मुद्रा बैंकिंग, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
2. आर. के. रेखी, लोकवित्त, कल्याणी पब्लिकेशन्स
3. डॉ0 जी0 सी0 सिंघई एवं डॉ0 जे0 पी0 मिश्रा, अंतराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन
4. प्रो0 एम.एल राय, आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं नियोजन।
5. http://hi.vikashpedia.org
6. www.gajran.com

लघु एवं कुटीर उद्योग और ग्रामीण अर्थव्यवस्था

सुष्मिता कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा

भारत की अर्थव्यवस्था में पारंपरिक ग्रामीण खेती आधुनिक कृषि हस्तशिल्प आधुनिक उद्योगों की एक विस्तृत श्रृंखला और कई सेवाओं के विभिन्न क्षेत्र शामिल है। सेवा क्षेत्र आर्थिक विकास का प्रमुख स्रोत है इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के आधे से अधिक उत्पादन के साथ श्रम शक्ति का एक तिहाई भाग है। आजादी के बाद से भारत की अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था रही है। भारत के बड़े सार्वजनिक क्षेत्र मिश्रित अर्थव्यवस्था को सफल बनाने के लिए प्रमुख रूप से सेवा क्षेत्र जो वर्तमान समय में सकल घरेलू उत्पाद का 60 प्रतिशत हिस्सा प्रदान करता है। इसका योगदान और कृषि जनसंख्या के लगभग 53 प्रतिशत लोग पर निर्भर है। जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे अर्थव्यवस्था में कृषि की हिस्सेदारी कम हो रही है तथा सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ रही। वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की एक विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जाता है। यहां की अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था रही है। भारत के बड़े सार्वजनिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था के लिए रोजगार और राजस्व प्रदान करने के प्रमुख कारक रहे हैं। यह विश्व व्यापार संगठन के अनुमानों के अनुसार वैश्विक निर्यात और आयातओं में भारत की हिस्सेदारी में 0.7 और 0.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो 2000 में 1.7 और 2012 में 2.5 प्रतिशत हो गई थी। वित्त वर्ष 2022 में भारत ने विश्व सेवा व्यापार में अपनी महारत हासिल की है। भारत का सेवा निर्यात वित्त वर्ष 2022 में 254.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर रहा जिसमें वित्त 2021 की तुलना में 235 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज हुई और सितंबर 2022 में पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में 32.7 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। हालांकि भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक विशेष पहलू फसल उत्पादन में कृषि मजदूरों का उपस्थिति है। कृषि मजदूरों के संदर्भ में बेरोजगारी और विकसित तथा अतिरिक्त मजदूरी की समस्या देखने को मिलती है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि मजदूरों की दशा सबसे दयनीय है। यह पूंजी की कमी और औद्योगिकीकरण प्रक्रिया में कमी के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई है। यहां कच्चे माल की उपलब्धता तो बहुत है लेकिन पूंजी के अभाव में इसे सस्ते कीमत पर बेच देते हैं जिससे ग्रामीण राजस्व में वृद्धि नहीं हो पाती है।

इस तरह भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योग खासकर के अविकसित और ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए अनुकूल है। ऐसे उद्योग अपेक्षाकृत श्रम प्रधान होते हैं इसलिए दुर्लभ पूंजी का किफायती उपयोग करते हैं। लघु एवं कुटीर उद्योग धन की वर्षा करने में सहायक। यह उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुकूल है। भारत की लगभग 60 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। लेकिन कृषकों को पूरे साल काम नहीं मिलता अत: लघु एवं कुटीर उद्योग उनके लिए महत्वपूर्ण है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से अनुकूल है। वही बेरोजगारी में कमी लाती है यह लघु एवं कुटीर उद्योग कम पूंजी निवेश के द्वारा अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करके बेरोजगारी को दूर करते हैं। आय विषमता को दूर करने में यह सहायक है। लघु एवं कुटीर उद्योगों का स्वामित्व लाखों व्यक्तियों व परिवारों के हाथ में होता है जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक शक्ति का केंद्रीय करण नहीं हो पाता है इसमें व्यक्तिगत और कला का विकास होता है। लघु एवं कुटीर उद्योग व्यक्तिगत एवं कला को विकसित करने में सहायक होते हैं। इस उद्योगों से कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी लाएगी। भारत में कृषि पर पहले ही जनसंख्या का बड़ा भाग आश्रित है अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास कर दिया जाता है तो कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो जाता है। औद्योगिक विकेंद्रीकरण में सहायक है बड़े उद्योग तो कुछ विशेष बातों के कारण एक ही स्थान पर केंद्रित हो जाते हैं लेकिन लघु एवं कुटीर उद्योग गांव कदमों में ही बिखरे होते हैं। इसमें कम तकनीकी ज्ञान की जरूरत होती है। लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना में कम पूंजी के साथ-साथ कम तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसमें कर्मचारियों को कम प्रशिक्षण देकर भी काम चलाया जा सकता है। इन उद्योगों की स्थापना से कुछ ही दिन में भरपूर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है इसमें विदेशी मुद्रा की प्राप्ति भी होती है इसमें निर्मित वस्तुओं का निर्यात तेजी से बढ़ रहा होता है जो देश को बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायता होते है। इसमें साधन का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है यह उद्योग ग्रामीण व कुछ छोटे व्यक्तियों को उद्यमी बनाने तथा ग्रामीण बचतओं को भी नियोजित करने में सहायक होते हैं। यूं तो भारत प्राचीन समय से ही लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रधानता रही है। आज से 2000 वर्ष पहले भी भारत का सूती वस्त्र एवं इस्पात उद्योग विश्व में प्रसिद्ध।

वर्तमान समय में विकसित या विकासशील देशों में छोटे उद्योगों की उपयोगिता और भी अधिक है विशेषकर भारत जैसे देश में जहां आज भी 60 से 70 प्रतिशत प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और जहां पूंजी का अभाव है तथा जनसंख्या शक्ति की अधिकता है वहां लघु एवं कुटीर उद्योग में कम पूंजी विनियोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही अधिक संख्या में बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। इतना ही नहीं लघु एवं कुटीर उद्योग आर्थिक शक्ति

के केंद्रीकरण को कम करके आय एवं संपत्ति की और समानता को कम करने में भी सहायक है। यह आर्थिक गतिविधियों के विकेंद्रीकरण के द्वारा प्रादेशिक और संतुलन को भी कम करते हैं। यह उपभोक्ता को अपने माल का लाभ प्रदान करके अपनी रूचि के अनुसार अपने विकल्प का भी उपयोग करने में सहायक होते हैं।

परंतु भारतीय लोगों के लिए दुर्भाग्य कहा जाए या बेईमानी जिन सिद्धांतों का निर्माण भारतीय जनमानस के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए किया था उनका क्रियान्वयन ईमानदारी से नहीं किया गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारत की जनसंख्या का एक तिहाई जनमानस जो कि आज कि गांव में बसता है उसको आर्थिक विकास का विचार दिया था। ग्रामीण विकास के लिए अनेक सुझाव दिए लेकिन इन सुझावों, नीतियों बनाने और क्रियान्वयन करने में बहुत चूक हुई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व का अनुमान इसकी उपयोगिता से लगाया जा सकता है। भारत में बेरोजगारी की समस्या विकट है यहां बेकारी एवं अर्धबेकारी की समस्या से परेशान है। गांव में बेकार लोगों की संख्या बहुत अधिक है। भारतीय कृषि पर जनसंख्या का बोझ तो पहले से ही है जिसे कम किए बिना कृषि उद्योगों में कुशलता नहीं है आ सकती। इतनी विशाल जनसंख्या को काम देने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि देश में लघु एवं कुटीर उद्योग का पर्याप्त विकास किया जाए। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषकों की बहुत दयनीय स्थिति है। अतः कृषि के सहायक धंधों के रूप में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व है। पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, बागवानी, सूत कातना, कपड़ा बुनने, मधुमक्खी पालन आदि ऐसे उद्योग हैं जो सरलता से कृषि के सहायक धंधों के साथ अपनाए जा सकते हैं।

वास्तव में लघु एवं कुटीर उद्योग घर में चलाया जाने वाला यानी पारिवारिक माहौल में उत्पादन करने वाला घरेलू उद्योग होता है लेकिन लघु उद्योग का मतलब उन उद्योगों से लिया जाता है जो छोटे स्तर पर उत्पादन करता है। इसकी पूंजी निवेश प्रबंध एवं अन्य स्थितियों पर बदलती रहती है। अतः ग्रामीण उद्योग एवं कुटीर उद्योग आपस में मेल खाते हैं। कुल 26 उत्पाद ग्रामोद्योग के अंतर्गत आते थे। लेकिन 1990 91 के दौरान इसमें 70 नए उत्पाद शामिल किए गए अब कुल 96 वस्तुओं के उत्पाद ग्रामोद्योग हैं जिन्हें खनिज आधारित उद्योग, वनाउद्योग, गैर परंपरागत ऊर्जा और इंजीनियरिंग उद्योग, वस्त्र उद्योग तथा सेवा उद्योग नामक समूहों में बांटा गया है। ग्रामीण भारत के आर्थिक विकास में इन उद्योग का स्थान काफी महत्वपूर्ण माना है।

इस तरह भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में लघु एवं कुटीर उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही लघु एवं कुटीर उद्योगों को भविष्य में और विकास करने की आवश्यकता है जिससे कृषि पर लोगों की निर्भरता कम कर उन्हें उद्योग धंधे में लगाकर प्रति व्यक्ति की आय बढ़ाई जा सकती है। इससे बेरोजगारी की समस्या से भी मुक्ति दिलाई जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. Mahender Kumar Garg, Agricultural Economics Laxmi publications
2. आर. के. रेखी, लोकवित्त, कल्याणी पब्लिकेशन्स
3. डॉ0 जी0 सी0 सिंघई एवं डॉ0 जे0 पी0 मिश्रा, अंतराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन
4. प्रो0 एम.एल राय, आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं नियोजन।
5. http://hi.vikashpedia.org
6. www.gajran.com

आर्थिक मानवाधिकार और विकास

डॉ० सीमा कुमारी

अर्थशास्त्र विभाग, डॉ० एल.के.वी. डी. कॉलेज, ताजपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

भूमिका

मानव के गरिमामयी जीवन जीने के लिए एवं उसके मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिए मानवाधिकारों की जरूरत पड़ती है। तीव्र प्रतिस्पर्धा, भौतिकवादी जीवन, संसाधनों की सीमितता, नैतिक मूल्यों का ह्रास, भ्रष्टाचार, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि समस्याएँ, लैंगिक एवं जातिगत भेदभाव, आर्थिक विषमता, हकमारी गरीबों का शोषण आदि के विषाक्त परिवेश में मनुष्य को आर्थिक रूप से सशक्त और सुरक्षित करके ही हम राष्ट्र के विकास को सुनिश्चित कर सकते हैं।

मानवाधिकार

मानव अधिकारों से अभिप्राय, मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है, जिसके सभी मानव प्राणी हकदार है। अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के उदाहरण के रूप में जिनकी गणना की जाती है, उनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकार सम्मिलित है, जैसे – जीवन और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, समाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियाँ में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार शामिल है।

मानवाधिकार के विभिन्न रूपः-

सांस्कृतिक मा0

राजनीतिक मा0 — शैक्षिक मा0

धार्मिक मा0 — स्वास्थ्य मा0

आर्थिक मा0 — **मानवाधिकार** — सामाजिक मा0

महिला मा0 — पर्यावरणीय मा0

श्रमिक मा0

आर्थिक मानवाधिकार

मानवाधिकारों के सभी रूपों में आर्थिक मानवाधिकार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि भूखे व्यक्ति के लिए विकास, आजादी और अधिकार का कोई मतलब नहीं है। भूखा व्यक्ति अपने तथा परिवार का पेट भरने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है, राष्ट्र को नुकसान पहुँचा सकता है, अतः गरीबों के लिए आजिविका, उचित मजदूरी, गरिमामयी माहौल, खाद्य सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा आदि की पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिए।

राजनीतिक मानवाधिकार

व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। कोई भी राष्ट्र सशक्त तभी होगा जब वहां के नागरिक राजनीतिक रूप से शिक्षित, प्रशिक्षित और जागरूक होगें तथा उन्हें राजनीतिक अधिकार यथा – जीवित रहने और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कानून के सामने समानता, मताधिकार राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने, निर्णय लेने आदि का अधिकार दिये जाएगें। इस तरह राजनीतिक मानवाधिकार राष्ट्र के विकास की गारंटी है।

सामाजिक अधिकार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है, समाज में ही पलता-बढ़ता है और अंतिम सांस समाज में ही लेता है। अतः उसे समाज में विचरण करने, क्रियाशील रहने और सभी व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने के लिए सामाजिक अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है।

धार्मिक मानवाधिकार

धार्मिक मानवाधिकार से तात्पर्य व्यक्ति विशेष को अपने धर्म के मान्यताओं के प्रति आस्था रखने की छूट देने से है। सभी व्यक्ति को अपनी पसंद, आस्था, विश्वास, रूचि के अनुसार धर्म अपनाने और मानने की छूट होनी चाहिए। उस पर कोई विशेष धर्म, सम्प्रदाय थोपा न जाए अथवा अपनाने को मजबूर न किया जाए।

सांस्कृतिक मानवाधिकार

सभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोगों की अपनी अलग-अलग रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार, खान-पान, मान्यताएं एवं आस्थाएं होती है। यही उनकी पहचान होती है, जो इन्हें दुसरों से अलग और श्रेष्ठ बनाती है। अतः विभिन्न सम्प्रदायों एवं धर्मो में परस्पर वैमनस्य, प्रतिस्पर्धा, घृणा न होकर सामंजस्य, सहयोग, प्रेम, आदर और सम्मान होना चाहिए। सरकार को इस बात को पूर्ण रूप से सुनिश्चित करना चाहिए की सभी वर्गों की सांस्कृतिक विशिष्टता बनी रही और अन्य द्वारा अतिक्रमण, नुकसान अथवा क्षरण न किया जा सके।

शैक्षिक मानवाधिकार

अशिक्षित मनुष्य पशु के समान है। शिक्षा ही मनुष्य को पशु से अलग करती है और बुद्धि, विवेक, तार्किक, क्षमता, गलत-सही की पहचान क्षमता और विपरित परिस्थितियों में सामंजस्य बिठाने की क्षमता प्रदान करती है। अत: इस बात को सुनिश्चित किया जाना चाहिए की कोई भी व्यक्ति जो आचार-विचार व्यापार के काम आ सके, की व्यवस्था की जानी चाहिए। वर्तमान में 14 वर्ष की आयु तक की शिक्षा के अधिकार कानून के तहत मुफ्त और अनिवार्य बनाया गया है। इसे 18 वर्ष की आयु तक यानी उच्चतर माध्यमिक तक बढ़ाने की जरूरत है।

स्वास्थ्य मानवाधिकार

स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। जब शरीर अस्वस्थ होगा तो मस्तिष्क कार्य नहीं करेंगा। फलत: राष्ट्र का विकास अवरूद्ध होगा। अत: अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के पास तक स्वस्थ्य सुविधा पहुंचाना प्रत्येक सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। स्वास्थ्य सुविधा के अभाव में कार्यक्षमता का ह्रास, निम्न जीवन प्रत्याशा, मानव संसाधन की कमी, क्रय शक्ति में ह्रास, आर्थिक प्रगति में बाधा आद समस्याए पैदा होती है जिससे राष्ट्र कमजोर होता है।

महिला मानवाधिकार

आधी आबादी के साथ भेदभाव, उपेक्षा और दोहरी नीति अपना कर हम विकास के शिखर को नहीं छू सकते। विकास का रथ तभी दौड़ेगा जब उसका दोनों पहिया मजबूत हो, महिलाओं के हितों की रक्षा को हमें पूर्णरूप से सुनिश्चित करना होगा। महिलाओं लैगिक भेदभाव, अवसरों में भेदभाव, मजदूरी में भेदभाव आदि से मुक्त करना होगा। इनके प्रति हिंसा, शोषण आदि को समाप्त करना होगा। इन्हें आर्थिक रूप से सशक्त करना होगा। इसके लिए हमें सोच-विचार को बदलना होगा। बदलते परिवेश में सम्यक् दृष्टिकोण अपनाना होगा। इनके मान-सम्मान एवं अस्मिता की रक्षा सुनिश्चित करके, सभी को शिक्षण-प्रशिक्षण स्वास्थ्य एवं सुरक्षा प्रदान करके हम इन्हें आत्म निर्भर कर राष्ट्र विकास में पूर्ण सहयोग ले सकते हैं।

श्रमिक मानवाधिकार

राष्ट्र निर्माण में श्रमिकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। श्रमिक ही उत्पादन कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेकर विकास की गति को सुनिश्चित करते है। अत: श्रमिकों के हितों की रक्षा को सुनिश्चित करना अति आवश्यक है। इन्हें उचित मजदूरी, अनुकूल माहौल, रोजगार की सुरक्षा कार्य के घण्टे, सवेतन अवकाश, विश्राम आदि उपलब्ध कराकर ही हम इनका सर्वश्रेष्ठ योगदान ले सकते है। उससे उत्पादन में वृद्धि होगा, तो राष्ट्र का विकास सुनिश्चित करेगा।

पर्यावरणीय मानवाधिकार

जीवन और पर्यावरण में घनिष्ठ संबंध है। बिना पर्यावरण के जीवन और प्रगति की कल्पना तक नहीं की जा सकती पर्यावरण को नुकसान पहुँचाकर मानव अपने अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। एक निश्चित अनुपात में जल जंगल, जमीन और शुद्ध वायु का होना सभी सजीव प्राणी के रक्षा के लिए अनिवार्य शर्त है। हमें भविष्य की चुनौतियों के मद्देनजर सतत् विकास की अवधारणा को अपनाना होगा। अंधाधुन्ध पेड़ों की कटाई, जल-थल-वायु ध्वनि प्रदुषण, जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का अकुशल विदोहन, परिस्थितिकी असंतुलन, ओजोन क्षरण आदि पर नियंत्रण करना होगा।

इस तरह, मानवाधिकार के उपरोक्त सभी रूप समग्र रूप से मानव अस्तित्व और उसके विकास के लिए परम आवश्यक है। सभी का अपना-अपना महत्व है।

संविधान में मानवाधिकारों की व्यवस्था

हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान बनाते समय मानवाधिकार का विशेष ध्यान रखा है प्रस्तावना में ही इसकी झलक दिखाई पड़ती है। हमारा संविधान इस देश के समस्त नागरिकों को समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय देने का वचन देता है। साथ ही, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता देते हुए प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान कर व्यक्ति की गरिमा बढ़ाने का संकल्प लेता है।

संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 12 से 35 तक मैलिक अधिकारों की व्यवस्था करके मनुष्य को गरिमामयी जीवन उपलब्ध कराने की व्यवस्था करता है।

प्रमुख अनुच्छेद और उसमें उल्लेखित तथ्य निम्नलिखित है -

14 से 18	समता या समानता का अधिकार -
14	सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान होगें। सबके लिए एक कानून होगा और सब पर एक समान लागू होगा।
15	राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग एवं जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी भी क्षेत्र में भेद-भाव का निषेध।
16	लोक नियोजन के विषय में कुछ अपवादों को छोड़कर अवसर की समानता होगी।
17	अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु इसे दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

18	उपाधियों का अंत। राज्य द्वारा केवल सेना या विद्या संबंधी उपाधि हीं दी जायेगी।
19 से 22	स्वतंत्रता का अधिकार -
19	वर्तमान में छः मूल अधिकार है -
19 (अ)	बोलने की स्वतंत्रता
19 (ब)	शांतिपूर्वक बिना हथियारों के एकत्रित होने और सभा करने की स्वतंत्रता।
19 (स)	संघ बनाने की स्वतंत्रता।
19 (द)	देश के किसी भी क्षेत्र में आवागमन की स्वतंत्रता।
19 (य)	देश के किसी भी क्षेत्र में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता। (अपवाद जम्मू-काश्मीर)
19 (र)	कोई भी व्यापार या जीविका चलाने की स्वतंत्रता।
20	अपराधों को दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण।
21	प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण - व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।
21 (अ)	राज्य 6 से 14 वर्ष तक के समस्त बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।
22	कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध में संरक्षण।
23 से 24	शोषण के विरूद्ध अधिकारः-
23	मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम को निषिद्ध ठहराया गया है।
24	14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, या जोखिम भरे कार्यो में नियोजन पर प्रतिबंध लगाया गया है।
25 से 28	धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकारः-
25	अंतःकरण और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।
26	धार्मिक कार्यो के प्रबंध की स्वतंत्रता।
27	राज्य उस आय से कर देने के लिए व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकता जो किसी धर्म विशेष की उन्नति हेतु निश्चित कर दी गई है।
28	राज्य विधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं देगा।
29 से 30	सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधि अधिकारः-
29	अल्पसंख्यक वर्गो के हितो का संरक्षण - वह अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रख सकता है और इस आधार पर उसे किसी भी सरकारी शैक्षिक संस्था में प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता।
30	अपनी पसंद की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार प्राप्त है। सरकार इसे अनुदान देने में किसी भी तरह का भेदभाव नहीं करेगी।
32	संवैधानिक उपचारों का अधिकार - इसके अंतर्गत मौलिक अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए समुचित कार्वाईयों द्वारा उच्चतम न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार प्रदान किया जाए। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय को पांच तरह के रिट निकालने की शक्ति प्रदान की गई है- 1. बंदी प्रत्यक्षीरण 2. परमादेश 3. प्रतिषेध-लेख 4. उत्प्रेषण और 5. अधिकार - पृच्छा-लेख

संविधान के भाग 4 में राज्यों के लिए नीति-निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है - जिसमें मानवाधिकारों की रक्षा को सुनिश्चित किया गया है-

अनुच्छेद	*वर्णित विषय*
38	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा, जिससे नागरिकों को समाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय मिलेगा।
39	सार्वजनिक धन के स्वामित्व और नियंत्रण में सार्वजनिक हित को ध्यान में रखा जाएगा।
39 (ग)	धन का समान वितरण किया जायगा।
40	ग्राम पंचायतों का गठन किया जाएगा।
41	कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।
42	काम की न्याय-संगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध।

43	कर्मकारों के लिए निर्वाचन मजदूरी और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन।
44	नागरिको के लिए एक समान सिविल संहिता।
46	अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के लिए शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।
47	पोशाहार स्तर, जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य को सुधार करने का राज्य का कर्तव्य।
48	कृषि तथा पशुपालन का संगठन।

इस तरह संविधान में मानवाधिकारों की समुचित व्यवस्था की गई है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलु-भोजन, आवास, स्वास्थ्य, रोजगार, मजदूरी शिक्षा आदि को विशेष रूप से उपबंधित करके प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा और उन्नति को सुनिश्चित किया गया है।

आर्थिक मानवाधिकार

आर्थिक मानवाधिकार मनुष्य को जीवित रहने, जीवन-यापन करने, आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। मनुष्य की पहली आवश्यकता और समस्या रोटी की है। वह तब तक विकास प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकता जब तक उसके भोजन का प्रबंध सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। जिन्दा रहने के लिए आर्थिक पक्ष मजबुत होना अति आवश्यक है। आर्थिक-मानवाधिकार के अन्तर्गत निम्न तत्व आते हैं:

1. *शिक्षा:* व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। कहा भी गया है कि शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान है। शिक्षा, मानव को कौशल प्रदान कर पुननिर्माण करती है। एक शिक्षित और प्रशिक्षित व्यक्ति, अशिक्षित के वनिस्पत अर्थव्यवस्था में अपना अधिक योगदान दे सकता है। शिक्षण-प्रशिक्षण से ही व्यक्ति में दक्षता, निपुर्णता और विषय-विषेशज्ञता आती है जिससे उसकी कार्यक्षमता और उत्पादकता बढ़ जाती है और जिसका उपयोग वह उच्च उत्पादन में करता है, जो आगे चल कर गुणक रूप में राष्ट्र का विकास सुनिश्चित करता है।
2. *भोजन अथवा खाद्य-सुरक्षा:* सरकार को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए की उसका कोई नागरिक भूख अथवा गरीबी से न मरें। उसे इतना खाद्यान्न जरूर उपलब्ध हो जाना चाहिए, जिससे उसका स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता बनी रहे। खाद्य असुरक्षित होने पर वह गलत कार्यो में लिप्त हो सकता है। जिससे राष्ट्र को नुकसान होगा। कार्यक्षमता गिरने पर उत्पादन प्रभावित होगा फलत: विकास प्रक्रिया थमेगी। अत: खाद्य सुरक्षा को गंभीरता से लागू करके इसका प्रभावी क्रियान्वयन करना होगा।
3. *आवास का प्रबंध:* लोगों को विशेष कर अंतिम पंक्ति के लोगों हेतु आवास का प्रबंध करना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी है। ताकि वे सुरक्षित और विभिन्न गंभीर बिमारियों से मुक्त रह कर राष्ट्र निर्माण में अपना सर्वोच्च योगदान दे सकें।
4. *अवसर की उपलब्धता एवं समानता:* सभी नागरीको को बिना किसी भेद-भाव के उनकी क्षमता अनुसार अवसरों की उपलब्धता होनी चाहिए, ताकि वे जीवन यापन कर सकें और अपना तथा देश का विकास कर सकें। अवसर उपलब्ध नहीं होने पर मानव संसाधन का सदुपयोग नहीं होता और अनेक समस्याएं पैदा होने लगती है। स्वयं को साबित करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को बिना भेदभाव के अवसर उपलब्ध होने चाहिए।
5. *रोजगार की उपलब्धता:* देश में जनसंख्या के अनुपात में रोजगार उपलब्ध होने चाहिए ताकि श्रम का नाश न हो और समाज में गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण आदि समस्याएं जन्म न ले सकें। इसके लिए आधारभुत संरचना का विकास, प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों का विकास, औद्योगीकरण आदि पर बल देना होगा। कुटीर एवं लघु उद्योग-धंधो का विकास एवं प्रसार आदि पर विशेष कार्य करना होगा।
6. *लैगिंक भेदभाव का निषेध:* महिलाओं को पुरूषों के समान अवसर एवं सुविधा प्रदान करने होंगें। उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव वर्जित करना होगा। वे भी अपनी योग्यता एवं क्षमता का सदुपयोग देश के विकास में कर सकती है।
7. *उचित एवं न्यायपूर्ण मजदूरी:* प्रत्येक व्यक्ति को कार्य के बदले न्यूनतम, सम्मानपूर्ण जीवन जीने लायक, उसकी बुनीयादी आवश्यकताओं का पुरा करने वाला, उसके योग्यता, क्षमता और दुर्लभता को ध्यान में रखते हुए मजदूरी दी जानी चाहिए, जिससे उसे कार्य करने की प्रेरणा मिले एवं गरिमा की अनुभूति हो। न्यायपूर्ण एवं उचित मजदूरी रहने से वह रूचि, पूर्णक्षमता और योग्यता का सर्वोत्तम दे सकता है। अपने परिवार को सम्मानपूर्ण ढ़ंग से रख सकता है।
8. *कार्य करने का अनुकुल एवं मानवोचित माहौल:* सभी श्रमिकों को कार्यस्थल पर आवश्यक एवं मानवोचित सुविधा और माहौल दिया जाना चाहिए। उनसे दुर्व्यवहार, जबरदस्ती न हो और उनको मानसिक, शारीरिक, प्रताड़ना एवं शोषण

से सुरक्षा प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। कार्य के घंटे, विश्राम का समय, सवेतन-छुटी, स्वास्थ्य एवं पेयजल, सुविधा व अन्य सुविधाओं की व्यवस्था रहनी चाहिए उनके साथ सम्मानपूर्ण ढ़ंग से पेश आया जाय। जब तक श्रमिक कार्य में रूचि नहीं लेगें तब तक परिणाम संतोषजनक प्राप्त नहीं होगा। अत: इस बात को विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।

9. *कोई भी पेशा अपनाने की छूट:* कामगारों की अपनी रूचि, योग्यता, क्षमता, पसंद के अनुरूप बिना किसी दबाव के अपनी जीविका चुनने की पूरी छुट होनी चाहिए। उनपर किसी प्रकार की बाध्यता या शर्ते न थोपी जाएं। तभी वे पूर्ण रूप से क्रियाशील होगें और उत्पादन कार्य सम्पादित हो सकेंगें।
10. *आर्थिक समानता:* सरकार को अपने प्रयासों से आर्थिक समानता का लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए। आर्थिक असमानता समाज में अनेक समस्याओं वर्गवाद, संघर्ष, शोषण, नैतिकपतन आदि को जन्म देती है। संसाधनों का संकेन्द्रण होने लगता है और सारी शक्ति कुछ कुपोषण, निम्न जीवन-स्तर आदि बढ़ने लगता है। सरकार को उनपर भारी धनराशि व्यय करनी पड़ती है और विकास अवरूद्ध होता है। समाज में अशांति हिंसा आदि पनपने लगता है। अत: आर्थिक समानता के लिए प्रयासरत् रहना सरकार का कर्तव्य है।
11. *उत्पादों का उचित मूल्य:* ऐसी प्रणाली का विकास होना चाहिए जिससे किसानों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। उन्हें दलाल एवं बिचौलियों से बचाने की ठोस रणनीति बनानी होगी। उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होने से उनमें और अरूची, निराशा आती है। जिससे उत्पादन कार्य प्रभावित होते हैं और उनकी समस्याएं फलीभूत होती है। उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होने से ये अपना जीवन-स्तर उठा सकते हैं। इनकी कार्य क्षमता और उत्पादकता बढ़ जाती है। जो विदेशी द्वारा मुद्रा लाता है और राष्ट्र का विकास होता है। अत: इस ओर पूरी गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है।
12. *उपभोक्ता की सुरक्षा:* उपभोक्ताओं को वस्तुए गुणवत्तायुक्त और सस्ती प्राप्त हो इसका ध्यान रखना होगा। वस्तु में मिलावट न हो मात्रा और मूल्य उचित हो, उपभोक्ता का शोषण न हो, सही सेवा प्राप्त हो आदि बातों पर दृष्टि रख कर हम उपभोक्ता हितों की रक्षा कर सकते हैं। भारत में उपभोक्ता के अधिकरों की रक्षा हेतु अधिनियम बनाया गया है। लेकिन अशिक्षा, ग्रामीण आबादी, गरीबी और जागरूकता के अभाव में यह प्रभावी नहीं हो पाया है। इसका दायरा बहुत ही सीमित है, इसे बढ़ाना होगा।

इस प्रकार, उपरोक्त सभी तत्व मिलकर आर्थिक मानवाधिकार को पूर्ण करते हैं। मनुष्य के आर्थिक पक्ष को मजबूत करते ही हम विकास के लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त एक-एक बिन्दुओं पर राज्य को गंभीरता से समीक्षात्मक नजर रखनी होगी। तभी आर्थिक मानवाधिकार का यर्थाथ रूप प्राप्त होगा।

आर्थिक मानवाधिकार और विकास

आर्थिक मानवाधिकार और विकास में घनिष्ठ संबंध है। बिना आर्थिक पक्ष मजबूत किए विकास की बात करना बेमानी है। आर्थिक रूप से सशक्त होने के बाद ही लोगों के पास क्रय-शक्ति बढ़ती है, जिसमें मांग बढ़ता है। फलत: उत्पादन बढ़ता है और राष्ट्र का विकास होता है। आर्थिक मांग और विकास के आपसी संबंध को निम्नलिखित शब्द-चित्रों द्वारा देखा जा सकता है।

आर्थिक मानवाधिकार के तत्व	प्रभाव
शिक्षा	मानव संसाधन का विकास – श्रम का सदुपयोग – उत्पादकता में वृद्धि।
खाद्य–सुरक्षा	पोषण एवं बिमारियों से निजात –
स्वास्थ्य–सुविधा	कुपोषण एवं बिमारियों से निजात – कार्यक्षमता में वृद्धि – जीवन–प्रत्याशा में वृद्धि।
अवसर की उपलब्धता एवं समानता	दुर्लभ श्रम एवं योग्यता की प्राप्ति।
रोजगार की उपलब्धता	क्रयशक्ति में वृद्धि – माँग एवं निवेश में वृद्धि।
लैंगिक भेद–भाव का निषेध	आधी आबादी की क्षमता एवं योग्यता का सदुपयोग।
उचित एवं न्यायपूर्ण मजदूरी	कार्य करने की प्रेरणा एवं रूचि – पूर्ण क्षमता का उपयोग।
कार्य करने का अनुकूल एवं मानयोचित माहौल	कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि
कोई भी पेशा–जीविका अपनाने की छूट	रूचि से कार्य – पूर्ण क्षमता का विदोहन।
आर्थिक समानता	आर्थिक सशक्तिकरण में वृद्धि – जीवन स्तर में सुधार – माँग, आय एवं रोजगार में वृद्धि।
उत्पादों का उचित मूल्य	उत्पादन कार्य में रूचि और कार्य क्षमता का पूर्ण उपयोग – उत्पादन में वृद्धि।
उचित मूल्य	माँग में वृद्धि।
आधारभूत संरचना का विकास	उच्च निवेश को बढ़ावा – औद्योगिकरण को बढ़ावा।

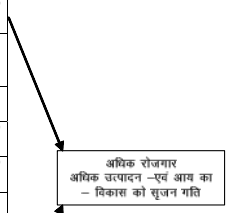

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि-

1. आर्थिक पक्ष मजबुत होने से - क्रयशक्ति में वृद्धि - माँग और निवेश में वृद्धि - उत्पादन में वृद्धि - रोजगार और आय में वृद्धि - जी.डी.पी. में वृद्धि - विकास का लक्ष्य प्राप्त।
2. आर्थिक पक्ष कमजोर होने से - क्रयशक्ति में कमी - माँग और निवेश में कमी - उत्पादन में कमी - रोजगार और अन्य में कमी - जी.डी.पी. में कमी - विकास प्रक्रिया बाधित।

आर्थिक मानवाधिकार के राह के रोड़े :-

सरकार ने संविधान की निर्दिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर आर्थिक

मानवाधिकार के रक्षा हेतु अनेक कदम उठाए है। इसमें काम का अधिकार, बिना भेदभाव के रोजगार एवं अवसरों की उपलब्धता एवं समानता, लैगिंक भेदभाव का निषेध, न्यूनतम मजदूरी एक्ट - 1948, उपभोक्ता के हितों की रक्षा हेतु कानून - 1986, न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति, कार्य के घंटे व अन्य देय सुविधाएं खाद्य-सुरक्षा, शिक्षा का अधिकार आदि शामिल हैं। फिर भी मानवाधिकारों का हनन अनेक कारणों से हो रहा है, जो निम्न है:-

1. नख से शिख तक व्याप्त भ्रष्टाचार।
2. तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या।
3. अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी।
4. राजनीतिक स्वार्थ एवं इच्छाशक्ति की कमी।
5. आधारभूत संरचना का अपूर्ण विकास।
6. प्रशिक्षण एवं कौशल परक कार्यक्रमों का आभाव।
7. शिक्षित वर्ग का श्रम से घृणा।
8. अगुणतापूर्ण एवं संस्कार-विहीन शिक्षा।
9. संसाधनों का अपूर्ण, अविवेकी विदोहन और सीमितता।

हम उपरोक्त अवरोधों को दूर करके ही आर्थिक मानवाधिकार को मूर्त रूप दे सकते है और विकास मार्ग को प्रशस्त कर सकते है। हालांकि सरकार ने राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आयोग का गठन किया हुआ है, लेकिन ये नागरीक अधिकारों को ही विशेष रूप से देखते है, जबकि आर्थिक मानवाधिकार प्राथमिक मुद्दा है। इस ओर यथाशीघ्र सरकार समाज और बुद्धिजीवी वर्ग को कार्य करना होगा। एक बार जब हम इन अवरोधों पर विजय प्राप्त कर लेगें तो हमें आर्थिक महाशक्ति बनने से कोई नहीं रोक सकता।

संदर्भ सूची:

1. शर्मा सुभाष: भारत में मानवाधिकार नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

2. ह्यूमनस्कोप सितम्बर 2001, मुम्बई आवरण।

3. कश्यप, सुभाष हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

4. अमर्त्यसेन: गरीबी और अकाल (आर्थिक परिपेक्ष्य) द्वितीय संस्करण - 2002

5. एस0 कौशिक: मानवाधिकार और आर्थिक विकास नवनिर्माण प्रकाशन, उज्जैन।

रूढ़िवादी हिन्दू और डॉ० भीमराव अम्बेडकर का संघर्षः एक ऐतिहासिक विवेचन

अजीत कुमार शर्मा

शोधप्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, जे०पी०यू०, छपरा (बिहार)

डॉ० बी०आर० अम्बेडकर अस्पृश्य मानी जानेवाली 'महार' जाति में पैदा हुए थे। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होंने पारम्परिक वर्णव्यवस्था और उसके पोषक रूढ़िवादियों को झकझोरते हुए एक नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। यद्यपि हिन्दू वर्णव्यवस्था की संकीर्णतओं पर यह कोई पहला आक्रमण नहीं था। पूर्व में बुद्ध और महावीर के दार्शनिक धार्मिक आन्दोलनों के अतिरिक्त तात्कालीन वर्णाधारित सामाजिक विभाजन के विरुद्ध उठाये गये आन्दोलन, विशेषकर महाराष्ट्र में कम नही थे। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जिस निष्ठा से इस आन्दोलन को खड़ा किया, उसके फलस्वरूप विश्व की सामाजिक क्रांति के इतिहास में इसने एक विशिष्ट स्थान ग्रहण किया।

निम्न जाति में पैदा होने की पीड़ा को उन्होंने संवेदना के स्तर पर बहुत दूर तक महसूस किया था इसलिए उन्होंने दलित-चेतना को नई ऊर्जा देते हुए पारम्परिक वर्णव्यवस्था और रूढ़िवादियों के विरुद्ध युद्ध का ऐलान कर दिया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुयायियों को धर्म परिवर्तन करने की न सिर्फ प्रेरणा दी वरन् घोषित किया कि ''भारत को आजादी मिलने के पहले दलितों को आजादी मिले। दोनों के पीछे एक ही उद्देश्य है - स्वतंत्रता की कामना।''[1] डॉ. अम्बेडकर मानवता के झुलसते प्राणों को अभयदान करना चाहते थे। हिन्दू समाज व धर्म तब अंध व रूढ़ परम्पराओं से बेतरह आवृत्त था और उसमें विवेक की दीपशिखा जाग्रत करने वाले को पागल व धर्मविरोधी समझा जाता था।

डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि वर्ग-धर्म का उन्मूलन हो, जबकि रूढ़िवादी मनुस्मृति के आधार को स्वीकार करते थे। वर्णाश्रम व्यवस्था को उससे बल मिलता है। वे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को शास्त्रों की गुलामी से मुक्ति चाहते थे। शास्त्रानुमोदित हानिप्रद विचारों से उनके मन को मुक्त कराया जाये और निर्भीक होकर परस्पर शादी-विवाह तथा खान-पान कर सके।[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती वर्णधर्म के पक्षधर थे। केवल वह उसमें गुणधर्म सिद्धांत को अपनाने पर जोर देते थे, जो संभव नहीं हो सकता था। डॉ. भगवान दास ने मनु के विधान द्वारा मानव-जीवन की व्यवस्था का सर्वोपरि मार्ग सिद्ध किया था। उनकी दृष्टि में वर्गविहीन समाज की अपेक्षा वर्गाधृत समाज अधिक श्रेष्ठ और मानवोपयोगी था।[2]

स्वामी विवेकानन्द भी जाति-व्यवस्था के न केवल प्रशंसक थे बल्कि सशक्त पक्षधर भी थे। उन्होंने कहा था- ''मैं जाति के लिए पैदा हुआ हूँ, मैं जाति के लिए जीवित हूँ.. जाति में पैदा होने के नाते सम्पूर्ण जीवन जातिगत नियमानुसार जिया जाना चाहिए।'' निष्कर्षतः सभी युगपुरुष व महात्मा 'मनुस्मृति' और उसमें वर्णित वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर थे। डॉ. अम्बेडकर इनके विरोधी थे। उनका निष्कर्ष कि बिना जाति वे वर्ण-व्यवस्था को समाप्त किये हिन्दू धर्म व समाज छूआ-छूत, भेदभाव आदि के दुर्गुणों से मुक्त नहीं हो सकता है। चूँकि डॉ० अम्बेडकर की 'मनुस्मृति' व वर्ण-व्यवस्था में कोई आस्था नहीं थी, फलतः डॉ. अम्बेडकर का विरोध होना अवश्यम्भावी था। तमाम हिन्दू उनके पीछे पड़ गये और उन्हें धर्म विरोधी व भारतीय संस्कृति का विध्वंसक घोषित कर दिया गया।[3]

गांधीजी स्वयं वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर थे क्योंकि उनकी दृष्टि में ''वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य के मिशन को, शरीर और आत्मा की एकता के लक्ष्य को लेकर परिभाषित करता है।[4]'' गांधीजी ने इस व्यवस्था की तुलना न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम से करते हुए कहा कि जिस प्रकार वह नियम न्यूटन की खोज से पूर्व भी था उसी प्रकार वर्णाश्रम प्रकृति नियम है, जो उसकी खोज से पूर्व (गुरुत्वाकर्षण नियम) क्रियाशील था। उससे हिन्दू धर्म की रक्षा हुई है। वह ''आनंद तथा वास्तविक धार्मिक अनुसरण के लिए सबसे उत्तम सुरक्षा का मार्ग है।''[5] फलतः उनमें व गांधीजी में विरोध होना स्वाभाविक था। हालांकि गांधीजी छूआ-छूत के विरोधी थे, परन्तु वे उससे दूर करने के लिए प्रयत्नशील नहीं थे। डॉ० अम्बेडकर छूआ-छूत को जड़ से मिटाना चाहते थे, फलतः वे हिन्दू धर्म की समीक्षा करते हुए उस 'मनुस्मृति' आश्रित व्यवस्था से अपना विरोध जताते थे। उनकी दृष्टि में गांधीजी द्वारा अछूतों को 'हरिजन' संज्ञा अनुचित तथा अवैज्ञानिक थी जबकि वे अछूत सत्ता के अस्तित्व को हिन्दू धर्म से मिटा देना चाहते थे। अछूत का अस्तित्व 'हरिजन' नाम देने से नहीं मिटेगा, यह उनकी दृढ़ मान्यता थी।[1]

वह गांधीजी जैसे व्यक्ति को अपना विरोधी पाकर यह कहते थे कि उनकी जगह कोई सामान्य व्यक्ति उनका विरोध करता तो वह कदापि उस ओर ध्यान नहीं देते; गांधीजी का जनता पर गहरा प्रभाव होने के कारण उनके विरोध का प्रत्युत्तर नहीं देना स्पष्ट कर देता कि गांधीजी अपनी जगह पर ठीक हैं। इस ठीक होने का

आशय है कि अछूत अछूत बने रहें या सवर्णों की दया पर रहें। डॉ. अम्बेडकर को मूर्तिभंजक, धर्म का शत्रु तथा अराष्ट्रीय कहा गया क्योंकि वह समाज-सुधार को राजनीतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक महत्व देते थे।[2]

डॉ. अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणवाद के घोर विरोधी थे। उन्होंने स्पष्टत: कहा कि समस्त ब्राह्मण अछूतों के दुश्मन हैं। ब्राह्मणवाद से उनका तात्पर्य स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व की भावना का निषेध करने वाली शक्तियों से था। उनका कहना था कि यह ब्राह्मणवाद सभी वर्गों में व्याप्त है और मात्र ब्राह्मणों तक सीमित नहीं है, हालांकि यही लोग उसके जन्मदता रहे हैं ; जो समाजिक, धार्मिक, राजनीतिक अधिकारों को अपने में केन्द्रीभूत किये हुए है। वस्तुत: ब्राह्मण वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल कारण है। ये दोनों ही शास्त्रों की देन है अत: शास्त्रों से धर्म को मुक्त करना होगा। वर्णवाद ब्राह्मणवाद के द्वारा ही फलीभूत हुआ है। अत: उसको भी हटाना होगा।[3]

रूढ़िवादि हिन्दुओं के प्रति उन्होंने बहुत कुछ कहा; वे चाहते थे कि हिन्दू धर्म अपने सनातन रूप को ग्रहण करे। उनकी दृढ़ मान्यता थी: ''वे दुख, जिनसे अछूत पीड़ित हैं, यद्यपि उनका इतना प्रचार नहीं हुआ है जितना कि यहूदियों का, तो भी किसी तरह कम यथार्थ नहीं है। न ही दमन के वे साधन व पद्धतियाँ, जिनका हिन्दुओं ने अछूतों के प्रति प्रयोग किया, इसलिए कम प्रभावशाली हैं कि वे उन तरीको से कम भयंकर हैं जिनका प्रयोग नाजियों ने यहूदियों के विरुद्ध किया। यह यहूदियों के विरुद्ध नाजियों का एन्टी-सीमेटिज्म, विचार एवं प्रभाव में अछूतों के विरुद्ध हिन्दुओं के सनातनवाद से किसी तरह भी भिन्न नहीं है।''[4]

इतना ही नहीं उन्होंने मनुवादी व्यवस्थाओं के प्रति जो सफल एवं ऐतिहासिक विद्रोह किया उसकी झलक हमें डॉ. अम्बेडकर द्वारा संसद में पारित 'हिन्दू कोड बिल' में मिलती है, उसे देखते हुए उन्हें भारतीय नारी का उद्धारक कहा जा सकता है। उन्होंने भारतीय समाज में नारियों को पुन: प्रतिस्थापित करने के लिए हिन्दू समाज में व्याप्त आर्थिक, सामजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक असमानताओं के खिलाफ इस बिल को प्रस्तुत किया था। यह बिल मूलत: नारियों की दासता मुक्ति का शंखनाद था। इस बिल में नारियों को पिता की सम्पति में पुत्र के समान अधिकार, विधवा विवाह का अधिकार, अपनी इच्छा से विवाह करने का अधिकार, पति की प्रताड़ना से त्रस्त होने पर तलाक लेने का अधिकार, बच्चों को गोद लेने का अधिकार आदि की व्यवस्था थी। इस बिल का मुख्य उद्देश्य था हिन्दू ब्राह्मणवादी परम्परा पर आधारित सामाजिक, आर्थिक, भेदभाव व अत्याचारपूर्ण मान्यताओं को जड़ से उन्मूलन कर समताधारित समाज का निर्माण करना।

भारतीय इतिहास में यह काला अध्याय है कि हिन्दू धर्मावलम्बियों ने इसे संसद में पारित नहीं होने दिया। यहाँ तक की नेहरू जैसे प्रगतिशील प्रधानमंत्री ने भी इसे संसद में पारित कराने में सकारात्मक सहयोग नहीं दिया। अंतत: डॉ० अम्बेडकर ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। डॉ. अम्बेडकर जैसे अछूत की बात सवर्ण जाति के युगपुरुष कैसे स्वीकार कर लेते? फिर एक अछूत का नाम उनसे उपर नहीं आ जाता ![1]

निष्कर्षत: डॉ० अम्बेडकर हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता से क्षुब्ध हो उठे थे। उन्होंने प्रयास किया था कि अछूतों को हिन्दू धर्म में सवर्णों जैसा सम्मान मिले। परन्तु वहाँ भी अछूतों को सम्मान के स्थान पर 'हरिजन' एक नया शब्द मिला। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हरिजन तो सब ही हैं फिर अछूतों को यह नाम क्यों दिया गया? यह भी अछूतों के लिए भ्रम जाल था। उन्होंने नारियों की मुक्ति के लिए जो उपाय सुझाये थे, वे भी सवर्ण रूढ़िवादियों को नागवार लगा। फलत: उन्होंने जितना प्रयत्न सम्मान हिन्दू धर्म में बने रहने का किया वे उतने निराश होते गये। इसी का यह फल है कि उनको यह कहना पड़ा- ''यद्यपि मैंने अभी तक अपना धर्म नहीं बदला किन्तु मैं शपथपूर्वक आपसे कहना चाहता हूँ कि मै एक हिन्दू के रूप में नहीं मरूँगा।[2] 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने अंत में बौद्ध धर्म स्वीकार कर अपनी शपथ को पूरा किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कीर, धनंजय, डॉ अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन; पोपुलर प्रकाशन, बंबई, 1987.
- अम्बेडकर, बी. आर. : एनहिलेशन ऑफ कॉस्ट, भीमपत्रिका प्रकाशन जालंधर.
- भटनागर, राजेन्द्र मोहन, डॉ. अम्बेडकर : जीवन और दर्शन, किताब घर गांधीनगर, दिल्ली.
- सोशलिष्ट थॉट इन मॉर्डन इण्डिया.
- यंग इण्डिया : 24 नवम्बर 1927
- कुबेर, डबल्यू. एन., बी.आर.अम्बेडकर : बिल्डर्स ऑफ मॉर्डन इण्डिया, पब्लिकेशन्स डिविजन, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया, फरवरी 1987.
- दास भगवान, दस स्पोक अम्बेडकर, वाल्यूम-I (स्पीच, 1956)
- कुबेर, डबल्यू. एन., डॉ. अम्बेडकर -ए क्रिटिकल स्टडी, पी.पी. हाउस, नई दिल्ली, 1973.
- जाटव, आर., द सोशल फिलॉसफी ऑफ अम्बेडकर, 1965.
- जाटव, आर., द पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ अम्बेडकर.
- अम्बेडकर्स एसेज ऑन द राइज एण्ड फॉल ऑफ द हिन्दू वूमैन, महाबोधि पत्रिका.

स्वामी विवेकानन्द के सामाजिक दर्शन का आधार: आध्यात्मिक एकता

डॉ० मदेश कुमार तिवारी

एम०ए० (राजनीति विज्ञान) राजनीति विज्ञान विभाग, जे०पी०यू०, छपरा (बिहार)

स्वामी विवेकानन्द के समाजवाद तथा मानवतावाद का विकास उनकी वैदान्तिक प्रमाणता की अवधारणा के आधार पर हुआ। उनके समाजवाद ने वर्ग-सहयोग तथा एकता और उनके मानवतावाद ने मुनष्य की ईश्वर के रूप में पहचान को तथा मानवता का प्रेम तथा उपासना के माध्यम से सेवा करने का प्रयत्न किया। वास्तव में, एकता की अवधाारण उनके समूचे समाजवाद तथा मानवतावाद को प्रोत्साहित करती रही है। सामाजवाद को जिस रूप में उन्होंने देखा, वह मानवतावाद के विकास के साध्य का एक साधन मात्र था। मानव जीवन का आरम्भ समानता से होता है और वैश्विक एकता की प्राप्ति में उसकी परिणति होती है। इसीलिए, वह हर प्रकार के विशेषाधिकार तथा शोषण के विरूद्ध थे, चाहे उनका सम्बन्ध व्यक्ति के विचारों से हो या फिर सामाजिक अस्तित्व से। मानव की दासता चाहे वह शरीरिक रही हो, या मानसिक या आध्यात्मिक, उसका एकमात्र कारण असमानता ही रही है। वास्तव में, उनकी समानता की अवधारणा उनकी समूची आध्यात्मिक विचारधारा का आधार है और वह व्यक्ति के क्रमिक विकास को प्रोत्साहित करती है तथा यह भी बताती है कि विकास की इस प्रक्रिया में असमानताओं का कितना बोलबाला रहा है।

समानता से विवेकानन्द का अभिप्राय सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की विशेष असमानता से नहीं था। उनका अभिप्राय समानता के रूप से न होकर उसकी प्रक्रिया से था। व्यक्ति के क्रमिक विकास में अपनी आस्था के कारण, वह सम्पूर्ण समानता अथवा सम्पूर्ण असमानता के चक्कर में फंसने से बच गए। उनका कहना था कि दुनिया में समानता व आसमानता दोनों साथ-साथ चलती हैं। समानता की तरह असमानता का होना भी स्वाभाविक, लाभदायक तथा सृजनात्मक होता है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि असमानता न तो सनातन है और न ही असीम। उन्होंने व्यक्ति की असमानता के विरूद्ध संषर्घ की अनिवार्यता तथा एकता की आकांक्षा को उचित माना। मानव अनेकता में उनका विश्वास सांख्य दर्शन तथा पातंजलि के ''आत्मानुभूति'' के सिद्धांत पर आधारित था, जबकि वेदान्त में उनकी आस्था ने उन्हें मानव एकता की घोषणा के लिए प्रेरित किया।

स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक यात्रा के विभिन्न पड़ाव

स्वामी जी का विचार था कि समानता तथा असमानता दोनों ही विवेक पर आधारित तथा अवश्यम्भावी हैं। मानव प्रकृति के सांख्य द्वारा किए गए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से मानव की असमानताओं की विषमता का पता लगता है। व्यक्तियों के बीच सत्व, रजस तथा तमस के गुणों के कारण परस्पर मतभेद रहते हैं। इसीलिए विवेकानन्द ने वर्ण-विभाजन को तर्कसंगत माना। अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के गुण हर व्यक्ति में हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि किसी में किसी एक गुण की प्रधानता है तो किसी में दूसरे की। सामाजिक व्यवस्था के चारों गुण भी व्यक्ति के इन्हीं गुणों पर आधारित हैं। ब्राह्मण, ज्ञान के शासन तथा संवेदनशीलता की प्रगति के प्रतीक हैं। शूद्र असमानता पर समानता की विजय का प्रतीक है। ज्ञान, संरक्षण, आर्थिक गतिविधियों तथा समानता की एकरूपता को विवेकानन्द ने सराहा। लेकिन, इसकी प्राप्ति को मुश्किल मानकर हर जाति ने सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयत्न किया, जो अवनति के कारण बना। विवेकानन्द ने उच्च जाति के लोगों द्वारा अपने से निम्न जाति के लोगों के प्रति किए गए अत्याचारों तथा दमन के विरूद्ध संघर्ष किया।

विवेकानन्द के मानव-असमानता से सम्बन्धित विचारों को उनकी मानव के आध्यात्मिक विकास की अवधारणा में भी ढूंढा जा सकता है। पातंजलि के आत्मानुभूति के सिद्धान्त से उन्होंने यह सीखा कि आत्मानुभूति की प्राप्ति से मनुष्य के स्वाभाविक गुणों में परिवर्तन होता है और यह श्रेष्ठता के एक स्तर से दूसरे स्तर तक पहुंच जाता है। पातंजलि के विचारों को स्वीकार करने वाले विवेकानन्द यह मानते थे कि एक व्यक्ति तथा दूसरे व्यक्ति के बीच में जो अन्तर है, वह उसके आध्यात्मिक विकास के चरण-विशेष का परिचायक है। इसीलिए, एक व्यक्ति तथा दूसरे के बीच अन्तर केवल मात्रा का है, गुण का नहीं। पातंजलि के आत्मानुभूति के सिद्धान्त ने विवेकानन्द के समानता के सिद्धान्त को सृजनात्मक तथा सकारात्मक बना दिया। इसीलिए, उन्होंने व्यक्ति की पहल, स्वतंत्रता तथा समान अवसर की आवश्यकता पर जोर दिया।

वर्ण तथा असमानता

आत्मानुभूति के सिद्धान्त में विश्वास के कारण, विवेकानन्द ने कर्म की अवधारणा को स्वीकार किया तथा व्यक्ति व समाज के जीवन के कारण तथा परिणाम के नियम को माना। कर्म का नियम विभिन्न व्यक्तियों के बीच अन्तर का बोध कराता है। कर्म व्यक्ति के विकास तथा स्वतन्त्रता का परिचायक है। व्यक्ति तथा समाज का पतन इस बात पर निर्भर करता है कि वह क्या करता है और क्या करने से बचता है। उनके अनुसार, भारत की दासता का कारण जनता की अपेक्षा थी। हमें अपनी दुर्दशा, गिरावट, दासता तथा असमानता के लिए स्वयं को ही दोषी मानना चाहिए।

इसलिए, व्यक्ति तथा समाज दोनों को, असमानता के कारणों को अपने अन्दर झांककर देखना चाहिए और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जब लोग वेदान्त के उपदेश को मान लेंगे कि जो कुछ भी है वह सब एक से ही है, तो असमानता का लोप हो जाएगा।

वैदान्तिक समानता

वेदान्त मानव की आध्यात्मिक एकता की बात करता है। विश्वव्यापी एकता की प्राप्ति के लिए समानता जीवन की आध्यात्मिक आवश्यकता है। एक सच्चे वेदान्तवादी की तरह, उनका यह मानना था कि किसी एक व्यक्ति का जीवन अथवा अस्तित्व दूसरों के जीवन तथा अस्तित्व से अलग नहीं है। सभी व्यक्ति एक ही ईश्वरीय शक्ति की चिंगारी हैं। सभी स्वतंत्र हैं, समान हैं, एक हैं। वेदान्त की एकता की भावना व्यक्ति को समाज की एकरूपता की पहचान कराती है और नि:स्वार्थ सेवा के लिए प्रेरित करती है। सबके जीवन में व्यक्ति का जीवन है और सभी के सुख में व्यक्ति का सुख है। इस प्रकार, विवेकानन्द ने लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए सामाजिक एकता की आवश्यकता पर बल दिया। उनका यह मानना था कि असमान समाज में केवल एकता की बात करने का कोई अर्थ नहीं होगा, जब तक इस एकता का दलितों के उत्थान के लिए प्रयोग न किया जाए। दलितों का उत्थान तभी सम्भव होगा जब व्यक्ति अपने अहं को भूल जाए और साामजिक चेतना को प्रोत्साहित करे। आखिर व्यक्ति की पहचान समाज के अंग के रूप में ही तो है। उनके अनुसार, सामाजिक एकता को एक दूसरे की पहचान तथा एक-दूसरे के प्रति प्यार से ही संजोया जा सकता है। वास्तव मे सामाजिक एकता तभी आएगी जब सभी प्रकार के विशेषाधिकारों का अंत हो जाएगा। इस प्रकार, विवेकानन्द ने समाजवाद को एक ऐसे न्यायोचित समाज की स्थापना के रूप में देखा जो समानता, एकता तथा प्रेम के सिद्धान्तों पर आधारित है।

विवेकानन्द सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में एकता के अद्वैत सिद्धान्त का मूर्त रूप देखना चाहते थे। उनका विचार था कि एकता के द्वारा एक न्यायोचित तथा समतामूलक समाज की स्थापना हो सकती है और यदि ऐसे समाज की स्थापना हो गई तो वह असमानताओं को दूर करके प्रेम तथा समाजिक एकरूपता को प्रशस्त करेगा। उनकी समाजवाद की अवधारणा वर्ग-सहयोग तथा एकता के सिद्धान्तों पर आधारित थी और उन्होंने समाजवाद में सामाजिक एकता तथा आर्थिक न्याय की संभावना को देखा। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय के सिद्धान्त में अपनी अटूट आस्था के आधार पर उन्होंने अपने आपको एक समाजवादी माना। उन्होंने कहा : ''मैं अपने आपको समाजवादी इसलिए घोषित नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मैं इसे एक सम्पूर्ण सिद्धान्त मानता हूँ, बल्कि इसलिए कि रोटी का आधा टुकड़ा मिलना रोटी के बिलकुल न मिलने से बेहतर है।'' उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि समाजवाद अथवा किसी-न-किसी रूप में जनता का शासन आ रहा है, एक ऐसी अवस्था आ रही है जिसमें मौलिक जाति-व्यवस्था समाज के समाजवादी कार्यों का निर्वहन करेगी। यह एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसमें व्यक्ति के आत्म-संयम पर आधारित आर्थिक व्यवस्था न्यायोचित होगी तथा सम्पत्ति के न्यायोचित बटवारे को बल मिलेगा।

विवेकानन्द यह मानते थे कि समाजिक तथा राजनैतिक आदर्श तथा व्यवस्थाएँ शाश्वत नहीं हैं, वह तो बनती बिगड़ती रहती हैं, और यदि उनमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन न आए तो वह विलीन भी हो जाती हैं। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, यहां धर्म को राजनीति के मुकाबले प्राथमिकता दी जाती रही है। उन्होंने घोषणा की : ''धर्म ही सब कुछ है किन्तु सब कुछ धर्म नहीं है।'' उन्होंने यह भी कहा कि धर्म से उनका अभिप्राय न तो धर्मग्रन्थों में लिखी हुई बातों से है और न ही सामाजिक कर्मकाण्डों से। इसका सम्बन्ध तो सामाजिक जीवन की आध्यात्मिक एकता की प्राप्ति से है। इसलिए उन्होंने समाजवाद को सामाजिक एकता की आध्यात्मिक तथा स्वतंत्रता व समानता के प्रति वचनबद्धता पर आधारित माना।

यह वेदों की स्वतंत्रता तथा समानता पर आधारित एकता की अवधारणा ही थी जिसने विवेकानन्द को समाजवाद का पक्षधर बनाया। उनके अनुसार, वेदान्त समाजवाद के विकास को प्रोत्साहित करता है। मानव समानता, स्वतंत्रता तथा एकता इन सबके उद्देश्य समान हैं तथा सभी जनता की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विवशता तथा शोषण से मुक्ति की बात करते हैं। वेदान्त ने विवेकानन्द को हृदय से उदारवादी तथा समाजवादी बना दिया। उन्होंने स्वतंत्रता के उदारवादी विचार तथा समाजवादियों के एकता के प्रति आकर्षण तथा वेदान्त के प्रति प्रेम में सामंजस्य स्थापित किया। इस प्रकार, उन्होंने उदावादियों की शालीनता तथा आवश्यकता पर जोर देते हुए, तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानते हुए, समाजवाद को श्रेष्ठतर बनाया। उन्होंने इसमें संपत्ति के न्यायोचित बंटवारे को भी शामिल किया। एक उदारवादी की तरह, उन्होंने मानव की असमानताओं तथा वर्गों को स्वीकार किया तथा एक समाजवादी की तरह उन्होंने 'वर्ग-एकता' की वकालत की।

वर्गों का सामाजिक सिद्धान्त

सभी समाजवादी, समाज में वर्गों की संभावना को स्वीकार करते हैं तथा विवेकानन्द की तरह, सभी सामाजिक विरोधाभासों के संदर्भ में अलग-अलग मत रखते हैं। मानव-प्रकृति के सांख्य-विश्लेषण के आधार पर, विवेकानन्द ने न केवल वर्गों के अन्तर्भेदों को स्वीकार किया, बल्कि वर्ग-एकता की वकालत भी की। इसलिए उनकी समाज की अवधारणा विभिन्नता में एकता पर आधारित है।

समाज में वर्ग-विभेद मानव प्रकृति में विभेदों के अनुरूप है। मानव प्रकृति के सांख्य-विश्लेषण के आधार पर विवेकानन्द ने मानव असमानताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया। मानव असमानता से अभिप्राय वर्गों तथा वर्ग-विभेदों के अस्तित्व से है। वह इन विभेदों को ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए अनिवार्य मानते थे। सृष्टि शाश्वत, असीमित अथवा अटल है, क्योंकि मानव-प्रकृति में गुण-परिवर्तन होते रहते हैं। अपनी प्रकृति को सुधारकर मनुष्य असमानताओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसलिए मानव

प्रकृति में होने वाली अस्थिरताओं के कारण जब एक गुण दूसरे गुण पर प्रभावी हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति का वर्गों में कठोर तथा स्थायी आधार पर वर्गीकरण करना सदा सम्भव नहीं होता। इसीलिए, किसी भी वर्ग की स्थिति शाश्वत नहीं है और वर्गों के सम्बन्ध भी परस्पर विरोधी नहीं है।

विवेकानन्द ने वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार किया, उनके संभावित विरोधाभासों के अस्तित्व को नहीं। इसीलिए उनकी समाज की अवधारणा आंतरिक विरोधाभासों पर आधारित न होकर एकता पर आधारित है। उनका कहना था कि विश्व के आंतरिक सम्बन्धों में प्रगति पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होने वाले संघर्ष से ही होती है। समाज में कोई वर्ग अपने आप में साध्य नहीं होता। वास्तव में, साध्यों व साधनों में कोई मौलिक अन्तर होता ही नहीं, क्योंकि जैसे कारण तथा परिणाम में एकरूपता होती है, वैसे ही साधनों व साध्यों में भी एकरूपता होती है। साध्य साधनों की अंतिम कड़ी है। साध्य का औचित्य साधन से है, न कि साधन का साध्य से।

वर्ग-एकता समाज की अवधारणा पर निर्भर करती है। समाज आंगिक है। समाज में एकता का होना स्वाभाविक है क्योंकि वर्ग स्वभाव से ही सामाजिक होते हैं, परस्पर विरोधी नहीं। वर्ग-एकता ही सामाजिक एकता को जन्म देती है। इसलिए, विवेकानन्द के अनुसार समाज न तो कोई वर्ग-संस्था है और न ही मध्यवर्गीय लोगों की समान गतिविधियों को संयत करने वाली कोई एक समिति, जैसा कि साम्यवादी-घोषणा पत्र में कहा गया है। सामाजिक एकता सामाजिक विभेदों को नियंत्रण में रखने वाला कोई सामाजिक अथवा राजनैतिक साधन नहीं है। यह तो एक स्वाभाविक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकता है। विवेकानन्द ने वेदांत पर आधारित उस सामाजिक एकता को स्वीकार किया जो जीवन की एकता में हर चीज की एकता का बोध कराती है। वेदों के प्रेम तथा पहचान की नैतिकता ने विवेकानन्द की वर्ग-सहयोग व एकता में आस्था की पुष्टि की। वेद सामाजिक एकता को स्वीकार करते हैं व्यक्ति के व्यक्ति द्वारा तथा वर्ग के वर्ग द्वारा शोषण को नहीं। उनका मानना था कि अपने पड़ोसी को नुकसान पहुंचा कर व्यक्ति स्वयं अपने आप को नुकसान पहुंचाता है और जब कोई वर्ग-विशेष अन्य वर्गों का शोषण करता है तो वह स्वयं अपना शोषण भी करता है और अपने विकास की गति को अवरूद्ध कर लेता है। इस प्रकार, वर्ग-शोषण आत्मघाती होता है।

विवेक के आधार पर भी व्यक्ति को अपने स्वार्थ के सामने सामाजिक हित को ऊपर रखना चाहिए। यदि वर्ग-हित व्यक्ति हित से ऊपर नहीं हो सकता तो व्यक्तिगत हित भी सामाजिक हित से ऊपर नहीं उठ सकता। वर्ग तो एक साधन मात्र है, कोई साध्य नहीं है। कोई भी वर्ग स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं होता, सबके समान हित के लिए होता है। इस प्रकार, विवेकानन्द ने वर्ग-नैतिकता तथा वर्ग-चेतना के स्थान पर समाजिक नैतिकता तथा एकता पर जोर दिया तथा वर्गों के हितों की समानता तथा एकरूपता को सर्वोपरि माना।

विवेकानन्द का वर्ग-सहयोग का सिद्धान्त उनकी जाति-प्रथा की सामाजिक संस्था के रूप में किए गए समर्थन के अनुकूल है। उन्होंने जाति-प्रथा को एक ऐसी महान संस्था के रूप में देखा जो भारतीय समाज का आधार रही है। एक सामाजिक संस्था के रूप में, जाति-प्रथा व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसकी अवसर की समानता को प्रोत्साहित करती है। यह न्याय के आग्रह की अभिव्यक्ति है। यह व्यक्ति की भलाई को समाज की भलाई तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक समानता व समरसता के अनुकूल बनाती है। यहां यह कहा जा सकता है कि जाति प्रथा प्रकृति से व्यक्ति अपनी गतिविधियों के सम्बन्ध में सामाजिक है। इसे व्यक्तिगत इसलिए माना जाता है क्योंकि यह समूह के हर सदस्य की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करती है तथा अपने कार्यो का संचालन करती है। साथ ही साथ, इसे सामाजिक इसलिए माना जाता है क्योंकि इसका हर समूह अपने आपको विस्तृत समुदाय का अंग मानता है तथा समाज के आर्थिक कल्याण व समरसता के लिए अन्य समूहों के साथ मिलकर कार्य करता है। व्यक्ति अपनी जाति के लिए उत्तरदायी होता है और जाति उसके कल्याण तथा विकास को प्रोत्साहित करती है। इसलिए, आर्थिक कल्याण, सामाजिक समता तथा आध्यात्मिक एकता के लिए जाति प्रथा को अनिवार्य माना गया है। विवेकानन्द ने जाति प्रथा के साथ एक आदर्श राज्य की परिकल्पना भी की थी। उनके अनुसार, 'यदि कोई राज्य पंडितों के ज्ञान, सैनिकों की संस्कृति, व्यापारियों की वितरण प्रणाली की भावना तथा शूद्रों के समानता के आदर्श के सकारात्मक पक्षों को संजोए रख सके और उसके बुराईयों का परित्याग कर सके तो वह राज्य एक आदर्श राज्य होगा।'

जाति व्यवस्था के प्रति अपने आकर्षण के बावजूद, वह इसके कार्यान्वयन के आलोचक भी थे। उन्होंने पाया कि वह व्यवस्था वंशानुगत जाति-व्यवस्था के रूप में इतनी पतित हो गई थी कि इसने सामाजिक संकीर्णता तथा अलगाव को प्रोत्साहित करके निम्न वर्गों के लोगों के प्रति किए जा रहे अन्याय का निराकरण नहीं किया। वह चाहते थे कि इन वर्गों का समुचित शिक्षण किया जाए जिससे वे भी औरों के बराबर आ सकें। उन्होंने कहा: 'जातियों को समतल करने का एक ही तरीका है और वह है उनका समान शिक्षण तथा संस्कृतिकरण, जो अभी तक केवल उच्च वर्गों के लोगों तक ही सीमित है।' जातियों के समीकरण की प्रक्रिया को सबकी अवसर की समानता, समता की भावना तथा उन पर आधारित एकता को सुनिश्चित करना होगा।

उन्होंने गरीब किसानों, मिल मजदूरों तथा धनिक वर्गों के बीच वर्ग-संघर्ष की नीति अपनाने के विरूद्ध चेतावनी दी। उनका कहना था कि अपने आपको गिराए बिना कोई दूसरे से घृणा नहीं कर सकता। वह चाहते थे कि धनी लोग किसानों और मजदूरों को अपनी चेतना शक्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करे। उनका मानना था कि समाजवादी समाज की स्थापना केवल श्रमजीवी वर्ग के व्यक्तिगत प्रयत्नों से हीं नहीं होगी, बल्कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी वर्गों को संयुक्त रूप से प्रयत्न करना होगा।

वी.पी. वर्मा को विवेकानन्द के दर्शन में क्रोध और प्रेरणा दोनों ही के अवसर दिखाई दिए, तभी तो वह कभी जाति-प्रथा को समूल रूप से नष्ट कर देने की बात करते थे तो कभी उन्हें अपने समाज के आन्तरिक विकास के लिए प्रेरित करते। ये प्रवृत्तियाँ

वास्तव में परस्पर विरोधी नहीं है। वे इस बात की सूचक भी हैं कि जातियों के सामाजिक दमन तथा उकने आतंक फैलाने की प्रवृत्ति के विरोध के बावजदू एक ऐसे सामाजिक कार्यक्रम को अपनाया जा सका है जिससे परिपूर्णता के क्रमिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सके।

विवेकानन्द का विश्वास था कि समाजवाद की स्थापना से पहले शिक्षा के द्वारा जनजागरण करना होगा। उनका नैतिक तथा धर्मनिरपेक्ष शिक्षा में विश्वास था, क्योंकि इसके द्वारा खोए हुए व्यक्तित्व को दुबारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि लोगों को शिक्षित कर दिया जाए तो वह अपने अधिकारों के प्रति स्वयं ही जागरूक हो जाएंगे, अपनी क्षमताओं का विकास कर पाएंगे, स्वशासन स्थापित कर पाएंगे तथा सामाजिक समस्याओं को सुलझा पाएंगे। यदि शिक्षण का यह कार्य मध्यम वर्ग के द्वारा किया गया तो निम्न वर्ग के लोग उनके प्रति आभारी रहेंगे। विवेकानन्द का जनता के प्रति दृष्टिकोण सृजनात्मक तथा जनतंत्रात्मक था क्योंकि जनजागरण का काम क्रमिकता तथा शांति का होता है। अत: समाजवादी-समाज की प्राप्ति का लक्ष्य भी शांतिपूर्ण साधनों के द्वारा ही सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार, विवेकानन्द का समाजवाद जनता को अत्मनिर्भरता तथा स्वशासन का सूचक था।

आध्यात्मकवाद तथा भौतिकवाद का सामंजस्य

गरीबों के प्रति विवेकानन्द की चिन्ता ने उन्हें भौतिकवाद के महत्त्व पर जोर देने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा : 'भौतिक सभ्यता तथा विलासिता भी बेकारों के लिए काम के अवसर पैदा करने वाली हो सकती है। हर गरीब की मांग है रोटी। मैं ऐसे ईश्वर में आस्था नहीं रखता जो स्वर्ग में तो सुख की अनुभूति कराए लेकिन इस दुनिया में रोटी भी न दे सके।' वह भौतिक जीवन के पक्षधर थे, क्योंकि वह गरीबी से घृणा करते थे और आध्यात्मवाद में उनका विश्वास इसलिए था क्योंकि भौतिक समाज की सीमाओं से परिचित थे।

मार्क्स की भाषा में, उन्होंने पाया कि उनके समय का समाज निर्धन को और अधिक निर्धन तथा धनी को और अधिक धनी बना रहा था। उन्होंने पश्चिमी भौतिक-जीवन तथा औद्योगिक समाज की कमियों और सीमाओं को पहचाना। वह चाहते थे कि लोग भौतिकवाद के प्रति अपनी ललक छोड़कर, आध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हों।

विवेकानन्द के अनुसार एक न्यायोचित अर्थव्यवस्था की सफलता व्यक्ति की संतुष्टि पर निर्भर करती है जो उसे अपने अन्दर से प्राप्त होती है। आर्थिक आत्मसंयम व्यक्ति तथा समाज दोनों के हित में है। व्यक्ति को वास्तविकता के उच्चतर उद्देश्य रहते, विश्व की सहायता नहीं की जा सकती है। उन्होंने कहा कि जैसे पूर्व को विज्ञान तथा तकनीक के ज्ञान की आवश्यकता है, वैसे ही पश्चिम को पूर्व के आध्यात्मिक संस्कृति की। उन्होंने कहा, 'यूरोप, जो कि भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति का केन्द्र है, वह 50 साल में खाक में मिल जाएगा, अगर उसने अपने वर्तमान स्थिति को बदल कर आध्यात्मवाद को अपने जीवन का अंग नहीं बनाया। यूरोप को उपनिषदों के धार्मिक ज्ञान से ही बचाया जा सकता है।' इस प्रकार, विवेकानन्द ने पुरानी तथा नई दुनिया तथा पूर्व तथा पश्चिम, के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

संदर्भ सूची :-

1. टालस्टाय, डायरी, 20 अप्रैल 1910, खंड 4।
2. वी. पी. वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल 1983, पृ. 328।
3. बी. एल. फाड़िया, पूर्वोद्धृत सं. 13, 328।
4. वी. पी. वर्मा, पूर्वोद्धृत सं. 24, 357।
5. नटेसन, स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी
6. सूद ज्योति प्रसाद, प्रमुख राजनीति विचारक

विनोबा भावे का भूदान आन्दोलनः एक अवलोकन

डॉ० अनिल शर्मा

डॉ० एल.के.वी. डी. कॉलेज, ताजपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

विनोबा भावे 18 अप्रैल 1951 को आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना के नालगुंडा जिले के पंचमपल्ली गांव में भूमिहीन हरिजनों की दर्द भरी कहानी सुनकर भूदान का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने अनुमान लगाया कि यदि भूमिहीन कृषकों को किसी प्रकार से भूमि प्राप्त हो जाये तो भारत की भूमि समस्या का समाधान हो सकता है। उनके अनुमान से पांच करोड़ एकड़ जमीन भारत से भूमिहीनता को मिटाने के लिए आवश्यक थी जो कि कुल काश्तकारी जमीन का छठा हिस्सा था। उन्होंने गांव-गांव में घूम कर भूमि का दान मांगा और भूदान आन्दोलन का सूत्रपात किया। वहां से वे पुनः पवनार आश्रम आये, तीन महीने बाद उन्होंने दिल्ली की ओर प्रयाण किया और 62 दिन की पवनार से दिल्ली की यात्रा में उन्हें 19 हजार 436 एकड़ भूमि दान में मिली। इसके बाद उन्होंने उत्तर प्रदेश की पदयात्रा की और वहाँ उनको 2,95,018 एकड़ भूमि प्राप्त हुई। बिहार में उन्हें 839 दिन की यात्रा में 22,32,474 एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त हुई। बिहार के लिए उन्होंने यह दिखा दिया कि अहिंसा की शक्ति से भूमि समस्या का निराकरण कैसे किया जा सकता है। इसके बाद विनोबा ने उड़ीसा की 249 दिन की पदयात्रा में 2,57,277 एकड़ भूमि, आन्ध्र प्रदेश की 224 दिन की पदयात्रा में 50,754 एकड़ भूमि, तमिलनाडु में 341 दिन की पदयात्रा में 47,092 एकड़ भूमि केरल की 138 दिन की पदयात्रा में 1,571 एकड़ भूमि तथा कर्नाटक की 212 दिन की पदयात्रा में 1,109 एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त की। विनोबाजी ने सर्वोदय कार्यकर्ताओं को 8 मार्च 1953 को चान्डिल्य में सम्बोधित करते हुए कहा, ''हमारा उद्देश्य केवल भूदान प्राप्ति ही नहीं है। हमें स्वतंत्र लोकशक्ति का निर्माण करना है, जो हिंसक शक्ति के विरोधी और दंड शक्ति से भिन्न होगी। इस अहिंसक लोकशक्ति से देश की विभिन्न समस्यायें आसानी से हल की जा सकेंगी।''

विनोबा जी के भूदान आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ कि जयप्रकाश नारायण ने इस अहिंसक क्रांति के लिए लगभग 600 कार्यकर्ताओं के साथ जीवन दान का व्रत लिया। जमीन के दाम गिरने लगे। जमींदार स्वयं विनोबाजी के पास आते और हाथ जोड़कर भूमि का छठा हिस्सा स्वीकार करने का आग्रह करते। किन्तु बिहार में इसकी एक प्रतिक्रिया यह हुई कि अनेक बड़े जमीन्दार घबरा गये। कांग्रेस तथा उसके समर्थक राजनीतिक क्षेत्रों में खलबली मच गई। जमीन हाथ से जाती देखकर कई कांग्रेसी झल्ला उठे और उन्होंने किसी तरह से विनोबा जी को बिहार से विदा किया। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि बिहार के जमींदार तथा बिहार की कांग्रेसी सरकार ने बिहार के भूदान आन्दोलन को जर्जरित कर दिया और भूमिहीनों की समस्या वैसे की वैसी बनी रह गई।

भूदान आन्दोलन शनैः शनैः शिथिल होता गया। उनकी पदयात्रायें दिखावा रह गई। बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी तथा मंत्री उनकी पदयात्रा की अगवानी करते और स्वागत के लिए तैयार रहते लेकिन विनोबा जी के साथ फोटो खिंचाते ही फिर गायब हो जाते। उन लोगों का भूमि समस्या को हल करने में अथवा राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने में कोई योगदान नहीं था। वे केवल स्वार्थवश विनोबाजी के साथ हो जाते थे। भूदान के बाद विनोबा जी ने ग्रामदान की योजना प्रारम्भ की। उन्हें पहला ग्रामदान 23 मई 1951 को उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले के मंगरात गांव में प्राप्त हुआ जहाँ सभी भूमिवालों ने अपनी जमीन विनोबाजी को दान कर दी। विनोबाजी ने ग्रामदान की 4 शर्तें रखीं थी : (1) गांव के सब वयस्क निवासी, स्त्री हों अथवा पुरुष, मिलकर ग्रामसभा बनायें। (2) गांव के सब भूमिवान अपनी-अपनी जमीन का स्वामित्व ग्रामसभा को सौंप दें। (3) गांव के सब भूमिवान अपनी जमीन का बीसवां हिस्सा ग्रामसभा को दान कर दें ताकि वह भूमिहीनों को दिया जा सके। (4) गांव में ग्राम कोष खोला जाये जिसमें भूमिवान लोग अपनी जमीन में होने वाली पैदावार का चालींसवा हिस्सा जमा करें और मजदूरी करनेवाले या वेतन पाने वाले लोग प्रतिमाह एक दिन की मजदूरी या वेतन जमा करें।

विनोबा ही ग्रामदान के माध्यम से प्रत्येक गांव को एक परिवार जैसी सूरत देना चाहते थे। परिवार के सदस्य जिस प्रकार मिल-जुलकर आपसी सलाह से काम करते हैं उसी तरह गांव के सारे विवाद ग्रामसभा के द्वारा तय करें, उन्हें कोर्ट अथवा पुलिस थाने में जाने की आवश्यकता नहीं रहे। सारे झगड़े ग्रामसभा में निपटाये जायें। इसी तरह प्रत्येक गांव में ग्राम भंडार की स्थापना की जाय। गांव की सफाई, सिंचाई, शिक्षा, सुरक्षा, चिकित्सा, पशुपालन आदि ग्रामसभा की देख-रेख में हो। ग्रामसभा द्वारा इन कार्यों के लिए जमीन दी जाये तथा उद्योग धंधों की स्थापना करें। खेती की

व्यवस्था अलग-अलग होते हुए भी लगान ग्रामसभा द्वारा दिया जाये। विनोबा के अनुसार ग्राम स्वराज्य का आदर्श 'खेत गांव का, खेती किसान की' था। किन्तु विनोबाजी का यह कार्यक्रम अधिक सफल नहीं हुआ। विनोबाजी ने ग्रामदान के पश्चात् प्रखण्डदान मांगा और उसके बाद जिलादान की मांग की। बिहार में दरभंगा पहला जिला था जिसका जिलादान हुआ। एक-एक करके सभी जिलों का दान हो गया और पूरा बिहार ही दान में आ गया। लेकिन इससे भूमिहीनों की समस्या नहीं सुलझी और यह केवल दिखावे का ही आन्दोलन रहा। विनोबा ने सरकार की सामुदायिक योजना और ग्रामदान योजना के बीच घनिष्ठ सहयोग की मांग की और यह सहयोग कुछ अर्से तक प्राप्त भी हुआ लेकिन सामुदायिक विकास के अधिकारियों द्वारा मिलने वाला सहयोग जनता में भ्रांति फैलाने में सहायक हुआ। जनता यह समझने लगी कि शायद भूदान तथा ग्रामदान का कार्य सरकारी है। सामुदायिक विकास का काम ढीला पड़ने के कारण ही भूदान काम भी शिथिल होने लगा। इसके लिए भूदान आन्दोलन के अन्तर्निहित दोष काफी हद तक उत्तरदायी है। पहला दोष यह था कि जमीन के बंटवारे में दानदाता का सहयोग नहीं लिया गया था। भूदान का सारा तंत्र ऐसा खड़ा किया गया था मानो भूदान वालों को भूमिवान के प्रति डर तथा अविश्वास है। इसका नतीजा यह हुआ कि भूदान करने वालों ने विशेष रुचि नहीं दिखाई। भूदान कार्यकर्ता भी अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग थे। अत: कुछ भूमि भूमिहीनों को मिली तो कुछ भूमि हड़प ली गई। स्वयं विनोबा ने बाद में यह स्वीकार किया कि भूमिवानों की सलाह न लेकर उन्होंने बड़ी गलती की थी। उनके अनुसार यह उनके पुण्य का अहंकार था कि वे न्याय की बात छोड़ गये लेकिन इस चेतावनी के बाद भी विनोबा ने भूमिवानों को भूमि वितरण के कार्य में सम्मिलित नहीं किया।

दूसरी त्रुटि विनोबा के आन्दोलन में यह रही कि कार्यकर्ताओं के मामले में हुए खर्चे का ठीक से हिसाब नहीं रखा गया। भूदान आन्दोलन को गांधी स्मारक निधि से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी चूंकि विनोबा ने यह आन्दोलन अखिल भारत सर्व सेवा संघ के अन्तर्गत चलाया था। सर्व सेवा संघ के अधीन प्रान्तीय भूदान समितियां काम करती थीं जिसका लेखा-जोखा परीक्षकों को पंसद नहीं आया। कार्यकर्ताओं ने ठीक से हिसाब रखने में असमर्थता प्रकट की। उनका यह उत्तर था कि क्रांति के काम में लगे हुए लोग हिसाब-किताब ठीक से नहीं रख सकते। परिणाम यह हुआ कि गांधी स्मारक निधि ने विनोबाजी को शिकायत की और इससे आन्दोलन को आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गई। विनोबाजी तथा जयप्रकाश नारायण के अलावा और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था जो भूदान आन्दोलन के लिए निस्वार्थ भाव से अपना जीवन अर्पित करता। फिर भी भूदान आन्दोलन ने वह कार्य कर दिखाया जो सरकारी तंत्र नहीं कर सकता था। 1957 तक 40 लाख एकड़ से ज्यादा जमीन भूदान में प्राप्त हुई थी। यद्यपि 5 करोड़ के लक्ष्य की दृष्टि से चालीस दसवें हिस्से से भी कम था किन्तु इससे लाखों भूमिहीनों को जीवन का नवीन मार्ग प्राप्त हुआ। भूमिहीनों में भूदान आन्दोलन ने नवीन जीवन का संचार किया। अनेक समाज सेवी आगे आये और सर्वोदय कार्यकर्ताओं का निश्चित समुदाय जनता के समक्ष प्रस्तुत हुआ। विनोबाजी की अहिंसक क्रांति जैसे-जैसे ग्रामदान, जिलादान, संपत्तिदान की ओर आगे बढ़ी भूदान आन्दोलन कमजोर होता गया। यदि सर्वोदय आन्दोलन केवल भूदान तक ही सीमित रहता तो उसका लक्ष्य भी पूरा हो जाता और आन्दोलन को शिथिल नहीं होना पड़ता।

भूदान की असफलता आर्थिक विषमता, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या के लिए चुनौती थी। भूदान आन्दोलन के सम्बन्ध में जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में 18 अगस्त 1975 को यह अंकित किया, ''शायद विनोबाजी यह समझते थे और अब भी समझते हैं कि बिना किसी संघर्ष के, शांतिपूर्ण संघर्ष के बगैर भी राजनीतिक तंत्र में क्रमागत परिवर्तन लाया जा सकता है, लेकिन ग्राम स्वराज्य कार्य के वर्षों के अपने अनुभव से मेरा यह निश्चित मत बन गया है कि ग्राम स्वराज्य अपने में एक मूल्यवान राजनीतिक संगठन है बशर्ते कि वह काम करे और सिर्फ कागज पर न रहे। ग्राम स्वराज्य आंदोलन में क्रमागत राजनीतिक परिवर्तन लाने की कोई क्षमता नहीं थी। सैद्धांतिक दृष्टि से इस क्षमता का कोई कारण नहीं था...जिले लिए गए, फिर नमूना बनाने की दृष्टि से प्रखंड लिए गए, लेकिन सफलता नहीं मिली। भूदान से शुरू होकर और ग्रामदान में से होकर (आने वाले ग्राम स्वराज्य के लिए एक तरह का आधार समझे गये थे) बीस साल से ज्यादा लम्बे अरसे तक चलने के बाद ग्राम स्वराज्य आन्दोलन उस निष्फल हालत में पहुंच गया था जिसमें वह आज है।''[1] विनोबा भावे ने भूदान कार्यक्रम शुरू किया। भूदान कार्यक्रम में यह कहा गया कि यह आन्दोलन भूदान में प्राप्त भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों को बन्दोबस्त कर दिया जाय। बड़े भूस्वामियों से आग्रह किया गया कि अपनी जमीन का कुछ हिस्सा दान करें ताकि गरीब भूमिहीन मजदूरों को जीवन यापन के लिए कुछ जमीन मिल सके।

लेकिन सच्चाई यह है कि भूमिहीन गरीबों के दुखों की विनोबा भावे को चिन्ता कम थी, कम्युनिस्टों का भय ज्यादा था। देश में कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव से वे चिंतित थे। वे नहीं चाहते थे कि भूमि आन्दोलन के जरिये गरीब भूमिहीन कम्युनिस्टों के प्रभाव में आ जाये। विनोबा भावे ने स्वयं कहा कि कम्युनिस्ट धनी व्यक्तियों की कृति हैं। कम्युनिस्टों के खतरों से लड़ने में पुलिस बहुत मददगार नहीं हो सकती। इनको जड़ से उखाड़ फेंकने का एक ही रास्ता है–शान्तिपूर्ण तरीके से भूमि का वितरण।[2] जो भी हो, भूदान कार्यक्रम में एक अच्छी बात यह कही गई कि भूमि का वितरण किया जाय और भूमिहीन गरीब मजदूरों को जमीन दी जाय।

विनोबा भावे ने भूदान अभियान चलाने के लिए देश में सबसे उपयुक्त बिहार को माना। वे 14 सितम्बर, 1952 को बिहार आये। भूदान के अभियान के दौरान उन्होंने विभिन्न जिलों का दौरा किया। सुदूर गांवों में भी वे गये। बिहार में उनका भूदान अभियान 27 महीनों तक चला। वे 31 दिसम्बर, 1954 तक बिहार में रहे। बिहार की धरती को उन्होंने अहिंसा का नया प्रयोग करने के सर्वाधिक उपयुक्त माना। क्योंकि उन्हें मालूम था महात्मा बुद्ध ने इसी बिहार से अहिंसा का संदेश विश्व के अन्य देशों में फैलाया। लेकिन इस संदर्भ में वंद्योपाध्याय भूमि सुधार आयोग ने दुख के साथ लिखा है कि भूदान यज्ञ कमिटी और राज्य सरकार के राजस्व विभाग की अकुशलता के कारण ज्यादा कुछ हासिल नहीं किया जा सका।[3]

आयोग ने बिहार में भूमि सुधार के सभी पहलुओं– आर्थिक, सामजिक, न्यायिक आदि के संबंध में सभी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सरकारी अभिलेखों, सरकारी अधिकारियों, राजनीतिक दलों, संगठनों, बुद्धिजीवियों, शोध संस्थानों आदि का सहारा लिया। जमीनी हकीकत की जानकारी पाने के लिए आयोग ने 14 जिलों में 15 जन सुनवाइयां आयोजित की। इन जन सुनवाइयों में स्थानीय अधिकारियों, राजनीतिक नेता एवं कार्यकर्त्ताओं, जनसंगठनों के प्रतिनिधि और जमीन से जुड़े आम लोग शामिल हुए। आयोग ने सबकी बातें सुनी और उनके सुझावों को नोट किया। सभी तथ्यों और जानकारियों के आधार पर आयोग ने माना कि भूदान कार्यक्रम में बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी, षड्यंत्र, कानूनों का उल्लंघन, जमीन की हेरा-फेरी और जालसाजी की गई हैं। इन सब गलत धंधों में भूस्वामी, सरकारी अधिकारी, भूदान यज्ञ कमिटी और राज्य सरकार के राजस्व विभाग के अधिकारी शामिल हैं। इन सबों ने सांठगांठ करके भूदान के मूल उद्देश्य को ही रौंद डाला।

भूदान में मिली जमीन की देखभाल करने, उसके अभिलेख तैयार करने, उसका वितरण करने आदि कामों के लिए राज्यस्तर पर भूदान यज्ञ कमिटी का गठन किया गया था। प्रत्येक जिले में उसकी जिला इकाइयाँ भी गठित की गई। 1954 में भूदान कार्यक्रम को कानूनी मान्यता देने के लिए बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम पारित हुआ।[4]

भूदान यज्ञ कमिटी ने आयोग को जानकारी दी कि भूदान में कुल 6,48,476 एकड़ जमीन प्राप्त हुई। उनमें से 2,78,320 एकड़ जमीन वितरण के अयोग्य पायी गई। शेष में से 2,55,347 एकड़ भूमि 6,15,454 परिवारों के बीच वितरित की गई। 1,14,708 एकड़ भूमि वितरण के लिए शेष रह गई हैं, जो अभी तक वितरित नहीं की गई है।

इन आंकड़ों को देखकर आयोग आश्चर्यचकित हो गया। किसी को भी यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि जमीन का इतना बड़ा रकबा किस आधार पर वितरण के अयोग्य मान लिया गया। इसकी जानकारी न भूदान यज्ञ कमिटी को है और न ही राजस्व विभाग को। जमीन का चरित्र क्या है, यथा जंगल है, पहाड़ है, नदी, झील या जलकर, ऊसर है, खेती योग्य है, इसकी भी जानकारी कमिटी और राजस्व विभाग को नहीं है। कमिटी और राजस्व विभाग को यह भी जानकारी नहीं है कि उस जमीन पर किसका नियंत्रण और कब्जा है। ऐसी स्थिति में यह आसानी से समझा जा सकता है कि भूदान जमीन के इतने बड़े रकबे को वितरण के अयोग्य मानने के पीछे कोई अवश्य बड़ा घोटाला और षड्यंत्र है। भूदान यज्ञ कमिटी और राजस्व विभाग ने ऐसी जमीन की भौतिक जांच भी कभी नहीं करायी। उल्लेखनीय है कि यह जमीन भूदान में भूदान यज्ञ कमिटी को मिली। लेकिन उस जमीन पर न तो भूदान यज्ञ कमिटी का कब्जा और नियंत्रण है और न ही भूमिहीनों में उसका वितरण हुआ है। तो स्पष्ट है कि उस जमीन पर भूदानदाताओं या किन्हीं भू-माफियाओं का कब्जा और नियंत्रण है। दूसरी बात यह कि कुल जमीन जंगल, पहाड़, नदी-झील तो नहीं होगी। कुल जमीन उनमें से अवश्य ऐसी होगी जिसको विकसित करके खेती या बागवानी आदि के लायक बनाया जा सकता है। इन सब तथ्यों को नजरअंदाज करके 2,75,320 एकड़ जमीन वितरण के अयोग्य मान लिया जाय, यह न सिर्फ अनैतिक, लापरवाही या उपेक्षा कही जायेगी, बल्कि यह एक बड़ा षड्यंत्र है।[5]

इतना बड़ा षड्यंत्र किनको लाभ पहुंचाने के लिए रचा गया, यह विचारणीय है। यह तय है कि यह जमीन चाहे भू माफियाओं के कब्जे में हो या दान दाताओं के कब्जे में, उनका लाभ वे ही उठाते होंगे। अगर इस जमीन का वितरण होता तो उसका लाभ भूमिहीन लाभार्थियों को मिलता। वितरण न होने से भूमिहीन गरीब उस जमीन से मिलने वाले लाभ से वंचित हो गये। स्पष्ट है यह षड्यंत्र भू-माफियाओं या भूदान दाता भूस्वामियों को ही लाभ पहुंचाने और भूमिहीन गरीबों को उनको मिलने वाले लाभ से वंचित करने के उद्देश्य से रचा गया है।

यह भी हो सकता है कि भूस्वामी ने भूहदबंदी से फाजिल जमीन को चुराने के वास्ते अपनी जमीन को भूदान में दे दिया। लेकिन व्यवहार में उसने न तो भूदान में जमीन दी और न अधिशेष भूमि मानकर राजस्व विभाग को ही दी। दोनों ही हालत में भूमिहीन गरीबों को नुकसान और भूस्वामियों को लाभ मिला। क्योंकि जमीन अगर हदबंदी से फाजिल घोषित होती तो भी उस जमीन का वितरण भूमिहीनों में ही होती और उसका लाभ उन्हें मिलता। आश्चर्य की बात है कि भूदान की जमीन के इतने बड़े घोटाले पर आज तक राज्य की किसी भी सरकार का ध्यान नहीं गया। न तो पूर्ववर्ती सरकारों ने इस ओर ध्यान दिया और न ही वर्तमान सरकार ने। क्या यह संदेह पैदा नहीं करता कि इस बड़े घोटाले में सत्ता के ऊंचे पद पर रहने वाले राजनेताओं का हाथ भी हो सकता है?[6]

एक बात और, भूदान यज्ञ कमिटी के अनुसार अभी भी उसके पास 1,14,708 एकड़ भूदान की जमीन है। यह वितरण योग्य है, लेकिन वर्षों बाद भी अभी तक वितरित नहीं की जा सकी है। इस जमीन के वितरण में इतना विलंब का भी कोई कारण अवश्य होगा। इसी से जुड़ा दूसरा प्रश्न विचारणीय है कि फिलहाल इस जमीन पर किसका कब्जा और नियंत्रण है। इस जमीन का लाभ वर्षों से कौन उठा रहा है ? क्या भूदान यज्ञ कमिटी को उस जमीन से मिलने वाले लाभ का कोई हिस्सा मिलता है या नहीं? इस जमीन के नहीं बांटने से किसको लाभ से वंचित होना पड़ रहा है ? क्या भूस्वामियों को लाभ पहुंचाने और भूमिहीनों को लाभ से वंचित करने की नीयत से जमीन के वितरण में विलंब नहीं किया जा रहा है? इन प्रश्नों का सही-सही उत्तर भूदान यज्ञ कमिटी या राजस्व विभाग के किसी अधिकारी के पास नहीं है। ऐसी हालत में पाठक स्वयं इनका उत्तर ढूंढ़ लें।

2,55,347 एकड़ भूदान की जो जमीन वितरित की गई, उसमें भी आयोग को भारी घोटाला का पता चला है। यह जमीन भूदान यज्ञ कमिटी के अनुसार 3,15,454 परिवारों में वितरित की गई। इस वितरण में भी भारी घोटाला, बेईमानी और मनमानी की गई है। आयोग के रिपोर्ट के अनुसार वितरित जमीन का विवरण इस प्रकार है–निजी लाभार्थियों को 7.7542 एकड़ प्रति परिवार, आदवासियों को 6 एकड़ प्रति परिवार, अन्य पिछड़े वर्ग को 2 एकड़ प्रति परिवार जमीन दी गई। आश्चर्य के साथ आयोग ने नोट किया है कि 59 संस्थाओं को 11,130.9375 एकड़ जमीन वितरित की गई। ज्ञातव्य है कि भूदान की जमीन के वितरण के लिए लाभार्थियों की गई श्रेणियाँ बनायी गई हैं। इनमें एक है ''सार्वजनिक एवं अन्य''। आयोग ने कहा है कि यह वाक्यांश अस्पष्ट और भ्रामक है। सी वाक्यांश का लाभ उठाते हुए भूदान यज्ञ कमिटी ने 59 संस्थाओं को 11,130.9375 एकड़ जमीन दे दी। पता नहीं इस जमीन का इस्तेमाल उन संस्थाओं के विकास आदि के लिए किया जा रहा है या कुछ दबंग व्यक्ति संस्था के नाम पर जमीन लेकर उसे इस्तेमाल निजी हित के लिये कर रहे हैं। किसी भी ईमानदार सरकार के लिए यह जाँच का विषय है।

आयोग ने यह भी कहा है कि भूदान की जमीन के इस वितरण के बावजूद 15,000 एकड़ जमीन का औपचारिक वितरण अभी तक नहीं हुआ है।

बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम 1954 भी भूदान जमीन के वितरण के सवाल पर दोषपूर्ण है। जन सुनवाई के दौरान आयोग के सामने यह सवाल जोरदार ढंग से उठाया गया। जन सुनवाई में इस अधिनियम के अनुच्छेद 15 की उपधारा (3) को समाप्त करने की मांग की गई। यह धारा भूदान यज्ञ कमिटी को यह अधिकार देती है कि वह भूदान की जमीन को किसी भी व्यक्ति को दे सकता है। भूमिहीनों को देना अनिवार्य नहीं है। अधिनियम का यह प्रावधान उसी अधिनियम के बुनियादी उद्देश्य को समाप्त कर देता है। अधिनियम की प्रास्तावना में कहा गया है कि इस तरह की जमीन (भूदान जमीन) भूमिहीन व्यक्ति या गांव समुदाय, ग्राम पंचायत या सहयोग समिति, जो भूदान यज्ञ कमिटी द्वारा संगठित की गई हो को बन्दोबस्त की जायेगी। इस तरह देखा जाय तो उपधारा (3) अधिनियम के मूल उद्देश्य के विपरीत है। आयोग ने कहा है कि ड्यूटी कलक्टर को अनुच्छेद 21 के तहत मिले अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए उस जमीन से अवांछित व्यक्ति को हटा देना चाहिए।[7]

आयोग ने भूदान की जमीन के बारे में एक अन्य समस्या को नोट किया है। वह है कि भूदान की जमीन के बारे में राजस्व विभाग और भूदान यज्ञ कमिटी के अभिलेख में दर्ज आंकड़ों में एकरूपता नहीं है। राजस्व विभाग के आंकड़ों के अनुसार 1,11,000 एकड़ भूमि की पुष्टि नहीं हुई है। लेकिन कमिटी के आंकड़ों के अनुसार असत्यापित भूमि के कोई भरोसेमंद आंकड़े नहीं है। यह विसंगति स्थानीय विवाद और संकट का बहुत बड़ा स्रोत है।

संदर्भ

1. जयप्रकाश नारायण, प्रिजन डायरी, पृ. 131.
2. पॉलिटिक्स ऑफ लैंड रिफार्म इन इंडिया–डी. ठाकुर।
3. वही, पृ. 17।
4. वही, पृ. 18।
5. वही, पृ. 19।
6. वही, पृ. 20।
7. वही, पृ. 20।

भारत-श्रीलंका सम्बन्धः श्रीलंका की जातीय समस्या के विशेष परिप्रेक्ष्य में (1947-1996)

डॉ० हनुमान सहाय मण्डावरिया

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, स्वर्गीय पंडित नवल किशोर शर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जिला-दौसा, राज्य-राजस्थान (भारत)

दक्षिण एशिया क्षेत्र मे श्रीलंका की जातीय अनागत (वर्तमान) श्री न होकर बहुत ही पुरातन, गहन और दुष्कर तथा जटिल है। जब तक यहाँ पर ब्रिटेन का बोलबाला रहा तब तक इस समस्स्या ने कोई रंग नहीं पकड़ा इसके प्रयोजन के मूल मे यह बात है कि यहाँ के भी समुदाय एवं समूह एक ही मालिक के गुलाम थे और गुलामों में परपर बैर, वैमनय, विरोध और होड़ प्रायः नहीं होते।

श्रीलंका और मुख्यतः दो जातियों का निवास है-1. सिंहली, 2. तमिल। सिंहली श्रीलंका के पश्चिम-दक्षिण और तमिल उत्तरपूर्व में निवास करते हैं।

10 से 14 वीं शताब्दी तक श्रीलंका में इनकी अपनी कोई समस्या नहीं थी, किन्तु इस मस्या ने, अंग्रेजी शान के दौरान, क्रिश्चन, मिशनरी के श्रीलंका आने से जड़ पकड़ी क्योंकि इन्होंने अंग्रेजी भाषा का आविर्भाव किया। सिंहली एवं तमिलों में अंग्रेजी भाषा को सीखने के लिए प्रतिस्पर्द्धा का दौर प्रारम्भ हुआ। तमिल अल्पसंख्यक कड़ी मेहनत कर अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के हारे सिंहली बहुल्य के मुकाबले कहीं आगे बढ़ गए विदेशी सत्ता ने जब-जब श्रीलंका निवासियों को संवैध एवं सुविधाएँ दीं वे मया जातीय समूहों के लिए सामान्य थीं। ऊँचे पढ़ पाने की लालसा और अधिक उन्नति पाने की इच्छा के कारण वहाँ तमिल अल्पसंख्य कठोर परिश्रम करके सिंहली बहुल्य से सदैव आगे बढ़ने के प्रयास में लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे सरकारी और गैर ससरकारी दोनों ही क्षेत्रों में तमिल ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। सिंहली अपने बाहुल्य को रूप में सिद्ध नहीं कर पाए और तमिलों के प्रति ईर्श्या की भावना से ग्रसित होने लगे। यह भावना समय के अन्तराल में एक विशाल स्प-धारण करती गई और इन दोनों समुदायों में एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य बढ़ता गया।

यद्यपि अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी भाषा को क्रियान्वित करने का उनका ध्येय राष्ट्रीय एकता स्थापत करना था, किन्तु इसके दूरगामी परिणाम दुष्कर निकलेंगे वे इससे भिक्ष न थे।

19वीं शताब्दी में बौद्ध-धर्म का पुनर्स्थान हुआ। बौद्ध धर्म की स्थापना हेतु सिंहलियों ने कोण्डी में विद्रोह किया। श्रीलंका के राजनीतिक इतिहास में किया गया यह विद्रोह अत्यधिक महत्व रखता है। इस विद्रोह के उपरान्त सिंहलीज के पार्टियों के गठन का सिलसिला जारी हुआ। 1853 में सैवा प्रगासा सभा का गठन किया गया। 1862 में Society of the propergation of Budism एवं सेवा परिपाला सभा का गठन हुआ। 1872 में तमिलों ने इन सिंहलीज पार्टियों के प्रत्युत्तर में जाकना हिन्दू कालेज की स्थापना की। इस प्रकार दोनों में वैमनस्यता की खाई चौड़ी होती चली गई।

सिंहलीज का तमिलों के प्रति वैमनस्यता के कारणः

सिंहली आतंकवाद यद्यपि श्रीलंका की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियो की उपज है, किन्तु इसके सवर्धन में बाहरी परिस्थितियाँ भी कुछ कम उत्तरदायी नहीं है। ये निम्न दृश्य है-

1. आर्थिक कारणः

श्रीलंका आर्थिक दृष्टि से एक कृषि प्रधान देश है। यह भावल खाद्यान्न के साथ-साथ रबर एवं नारियल के निर्यात पर भी आधारित है। 1950 तक श्रीलंका मे आयात निर्यात का संतुलन ठीक था, किन्तु 1960 के दशक मे इसकी अर्थव्यवस्था को धक्का लगा, जिससे दैनिक जीवन की वस्तुओं के भावभीव आसमान छूने लगे। सरकार इस पर नियन्त्रण पाने में असफल रही, जिससे राष्ट्र में असंतोष की धारा बह पड़ी। असंतोष की इस धारा से राष्ट्र का युवा वर्ग कैसे अछूता रह कता था। अतः इसी असंतोष के परिणाम स्वरूप जनता विमुक्ति पैरामुना नामक राजनीतिक संगठन का उदय हुआ।

2. बेरोजगारीः

जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है कि तमिलों ने कठिन परिश्रम कर अंग्रेजी भाषा के सहारे सरकारी एवं गैर सरकारी पढ़ो पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया, जिसेस सिंहलीय बेरोजगारी की पंक्ति में आकर खड़े होने लगे। इ समस्या में दिन-दूनी-चौगुनी बृद्धि हो रही थी। इससे असंतुष्ट होकर सिंहलीय ने क्रांतिकारी आन्दोलन के मार्ग को अपनाया।

3. भाषायी कारणः

सिंहलीज एवं तमिल दोनों समुदाय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अपनी-अपनी भाषा को राष्ट्रीय भाषा क्रियान्वित करने के मुद्दे को

लकर आमने-सामने आदि। जिससे राजनीतिक परिवेश में विशुद्ध पर्यावरण का प्रवेश हो गया।

4. अति राष्ट्रीय की भावना:

सिंहलीज एवं तमिल दोनों ही श्रीलंका पर अपना पृथक-पृथक दावा करते हैं। सिंहलीय श्रीलंका को उन्हें गौतम बुद्ध द्वारा प्रदत्त मानते हैं तो दूसरी तरफ तमिलों का दावा है कि श्रीलंका में उनका सर्वप्रथम प्रवेश हुआ अत: इस प्रकार दोनों समुदाय इसे अपना-अपना दावा कर अपना बताते हैं।

तमिल आतंकवाद के कारण:

श्रीलंका को बहुसंख्यक समाज में अल्पसंख्या वर्ग विशेष रूप से तमिल समुदाय सदैव आशंकित रहा है। ये दोनों ही समाज आपसी वैमनस्यता की दीवार के अगल-बगल में खड़े हुए है। जातीयता के नाम पर इन दोनों समुदायों में तनाव बढ़ता जा रहा है। प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सिंह के बढ़ते राजनीतिक वर्चस्व ने तमिल एवं अन्य अल्पसंख्यक समुदायों में असुरक्षा व संकट की भावना को जन्म दिया है। जिसके परिणामस्वरूप तमिल समुदाय ने आतंकवाद को अपने लक्ष्यों को प्राप्ति का साधन बना लिया है। किन्तु यह स्थिति भी तमिल समुदाय को संगठित नहीं कर पाई। उत्पत्ति एवं संस्कृति के आधार पर अभी भी तमिल समुदाय दो प्रमुख समूहों में विभक्त है-

1. श्रीलंका के तमिल

ये वे तमिल हैं जो श्रीलंका मे अति विगत काल से निवास कर रहे हैं। ये स्वयं को श्रीलंका को अभिन्न अंग मानते है तथा वे यहाँ के नागरिक हैं।

भारतीय तमिल

भारतीय तमिल वे हैं जिन्हें 19वीं शताब्दी में, अंग्रेजों द्वारा चाय बागानों में कार्य करने हेतु, भारत से (दक्षिण भारत) श्रीमिकों के रूप मे ले जाया गया था। ये लोग समय के अन्तराल में श्रीलंका के ही निवासी बनकर रह गए।

1948 मे श्रीलंका की स्वतन्त्रता के पश्चात सिंहलीज ने अपने बहुसंख्यक होने का लाभ उठाते हुए उन्होंने अल्पसंख्यक तमिलो को दबाना प्रारम्भ कर दिया तथा उन्हें द्वितीय श्रेणी के नागरिक बनाकर रख दिया। इसमें उत्तेजित होकर तमिलों ने आतंकवाद का मार्ग अपना लिया जिसके मूल में निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं।

1. भाषायी कारण:

श्रीलंका में सिंहला भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्रदान कर तमिल भाषा को द्वितीय श्रेणी की भाषा बनाकर रख दिया गया। 1965 में भण्डारनायकों ने केवल सिहला एक्ट पास कर इसे राष्ट्रीय भाषा के रूप में क्रियान्वित किया गया। जो सरकारी एवं गैर सरकारी कर्मचारी सिंहला भाषा का ज्ञान नहीं रखते थे, उन्हें तीन वर्ष का समय दिया गया। तीन वर्ष की अवधि के दौरान सिंहला नहीं सीखने वाले कर्मचारियों को पदयुक्ति का आदेश दिया गया। तमिलों के लिए इसके परिणामस्वरूप समस्याएँ उत्पन्न हुई। इससका सीधा प्रभाव तमिल की शिक्षा एवं रोजगार पर पड़ा क्योंकि तमिल सिवाय तमिलभाषा एवं अंग्रेजी भाषा के अन्य भाषा का ज्ञान नहीं रखते थे। इससे सिंहली नहीं जानने वाले का जीवन दुष्वार हो गया।

2. आर्थिक, सामाजिक कारण:

सांस्कृतिक जड़ों की अपेक्षा अर्थव्यवस्था जातीय विवादों का अधिक कारण होती है। ब्रिटिश काल से ही तमिलों ने जाकना को अपना व्यवसाय का एक महत्पूर्ण स्थान बना रखा था। तमिलों ने शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति कर सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरियों पर अपना अधिकार कर लिया। इससे प्रवासी तमिल एवं सिंहलीज अभिबन वर्ग के स्थानों मे उभरकर सामने आये। सिंहलीज तमिलों के इन विशेषाधिकारों को असंतुष्ट थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सिंहलीज ने राष्ट्रीय अवसरों को जातीय अनुपात के अनुसार विभाजित करने के सिद्धांत को विकसित किया। सिंहलीज ने तमिलों के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए दो विवादास्पद तरीको का संबल लिया।

1. द सिंहला एक्ट
2. स्तीरकरण

तमिल छात्रों को आरक्षण प्रणाली के द्वारा विश्विद्यालयों में प्रवेश से वंचित कर दिया गया इससे तमिल छात्रों की संख्या विश्वविद्यालय में कम हो गई।

सिंहला एक्ट के तहत केवल सिंहला भाषा बनने वाले तमिलों को ही सरकारी नौकरियों में प्रवेश दिया गया, जिससे सरकारी कार्यालयों में भी तमिलों की संख्या कम हो गई। श्रीलंका में तमिलों के अल्पसंख्या होने के कारण उनके पास राजनीतिक सत्तर भी नहीं थी।

इसके अतिरिक्त तमिल प्रान्तों पर सिंहलीज प्रान्तों की तुलना में बजट का बहुत कम हिस्सा व्यय किया जाने लगा। इससे तमिलों में सिंहलीज की इन नीतियों के प्रति आक्रोश ने जन्म लिया।

2. तमिल क्षेत्रों का उपनिवेशीकरण

सरकार द्वारा तमिल क्षेत्रों के उपनिवेशीकरण की नीति ने भी विभाजन को बढ़ावा दिया। सिंहलीज ने तमिलों के बहुल क्षेत्रों में

सिंहलीज को बसाया ताकि उनका हुमत समाप्त कर उनके प्रभाव को रोका जा सके। सिंहलीज की इस नीति को तमिल सहन नहीं कर सके।

राजनीतिक कारण:

श्रीलंका में तमिलों के अल्पसंख्यक होने के कारण वहाँ की सरकार उनके हित को कभी भी मान्यता नहीं दी, क्योंकि यदि कोई दल ऐसा करता है तो अगले चुनावों में उसे सत्ता से हाथ धोना पड़ता है। सत्ता प्राप्ति के लिए, सिंहलीज का समर्थन प्राप्त करने के लिए वहाँ के राजनीतिक दल तमिलों के हितों के साथ छेड़-छाड़ करते थे। तमिलों द्वारा सिर उठाने पर उन्हें कुचल दिया जाता था। सरकारी नौकरियों से उनको बाहर निकाल फेंका गया। इससे तमिलों में उग्र भावना पनपने लगी और उन्होंने स्वतन्त्रता तथा समानता के लिए आतंकवाद को अंगीकार कर लिया।

3. तमिलों द्वारा तमिल ईलम की मांग

श्रीलंका में सिंहला भाषा को राष्ट्रीय भाषा एवं बौद्ध धर्म को राष्ट्रीय धर्म घोषित किये जाने पर तमिलों ने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को विपत्ति में देखकर अलग राष्ट्र की मांग करने लगे। उनका तर्क है कि श्रीलंका में उनकी अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति इतिहास व क्षेत्र है अतरू उन्हें अलग राष्ट्र बनाने की अनुमति दी जाए। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तमिलों ने आतंकवादी संगठनों का निर्माण किया।

उपयुक्त कारणों से श्रीलंका जातीय ससमस्या के शिकंजे में फँसा, जिससे अभी तक बहार नहीं आ सका है। श्रीलंका की जातीय समस्या बहुत प्राचीन है और इसको हल करने के लिए प्रयास और उपाय अपेक्षाकृत नवीन है।

29 जुलाई 1987 को ऐसा ही एक प्रयास श्रीलंका और भारत ने मिलकर करने का प्रयास किया था जिसके तहत एक समझौता हुआ और श्रीलंका में शांति स्थापित करने के लिए भारत वर्ष ने सेना भी भेजी जो शांति सेना के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। प्रश्न यह है कि क्या श्रीलंका में यह समस्या इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि वहां की सेना और सरकार उस पर काबू पाने में असमर्थ थी? अथवा वहां की जातीय समस्या को देश की आंतरिक समस्या कहकर नकारा नहीं जा सकता था? एक तीसरा प्रश्न यह भी सामने आता है कि यदि भारत श्रीलंका के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता तो क्या वास्तव में भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती थी।

श्रीलंका की जातीय समस्या के इतिहास और उसकी पृष्ठभूमि में अनेक उदाहरण ऐसे हैं यदि तमिल अल्पसंख्यक को आरम्भ से ही सही दिशा में अनुशासित किया गया होता तो संभव है आज स्थिति इतनी जटिल न होती। प्रारम्भ में तमिल-सिंहला विवाद भाषा को लेकर चला तमिलों का मानना था कि तमिल भाषा का अधिकार अन्य सभी अधिकारों की आधारशिला है। यदि यह अधिकार नहीं मिला तो भविष्य में अन्य अधिकार मिलना कठिन है और सिंहली बहुल्य से समानता करना अंभव है, इसके विपरीत सिंहली यह सोचते थे कि राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक सामंजस्य प्राप्त करने के लिए पूरे राष्ट्र में एक ही भाषा में कार्य होना चाहिए। सिंहली बहुल्य का मत था कि यदि सिंहली और तमिल दोनों ही भाषाओं को कार्यालयों की भाषा मान लिया गया तो देश स्वत: ही दो गुटों एवं खण्डों में विभाजित हो जायेगा और दोनों ही समुदाय एक दूसरे की भाषा सीखने के प्रति उदासीन हो जाएंगे। इसी सोच से प्रभावित होकर 1956 में केवल सिंहली कानून पारित किया और 1972 के रिपब्लिक संविधान में उनको मान्यता दी गई, परन्तु 1978 के संविधान मे संशोधन करके तमिल भाषा को भी सिंहली भाषा के समान ही दर्जा दिया गया। इसके साथ एक मुद्दा यह जोड़ दिया गया कि सरकारी नौकरियों में भर्ती के लिए सिंहली भाषा का ज्ञान अनिवार्य है। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की नीति से तमिल स्कूलों पर प्रभाव पड़ा और तमिल अपना वर्चस्व धीरे-धीरे खोते गए विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी सिंहली भाषा नीतियां अपनाने के कारण तमिल अपनी जनसंख्या के नुपात में बहुत कम उन्नति कर कसे। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे अल्पसंख्या तमिल नहीं सिंहली है। यही स्थिति रोजगार के क्षेत्र में भी दिखाई देने लगी। यही नहीं जहां तमिल जनसंख्या बहुमत मे थी उन स्थानों पर सरकारी रूप से सिंहली जनता को बसाया गया, जिसे तमिलों का बाहुल्य समाप्त किया जा सके।

भाषा की नीति, शिक्षा की नीति सरकारी बस्तियाँ बसाने की नीति से भी एक और भयावक नीति को प्रारूप दिया गया वह थी आर्थिक नीति। आर्थिक नीति के अन्तर्गत तमिल बहुल्य क्षेत्र को राष्ट्रीय बजट में आर्थिक सहायता जनसंख्या की तुलना में बहुत कम दी गई। उदाहरण के रूप में जाकना जो कि तमिल बाहुल्य क्षेत्र है, इसकी तुलना में वे क्षेत्र जिनमे जनंख्या जाकना से कहीं कम है, उनको आर्थिक सहायता खुले हाथ से दी गई। वे क्षेत्र है-मताले बटुला, मोनेरगाला हुबानटोटा आदि अनेकों आर्थिक नीति से जुड़ी थी औद्योगिक नीति तथा कृषि नीति जिसमें सरकारी पूँजी-निवेश का झुकाव सिंहली बाहुल्य क्षेत्रों की ओर था। महावेली गंगा सिंचाई परियोजना तथा अन्य राष्ट्रीय सिंचाई योजनाओं का प्रारम्भ में यह ध्येय था कि सूखा क्षेत्र में फिर से जल वितरण करके खेती की जाए और देश में हरित क्रांति का आरम्भ हो। परन्तु यहाँ भी भेदभाव की नीति सामने आई। श्रीलंका के एक सेन्ट्रल बैंक के एक सर्वेक्षण से प्रतीत होता है कि महावेली गंगा परियोजना के अन्तर्गत सिंचित भूमि का क्षेत्रफल सिंहली बाहुल्य स्थानो मे सर्वाधिक है।

स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात श्रीलंका में सत्तर उस पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त उदारवादी अभिजात वर्ग के हाथ में आई, जिसके मस्तिष्क में समान्त देशवासी समान थे और उनमें भेदभाव करने का विचार असंभव था। परन्तु धीरे-धीरे उदारवादी विचारधारा का विरोध होता गया और सिंहली बुद्ध कट्टरपंथी वर्ग उभरकर सामने आने लगा। प्रारम्भ में देशवासियों ने एकात्मक सरकार को इसी कारण से अपनाया था कि राष्ट्र मे धर्म और भाषा के आधार पर बिखराव न आए, परन्तु जैसा कि प्रत्येक नवोदित राष्ट्र का इतिहास रहा है, कि देश के छोटे समुदायों में यह भावना उत्पन्न होती गई कि इनका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है यदि समय रहते उनके धर्म भाषा और हितो की रक्षा नहीं की गई अतरू भाषा का अधिकार प्राप्त करना तमिल अल्प संख्यकों का प्रयास बन गया। इसी के साथ इन्होंने संघीय सरकार प्रणाली की अपनी मांग रखी। इसके यही उद्देश्य रहा था कि जाकना प्रान्त तमिलों का क्षेत्र बन जाए। तमिलों की इन मांगों पर तब समय-समय पर तत्कालीन सरकारों ने विचार किया और प्रयत्न भी किए, परन्तु या तो प्रयत्न आधे-अधूरे थे या विचारों में कहीं कमी रही। नतीजा यह हुआ कि तमिलों की समस्या आज भी एक प्रश्न चिन्ह बनी हुई है। श्रीलका की तमिल जातीय समस्या के उदभव और विकास में भारत के दक्षिणी राज्य तमिलनाडू के भी एक सीमा तक हाथ को नकारा नहीं जा सकता।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के समय में ही सन 1963 मे इस राज्य में एक मांग उठी थी जिसमें भारत में तमिलों के लिए पृथक राज्य मांगा गया। भारतीय सविधान में तत्काल संशोधन किया गया जिसके तहत राजकीय कर्मचारी अथवा सत्तारूढ राजनेताओं का पृथक तमिल राज्य की मांग करना अथवा समर्थन कना भी अवैध करार दिया गया परनतु इस माग का अर भारत के पडौसी देश श्रीलंका पर बहुत गहरा हुआ। इके बाद तो एक के बाद एक हर घटनाक्रम ऐसा बनता चला गया कि भारत, श्रीलंका की जातीय समस्या में न चाहते हुए भी इस प्रकार से उलभ गया कि निकलने के लिए कोई रास्ता ही नहीं दिखा। जिस समय डी.एम.के. की सरकार करूणानिधि के नेतृत्व में सत्तारूढ थी, सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत और श्रीलंका के जाफना प्रान्त में अच्छा सामजस्य था। श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में गुट निरपेक्ष देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक श्रीमती भण्डारनायके एवं श्रीमती इन्दिरा गांधी के सफल नेतृत्व में हुई। इन दो प्रधानमंत्रियों के समय में भारत-श्रीलंका के सम्बन्ध कम कटु रहे। परन्तु शीघ्र ही दोनों देशों में सत्ता पलटी और जपवर्धने एवं मोरारजी देाई सत्तारूढ हुए। जपवर्धने की सरकार में तमल पार्टी तुल्फ विरोधी पार्टी के रूप में उभरकर सामने आई, जिसके चुनाव घोषणा पत्र में यह मांग थी कि वह तमिलों के लिए अपना पृथक घर बनायेगी। श्रीलंका में वैसे से शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी बहुत अधिक मात्रा में है, अतः वे शिक्षित युवा जो बेरोजगारी से हताश हो चुके थे, तमिल राजनीति के इसस पक्ष के सहयोगी नेताओं की राजनीतिक गतिविधियों में उनका हाथ बंटाने लगे। इस प्रकार युवा वर्ग के प्रवेश` हिंसा की राजनीति को बढ़वा मिला और इस वर्ग का दबा हुआ आक्रोश अपने पूर्ण रूप से विकराल रूपधारण करके सामने आया कई छोटे राजनीतिक संगठन लिट्टे, टेलो, इरोज तथा ई.जी.आर.एल.एफ. बने जिनमें से अब अन्त में लिट्टे रह गया जो कि प्रशासन के लिए अभी तक एक समस्या बना हुआ है।

1983 का वर्ष श्रीलंका के लिए बहुत सी समस्याएं लाया, जिसमें सबसे कठिन समस्या थी जातीय समाया। श्रीलंका के राष्ट्रीय सुरक्षामंत्री ललित अथुलाधमुद ली भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी से यह कहने के लिए आए कि भारत श्रीलंका के तमिलों को हथियार और प्रशिक्षण देता है। इस कथन का भारत ने पूरे जोर से खंडन किया। इस समय भारत की अपनी इतनी आंतरिक समस्स्याए थी कि शांति बनाए रखने के लिए पूरी ताकत लगानी पड़ रही थी। जम्मू-कश्मीर, पंजाब, असम, आन्ध्रप्रदेश एवं तमिलनाडू प्रान्तों में अशांति फैली हुई थी, उस पर मद्रास हवाई अड्डे पर श्रीलंका के वायुयान में रखे बम विस्फोट से 24 श्रीलंका के तथा 16 भारत के नागरिक मारे गए। दोनों देशों के पहले ही से बिगड़े सम्बन्ध और भी बिगड़ गए। श्रीमती गांधी की हत्या के बाद भारतीय प्रशासन की बागडोर राजीव गांधी ने संभाली और एक फिर श्रीलंका के राष्ट्रीय सुरक्षामन्त्री ललित अथुलाथमुदली भारत आए कारण यह था कि श्रीलंका में तमिल गुटों द्वारा हिंसा इतनी बढ़ गई थी कि मद्रास से दी जाने वाली सहायता बन्द करवाना नितांत आवश्यक हो गया था।

श्रीलंका सरकार ने जाफना प्रानत जाने वाले सारे रास्ते बन्द कर दिए थे और आर्थिक बन्द जारी कर दिया इस प्रकरण की सीधा प्रभाव मद्रास में हुआ और वहां के दबाब में आकर भारत की श्रीलंका की अंदरूनी समस्या में हसतक्षेप करना पड़ा। भारत ने वायुयान द्वारा जाफना प्रान्त में भोजन सामग्री एवं दवाईयाँ डाली। लगभग यही समय था जबकि श्रीलंका के दक्षिण में जनता विमुक्ति पेरामुना भी सक्रिय था और दोनों दिशाओं में शांति स्थापित करना श्रीलका की सेना के लिए असंभव था और शायद यही एकमात्र कारण रहा हो कि श्रीलंका ने भारत द्वारा समझौते की पहल पर अपनी सहमति प्रकट की है। श्रीलंका की सेना और संख्या इतनी नहीं थी कि इतनी हिंसक घटनाओं का सामना कर सकें और देश में शांति और सौहार्द्ध का वातावरण बना सके। यद्यपि भारतीय शांति सेना शांति स्थापित करने के उद्देश्य में सफल नहीं हो पाई, परन्तु कुछेक कार्य उसके दक्ष नेतृत्व में वहां सम्पन्न हुए। उदाहरण के रूप में प्रान्तीय परिषदों का गठन, चुनाव और

सरकार का गठन। यह बात दूसरी है कि अंग्रेजों के समय में ही प्रान्तीय परिषदों के गठन पर निर्णय लिया जा चुका था, परन्तु उसका पालन नहीं हुआ।

भारती के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने से समझौते पर हस्ताक्षर करवाने कोलम्बो गए। इसका श्रीलंका में खुलकर विरोध हुआ। किसी प्रकार की कोई अप्रिय घटना न हो इस आशंका से श्रीलंका में कर्फ्यू लगा दिया गया। इसी विरोध की सबसे गम्भीर घटना तब घटी जबकि श्रीलंका के एक नौसनिक ने सलामी लेते हुए राजीव गांधी पर अपनी बन्दूक के निचले हिस्से से घातक हमला किया और अंत में लिट्टे के कार्यकर्ता द्वारा राजीव गांधी की अपने ही देश में हत्या, तमिल उग्रवाद और हिंतक बदलों की भावना की पराकाष्ट का उदाहरण है।

हाल ही में अगस्त 1995 में सम्पन्न हुए श्रीलंका में चुनाव की भारत के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि चुनावों के दौरान श्रीलंका की किसी भी राजनीतिक पार्टी ने भारत विरोधी प्रचार का साहस लेकर चुनाव जीतने का प्रयास नहीं किया। 1977 से चले आ रहे यू.ने.पा. को 7 वर्ष के शासन का अन्त हुआ। चन्द्रिका भण्डारनायके परिवार की तीसरी दय है जो श्रीलंका की प्रधानमंत्री बनी है। चुनाव में सफलता प्राप्त करने के बाद 29 अगस्त को श्रीलंका प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के तुरन्त बाद चन्द्रिका भण्डारनायके कुमारतंगे ने घोषणा की कि उनकी सरकार तमिल ईलम टाइगर्स (एल.टी.टी.ई.) से बिना शर्त बातचीत आरम्भ करेगी। श्रीमती कुमारतंगे ने कहा कि पिछले 20 वर्षों में श्रीलका में आतंकवाद के कारण 30 हजार लांग मारे गए और उनकी सरकार की सबसे बड़ी प्राथमिकता है कि इस दोहराये का अन्त। उन्होंने यह माना कि तमिल ईलम के मुक्ति चीतों बातचीत एक टेडी खीर है और इसलिए उन्हें बडे एहतियात से काम लेना पडेगा। साथ ही श्रीमती चन्द्रिका ने तमिल मुक्ति चीतों को आश्वासन भी दिया कि उनकी सरकार श्रीलंका के तमिलों के साथ कोई भेदभाव नहीं बरतेगी और अल्पसंख्यकों के साथ उचित व्यवहार किया जावेगा।

यहां यह बता देना समिचीन होगा कि जनता एकता ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में कहा था कि यदि हम चुनाव जीते और हमारी सरकार बनी तो देश में 22 वर्ष से चल रहे गृहयुद्ध को समाप्त करने के लिए नए सिरे से प्रयत्न शुरू करेगी। तमिल देश के लिए संघर्षरत लिट्टे के साथ राजनीतिक समझौते के लिए बातचीत आरम्भ की जाएगी और उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्त की सीमाएं फिर से निर्धारित करने पर भी बात हो सकती है।

जनता एकता ने जानबूझकर इस मुद्दे को आगे रखा था क्योंकि राष्ट्रपति विजयतुंग ने तमिल समाचार को आतंककारियों की समस्या कहकर इसकी उपेक्षा की थी। यह संयोग ही था कि यूनेया के सत्ता में आने के बाद ही तमिल समस्या ने उग्ररूप धारण किया। तमिल विद्रोह का सामना करने पर सरकार को प्रतिदिन करीब सवा करोड़ रूपये खर्च करना पड़ रहा है जो राष्ट्रीय बजट के 20 प्रतिशत के बराबर है

शपथ ग्रहण के उपरान्त प्रधानमंत्री की हैसियत से अपनी पहली प्रेस कांफ्रेंस में श्रीमती चन्द्रिका ने कहा कि हमने अपना दोस्ती का हाथ स्वतंत्र देश के लिए संघर्ष करने वाले लिट्टे की ओर बढ़ाया है। हममें उम्मीद है कि वे बातचीत करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया में फिर शामिल होने को आगे आयेंगे। प्रधानमंत्री चन्द्रिका ने कहा कि दोस्ती को बढ़ा हमारा हाथ खाली नहीं है। पर इसमे क्या है मैं अभी इस ब्यौरे में जाना नहीं चाहती।

तमिल बांधों से समझौता करने के इरादे से ही जातीय मामला और राष्ट्रीय एकीकरण विभाग प्रधानमंत्री ने अपने पास रखा है।

लिट्टे द्वारा स्वागत

श्रीलंका की प्रधानमंत्री चन्द्रिका कुमारतुंगे की पहल का एल. टी.टी.ई. ने स्वागत किया। बी.बी.सी. को अपनी भेंट में एलटीटीई के लन्दन स्थित एंटोन राजा ने 22 अगस्त को कहा कि एलटीटीई ने चन्द्रिका कुमारतुंगे के साथ बिना शर्ता बातचीत करने के लिए तैयार है।

रीमती कुमारतंगे ने 22 दस्यी मंत्रिमण्डल मे जातीय समस्याओं और मामलों की देखभाल करने के लिए एक नये मन्त्रिमण्डल की स्थापना की। इसका अर्थ यह था कि वे एलटीटीई के साथ केवल बातचीत ही को तैया नहीं है, बल्कि वे यह नहीं जानती थी कि श्रीलंका में जातीय समस्याओं से उत्पन्न अनेक ऐसे मुद्दे हैं जिनके समाधान में सालों लगेंगे।

जनता उग्रवाद से दुखीः

श्रीलंका के इस चुनाव के जरिए वहां के मतदाताओं ने पहला संदेश यह दिया है कि उन्हें न तो तमिल उग्रवाद पसन्द है न न वे सिहंलीवाद का समर्थन करते हैं। उन्होंने उस पीपुल्स अलायन्स को भले ही मत न दिया हो, लेकिन इतना समर्थन तो दिया है कि वे अल्पसंख्यकों की पार्टियों के साथ मिलकर वह सरकार बना सकती है। श्रीलंका के चुनाव का यह भी संदेश है कि वहां के लोग सत्ता के लिए अल्पसंख्यकों से खेल करने वालों की नहीं बल्कि उनमें और उनमें समरसता लाने वाले लोगों की सरकार

चाहते हैं तमिल और मुसलमान अलायंस सिंहली लोगों के साथ मिलकर काम करेंगे तो वे देश को विभाजित नहीं बल्कि एक करेंगे। जिस सरकार में तमिल और मुसलमान शामिल होंगे तो उसके राज में अल्पसंख्यकों का दावा होगा कि वे संभवत: ज्यादा जिम्मेदार वर्ताव करेंगे। इसलिए यूनेपा ने चुनाव प्रचार के दौरान जो यह धुंआधार प्रचार किया था कि अलायंस अल्पसंख्यकों को देश बेच रहा है, सिंहली उग्रवाद के शेर पर चढ़कर सत्ता में बने रहने का केवल एक बहाना था। श्रीलंका के मतदाताओं ने इस कोशिश को विफल करके, उग्रवाद, आतंकवाद और अलगाववाद से त्रस्त देश को राहत ही दी है। अन्तिम संदेश यह है कि दूसरे लोकतन्त्र की तरह श्रीलंका के वोटर भी किसी एक पार्टी को अन्धाधुंध बहुमत देने को तैयार नहीं है। आजकल सभी लोकतांत्रिक देशों में यह प्रवृति देखी जा रही है।

इस आन्तरिक कलह से मुक्ति् पाने के लिए श्रीलंका की प्रधानमंत्री के प्रतिनिधियों एवं लिट्टे के प्रतिनिधियों के मध्य एक दो बार 1995 में वार्ता हुई किन्तु वार्ता का कोई सुखद परिणाम नहीं निकला और अन्त में प्रधानमंत्री चन्द्रिका ने जाफना प्रान्त को तमिलों से मुक्त कराने एवं उनके एफाएं के लिए सितम्बर 1995 में सैनिक अभियान चलाया। इस अभियान के दौरान लिट्टे हएवं सेना के मध्य भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें हजारों तमिलों ने अपने प्राणों की आहूति देकर भी अपने गढ जाफना को नहीं बचा पाये। इस संघर्ष में लिट्टे ने 12 से भी कम उम्र के बच्चों की संघर्ष में झोंक दिया। इतना ही नहीं लिट्टे संगठन की कर्णधार औरतों ने भी श्रीलंका की सेना का दांतों चने दबा दिया। वो बात अलग है अन्त में सेना जाफना पर अपना कब्जा करने में सफल हो गई।

जाफना प्रान्त से तमिलों ने पलायन कर श्रीलंका के पूर्वी भाग में लाखों की संख्या में ढेरा डाल लिया है। यद्यपि सेना द्वारा जाफना पर की गई फतेह से सिंहलियों ने भले ही गर्व का अनुभव किया हो, लेकिन इस समय उन्होंने यह विरमृत कर दिया था कि शत्रुता कभी बूढ़ी नहीं होती। केवल मात्र जाफना पर सरकार का नियन्त्रण हो जाने मात्र से समस्या का समाधान संभव नहीं है। इसका तात्पर्य यह कभी नहीं लगना चाहिए कि लिट्टे संगठन कमजोर हो चुका है या वह समाप्त हो चुका है जो सरकार लिट्टे संगठन के मुख्य कार्यकर्ता एवं इसके अध्यक्ष प्रभाकरण को पकड पाने में असमर्थ रही तो वह इस संगठन को समाप्त करने की शक्ति कहां से रखती है।

श्रीलंका की जातीय समस्या से श्रीलंका में आतंकवाद पहले केवल जाफना प्रानत तक सीमित था, किन्तु अब यह आग सम्पूर्ण श्रीलंका मे फैल चुकी है। इसका प्रमाण इसी से मिल जाता है कि लिट्टे ने फरवरी 1996 मे कोलम्बो की एक सरकारी इमारत को विस्फोट से उड़ाकर यह संदेश दे दिया है कि हम में अभी भी दमखम बाकी है और अपने अधिकारों के लिए मरणापरान्त तक लडेंगे। इस विस्फोट में कम से कम 70 लोगों की जानें गई और आर्थिक नुकसान हुआ। श्रीलंका की जातीय समस्या से उत्पन्न आतंकवाद विश्व अपिरचित नहीं है। अभी हाल ही में सम्पन्न हो रहे क्रिकेट विश्वकप 1996 में आस्ट्रेलिया एवं वेस्टइण्डीज की टीमों ने इस समस्या से उत्पन्न आतंकवाद एवं हिंसा से भयभीत होकर वहां अपने मैच नहीं खेलने का निर्णय लिया है।

निष्कर्ष:

श्रीलंका की प्रधानमंत्री चन्द्रिका कुमारतुंगे ने श्रीलंका की इस जातीय समस्या के समाधान के लिए जो मार्ग अपनाया है वह उचित प्रतीत नहीं होता। किसी भी समस्या का समाधान हिंसा के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। यद्यपि प्रारम्भ में उन्होंने वार्ताओं का जो दौर चलाया था वह सन्मार्ग की ओर ले जाने वाला पथ था।

इस समस्या का एक ही समाधान हो सकता है कि तमिलों के द्वितीय श्रेणी के दर्जे को समाप्त कर सिंहलीज के बराबर का दर्जा प्रदान किया जाए एवं उन्हें सरकारी नौकरियों तथा संसद में बिना-किसी भेदभाव एवं रोक-टोक के आने दिया जाए।

श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती चन्द्रिका कुमार तुंगे ने जाफना प्रान्त से तमिलों का वर्चस्व समाप्त वहां सेना को तैनात तो कर दिया, किन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या तमिल समस्या का समाधान हो गया है? क्या शक्ति तमिलों की आवाज को दबाया जा सकता है? यदि श्रीलंका की प्रधानमंत्री कुमार तुंगे यह सोचती कि शक्ति केवल पर तमिलों को पांच वर्ष तक दबाया जा सकता है तो यह उसकी भूल है। जैसा कि अंग्रेजी में एक कहावत है हिंसा से हिंसा नहीं दबती बल्कि उसका विकास होता है। हिंसा अनेक समस्याओं की जननी है। कुमारतुंगे ने तमिलों को कुछ सीमा तक दबाकर सिंहलीजों की प्रशंसा एवं समर्थन प्राप्त तो कर लिया हैं किन्तु उसे यह कभी भी विस्मृत नहीं करना है कि भविष्य में उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। लिबरेशन टाइगर आंव तमिल ईलम अब स्थिति में हो गया है, जैसे एक घायल शेर होता है। वह अब कब और कहां क्या कर बैठे? इसका अनुमान लगाना दुष्कर है।

6 फरवरी 1996 को कोलम्बो की एक सरकारी इमारत को एक विस्फोटक सामग्री से भरी लारी से उडाकर विश्व यह संदेश दे दिया है कि हम अपने अधिकार लेकर रहेंगें। चन्द्रिका कुमारतुंगे को श्रीलंका के मतदाताओं ने इस समस्या के आवश्वासन पर ही समर्थन दिया था। श्रीलंका की जनता आतंकवाद से अब पूर्णत: उकता चुकी है। वे अब इसस समस्या का अन्त चाहती है। कुमारतुंगे ने अगस्त 1995 में अपने चुनाव घोषणा पत्र में इस समस्या के समाधान को प्रमुखता दी थी, जिसे युनेया सिंहलीज का समर्थन प्राप्त करने के लिए इसका दुष्प्रचार कर रही थी।

चन्द्रिका कुमारतुंगे ने हिंसा का मार्ग अपनाकर इस समस्या को और अधिक उलझा दिया है। कुमारतुंगे उस स्थिति में भी नहीं है कि संविधान में संशोधन कर तमिलों को सिंहलीज के बरबार अधिकार दे सके, क्योंकि उनके पास केवल एक का बहुमत है। 225 सदस्यों वाली संसद में उन्हें 113 सीटें प्राप्त हैं। अतः उसे युद्ध का मार्ग त्यागकर वार्ता का माध्यम अपनाना चाहिए अन्यथा उसका इतिहास में शिवाय हिंसा के और कुछ भी नहीं रहेगा।

यदि इस समस्या का अन्त पृथक तमिल घर बनाने से माना जाएगा तो श्रीलंका में शांति कभी भी आने की संभावना नहीं है। कारण यह है कि पड़ौसी देश भारत इसकी कभी क्रियान्विति नहीं होने देगा। स्पष्ट है कि दक्षिण में तमिल बाहुल्य राज्य के चले किसी भी पार्टी की सरकार भारत में इस बात का सदैव विरोध करेगी। भारत-श्रीलंका सम्बन्ध भी भविष्य में इसी आधार पर मधुर या कटु बनते या बिगड़ते रहेंगे।

सुझाव पुस्तकें

1. मेलोन, डेविड एम., सी. राजा मोहन, और श्रीनाथ राघवन, एड। द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ इंडियन फॉरेन पॉलिसी (2015) अंश पीपी 412-423।
2. ओश्बैलेंस, एडगर (1989)। साइनाइड युद्धः श्रीलंका में तमिल विद्रोह, 1973-88 । डलेस, वर्जीनिया : ब्रासी। आईएसबीएन 978-0-08-036695-1.
3. रुमली, डेनिस (2009)। हिंद महासागर में मत्स्य शोषणः खतरे और अवसर । सिंगापुर : दक्षिणपूर्व एशियाई अध्ययन संस्थान। पी। 166.
4. Bandarage, Asoka. The Separitist Conflict in Sri Lanka. New York, Bloomington: iUniverse, 2009.
5. De Voorde, C.V. "Sri Lanka Terrorism: Assessing and Responding to the Threat of the Liberation Tigers of Tamil Elam." Political Pratice and Research: An International Journal 6, no. 2 (2005): 181-99.
6. Dixit J.N. (2006) Indian involvement in Sri Lanka and the Indo-Sri Lanka agreement of 1987: A retrospective evaluation, In Rupesinghe, K. (2006) ibid., pp 25-42
7. Gunerathna, R. Sri Lanka's Ethnic Crisis and National Security. Colombo: South Asian Network on Conflict Research, 1998.

आचार्य नरेन्द्र देव और स्वाधीनता संग्राम

आद्या शंकर यादव

नेट जेआरएफ

सितम्बर, सन् 1939 में विश्वयुद्ध शुरू होते ही नरेन्द्र देव जी ने माँग की कि इंगलिस्तान हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता घोषित करें वरना हिन्दुस्तान युद्ध की परिस्थिति लाभ उठायेगा। कांग्रेस ने भी माँग की कि ब्रिटेन युद्ध के लक्ष्य को घोषित करे और हिन्दुस्तान की आजादी को स्वीकार करे। उसका निश्चित मत था कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान ही इस आश्वासन पर कि फासिस्टवाद और नाजीवाद के साथ साथ साम्राज्यशाही का भी अंत होगा, इस विश्वयुद्ध में ब्रिटेन का साथ दे सकता है। पर जब सरकार ने कांग्रेस की बात नहीं मानी तब कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। मन्त्रिमण्डलों से अलग होने से पहले, उन प्रान्तों की विधान सभाओं ने जहाँ कांग्रेस दल का बहुमत था इस बात पर खेद प्रकट किया कि शब्रिटेन और जर्मनी के बीच में होने वाली लड़ाई में ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान को उसकी जनता की इच्छा को जाने बिना ही शामिल कर दिया है और उसने ऐसी कार्यवाही की है व ऐसे कानून जारी किये हैं जिनके कारण प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों में कमी होती है।श उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि श्वह भारत सरकार और उसके जरिय[1]

ब्रिटिश सरकार को सूचित करे कि वर्तमान युद्ध के कथित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने को मुसलमानों अल्पसंख्यक वर्गों के लिये प्रभावपूर्ण संरक्षणों के साथ जनतन्त्र के सिद्धान्तों को देश में लागू किया जाय, हिन्दुस्तान की नीति उसकी जनता द्वारा ही निश्चित की जाय जिसे अपना संविधान स्वयं बनाने का अधिकार होश और 'जहाँ तक तात्कालिक भविष्य में सम्भाव हो, इस सिद्धान्त को हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन में भी लागू किया जाय'।'[2]

असहयोग की घोषणा- 23 नवम्बर सन् 1931 को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने घोषित किया. कि 'कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों का पदत्याग असहयोग की नीति का पहला कदम है' और यह नीति 'उस समय तक बनी रहेगी जब तक सरकार अपनी नीति को बदल कर कांग्रेस की माँग को स्वीकार नहीं करती'। कार्यसमिति ने सविनय अवज्ञा की तैयारी पर भी जोर दिया और उसके लिये रचनात्मक कार्यक्रम को करना जरूरी बताया।[3]

22 दिसम्बर सन् 1939 को कांग्रेस की कार्यसमिति ने देश की जनता को आह्वान किया कि वह आगामी स्वतन्त्रता दिवस अर्थात् 26 जनवरी 1940 को शपथ लें कि 'जब तक पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, तब तक हम अहिंसात्मक तरीके पर अपनी आजादी की लड़ाई को जारी रखेंगे कांग्रेस के सिद्धान्तों और नीतियों का कड़ाई के साथ पालन करेंगे और भारत की स्वतन्त्रता के लिये जब कभी कांग्रेस हमें आह्वान करेगी हम उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।[4]

28 फरवरी सन् 1940 को कांग्रेस की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा घोषित किया कि पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कोई भी बात हिन्दुस्तान को मंजूर नहीं होगी, वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित सभा ही देश का संविधान तैयार करेगी और संसार के दूसरे राष्ट्रों भारत का सम्बन्ध निश्चित करेगी, तथा कांग्रेस उस समय सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देगी जब उसका संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त होगा और परिस्थिति उसके अनुकूल होगी। मार्च सन् 1940 को रामगढ़ में कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन ने इस घोषणा को पारित करते हुए गान्धीजी को संघर्ष प्रारम्भ करने का अधिकार दिया। विषय समिति में नरेन्द्र देव जी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी श्विरोध करने वाली पार्लियामेंटरी पार्टी नहीं है, बल्कि लड़ने वाली पार्टी है। जब कांग्रेस संग्राम की ओर बढ़ रही है तब एक स्वर से हम उसका समर्थन करते हैं।' उन्होंने यह भी कहा कि हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि 'जब तक कांग्रेस लड़ाई का आदेश नहीं देती तब तक देशव्यापी आन्दोलन नहीं होता और जब तक गान्धीजी तैयार नहीं होते, कांग्रेस का नेतृत्व आगे नहीं बढ़ता।"[5]

गान्धी जी का व्यक्तिगत सत्याग्रह और नरेन्द्र देव - गान्धी जी के इस निर्णय से वामपक्षीय शक्तियाँ पूरी तौर पर सहमत नहीं थीं। नरेन्द्र देव जी भी असन्तुष्ट थे। उनके विचार में भाषण की स्वतन्त्रता की बजाय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष शुरू करना चाहिए था। वे व्यक्तिगत सत्याग्रह की बजाय जन-सत्याग्रह के पक्ष में थे। पर अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने घोषित किया कि जिस रूप में भी कांग्रेसी और गान्धी जी आन्दोलन चलायेंगे उसमें वह और उनकी पार्टी के दूसरे सदस्य शामिल होंगे। गान्धीजी के आदेश पर नरेन्द्र देव जी ने संयुक्त प्रान्त में आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया और उसका सन्चालन करते हुए गिरफ्तार हुए तथा कई महीने लखनऊ, गोरखपुर और आगरा जेल में यातनाएँ सहीं। उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। वे इतने कमजोर और अशक्त हो गये कि उन्हें कुर्सी पर बैठ कर एक जगह से दूसरी जगह पर जाना पड़ता था। आगरा जेल में उनके शिष्य डॉक्टर वी० डी० केसकर भी उनके साथ थे। वे उनकी यथा सम्भव सेवा करते थे। उनके आदेश पर ही केसकर जी ने कई सत्याग्रहियों को फ्रान्सीसी भाषा सिखायी। उन्हीं के अनुरोध पर समाजवाद के सिद्धान्तों और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नीति-रीति

का अध्ययन-अध्यापन भी शुरू हुआ और सर्वजीत लाल आदि कई सत्याग्रहियों ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने का निश्चय किया। आगरा जेल में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त की वर्षगाँठ मनायी गयी। इस अवसर पर मैथिली शरण जी की प्रतिभा का विश्लेषण करते हुए उन्होंने राष्ट्रकवि के गुणों की व्याख्या करके कहा कि जिस तरह भूकम्प मापक यंत्र भूमि के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पन्दन को अंकित करता है, उसी तरह राष्ट्र कवि अपने काव्य में मानव की मधुर से मधुर भावनाओं तथा समाज के साधारण से साधारण आन्दोलन को चित्रित करता है। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का संचालन गान्धी जी के हाथ में था। काफी छानबीन के बाद गान्धी जी स्वयं सत्याग्रहियों का चुनाव करते थे। उन्होंने ही विनोवा भावे को सर्व प्रथम सत्याग्रही चुना था। प्रत्येक सत्याग्रही को अपने सत्याग्रह की सूचना स्वयं राज्य के अधिकारियों को देनी होती थी। उसे सत्याग्रह करते समय जनता में घोषित करना होता था कि युद्ध में सहायता न करना उसका दृढ़ विश्वास है। इस तरह बहुत ही शान्तिमय ढंग से गान्धी जी की देखरेख में उनके आदेश के अनुसार यह सत्याग्रह लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। इस आन्दोलन में लगभग 120000 सत्याग्रही जेल में गये। गान्धी जी इससे काफी सन्तुष्ट थे। पर बहुत से कांग्रेसी नेता इस प्रकार के आन्दोलन को बेकार समझते थे। अत: जब अक्टूबर सन् 1941 में सरकार ने सत्याग्रहियों को छोड़ना शुरू किया, तब गान्धी जी ने इस बात पर जोर दिया कि कारागार से मुक्त सत्याग्रहियों को एक सप्ताह के अन्दर पुनः सत्याग्रह करना चाहिए। पर 3 दिसम्बर को भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा घोषित किया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण जो व्यक्ति बन्द किये गये हैं उनको छोड़ दिया जायगा। 4 दिसम्बर को बहुत से प्रमुख कांग्रेसी नेता रिहा कर दिये गये और कुछ दिन में सभी सत्याग्रही जेल से छोड़ दिये गये। इस अवसर पर डॉक्टर राम मनोहर लोहिया भी जिन्हें सन् 1940 को दो वर्ष की सजा एक भाषण के आधार पर दी गयी थी छोड़ दिये गये, पर जय प्रकाश नारायण आदि बहुत से दूसरे समाजवादी नेता और कार्यकर्त्ता नहीं छोड़े गये। 23 दिसम्बर को कांग्रेस की कार्यसमिति ने राजनीतिक बन्दियों की रिहाई को महत्त्वहीन बताते हुए अपनी पुरानी नीति को पुष्ट किया। पर जापानी आक्रमण के कारण युद्ध ने जो नया रूप धारण कर लिया था उस पर गम्भीरता से विचार करना उसने जरूरी समझा। इस तरह यह आन्दोलन समाप्त हुआ।'(6)

जिस समय गान्धी जी देशव्यापी जन-संघर्ष के शुरू करने की बात सोच रहे थे, उस समय जय प्रकाश नारायण हजारी बाग जेल में बन्द थे और आचार्य नरेन्द्र देव गान्धी जी देखरेख में सेवाग्राम आश्रम में इलाज करा रहे थे। इस चिकित्सा के चार महीनों में नरेन्द्र देव जी गान्धी जी के अधिक निकट आये। गान्धी जी ने नरेन्द्र देव जी से समाजवाद के लक्ष्यों तथा गति - विधि के सम्बन्ध में समय-समय पर बात की और स्वराज्य के समाजवादी तत्त्वों के सम्बन्ध में नरेन्द्र देव जी की व्याख्या को किसी हद तक ठीक समझा। उन्होंने नरेन्द्र देव जी से सत्य और अहिंसा के सम्बन्ध में भी बात चीत की। नरेन्द्र देव जी ने बताया कि वे बचपन से ही सत्य की 'आराधना' करते रहे हैं, पर वे यह नहीं समझते कि एक मात्र अहिंसा से स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है, अन्याय के विरोध में हिंसा का प्रयोग जरूरी हो सकता है। देशव्यापी जन-संघर्ष की योजना पर भी गान्धी जी ने नरेन्द्र देव जी से बातचीत की। नरेन्द्र देव जी ने गान्धी जी को विश्वास दिलाया कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सब कार्यकर्त्ता जन-संघर्ष में उनके साथ रहेंगे। यह भी कहा कि संघर्ष शुरू होने पर पण्डित जवाहर लाल नेहरू भी संघर्ष में जरूर कूद पड़ेंगे।(7)

क्रिप्स मिशन की विफलता ने देश की राजनीति में एक गतिरोध पैदा कर दिया। इसे दूर करने के लिये सी० राजगोपालाचारी का सुझाव था कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को स्वीकार कर लिया जाय और प्रान्तों में पुनः कांग्रेस मन्त्रिमण्डल गठित किये जाएँ। मद्रास के कांग्रेस विधायक दल ने राजगोपालाचारी के सुझावों को स्वीकार किया, पर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी इन सुझावों को मानने को तैयार नहीं थी। गान्धी जी तो संघर्ष के लिये व्यग्र थे। उनकी व्यग्रता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। उनका विश्वास था कि इस देश में ब्रिटेन के बने रहने से जापानियों को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिलता है और 'यदि अँगरेज वस्तुत: तत्काल और व्यवस्थित रूप से इस देश को छोड़ दें तो उससे मित्र राष्ट्रों का लक्ष्य एकदम पूर्ण नैतिक आधार पर प्रतिष्ठित हो जायगा'। गान्धी जी की धारणा थी कि अंगरेजों के हट जाने पर कांग्रेस, लीग और देश के सभी दल यह अनुभव करने लगेंगे कि सब का भला आपस में मिलकर एक होने में ही है।'(8)

'भारत छोड़ो प्रस्तावश' एवं नरेन्द्र देव - सर स्टेफर्ड क्रिप्स के खाली हाथ लौट जाने के कुछ दिन बाद 27 अप्रैल सन् 1942 को प्रयाग में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक में गान्धी जी की अनुपस्थिति में उनके "भारत छोड़ा' प्रस्ताव पर विचार हुआ। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि ब्रिटेन के साम्राज्यवाद के कारण ही हिन्दुस्तान युद्ध में घसीटा गया है, भारत में विदेशी सैनिकों का अस्तित्त्व उसकी स्वतन्त्रता के लिये भयंकर खतरे के समान है, हिन्दुस्तान की किसी राज्य से दुश्मनी नहीं है और उसे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं हैं, यदि जापान हिन्दुस्तान पर आक्रमण करेगा तो उसे अहिंसात्मक असहयोग का सामना करना पड़ेगा। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि युद्ध की मौजूदा परिस्थिति में अँगरेजी फौजों तथा अँगरेजी शासन व्यवस्था को हटाने की माँग सर्वथा अनुचित है। इस बात से मित्र राष्ट्र समझेंगे कि हिन्दुस्तान उनका शत्रु है और ब्रिटेन उनके साथ दुश्मन का सा व्यवहार करेगा, उसे खाक में मिला देगा। उन्होंने यह भी कहा कि गान्धी जी की बात मान लेने के बाद देश में एक ऐसी प्रशासकीय रिक्तता हो जायेगी जिसे फौरन भरा नहीं जा सकता। अर्राष्ट्री जगत् में हम

फासिस्ट शक्तियों के मूक समर्थक बन जायेंगे।[9]

पण्डित नेहरू के इन विचारों का अच्युत पटवर्धन और आचार्य नरेन्द्र देव ने, जो विशिष्ट आमन्त्रित की हैसियत से वर्किंग कमेटी में उपस्थित थे, जोरदार शब्दों में विरोध किया। अच्युत पटवर्धन ने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने खुदकुशी का रास्ता अपना लिया है। वह हिन्दुस्तान से जिस प्रकार का सहयोग चाहती है वह देश के लिये हितकर नहीं हो सकता, ब्रिटेन के साथ सहयोग तो जापान को निमन्त्रण देना होगा। आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा कि ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के लक्ष्य चीन और सोवियत रूस के लक्ष्यों से भिन्न हैं। ब्रिटेन की नीति के कारण हिन्दुस्तान इस युद्ध को जनयुद्ध नहीं समझ सकता। हमें ब्रिटेन को यह बात साफ तौर पर बता देना है कि हम जापान से भयभीत नहीं हैं और हम चाहते हैं कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान छोड़ कर चला जाय। सर्वश्री गोविन्द बल्लभ पन्त, भूलाभाई देसाई और आसफ अली ने पंडित नेहरू का समर्थन किया, वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यों ने राजेन्द्र बाबू द्वारा संशोधित गान्धी जी के प्रस्ताव के पक्ष में अपनी राय दी। पर कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के अनुरोध पर वर्किंग कमेटी ने पण्डित नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पहली मई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी नेहरू जी के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। गान्धी जी नेहरू जी के प्रस्ताव और दृष्टिकोण से असन्तुष्ट थे। वे चीन की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में तथा दो एक और बातों में नेहरू जी की राय मानने को तैयार थे, पर वे अपनी माँग पर जल्द से जल्द स्वतन्त्रता संघर्ष शुरू कर देना जरूरी समझते थे। नेहरू ने भी आखिर में गान्धी जी द्वारा संचालित जन-संघर्ष में शामिल होना ही उचित समझा। पर जुलाई के पहले सप्ताह में भूलाभाई देसाई ने बीमारी के कारण कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। राजगोपालचारी का विरोध तो बढ़ता ही चला गया और आखिर उन्होंने बल्लभभाई पटेल और गान्धी जी की सलाह से कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[10]

6 जुलाई सन् 1942 को कांग्रेस वर्किंग कमेटी का अधिवेशन वर्धा में शुरू हुआ। यह बैठक 24 जुलाई तक चलती रही। इसने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विचार के लिये 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि संसार की सुरक्षा तथा हर प्रकार के आक्रमण, साम्राज्यवाद और अधिनायकत्व के विलीनीकरण के लिये भी हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता आवश्यक है। आजाद हिन्दुस्तान ही विदेशी शक्ति के आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोध की शक्ति को संगठित कर सकता है, ब्रिटेन के प्रति जो विद्वेष भावना विद्यमान है उसे सद्भावना में परिवर्तित कर सकता है। इस प्रस्ताव में कांग्रेस ने विश्वास दिलाया कि स्वतन्त्रता द्वारा हिन्दुस्तान यह नहीं चाहता कि ब्रिटेन व मित्रराष्ट्रों के युद्ध कार्य में किसी भी प्रकार से बाधा पहुँचे या जापान को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहन मिले। इसलिये कांग्रेस इस बात के लिये तैयार है कि स्वतन्त्र भारत में ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों की सेनाएँ, कायम रह सकें तथा जापान व उनके साथियों का 1 सामना यहाँ रहते हुए कर सकें। प्रस्ताव में विश्वास प्रकट किया गया कि यदि सद्भावना से ब्रिटिश सत्ता हटा ली गयी तो एक सुदृढ़ अस्थाई सरकार कायम हो जायगी जो आक्रमण के विरुद्ध और चीन की सहायता में संयुक्त राष्ट्रों से सहयोग करेगी। पर प्रस्ताव में यह भी साफ कर दिया गया कि यदि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँग स्वीकार नहीं की, तो गान्धी जी के नेतृत्व में समस्त अहिंसात्मक शक्ति से सरकार का प्रतिरोध किया जायगा।[11]

7-8 अगस्त सन् 1942 को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसमें वर्किंग कमेटी के 'भारत छोड़ो' संकल्प को पुष्ट किया गया और गांधी जी को अहिंसात्मक जन-संघर्ष के संचालन का अधिकार सौंपा गया। कमेटी ने ब्रिटिश शासन के दुष्परिणामों की कड़ी आलोचना करते हुए पूर्ण आग्रह के साथ हिन्दुस्तान से ब्रिटिश सत्ता को हटा लेने की माँग को दोहराया और घोषित किया कि 'भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जायगी' जिसका पहला कर्त्तव्य 'अपनी समस्त सशस्त्र तथा अहिंसात्मक शक्तियों द्वारा मित्र राष्ट्रों के सहयोग से भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना और श्रमजीवियों की उन्नति और कल्याण करना होगा। इस प्रस्ताव में यह आशा भी प्रकट की गयी कि भारत की स्वतन्त्रता एशिया के अन्य पराधीन देशों के लिये एक प्रतीक का काम करेगी। कमेटी ने विश्वास दिलाया कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र राष्ट्रों का मित्र बन जायगा और स्वातंय संग्राम के प्रयत्न की परीक्षाओं और सुख:दुख में हाथ बँटायेगा'। पर उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस समय जो देश जापान के नियन्त्रण में है उन्हें बाद को किसी औपनिवेशिक सत्ता के अधीन नहीं रखा जा सकेगा। कमेटी ने 'संसार की भावी शक्ति' सुरक्षा और व्यवस्थित उन्नति के लिये स्वतन्त्र राष्ट्रों के एक विश्वसंघ की आवश्यकता बतायी और वायदा किया कि 'स्वतन्त्र भारत ऐसे विश्वसंघ में प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में अन्य देशों को समान आधार पर सहयोग करेगा। कमेटी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जब सत्ता मिलेगी तब उस पर समस्त भारतीयों का समान अधिकार होगा'। अन्त में कमेटी ने 'ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों से अपील' करते हुए 'हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के अविच्छिन्न अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक स`अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने का निर्णय किया तथा गान्धी जी से नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाइयों में राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने का निवेदन किया। कमेटी ने जनता से यह याद रखने की भी अपील की कि 'अहिंसा इस आन्दोलन का आधार हो' और उन्हें 'सामान्य निर्देशों की सीमा में रहते हुए' ही इस संघर्ष में भाग लेना चाहिए 'तथा स्वयं अपना पथ प्रदर्शक बन कर इस कठिन मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए, जहाँ विश्राम का कोई स्थान नहीं है और जो अन्त में देश की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर समाप्त होगा।'[12]

सन् 1942 का 'भारत छोड़ा' संघर्ष आजादी के दूसरे संघर्षों से अधिक व्यापक और भीषण था। सरकार तो कांग्रेस के सभी नेताओं और प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को जल्दी से गिरफ्तार करके आन्दोलन को तीन चार दिन के अन्दर ही समाप्त कर देना चाहती थी। पर नेताओं की गिरफ्तारी ने जनता के रोष को शान्त करने की बजाय प्रज्ज्वलित कर दिया। जनता के विद्रोह ने भयंकर भूमिगत संघर्ष का रूप धारण कर लिया। जान और माल केमौलिक भेद को ध्यान में रख कर मानव जीवन के प्रति अहिंसा व्रत का पालन करते हुए तोड़-फोड़ के जरिए ब्रिटिश साम्राज्यशाही के राजतन्त्र को उप करना तथा उसके युद्ध सम्बन्धी प्रयत्नों में बाधा पहुँचाना ही इस भूमिगत आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य था। यह आन्दोलन देशव्यापी था। पर मद्रास, बिहार, संयुक्त प्रान्त, बंगाल में इसका सबसे अधिक जोर था। सरकार के एक वक्तव्य के अनुसार इस आन्दोलन में जनता ने लगभग 20 स्टेशनों को क्षति पहुँचायी, 50 डाकखानें बिल्कुल जला डाले, लगभग 200 डाकखानों को भारी नुकसान पहुँचाया, 3500 स्थानों पर तार और टेलीफोन की लाइनें काट दी, तथा 70 पुलिस थाने और 84 अन्य सरकारी इमारतें जला दी, अनेक स्थानों पर रेल की लाइनें उखाड़ दीं। अवध- तिरहुत रेलवे को तो जिसके जरिये युद्ध की सामग्री आसाम की सीमा पर पहुँचायी जाती थी विशेष तौर पर जनता के रोष से बहुत क्षति उठानी पड़ी। बलिया और सितारा जिलों में तो जनता ने कुछ समय सरकार के शासन को खत्म कर अपना स्वतन्त्र शासन भी स्थापित कर लिया। इस विद्रोह में सभी वर्गों के लोग शामिल थे। टाटा के लोहे के कारखानों में जहाँ युद्ध के लिये सामान तैयार किया जाने लगा था 15 दिन तक हड़ताल रही। अहमदाबाद के कारखानों के मजदूरों ने भी कुछ दिन तक हड़ताल की। मजदूरों से कहीं अधिक किसानों ने काम किया। जहाँ पिछले सविनय आन्दोलन में कार्यकर्त्ताओं की प्रेरणा पर ही किसानों ने हिस्सा लिया था, वहाँ इस संघर्ष में किसानों ने बहुत से स्थानों पर स्वयं ही बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। विद्यार्थियों ने तो सबसे आगे बढ़ कर काम किया। उनके विद्रोह से परेशान होकर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी आदि कई शिक्षा संस्थाओं पर तो सरकार ने फौज के जरिये कब्जा कर लिया। इस देशव्यापी विद्रोह को दबाने के लिये सरकार ने अपनी पाशविक शक्ति का निर्दयता से प्रयोग किया। 60 बार फौज बुलायी, 538 बार गोलीचलायी तथा पटना, भागलपुर, नंदिया, मुंगेर, तालचोरा और तमलुक में 6 बार हवाई जहाजों से बम बरसाये और अधिकांश जिलों में पुलिस द्वारा जनता को आतंकित किया। कांग्रेस के बहुत से दफ्तरों में आग लगा दी गयी। जगह-जगह पर नवयुवकों को बेतों से बेरहमी से साथ पीटा गया, स्त्रियों को अपमानित किया गया और बहुत से स्थानों पर सामूहिक जुर्माना वसूल किया गया। सरकार ने अपनी एक रिपोर्ट में स्वीकार किया कि उनकी गोली से 940 आदमी मरे और 1630 घायल हुए तथा उसने इस आन्दोलन के सिलसिले में 60229 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया।[13]

आचार्य नरेन्द्र देव इस आन्दोलन को भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जन संग्राम तथा 'स्वत: प्रसूत जनक्रान्ति' मानते थे। उनके विचार में स्वतन्त्रता के लिये 'जितने भी मानवोचित और प्रभावशाली उपाय हैं उन सबका अवलम्बन किया जा सकता है। उपायों के औचित्य का विचार करते समय उनकी नैतिकता का भी विचार करना होता है, किन्तु नैतिकता का मापदण्ड ऐसा नहीं होना चाहिए जिसके अनुसार काम करना साधारण जनों के लिए असम्भव हो। आचार्य जी कि धारणा थी कि "यदि यह आन्दोलन न होता ती भारत का राजनीतिक जीवन बिल्कुल शिथिल पड़ जाता और हम राजनीतिक दौड़ में पीछे पड़ जाते। इस आन्दोलन द्वारा भारतवर्ष एशिया की स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गया और भारत का प्रश्न संसार के मानचित्र पर आ गया।[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वाधीनता संग्राम में एवं तत्सम्बन्धी आन्दोलनों में आचार्य नरेन्द्र देव का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

संदर्भ ग्रंथ- सूची

1 रजनी पाम दत्त- आज का भारत पृ0 558 - 560।
2 डॉ0 सत्या राय भारती में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पृ0 530।
3 मुकुट बिहारी लाल -आचार्य नरेंद्र देव युग और नेतृत्व पृ0 162।
4 पट्टटमि सीतारमैया- कांग्रेश का इतिहास पृ0 340।
5 मनोहर दांडबते - युगपुरुष नरेंद्र देव पृ0 175।
6 मनोहर श्याम जोशी- कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का इतिहास पृ0 105-106।
7 डॉ0 मनोहर गोपाल भार्गव - आचार्य नरेंद्र देव एक युग पुरोधा पृ0 245।
8 डॉ0 सत्या राय भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पृ0 551-552।
9 पट्टाभि सीतारमैया- कांग्रेश का इतिहास पृ0 346।
10 मुकुट बिहारी लाल- आचार्य नरेंद्र देव युग और नेतृत्व पृ0 178।
11 डॉ0 मनहर गोपाल भार्गव -आचार्य नरेंद्र देव एक युग पुरोधा पृ0 249।
12 डॉ0 सत्या राय भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पृ0 533।
13 मुकुट बिहारी लाल- आचार्य नरेंद्र देव युग और नेतृत्व पृ0 184।
14 डॉ0 मनहर गोपाल भार्गव- आचार्य नरेंद्र देव एक युग पुरोधा पृ0 252।

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका तथा लैंगिक भेदभाव का विश्लेषण

डॉ० रचना ग्रोवर

शोध निर्देशिका, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

सोनम यादव

शोधार्थिनी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध सार

वर्तमान युग को वैचारिकता का युग कहा जा सकता है। अगर स्त्री या माता अथवा गृहिणी के संस्कार शिक्षा-दीक्षा आदि उत्तम नहीं होगी तो वह समाज और राष्ट्र को श्रेष्ठ सदस्य कैसे दे सकती है?, समाज के लिए स्त्री का स्वस्थ, खुशहाल, शिक्षित, समझदार, व्यवहार कुशल, बुद्धिमान होना जरूरी है और वह शिक्षा से ही सम्भव है। जब स्त्री की स्वयं की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि दृष्टिकोणों से निम्न होगी तो वह परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे पायेंगी, यह प्रश्न अत्यन्त चिन्तशील है क्योंकि एक तो स्त्रियाँ स्वयं राष्ट्र की आधी से कम जनसंख्या है तथा दूसरा, बच्चे, युवा, प्रौढ़ और वृद्धजन उन पर अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं। महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं के साथ होने वाले लैंगिक भेदभाव को दूर करना आवश्यक है। महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव घर में, घर के बाहर, विभिन्न व्यवसायों में कार्यस्थलों पर होता है जो उनके सशक्तिकरण को रोकता है। कार्यस्थल पर होने वाले लैंगिक भेदभाव को रोकने के लिए महिलाओं को शिक्षित होना होगा, रीति-रिवाज परम्परा के नाम पर होने वाले शोषण को रोकना होगा पुरूषों के साथ महिलाओं की सोच में बदलाव लाना होगा। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति एवं असंगठित मजदूरों पर किये गए इस शोध से निष्कर्ष निकला कि विभिन्न व्यवसायों में कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ भेदभाव होता है। इस भेदभाव को समाप्त करने के लिए किये गए उपायों को कठोरता से लागू करना होगा।

प्रस्तावना-

महिला सशक्तिकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से महिलाएँ स्वतंत्र निर्णय करने में सक्षम बनती है। उन्हें परम्पराओं एवं गुलामी की बेड़ियों से स्वतंत्रता प्राप्त होती है। साथ ही उन्हें विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं। पुरूषों की प्रधानता समाप्त कर महिला-पुरूषों में समानता की भावना का विकास होता है। इससे लैंगिक भेदभाव समाप्त होकर महिलाओं को उचित सम्मान समाज में प्राप्त होगा। महिला सशक्तिकरण का अर्थ कतई ये नहीं है कि महिलाओं की महत्ता पुरूषों पर स्थापित हो। यूनेस्को के अनुसार महिला सशक्तिकरण हेतु उनमें निर्णय लेने की शक्ति होनी चाहिए एवं इसके लिए उनकी पहुँच सूचना एवं संसाधनों तक होनी चाहिए। महिलाओं को सामुहिक निर्णय लेने में अग्रणी रहना, परिवर्तन करने की क्षमता का विकास करना, किसी की सामुहिक या व्यक्तिगत शक्ति में सुधार का कौशल सीखना, लोकतांत्रिक साधनों एवं प्राचीन धारणाओं को परिवर्तित करने की क्षमता का विकास करना, विकास प्रक्रिया में सकारात्मक भागेदारी निभाना और कलंक पर नियंत्रण कर स्वच्छ छवी का निर्माण करना आना चाहिए, तभी वे सशक्त कहलायेंगी।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला सशक्तिकरण के अग्रांकित पाँच घटक बताए गए हैं -

- महिलाओं में आत्म मूल्य की भावना,
- विकल्प चयन का अधिकार,
- अवसर एवं संसाधनों तक सुगमता से पहुँच,
- घर में एवं घर के बाहर स्वयं के जीवन पर नियंत्रण का अधिकार,
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन को प्रभावित करने की क्षमता।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ यह भी है कि महिलाओं द्वारा अपने जीवन को सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक दृष्टि से नियन्त्रित कर परिधि से केन्द्र में आना। महिलाओं द्वारा शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, अधिकारों के प्रति जागरूकता, गतिशीलता, राजनीतिक भागीदारी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे कारकों में स्वयं निर्णय लेना महिला सशक्तिकरण है। लैंगिक भेदभाव दूर करने, महिलाओं को अधीनता से स्वतंत्रता की ओर ले जाने, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने, शक्ति संबन्ध को चुनौती देने, निर्णय क्षमता का विकास करने से ही महिला सशक्तिकरण संभव है। इसके लिए शिक्षा एवं नौकरी या व्यवसाय में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना आवश्यक है।

संबंधित साहित्य का अवलोकनः-

करूणा, करूणा (2008) विकास एवं लैंगिक भेदभावः हरियाणा का एक अनुभवात्मक अध्ययन यह शोध हरियाणा में विकास और लैंगिक असमानता के विभिन्न आयामों के अध्ययन पर आधारित है। राष्ट्रीय मानव विकास प्रतिवेदन 2001 के अनुसार जहाँ पंजाब और हरियाणा में उच्च आय स्तर उन्हें विकसित राज्य का दर्जा देती है परन्तु वहाँ बढती लैंगिक असमानता भी एक बड़ी सच्चाई है। सम्पूर्ण देश में हरियाणा का लिंगानुपात सबसे कम है। इस शोध का उद्देश्य यही है कि हरियाणा के विकास कों लैंगिक असमानता को दूर करने के रूप में किस प्रकार प्रयोग किया जाए ? साथ ही लैंगिक असमानता के उप-समूहों का लैंगिक असमानता पर क्या प्रभाव पड़ता है। जैसेः- शिक्षा व कार्य का स्तर, सामाजिक समूह, आयु, वैवाहिक स्थिति, जीवन स्तर, और परिवार के सदस्यों की आय। इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैंः-

- हरियाणा पूरे देश में लैंगिक समानता सूचकांक में सबसे निचले पायदान पर बना हुआ है। अर्थात वहाँ के आर्थिक विकास का लैंगिक असमानता को कम करने में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।
- हरियाणा में लैंगिक असमानता की जड़े हमें वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश में तलाश करनी चाहिए।
- यदि हरियाणा में लैंगिक समानता को स्थापित करना है। तो वहाँ आर्थिक बदलाव, जनभागीदारी में वृद्धि और सामाजिक आंदोलन को एक साथ आगे बढाना होगा।

बी. एम. शर्मा (2015) महिला एवं शिक्षा इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में महिला सशक्तिकरण पर गांधी जी के विचारों पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में महिलाओं की स्थिति के अधार पर महिला सशक्तिकरण के विभिन्न कार्यक्रमों के महत्त्व का विश्लेषण किया गया है। एक अन्य अध्याय में शोधकर्त्ता ने विद्यालय एवं उच्च शिक्षा स्तर से पलायन करने के कारणों पर चर्चा की है। यह पुस्तक भारत में महिलाओं के शिक्षा के स्तर को बहुत अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत करती है।

पाण्डे और एस्टोन (2020) ग्रामीण भारत में पुत्र प्राथमिकताः संरचनात्मक बनाम व्यक्तिगत कारकों कि स्वतंत्र भूमिका इस अध्ययन के अनुसार उच्च शिक्षा ही महिलाओं को लैंगिक असमानता से मुक्त करती है। एक शिक्षित पुत्री अपने परिवार को जो समर्थन व सुविधाएँ उपलब्ध करवा सकती है वह समर्थन दो पुत्र मिलकर भी नहीं दे सकते। गरीब माता-पिता असुरक्षा और आर्थिक दायित्वों के कारण पुत्रों को पसंद करते हैं। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लिंग भेद को समाप्त करने का मुख्य साधन महिलाओं को शिक्षा और वित्तीय अधिकार देना है।

डूवरी, एन. और के. एल्लनडोर्फ (2001) भारत में घरेलू हिंसाः शिक्षा और रोजगार की भूमिका इस अध्ययन से ये तथ्य सामने आये हैं कि शिक्षित महिलाएँ ही अशिक्षित महिलाओं को उनके अधिकारों व विशेषाधिकारों से अवगत करवा सकती हैं। समुदाय स्तर की गतिविधियाँ एवं क्रेडिट आधारित समूहों में महिलाओं की भागीदारी उनकी शिक्षा पर निर्भर करती हैं। महिलाओं को सम्मान व समानता के साथ अन्य महिलाओं के साथ कार्य करने की आन्तरिक शक्ति एवं आत्मविश्वास शिक्षा से प्राप्त होता है।

गेराल्डिन फोर्ब्स (1908) के अनुसार 19वीं शताब्दी के दौरान भारत में पुरूष सुधारकों द्वारा पारम्परिक मान्यताओं के विरूद्ध महिलाओं के उत्थान की भूमिका पर बल दिया गया है। सुधारकों का यह मानना था कि शिक्षा ही महिलाओं को सशक्त बना सकती है। शिक्षा ही महिलाओं को उनकी समस्याओं को समझने में सहायक सिद्ध होती है। लेखक के अनुसार शिक्षा ग्रामीण अशिक्षित महिलाओं की विभिन्न रोजमर्रा की समस्याओं को समझने में भी सहायक सिद्ध होती है। उनके अनुसार भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्व भी महिला आन्दोलनों का अस्तित्व था। आज भी समाज में उनकी नवीन भूमिका के परिप्रेक्ष्य में उन्हें सशक्त किया जाना चाहिए। उन्हें समाज में उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों से अवगत कराना चाहिए। निष्कर्षतः भारत की आजादी के बाद संवैधानिक प्रावधानों का महिलाओं को कोई लाभ नहीं पहुँचा है। अतः यदि वास्तव में महिला सशक्तिकरण को साकार करना है तो हमें महिला आंदोलनों को समेकित कर एक ठोस आधार देना होगा।

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा जीवन के दरवाजे की कुंजी है जिसका लक्ष्य ज्ञान रूपी प्रकाश को फैलाना तथा अज्ञानता रूपी अंधेरे को दूर करना है। मकोल व अन्य के अनुसार ''किसी भी समाज या राष्ट्र की प्रगति के लिए महिला शिक्षा को विशेष महत्व है। किसी भी शिक्षित समाज की वास्तविक स्थिति जानने का तरीका है कि हम यह जानने का प्रयास करें कि समाज में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति कैसी है, उनको क्या-क्या अधिकार प्राप्त हुए हैं और उनकी मूलभूत संसाधनों तक कितनी पहुंच है तथा राजनीतिक व सामाजिक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में उनकी कितनी सहभागिता है? देखा जाय तो महिलाओं की शिक्षा विकास का एक महत्वपूर्ण कारक है जिसने महिलाओं का स्तर और उनकी समाज में भूमिका को उठाने में सहायता की है।'शिक्षा किसी भी व्यक्ति के सुखद जीवन की मजबूत आधारशिला तैयार करती है। शिक्षा के द्वारा एक महिला असहाय व अबला से सषक्त और सबला बनती है। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है महिलाओं में छिपी हुई उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को विकसित करना, जिनको व्यवहार में लाकर व अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। विश्व विकास रिपोर्ट 1993-99 स्पष्ट करती है कि महिला शिक्षा आर्थिक विकास में सहायक होने के साथ ही प्रजननता को कम करके, बच्चों के उचित पालन

पोषण तथा माता-पिता एवं बच्चों के बेहतर स्वास्थ्य में सहायक होती है। सामान्य तौर पर शिक्षा आर्थिक आत्मनिर्भरता में सहायक होती है। इससे महिलाओं का सामाजिक स्तर ऊपर उठता है तथा उनका सशक्तिकरण होता है। आर्थिक स्वायत्तता से निर्भरता एवं पुरूष प्रधानता तथा वर्चस्व ध्वस्त होने से न सिर्फ महिला व्यक्तिगत स्तर पर लाभान्वित होगी अपितु सामाजिक स्तर पर ऐसे परिवर्तन घटित होगें कि पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर रह जायेगी और जगह एक नयी समाजवादी व्यवस्था उभर कर सामने आयेगी जिसमें महिला और पुरूष दोनों का समान महत्व होगा।

महिला सशक्तिकरण के सन्दर्भ में लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व

अधिकांश कानून महिलाओं पर प्रभाव नही डालते है और अनेक कानूनों की नजर में महिलाएं दोयम दर्जे की है। डेविस राइस मैन ने महिलाओं के सम्बंध में लिखा है कि हमारे कार्य की व्यवस्था ऐसी है कि महिलाएं जो सभी सामाजिक कार्य करती है। उनके समय की आर्थिक दृष्टि से कोई स्पष्ट व्याख्या नही की गई और ना ही उनके काम की समय सीमा भी निर्धारित नही की गई है। महिलाओं के द्वारा किये गये घरेलू कार्यो को श्रम में नही माना जाता है। दिन-भर घर का कार्य करके थक जाये किन्तु उन्हें थकावट प्रकट करने का अधिकार नही है निर्णय लेने के अभाव में कारण भी महिलाओं को कोई महत्व नही दिया जाता उनके निर्णय को कोई महत्व नही देते अशिक्षा व जागरूकता के अभाव के कारण भी वे अपने अधिकारों से वंचित रहती है। महिलाओं में राजनीतिक ज्ञान का भी अभाव होता है। धन के अभाव के कारण भी महिलाएं आत्मनिर्भर नहीं होती और वे चुनावी दौड में पीछे छूट जाती है।

विश्व के किसी भी देश में महिलाओं को पुरूषों के बराबर का दर्जा नही मिला हुआ इससे उनके अधिकारों का उल्लंघन होता है। यह भेदभाव मानवीय गरिमा के खिलाफ है जिससे देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सास्ं कृतिक जीवन में महिलाओं की पुरूषों के बराबर समानता में बाधा आती है और देश के विकास में बाधा होती है। हांलाकि सभी देशों की सरकारों ने महिलाओं के अधिकारों के लिए अनेक प्रकार के कानून बनायें है। और महिलाओं को कुछ विशेष अधिकारों से अवगत भी करवा रही है। लोकतन्त्र को मजबूत करने के लिए महिलाओं का प्रतिनिधित्व आवष्यक है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सभी जगह समान प्रतिनिधित्व नही है कहीं अधिक है तो कही कम है मुस्लिम देशो में देखो तो वहां राजनीति में महिलाएं सर्वोच्च स्तर पर है। इन मुस्लिम देषो में महिलाएं सक्रिय रूप से राजनीति में योगदान दे रही है। जैसे इंडोनेशिया की राष्ट्रपति भी एक महिला है। पाकिस्तान में भी बने जीर भूट्टों दो बार प्रधानमंत्री के पद पर रह चुकी है। बांग्लादेश में भी शेख हसीना को प्रधानमंत्री बनाया गयां महिलाएं संसदीय चुनावों को लेकर उत्साहित भी रही। इस प्रकार सभी स्थानों पर महिलाओं को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक रहना है।

लैंगिक असमानताः-

सेक्स जैविक तथ्य है जबकि जेंडर या लिंग सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्य हैं। लिंग दो प्रकार के होते हैंः- 1. पुल्लिंग एवं 2. स्त्रीलिंग। लिंग शब्द का प्रयोग पुरुष या स्त्री के गुण एवं उनके व्यवहारों के संदर्भ में किया जाता है, जिससे उनकी सामाजिक पहचान की जा सके। महिला एवं पुरुष में अनेक असमानताएँ या भिन्न-भिन्न गुण जन्मजात होते हैं। अलग-अलग विशेषताओं के आधार पर इन्हें अलग-अलग कार्य एवं भूमिका प्रदान की गई है। कोई भी मनुष्य जन्म के समय यह नहीं जानता कि उसका व्यवहार, उसकी भाषा कैसी होनी चाहिए, लेकिन जैसे-जैसे उसका सामाजिकरण होता है वह अपने व्यवहार, भाषा बोलने का तरीका आदि सीखने लगता है। विभिन्न समाजों में महिलाओं एवं पुरुषों की सामाजिक भूमिकाएं अलग-अलग निर्धारित की गई है। पितृसत्तात्मक एवं मातृसत्तात्मक समाज में इनकी स्थिति लगभग विपरीत पाई जाती है। जब लैंगिक आधार पर महिला एवं पुरुषों के मध्य असमान व्यवहार किया जाता है तो इसे लैंगिक असमानता कहते हैं। यह एक सामाजिक अवधारणा है।

कार्यस्थल पर भी लैंगिक भेदभाव देखने को मिलता है। जिस कार्य में पुरुषों का वर्चस्व हो वहां पुरुषों को ही महत्व दिया जाता है। महिलाओं का वहाँ काम करना पुरुषों को पसंद नहीं आता है और वह ऐसा व्यवहार करते हैं जिससे महिला स्वयं कार्य छोड़ कर चली जाए। पुरुष बहुल कार्य क्षेत्र में पुरुषों के काम की सराहना की जाती है और महिलाओं के कार्यों को नजरअंदाज किया जाता है। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति अधिक दयनीय है खासकर ग्रामीण क्षत्रे में पुरुष सहकर्मियों एवं अधिकारियों द्वारा महिलाओं के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता है, उन्हें अपशब्द बोलना, मारपीट करना, कम वेतन या मजदूरी देना, अधिक समय तक काम करवाना, समय पर मजदूरी ना देना, द्विअर्थी संवाद करना, यौन शोषण करना, अन्य सुविधाएं उपलब्ध न करवाना, ऐसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को उन्नति एवं विकास के अवसर अधिक प्रदान किए जाते हैं। विभिन्न कार्यस्थल पर महिला एवं पुरुषों के लिए कार्य वितरण में भी असमानता बढ़ती जाती है। इसके लिए महिला पुरुष के जैविक अंतर का तर्क दिया जाता है। विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में महिलाओं के साथ अधिक भेदभाव किया जाता है।

लैंगिक भेदभाव दूर करने, महिलाओं को अधीनता से स्वतंत्रता की ओर ले जाने, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने, शक्ति संबन्ध को चुनौती देने, निर्णय क्षमता का विकास करने से ही महिला सशक्तिकरण संभव है। इसके लिए शिक्षा एवं नौकरी या व्यवसाय में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना आवश्यक है। महिला

सशक्तिकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से महिलाएँ स्वतंत्र निर्णय करने में सक्षम बनती है। उन्हें परम्पराओं एवं गुलामी की बेड़ियों से स्वतंत्रता प्राप्त होती है। साथ ही उन्हें विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं। पुरूषों की प्रधानता समाप्त कर महिला-पुरूषों में समानता की भावना का विकास होता है। इससे लैंगिक भेदभाव समाप्त होकर महिलाओं को उचित सम्मान समाज में प्राप्त होगा। महिला सशक्तिकरण का अर्थ कतई ये नहीं है कि महिलाओं की महत्ता पुरूषों पर स्थापित हो।

लैंगिक भेदभाव के कारणः-

सम्पूर्ण भारत में सभी जगह महिलाओं के साथ भेदभाव होता आया है। महिलाओं के साथ हर स्थान पर हर स्तर पर भेदभाव देखने को मिल जाता है। यह भेदभाव घर में समाज में विद्यालय में राजनीति में नौकरी या व्यवसाय में और कार्यस्थल पर देखने को मिलता है। महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव के प्रमुख कारण, महिलाओं में शिक्षा की कमी होना, आर्थिक रूप से पुरूषों पर निर्भर होना, संयुक्त परिवार, बाल विवाह, पुरूष प्रधान समाज की परम्परा एवं रीतिरिवाज जो महिलाओं को दोयम दर्जा देते हैं, आदि हैं।

लैंगिक भेदभाव के दूर करने के उपायः-

सम्पूर्ण भारत में मध्य काल से ही महिलाओं के साथ भेदभाव बढ़ता गया और उनकी दशा बद से बदत्तर हो गई। वर्तमान में बालिका शिक्षा एवं महिलाओं में जागरुकता आने से इनकी दशा में परिवर्तन होने लगा है। फिर भी अभी अनेक अथक प्रयास करने की आवश्यकता है। लैंगिक भेदभाव दूर करने हेतु महिला हो या पुरूष सभी मनुष्यों को अपनी सोच में सकारात्मक परिवर्तन करना आवश्यक है। बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना, महिलाओं हेतु प्रशिक्षण संस्थानों का विकास करना, पारम्परिक कार्य विभाजन के तरिके में परिवर्तन करना, सवैंधानिक सुधारों को सख्ती से लागु करना, महिला रोजगार में वृद्धि करना एवं महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु अथक प्रयास करना भी आवश्यक है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उनके साथ होने वाले भेदभाव को समाप्त करना आवश्यक है।

निष्कर्ष-

महिलाओं की शिक्षा के प्रति उपेक्षा और भेदभाव को एक दिन में ही नहीं बदला जा सकता, लेकिन नागरिक समाज के सहयोग से सरकार की देशभर में शिक्षा स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बडी सावधानी पूर्वक बनायी गयी योजनाओं से स्त्रियों का सशक्तिकरण अवश्य हो सकेगा। इसके लिए महिला शिक्षा मे आ रही विभिन्न बाधाओं को दूर करना होगा। महिलाओं को शैक्षिक रूप से और मजबूत करना होगा। शिक्षा में लैंगिंक भेदभाव को दूर करना चाहिए तथा बेटे और बेटी की शिक्षा में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए। महिला शिक्षा के लिए स्कूलों की घर से भौगोलिक दूर का कम किया जाना चाहिए। जनता में महिला शिक्षा, के प्रति जागरूकता लाने के लिए स्थानीय समाज सुधारकों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रभावशाली भूमिका हो सकती है। इसलिए उन्हें प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। सरकार को महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक विकास कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता के आधार पर संचालित किया जाना चाहिए। आवासीय कन्या पाठशालाओं की अधिक से अधिक स्थापना की जानी चाहिए। सरकार को निर्धन पिछड़े तथा कमजोर वर्गो में बालिका शिक्षा के प्रति उत्साह जगाने के लिए आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। संगठित और असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में जहां महिलाएँ काम करती हैं बालगृहों की स्थापना की जानी चाहिए ताकि लड़कियों को स्कूल छोड़कर अपने भाई बहनों की देखभाल के लिए अपनी पढ़ाई छोड़कर घर पर न रूकना पड़े। समाज में महिलाओं का स्थान पुरूषों के समान ही महत्वपूर्ण है क्योंकि आज महिला अबला नारी के रूप में सुदृढ़ होकर पुरूष से कदम से कदम मिलाने को प्रयासरत है और उपर्युक्त अध्ययन से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जैसे-जैसे महिलाओं का शिक्षा की ओर रूझान बढ़ा है अर्थात् वे शिक्षित हुई हैं, वैसे-वैसे वे सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में भी सुदृढ़ हुई है तथा आत्मनिर्भर बनी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

- देसाई व्लास्सोफ कारोल (2012) गरीबी से अमीरी की ओरः एक भारतीय गाँव में महिलाओं की स्थिति पर ग्रामीण विकास का प्रभाव, एल्सेवियर साइंस लिमिटेड़, भाग - 22, संख्या-5,
- ब्लूम (2017) एक उत्तर भारतीय नगर में महिलाओं की स्वायत्ता और मातृ स्वास्थ्य पर प्रभाव के आयाम, ड़ेमोग्राफी, भाग-38, संख्या-1.
- गैरी बेकर और अमत्र्य सेन (1999) विकास स्वतंत्रता के रूप में, ओक्सफार्ड विश्वविद्यालय प्रेस, न्यूयार्क 1999, पृष्ठ संख्या, 189-194.
- पाण्डे और एस्टोन (2020) ग्रामीण भारत में पुत्र प्राथमिकताः संरचनात्मक बनाम व्यक्तिगत कारकों कि स्वतंत्र भूमिका, जनसंख्या और विकास समीक्षा, भाग-11, संख्या-2
- डूवरी, एन. और के. एल्लनडोर्फ (2001) भारत में घरेलू हिंसाः शिक्षा और रोजगार की भूमिका, छठे महिलाओं की राजनीति शोध सभा, महिलाओं की स्थितिः भविष्य निर्माण के तथ्यों का आवरण, जून (2010), वाशिंगटन डी सी.
- सिंह, सीमा (2012), ''पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण' विद्या विहार, नई दिल्ली।
- शर्मा, कृष्ण दत एवं श्रीमती दाघीच, सुनिता (1997) ''राजस्थान पंचायती कानून' पंचायती राज जन चेतना संस्थान, जयपुर।
- बी. एम. शर्मा (2019) ''वोमेन्स राइट्स ए डी वी पब्लिशर्स, जयपुर।
- गौतम, हरेन्द्र राज (2006) ''महिला अधिकार संरक्षण, कुरूक्षेत्र।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना का अध्ययन बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में

ब्रज भूषण कुमार

शोधार्थी, वाणिज्य संकाय, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा

डॉ० प्रभु नाथ सिंह

सह प्राध्यापक, विश्वविद्यालय वाणिज्य विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा

सार:-

बिहार राज्य के निवासी अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और वहाँ उन्हें जीवन की मूलभूत आवश्यकताऐं भी सुलभ नहीं हो पाती है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है। तथापि योजना आयोग के साथ परामर्श से कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के माध्यम से बिहार राज्य के द्वारा कृशि एवं संबंध क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश को बढावा देना है, अर्थात आर. के.वी.वाई. राज्य योजना स्कीम के अंतर्गत कृषि यंत्रीकरण, फसल विकास, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, विपणन एवं फसलोपरांत प्रबंधन मस्यपालन (बागवानी सहित), पशुपालन, मत्स्यिकी, डेयरी और विकास, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा वानिकी एवं वन्य जीवन, रोपण एवं कृषि विपणन, खाद्य भंडार एवं भांडागार, मृदा एवं जल संरक्षण, कृषि वित्तीय संस्थान, अन्य कृषि कार्यक्रम और सहकारिता के निर्धारण के लिए आधार का अध्ययन, इसके अलावा ऐसे व्यय जो प्रत्यक्ष रूप से कृषि के विकास से संबंधित है अर्थात् पिछले ट्यूब वेल, गहरे ट्यूब वेल, ड्रिप इरिगेशन स्प्रिंग कलग इरिगेशन डग वेल अथवा इसी प्रकार के अन्य सिंचाई कार्यकलाप जो राज्य के कृषि विभागों के तहत बजटित है, कृशि एवं संबद्ध कार्यकलापों पर पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई)/प्रषासनिक इकाईयों द्वारा व्यय के प्रमाणित आंकड़ों पर भी वेस लाइन व्यय का अध्ययन कर निष्कर्ष एवं सुझाव देना है।

कुंजी शब्द:- कृषि एवं सहकारिता विभाग, आरकेवीवाई, योजना आयोग/नीति आयोग, राज्य कृषि अवसंरचना विकास कार्यक्रम।

परिचय:- बिहार की अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि हमारे आर्थिक, समाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम रही है। बिहार के लोग कृषि को एक उत्सव के रूप में मनाते रहे है। प्रकृति एवं पर्यावारण की रक्षा के दायित्व का निर्वहन जिसमें वृक्ष, नदी, पहाड़, पशुधन, जीवजन्तु की रक्षा की जिम्मेदारी निभाना, जीवन के महत्वपूर्ण आध्यात्मिक कार्य का हिस्सा रहा है। वर्ष-2011 की जनगणना के अनुसार 54.6 प्रतिशत आवादी कृषि और उससे संबंधित कार्यो में लगी हुई है। वर्त्तमान कीमतों के अनुसार वर्ष 1950-51 में बिहार की भारत में कृषि का योगदान के रूप में 25 प्रतिशत चीनी उत्पादन बिहार से होता था। यहॉ 50 प्रतिशत बागवानी उत्पादों का उत्पादन किया गया था। चावल और गेहूँ लगभग 29 प्रतिशत थे और आजादी के बाद के दिनों में बिहार वास्तव में कृषि शक्ति केन्द्र था। 1947 ओर 2000 के बीच सरकार ने उत्तर के बजाय राज्य के दक्षिणी आधे हिस्से के औधोगिकीकरण का समर्थन किया, जो उत्तर बिहर में औधोगिकीकरण की कमी का प्रमुख कारण था। अविभाजित बिहार सरकार ने दक्षिण में बोकारों, जमशेदपुर, धनबाद और रॉची जैसे महत्वपूर्ण औद्योगिक शहरों का विकास किया। उत्तर अभिवाजित राज्य का कृषि केन्द्र बना रहा। दोनों क्षेत्रों ने एक दूसरे की प्रशंसा की। 1980 से 1990 तक के भारत सरकार के ऑकड़े यह भी बताते है कि राज्य की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के बावजूद अविभाजित बिहार की जीएसडीपी इस अवघि में 72 प्रतिशत बढ़ी। ऑकडो से यह भी पता चलता है कि 1980 और 1981 के बीच राज्य की जीएसडीपी में 49 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसका अर्थ है कि 1980 के दशक के शुरूआत में भी अर्थवयवस्था देश में सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक थी। 1980 के दशक में पंचवर्षीय योजना में बिहार में +4 बिलियन डॉलर के निवेश का आहवान किया गया था। 1987 तक +4 बिलियन प्रति व्यक्ति +12 निवेश में परिवर्तित हो गया। अर्थशास्त्रियों नें दावा किया कि भारी बजट धाटा मुद्रा स्फीति को बढ़ावा दे रहा है, जिससे बिहार के सबसे गरीब तबके के लोगों के जीवन स्तर में गिरावट आ रही है। कृषि में सबसे बड़ा क्षेत्र, सरकार कृषि के उत्पादन में निवेश करने में विफल रही और इसके बजाय भारत के अन्य हिस्सों में खाद्यान आयात करने का विकल्प चुना। इस निर्णय में 1980 के दशक के अंत में कृषि श्रमिकों के सामने आने वाली समस्याओं को दुर करने में मदद की। गैर कृषि क्षेत्र में 1980 के दशक के दौरान जब पूरे भारत के लिए 6.61 प्रतिशत के मुकाबले बिहार में विकास दर 6.62 प्रतिशत थी। 1990 के दशक के दौरान बिहार में विकास दर 3.19 प्रतिशत थी जबकि भारत के लिए यह बढ़कर 7.25 प्रतिशत हो गई। परिवर्त्तन प्रति व्यक्ति आय में भी परिलक्षित हुआ। 1980 के दशक के दौरान बिहार में प्रति व्यक्ति आय 2.45 प्रतिशत बढ़ी, जबकि पूरे भारत में यह 3.32 प्रतिशत

थी। 1990 के दशक में बिहार में प्रति व्यक्ति आय में 0.12 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि भारत में यह 4.08 प्रतिशत थी। 1980 के दशक में भारत की 3.38 प्रतिशत की तुलना में कृषि में विकास दर 2.21 प्रतिशत थी, 1990 के दशक में बिहार में यह 2.35 प्रतिशत थी, जबकि अखिल भारतीय स्तर पर यह 3.14 प्रतिशत थी। आर्थिक संकेतक से पता चलता है कि 1990 और 1995 के बीच एक गंभीर मंदी थी। जिसके परिणाम-स्वरूप 1995 और 2004 के बीच रोजगार-विकास-अपराध संकट पैदा हो गया। जहॉ भारत की जीडीपी भी 2013-14 में भी कृषि का योगदान 18-20 प्रतिशत रह गया। केन्द्रीय साख्यिकी कार्यालय के अनुसार वर्ष-2016-17 में कृषि और संबंधित क्षेत्रों का योगदान गिरकर 17.4 प्रतिशत रह गया।

कृषि एवं संबंध क्षेत्रों में विकास को बढ़ाने के लिए 29 मई, 2007 को आयोजित बैठक में राष्ट्रीय विकास परिषद (एन डी सी) ने यह पाया कि कृषि एवं संबंध क्षेत्रों के अधिक समग्र एवं समेकित विकास को सुनिश्चित करने के लिए कृषि जलवायुवीय, प्राकृतिक संसाधन और प्रौद्योगिकी को ध्यान में रखते हुए गहन कृषि विकास करने के लिए राज्यों को बढ़ावा देने के विशेष अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता (एसीएस) योजना की षुरूवात की जानी चाहिए। इस प्रेक्षण के अनुसरण में और योजना आयोग के साथ परामर्श से कृषि एवं सहकारिता विभाग (डीएसी) कृषि मंत्रालय, भारत सरकार ने वर्ष 2007-08 राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की शुरूवात की थी, जो तब से प्रचलन में है। 11वीं योजना के दौरान राज्यों को 22408.76 करोड़ रूपये निर्मुक्त किये गये थे। जिसमें से कुछ वृहद श्रेणियों नामत: फसल विकास, बागवानी कृषि, यंत्रीकरण, प्राकृतिक संसाधन, प्रबंधन, विपणन एवं फसलोंपरांत प्रबंधन, पशुपालन, डेयरीविकास, मत्सियकी विस्तार आदि में 5768 परियोजनाओं के कार्यान्वयन में 21586.6 करोड़ रूपये का उपयोग किया गया था। इस बढ़े हुए निवेश के परिणाम स्वरूप कृषि एवं संबंध क्षेत्रों में 10वीं पंचवर्षीय योजना में 2.46 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर की तुलना में 11वीं योजना के दौरान 3. 64 प्रतिषत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती है। राज्यों से प्राप्त फीडवैक, 11वीं योजना के कार्यावन्यवन के दौरान प्राप्त अनुभवों और पणधारियों द्वारा प्रदान की गई जानकारियों के आधार पर आरकेवीवाई के प्रचालन दिषा निर्देशों को न केवल कार्यक्रम की दक्षता एवं क्षमता के लिए बल्कि 12वीं योजना अवधि के दौरान इसकी समग्रता के लिए भी संशोधित किया गया है। आरकेवीवाई का उदेश्य कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र के समग्र विकास को सुनिश्चित करते हुए 12वीं योजना अवधि के दौरान वांछित वार्षिक वृद्धि दर को प्राप्त करना और उसको बनाए रखना है।

आरकेवीवाई योजना के मुख्य उद्देश्य:-

- राज्यों को प्रोत्साहित करना ताकि कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश को बढ़ाया जा सके।
- राज्यों को कृषि एवं संबद्ध योजनाओं के नियोजन एवं निष्पादन की प्रक्रिया में शिथिलता एवं स्वायता तथा प्रदान करना।
- कृषि जलवायुवीय स्थितियों, प्रौद्योगिकी एवं प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर जिला एवं राज्यों हेतु कृषि योजनाएँ बनाई जाए, यह सुनिश्चित करना।
- यह सुनिश्चित करना कि स्थानीय आवश्यकताएँ फसलों/प्राथमिकतओं को राज्य की कृषि योजनाओं में ठीक प्रकार से प्रदर्शित किया जाय।
- केंद्रीय कार्यकलापों के माध्यम से महत्वपूर्ण फसलों में उपज अंतर को कम करने के लक्ष्य को प्राप्त करना।
- कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में किसानों को अधिकतम लाभ प्रदान करना।
- कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों के विभिन्न धटकों का समग्र प्रकार से समाधान करके उत्पादन एवं उत्पादकत्ता में परिवर्त्तन लाना।

आरकेवीवाई राज्य योजना स्कीम के रूप में कार्यान्वित करने हेतु जारी रहेगी। योजना आयोग द्वारा बनाई गई संबद्ध क्षेत्रों की सूची क्षेत्रीय व्यय अर्थात् सस्यपालन (बागवानी सहित), पशुपालन और मत्स्यिकी, डेयरी विकास, कृषि अनुसंधान एवं षिक्षा, वानिकी एवं वन्य जीव, रोपन एवं कृषि विपणन, खाद्य भंडार एवं भांडागार, मृदा एवं जल संरक्षण, कृषि वित्तीय संस्थान, अन्य कृषि कार्यक्रम और सहकारिता के निर्धारण के लिए आधार होगा। इसके अलावा ऐसे व्यय जो प्रत्यक्ष रूप से कृषि के विकास से संबंधित है। अर्थात् पिछले ट्यूबवेल, गहरे ट्यूबवेल, ट्रिप इरिगेशन, स्प्रिंगकलग इरिगेशन, डलवेल अथवा इसी प्रकार के अन्य सिंचाई कार्यकलाप जो राज्य के कृषि विभागों के तहत है, बजटित कृषि एवं संबद्ध कार्यकलापों पर पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई)/प्रशासनिक इकाइयों द्वारा व्यय के प्रमाणित आँकड़ो पर भी बेस लाइन व्यय की गणना के लिए विचार किया जाना चाहिए।

जिला कृषि योजनाएँ (डीएपी) जिला विकास योजना के लिए अनिवार्य हैं। बारहवीं योजना के दौरान अन्य जारी राज्य स्कीमों जैसे महात्मा गॉधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी स्कीम (एमजीएनआईजीएस) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई) व पिछडा जिला अनुदान कोष (बीआरजीएफ) समेकित पनधारा प्रबंधन कार्यक्रम (आईडब्ल्यूएमपी) त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (एआईबीपी), भारत निर्माण आदि (राज्य व केन्द्रीय दोनों) से उपलब्ध संसाधनों पर विचार करने के पश्चात् प्रत्येक जिले में डीएपी होगी। डीएपी वर्त्तमान स्कीमों का समान्य समुच्ययन नहीं होगा बल्कि इसका लक्ष्य जिले के कृषि व संबद्ध क्षेत्रों के विकास की आवश्यकता का प्रक्षेपण होगा। ये योजनाएँ जिले के समग्र विकास परिपेक्ष्य में कृषि और संबंद्ध क्षेत्रो के लिए संदृश्य प्रस्तुत करेगी। डीएपी व्यापक तरीके से कृषि विकास योजनाओं के स्त्रोतो के अलावा अपनी वित्तीय जरूरतें भी प्रस्तुत

करेगी। चूँकि आरकेवीवाई उद्देष्यों की उपलब्ध समुचित जिला योजनाओं का परिणाम है, इन आवश्यकताओं को जहॉ तक संभव हो सके राज्य द्वारा वहन किया जाना चाहिए। राज्यों को जिला योजना के लिए उनके द्वारा विकसित संस्थागत तंत्रों को विनिर्दिष्ट करना होगा और वार्षिक योजना कवायद के स्तर पर स्थिति रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी। डीएसपी में प्रत्येक जिले में प्राकृतिक संसाधनों और प्रौद्योगिकीय संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए पशुपालन और मत्स्य पालन विकास सूक्ष्म सिंचाई परियोजनाएँ, ग्रामीण विकास कार्यो, कृषि विपणन स्कीमों और जल संचयन एवं संरक्षण स्कीमों इत्यादि को शामिल किया जाएगा। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा पहले से तैयार की गई जिला स्तर संभावना संबद्ध क्रेडिट योजना (पीएलपी) और कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी (एटीएमए) की कार्यनीतिक अनुसंधान एवं विकास योजना (एसआरईपी) को डीएपी के संषोधन के लिए निर्दिष्ट की जा सकती है। यह भी सुनिश्चित की जाय कि पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) को सौपी गई भूमिका के साथ-साथ अन्य क्रार्यक्रमों के साथ अभिबिन्दुताओं के लिए कार्य नीतियों को समुचित रूप से डीएपी में समाविष्ट कर लिया गया है। राज्य डीएपी और एमएपी को संशोधित, अद्यतन करने के लिए सलाहकारों/परामर्श एजेंसियों को भी लगा सकता है।

कृषि विकास के निर्धारक तत्वः- कृषि विकास को प्रभावित करने वाले कारक अनेक है। उनमें भौतिक, प्रौद्योकीय, आर्थिक, समाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत, संगठनात्मक, राजनीतिक कारण शामिल है। ये सभी कारक भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते है, जैसे परिवार, गॉव जिला, राज्य राष्ट्र और समग्र रूप में विश्व इनकी नियंत्रण विधि के आधार पर विकास इन कारको का अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि देश के मानव संसाधन उचित पोषण, स्वास्थ्य देख-भाल, षिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा समुचित ढंग से विकसीत नही किये जाते है, तो उन्हें उत्पादकता की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। ऐसे संसाधन विकास के लिए बोझ और बाधा बन जाते है। परन्तु यदि उन्हें समुचित ढंग से विकसित किया जाता है और उपयोग में लाया जाता है, तो विकास के लिए बड़ी परिसम्पत्तियॉ ओर प्रमुख और सहयोगी कारक होते है। कृषि विकास पर विभिन्न निर्धारक तत्वों के प्रभाव के स्वरूप और परिणाम के बारे में ज्ञान दक्षता और प्रभाविकता से आगे बढ़ना आवश्यक है। विशेष रूप से अच्छी ग्रामीण आधारभूत संरचना को कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढाने में महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें विभिन्न कारक जैसे-सड़के, सिचाई, बिजली आपूर्ति, बैंकिग संचार आदि शामिल हैं। कृषि आधारभूत संरचना का अधिक विशिष्ट स्वरूप सामाजिक आधारभूत संरचना है, जिसमें शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं विस्तार सेवाएँ और सूचना प्रसारण प्रणालियॉ सहयोगशील क्रियाविधियॉ, कृषि अनुसंधान और प्रौद्योगिकी (ÙT) आदि जैसे कारक आतें है। कृषि विकास की प्रगति को प्रभावित करने वाली ग्रमीण आधारभूत संरचना की मुख्य कमियों में बचत जुटाने और ऋण देने के लिए वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता है। सार्वजनिक निवेश की भूमिका एवं अन्य मान्य कारक है, जो कृषि विकास की काफी अधिक प्रभावित करता है।

कृषि विकास के निर्धारण तत्व

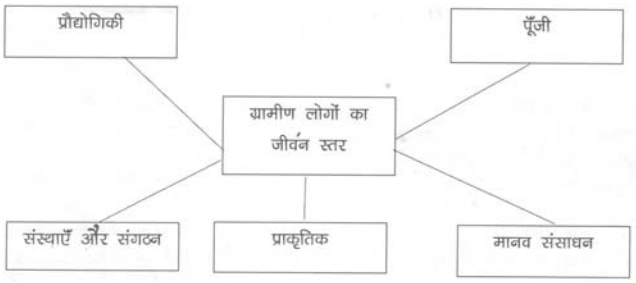

शीत भंडरण, विपणन, बिक्री केन्द्र आदि सुविधाएँ सुलभ कराने के लिए कृषि में सार्वजनिक निवेश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, (जहॉ कृषक समुदाय का बहुत बड़ा भाग' छोटे ओर सीमांत श्रेणी'' के विकास होते है, जिनकी आय और जीवन निर्वाह स्तर गरीबी स्तर की सीमा पर होती है।) यह भारत की संपर्क में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में मान्य सत्य है कि सकल पूँजी निर्माण के अनुपात के रूप में सार्वजनिक निवेश के अनुपात में अत्यधिक गिरावट आई है। पूँजीनिरूध देशों में निवेश आकर्षित करने के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) को ऐसी आधारभूत संरचना सुविधाएँ सुधारने के लिए विकल्प समझा गया है जो कृषि विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

कृषि विकास नीतियॉः-

मोटेतौर पर ''नीति को विकल्पों के समूह में से चुनी हुई निश्चित कार्रवाई के रूप में परिभाषित किया गया है। अधिक सामान्य दृष्टि में नीति प्रक्रिया का संबंध विशिष्ट रूप से परिभाषित कार्य योजना का निरूपण प्रख्यापन और अनुप्रयोग से है। यहॉ हम सार्वजनिक कृषि विकास नीतियों से संबद्ध रहेगें, जिसका अभिप्राय कृषि संवर्धन के निश्चित उद्देश्यों के अनुसरण में सरकार द्वारा की गई कार्रवाई है।

इस संदर्भ में नीति, कार्यक्रम और परियोजना के बीच अंतर करना महत्त्वपूर्ण है। नीति एक व्यापक षब्द है जिसमें बहुत से कार्यक्रम सम्मिलित होते है। इसी प्रकार कार्यक्रम में बहुत परियोजनाए होती है। नीति कार्यान्वयन से पहले कई कार्यक्रमों को निर्धारित किया जाता है। कार्यक्रम ही निर्दिष्ट करते है कि क्या, कैसे, जिसके द्वारा और कहा किया जाना है। परियोजना भी उदेश्यों, अवस्थिति, अवधि, फंड, निष्पादनकारी एजेंसी आदि के अनुसार अधिक सुस्पष्ट और ब्योरेवार होती है। इस प्रकार परियोजना नीति कार्रवाई की अंतिम ईकाई के रूप में आती है। कार्यक्रम में कई परियाजनाएँ हो सकती है। इसलिए कृषि विकास परियोजना को ऐसे निवेश कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जहॉ

संसाधनों को कतिपय पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निश्चित समयावधि में लगाया जाता है।

कृषि विकास नीति के लक्ष्यः-

कृषि विकास नीतियॉ उन दशाओं को सुधारने के लिए तैयार की जाती है। जिनमें ग्रामीण लोग कार्य करते है और रहते है। नीतियों के लक्ष्य लोगों की इच्छा द्वारा नियंत्रित होते है। नीति उपाय इस बात को महत्त्व देता है कि लोग क्या सोचते है, सरकार क्या कर सकती है। और वांछित परिवर्तन लाने के लिए क्या करना चाहिए यह सार्वजनिक नीति का सिद्धांत है। परिवर्तन केवल तभी वाछित होते है जब लोग जिस तरीके में काम हो रहा है, उसे पसंद नही करते सार्वजनिक कार्वाई के लिए दबाव तब उत्पन्न होते है जब लोग अनुभव करते है कि वे व्यक्तिशः रूप से वांछित परिर्वतन नहीं ला सकते। उनके मन में आदर्श स्थिति के कुछ मानदंड या कुछ छवि होती है, जिसकी वे आकांक्षा करते है। ये मानदंड नीति के लक्ष्य हो जाते है जिनकी आर सुस्पष्ट कार्यक्रमों के उद्देश्यों को दिग्वर्तित किया जाता है।

भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में आर्थिक नीति के दो प्रबल लक्ष्यों को देखना संभव है। (i). राष्ट्रीय आय बढ़ाना और (ii). समाज के सदस्यों में राष्ट्रीय आय के वितरण में सुधार करना। इसलिए ये लक्ष्य उन सभी आर्थिक नीतियों में परिलक्षित किए जाते है, जो पंचवर्षीय योजनाओं में निर्दिष्ट होते है। जो लक्ष्य समावेशी वृद्धि प्राप्त करने का प्रयास करता है उसे राजनीति के चार महत्त्वपूर्ण आयामों के संदर्भ में देखा जाना आवश्यक है। (i). नागरिको के ''जीवन स्तर'' का सुधार (ii). उत्पादनकारी रोजगार अवसर पैदा करना, (iii). संतुलित क्षेत्रीय विकास की स्थापना, और (iv). आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

अधिकांश कृषि विकास नीतियॉ भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के मिश्रण है, जिनके क्रियान्वयन में भिन्न-भिन्न उपायों की आवश्यकता होती है। कई कार्यक्रमों या परियोजनाओं में विभाजित सरकारी एजेंसी विशेष को उसके क्रियान्वयन के लिए पदनामित किया जाता है। ये एजेंसिया अपनी निगरानी और नियंत्रण के अधीन स्वयंसेवी और निजी एजेंसियों को क्रियान्वित करने के लिए विशिष्ट परियोजनाएं सौंप सकती है। संसाधनों की छीजन और अदक्ष प्रयोग रोकने के लिए उन्हें विभिन्न शर्तो द्वारा सीमित किया जाता है। इस प्रकार ये शर्ते निर्णायक कारक होती है जो मिलकर परियोजनाओं/कार्यक्रमों का दक्ष क्रियान्वयन निश्चित करते है।

कृषि विकास नीतियों का वर्गीकरणः-

टिनबेर्जेन गुणात्मक नीति और परिमाणात्मक नीति के बीच अंतर करता है। गुणात्मक नीति नए संस्थानों के निर्माण, विद्यमान संस्थाओं का संषोधन और प्राइवेट फर्मो के संवर्धन द्वारा आर्थिक संरचना को परिवर्त्तन करने का प्रयास करती है। परिमाणात्मक नीति कुछ प्राचलों के आकार (जैसे कर-दर में परिवर्तन) बदलने का प्रयास करती है। एक उदाहरण, जो गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनो का निरूपण करता है, निःशुल्क शिक्षा प्रणाली प्रारंभ करने की नीति है, यह गुणात्मक भी है, क्योंकि यह आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है और परिणात्मक है, यह सेवा के लिए ली गई फीस से परिवर्तन दर्शाता है।

हेडी कृषि नीतियों को (i) विकास नीतियों और (ii) प्रतिपूर्ति नीतियों में वर्गीकृत करता है। विकास नीति (i) पण्य वस्तुओं और संसाधनों की आपूर्ति बढ़ाने और (ii) उत्पादों और निवेष में सुधार करने का प्रयास करती है। प्रतिपूर्ति नीति का उदेश्य अपने लक्ष्य समूहों को विभिन्न तरीकों से प्रतिपूर्ति करना है।

बिहार में आम, अमरूद, लीची, अनानास, बैंगन, फूलगोभी, भिंडी और गोभी के उत्पादों का महत्वपूर्ण स्तर है। खाद्य उत्पादन में राज्यों की अग्रणी भूमिका के बावजूद अतीत में सिंचाई और अन्य कृषि सुविधाओं में निवेश अपर्याप्त रहा है। भारत में वार्षिक

- लीची उत्पादन में बिहार क हिस्सा 71 प्रतिशत है। अर्थात् 028 मिलियन मीट्रिक टन है।
- मक्का 1.5 मिलियन मीट्रिक टन (या देश के उत्पादन का 10 प्रतिशत) के लिए खाता है।
- गन्ने का उत्पादन 13.00 मिलियन मीट्रिक टन होता है।
- मखाना का स्तर 0.003 मिलियन मीट्रिक टन है। (बिहार राष्ट्रीय उत्पान का 85 प्रतिशत योगदान देता है।)
- आम 1.4 मिलियन मीट्रिक टन (अखित भारतीय का 13 प्रतिशत) है।
- सब्जी का उत्पादन 8.60 मिलियन मीट्रिक टन (अखित भारतीय का 9 प्रतिशत) है।
- शहद क उत्पादन 1300 मीट्रिक टन (अखित भारतीय का 14 प्रतिशत) है।
- सुगंधित चावल 0.015 मिलियन मीट्रिक टन
- दुग्ध उत्पादन (वर्त्तमान): 4.06 मिलियन मीट्रिक टन। COPFED ने 2.54 लाख सदस्यता के साथ 5023 सहकारी समितियों की स्थापना की है जो पूर्वी राज्यों में सबसे अधिक है।
- मत्स्य उत्पादन का स्तर 0.27 मिलियन लाख मीट्रिक टन है।

निष्कर्षः- उपरोक्त सभी ऑकड़े बिहार सरकार के है। कृषक षब्द का अर्थ रेडफील्ड ने इस प्रकार दिया है कि ''कृषक वे छोटे उत्पादन कर्ता है जो केवल उपयोग के लिए ही उपत्पादन करते है।'' राष्ट्रीय किसान नीति में ''कृषक'' षब्द के अंतर्गत आते है- ''जो भूमिहीन कृषि श्रमिक, बटाईदार, काश्तकार, लधु सीमान्त और उपसीमान्त खेतीहर, बड़े धारणो वाले किसान, मछेरे, डेयरी, भेड, कुक्कुट व अन्य किसान जो पशुपालन में लगे है, इसके साथ ही बागान श्रमिक और साथ ही वे ग्रामीण और जनजातीय परिवार शामिल है, जो कृषि संबद्ध व्यवसायों जैसे कि रेशम पालन और

कृषि पालन के अनेक कार्यो में लगे है। इसमें वे जनजातीय परिवार सम्मिलित हैं, जो कभी-कभी भूमि, खेती मे और गैर-इमारती लकड़ी, वन उत्पादों के संग्रह तथा उपयोग में लगे हैं।

कृषि क्षेत्र में गिरावट के वाबजूद इसका भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान वैश्विक औसत 6.1 प्रतिशत से अधिक है। भारत में कृषि योग्य भूमि के मामले में बिहार 77.78 लाख हेक्टेयर है जो यह देश के कुल 8 से 10 प्रतिशत तक खाद्यान उत्पन्न करता है। विश्व में मात्र 15 जलवायु क्षेत्र है जबकि 20 कृशि क्षेत्र है जिसमें चार मुख्य कृषि जलवायु क्षेत्र बिहार में पायी जाती है। बिहार भारत के अग्रणी 10 कृषि उत्पादक निर्यातक राज्यों में शामिल है। यह सब बिहारवासी कृषि और किसान को गर्व अनुभव कराने के लिए पर्याप्त है। लेकिन इतना होते हुए भी किसान आत्महत्या करने पर मजबूर है। किसानों की आमदनी को दोगुना करने का ध्यान रखते हुए बिहारी किसान और बिहारी कृषि की दशा को सुधारने और इसे नई दिशा देने के लिए सरकार दृढ संकल्प है।

केन्द्र सरकार ने वर्ष-2017-18 के बजट में ग्रामीण, कृषि और उससे जुड़े उद्योगों के लिए आवंटन 24 प्रतिशत बढाकर 187233 करोड़ रूपये कर दिया था। वर्ष 2022 तक किसानो तथा कृषि क्षेत्रों से जुड़े लोगों की आमदनी दोगुनी करने के लिए अनेक योजनाएँ बनायी है। इनके माध्यम से किसानों की दशा में सुधार लाकर उन्हें नई दिशा दी जा सकती है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि सही नीति बनाई जाए और सही नीयत से उसे कार्यानिवत किया जाए। हमारे यहॉ की एक प्रसिद्ध कहावत थी-''उत्तम खेती मध्यम बान, करे चाकरी अद्यम समान'' अर्थात् आजीविका श्रेष्ठ साधन कृषि है। व्यापार और नौकरी का स्थान उसके बाद आता है। इसे पुनः चरितार्थ किया जा सकता है।

संदर्भ सूचीः-

1. डॉ. गुप्त शिव भूषण (2009): कृषि अर्थशास्त्र, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन्स आगरा। 2009, पृष्ठ संख्या 111-112
2. प्रो0 राय, एल. एम. (2010): कृषि अर्थशास्त्र नव-विकास प्रकाशन, लंगर टोली पटना। 2010, पृष्ठ संख्या 150-154
3. डॉ. कुमारी, रीता (2013): भारतीय अर्थव्यवस्थ, नालंदा खुला विश्वविद्यालय। 2013, पृष्ठ संख्या 46-67
4. भार्गव, चन्द्रेश (2010): बैंकिंग प्रणाली, भूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली। 2013, पृष्ठ संख्या 154-1575
5. डॉ. शर्मा, विवेक (2009): कृषि प्रबंध, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली। 2009, पृष्ठ संख्या 235-240
6. मिश्र, एस. के. एवं पुरी, वी. के. (2010): भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुम्बई। 2010, पृष्ठ संख्या 314-331
7. कुमार, राजीव (2009): आर्थिक समृद्धि, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली। 2009, पृष्ठ संख्या 85-86
8. Mann Varpual Kaur and sungh Amritpal (2013) : Role of NABARD and RBI in Agricultural sector Growth International Jouranal of Emerging Research in Management and Technology.
9. www.yojana.gov.in
10. www.nabard.org
11. www.businessstandard.com
12. www.brlsp.in
13. www.ruraldevelopment.org.in

फ्रायड और टैगोर की कामदृष्टि : एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

निशिकान्त जायसवाल

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, डॉ० एल.के.वी.डी. कॉलेज, ताजपुर, समस्तीपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

जिन लोगों को फ्रायड और टैगोर पूरब और पश्चिम की तरह विरोधी क्षितिज जान पड़ते हैं। उन्हें शायद इसमें शर्म होगा कि आकाश एक ही है। बाहरी संसार में आदमी कितने नाते और रिश्तों में बंटा रहता है। लेकिन मन के भीतर संसार में वह बंटवारा नहीं है। मन के संसार में बसने वाले अविभाजित मनुष्य की वास्तविकता की खोज फ्रायड को भी थी, रवीन्द्र को भी। फ्रायड में जिस मनुष्य के Id, ego तथा superego के विस्तार में ढूंढ़ा, उसे ही एक अर्थ में टैगोर भी ढूंढ़ना चाहते थे तो उन्होंने कहा "मनेर मानुष मक्ये अन्वेषण"- मन के मनुष्य को मन में खोजना है। इसलिए काम भावना और प्रेम जो मन के सूत्रधार हैं। दोनों के ही विषय बन गये। फ्रायड का काम-भावना जीवन की प्रेरणा-शक्ति के रूप में है तो टैगोर का प्रेम तत्व भी उतना ही व्यापक और शुद्ध है। सच्चे प्रेम की श्रेय उच्चता को फ्रायड जिस प्रकार आदमी के व्यक्ति का सबसे मग्ण हुआ प्रमाण मानता है उसी प्रकार उच्च कोटि के प्रेम का श्रेय टैगोर उस दृष्टि में मानते हैं जिसमें सौन्दर्य के प्रति भोग का भाव समाप्त हो हर दिव्य वासना का हो जाता है। प्रमाण में टैगोर की "विज्ञणिनी" शीर्षक कविता को याद करें जिसमें कामदेव वन देवी की अभी-अभी नहाई हुई और वस्त्रहीन रूपराशि को देखकर वासना के वाण उस पर छोड़ना चाहता है किन्तु देखते ही देखते उसके चरणों पर अपना धनुष वाण समर्पित कर देता है। मनुष्य के काम भाव की श्रेष्ठता का शायद यही प्रेम भरा स्वप्न फ्रायड ने भी देखा होगा जिसमें योग्य संसार के विरले ही आदमी सिद्ध हो सकते थे। अधिक तो उसके मनो विश्लेषण के विषय बनकर रह गये।

जोन ब्योर ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्बन्ध में कहा था - "He is India bringing to Europe a new syumbol not the cross but the lotus." और वस्तुतः यह परिवर्तनकारी प्रतीक जो टैगोर द्वारा प्रस्तुत किया गया वह सार्वभौम महत्ता का अधिकारी भी हुआ है। वे सौन्दर्योपासक थे। अपने इस नवीन अनुसंधान के बल पर उन्होंने बौद्धिक पृथकता की दीवार को तोड़ने में सफलता प्राप्त की जो राष्ट्रों को पृथक-पृथक रखती थी। उन्होंने भारत के लिए सौन्दर्य की नई वाइबिल दी। जैसे-जैसे उनकी कृतियों को स्तवन बढ़ता गया वैसे-वैसे लोगों ने अनुभव किया कि वे अपने में अद्वितीय थे। वे वस्तुतः ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की सम्मिलित भूमि थे और प्रमुखतः एक कलाकार थे। उन्होंने विचार के क्षेत्र में एक पूर्णतः नवीन युग का शुभारम्भ किया।

प्राथ्य के लिए टैगोर ने जितना किया फ्रायड ने बहुत अंशों में पाश्चात्य के लिए भी उतना ही किया। फ्रायड ने विज्ञान का तथा विचार के सभी अंगों का निर्देशन एक नई दिशा की ओर किया है और उसकी इस महत्ता के कारण ही मनोविज्ञान में फ्रायड का एक अलग युग ही मानते हैं। फ्रायड ने मन को Id के साथ ही Ego तथा Superego का सम्मिश्रन माना है और किसी भी प्रकार ही आधुनिक विचारधारा को पूर्णतः समझने के लिए उसकी बहुत ही आवश्यकता प्रतीत होती है। फ्रायड का यह संदेश जिस प्रकार सिद्धान्त के क्षेत्र में अत्यन्त ग्राह्य है वैसे ही व्यवहार के क्षेत्र में अत्यन्त क्रान्तिकारी भी। वास्तव में यह बहुत ही मनोरंजक है कि एक समय के इन दो महान विचारकों को करीब-करीब एक ही चीज कहती है- हाँ दोनों की अभिव्यक्ति का रूप अलग-अलग है दोनों ही अपने विचारों में क्रान्तिकारी हैं।

वास्तव में बहुत ही यांत्रिक प्रक्रिया होगी अगर यह बतलाया जाय कि फ्रायड तथा टैगोर दोनों किन-किन बातों पर एक दम एक प्रकार का विचार रखते हैं। टैगोर तथा फ्रायड का एक दूसरे से सम्बन्धित अध्ययन किया गया और यह देखने का प्रयास किया गया कि उनके विचारों में समता है या नहीं। मगर क्या अपने इस दुस्साहस में पहली सीढ़ी पर ही हमें दिक्कत नहीं होगी। हाँ सचमुच किसी महान् कवि को तथा एक महान दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक को एक ही साँस में उल्लिखित करने में थोड़ा आश्चर्य अवश्यंभावी है।

टैगोर एक कवि है। कभी-कभी तो उन्होंने दार्शनिक की खिल्ली भी उड़ाई है। उनकी कविता "Cycle of Spring" में जब राजा कवि से पूछता है कि उसकी कला का क्या अर्थ है। तब कवि ईश्वर को धन्यवाद देते हुए उत्तर देता है कि उसकी कविता को कोई दार्शनिक शिक्षा नहीं देनी है। यह सिर्फ अपने अस्तित्व का सूचना देती है। टैगौर एक स्वपन द्रष्टा है मगर फ्रायड विचार के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक हैं। एक वैज्ञानिक के नाते फ्रायड का कर्त्तव्य शृंगारिक की वहिस्मृति तथा विवेकशीलता तथा वास्तविकता की अभिव्यक्ति है। टैगोर एक कलाकार होने के

कारण कहीं भी मनोभ्रमण कर सकते हैं। फ्रायड को वैज्ञानिक बन्धनों की रक्षा करनी है उसके पाँव कुछ नियमों में बंधे हुए हैं जिन्हें वह तोड़ नहीं सकता। तब फिर किसी भी प्रकार की समता की बात सोचें तो कैसे।

मगर वास्विकता वैसी नहीं। टैगोर एवं फ्रायड दोनों को ही एक सी चीज कहनी है। एक ही संगीत में दोनों गाते हैं एक राग, दोनों की आवाजें भिन्न-भिन्न है। दोनों की लयें भिन्न हैं। दोनों के ताल भिन्न है।

सिर्फ टैगोर के साथ ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय विचार के साथ न तो कभी दर्शन तथा मनोविज्ञान में पूर्ण अन्तर रहा है और न सम्भव ही है भारतीय विचार का मौलिक सिद्धान्त यह है कि परमार्थ सत्ता एवं हमारी आन्तरिक सत्ता दोनों समान है और यह सत्य जिसका दिग्दर्शन टैगोर के द्वारा भी हुआ है, मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है।

फ्रायड ने कला की एक अलग ही परिभाषा दी है। सर्वप्रथम वह कलाकार का विश्लेषण करता है और देखता है कि चूँकि कोई भी कलाकार कुछ सीमाओं का अनुभव करता है कुछ बन्धनों तथा व्यवधानों को मानता है और उसका अतिक्रमन करने में भी वह अपने को पूर्णत: असमर्थ पाता है, वह कल्पना लोक में चला जाता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की असंख्य सामाजिक तथा असामाजिक इच्छाएँ होती है। कुछ की पूर्ति में उस समाज के नियमों द्वारा बाधा पड़ती है वह वैसी इच्छाएँ दमित हो जाती है और अचतेन में चली जाती है। मगर यथा संभव वे अपनी संतुष्टि चाहती है और उसके लिए कोई कलाकार कल्पना लोक का सहारा लेता है। उनकी भावनाओं की पूर्ति कविताओं, कहानियों, उपन्यासों तथा कला के अन्य अंगों में होती है।

टैगोर में भी हम इसी तत्व को पाते हैं। वे भी इसी चीज का अनुभव करते हैं और कभी दूर तक इसे मानते हैं कि कला असंतुष्ट दमित इच्छाओं के कारण ही उत्पन्न होती है। उन्होंने अपनी पुस्तक personality में कहा है- "In our life we have one side which is finite where we exhaust ourselves at every step, and we have naother side where our asspirations enjoyments and sacrifices are finfinite. This infinite side of man must have its revealments and satisfactions in some symbols..... it builds for its dwelling a paradise where only those materials are used that have transa\cended that earth's morality." अत: उनके अनुसार भी कलाकृति के द्वारा ऐसे संसार की रचना की जाती है जहाँ हमारी बहुत सी आशओं इच्छाओं तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा संतुष्टि है। फ्रायड को भी करीब-करीब वही कहना है। फ्रायड के साथ टैगोर भी यह मानते हैं कि व्यक्ति की कुछ भावनाएँ असामाजिक होती है, और इसलिए उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति संभव नहीं। टैगोर मानते हैं- There is another division in man.... it is the dualism in his conciousness of what is and what ought to be in man that conflict is between what is desired and what ought to be desired."

फ्रायड और टैगोर दोनों ही इस बात पर एक मत हैं कि समाज में आचार के नियम हैं जो हमारी इच्छाओं की जाँच करते हैं, क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए? यह सत्य है कि टैगोर उन आचार के नियमों का एक दूसरा ही रूप देते हैं उनके अनुसार हमारी जो इच्छा होती है वह हमारे प्राकृतिक जीवन के हृदय में निवास करती है, जिसके कारण हम पशुओं से समता रखते हैं और हमारी जो इच्छा होनी चाहिए वह हमारे जीवन के अभ्यन्तर पक्ष में तथा इस जीवन के परे की अवस्था में निवास करती है।

फ्रायड के अनुसार धर्म सम्पूर्ण मानव जाति का एक मानसिक बीमारी है। अत: इसे एक दिन अवश्य ही लुप्त हो जाना चाहिए। यह एक भ्रम है किन्तु यह भ्रम विश्व व्यापक भ्रम है। ऐसा कहा जाता है कि कोई स्वप्न जिसे सभी देखते हैं और निश्चित रूप से देखते हैं स्वप्न नहीं सत्य बन जाता है। अत: यह भ्रम ही यथार्थ या वास्तविक हो गया है। किन्तु इस धर्म का भविष्य क्या होगा? क्या उसका भी चरम लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष ही रहेगा।

मुक्ति की अवस्था में न दु:ख रहता है न दर्द, न प्रेम रहता है, न घृणा। किसी भी तरह की इच्छा या मानसिक भावना नहीं रहती। मगर फ्रायड के लिए यह स्थिति मान्य नहीं हो सकती क्योंकि वह मानता है कि मानसिक अवस्थाएँ जैसे चेतन, उपचेतन, अचेतन फिर Id, ego और suiperego कभी भी लुप्त नहीं होती। जीवन के साथ ही उसकी समाप्ति होती हैं दूसरी ओर जब हम टैगोर को देखते हैं वे भी उसी स्थिति को मानते हैं। वे भी ऐसी मुक्ति की आशा नहीं रखते जो किसी भी प्रकार की मानसिक अवस्था संवेग तथा भावना से परे हो। बल्कि वे ऐसी मुक्ति की कल्पना करते हैं जो मानव जीवन की असंख्य सीमाओं तथा मानसिक अवस्थाओं के अनगिनत व्यवधानों से घिरे होने पर किसे वे मानते हैं-

वैराग्य-साधन में मुक्ति से आभार नय,
असंख्य बन्धन माझे, महानन्दमय लभिवो मुक्ति स्वाद।

फ्रायड और टैगोर दोनों ही जीवन की सम्भावनाओं में कट्टर विश्वास रखते हैं फ्रायड अचेतन की कल्पना करता है। जो विश्व का संचालक है। टैगोर अपने सभी साहित्य को जीवन-देवता की वेदी पर चढ़ा देता है। दोनों के लिए जीवन रचनात्मक तथा शाश्वत है। फ्रायड के लिए भी वस्तुओं के पिछे अचेतन है जो सर्वशक्तिमान है और शास्वत: जीवन अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति उसे माध्यम से पाता है। टैगोर की सभी चीजें जीवन देवता पर आखिर निर्भर करती है जो सभी तरह के जीवन का जनक है।

फ्रायड पर एक सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि उसने योन मनोविज्ञान पर सर्वाधिक जोर दिया है मगर ऐसी बात नहीं। Sex शब्द फ्रायड के द्वारा उसी रूप में व्यहृत नहीं हुआ है जिस रूप में उसे हम अपने प्रतिदिन के जीवन में व्यवहृत करते हैं। फ्रायड उसका व्यवहार शुद्ध, श्रेष्ठतर क्षेत्र में करता है। Sex के सम्बन्ध में फ्रायड कहता है कि किसी भी प्रकार का आनन्द जो शारीरिक स्पर्श से मिलता है वही सेक्स कहलाता है। सुख, सिद्धान्त तथा यथार्थ सिद्धान्त से बने हुए उसके libido को प्राय: सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विचारकों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मान लिया है। टैगोर भी ऐसा मानते हैं कि वासना के प्रति सबको आकर्षण है और सभी व्यक्तियों का मार्ग उससे निर्धारित होता है। अपनी किसी कविताओं में ईश्वर से ऐसी शिकायत करते हैं कि संसार के दूसरे लोग मुझे वासना के आकर्षण से खींच रहे हैं।

"तब नर नारी सबे दिग्विदिके मोरे हेने निएजाय

कत वेदनगर डोरे वास नार होने"

और फ्रायड की तरह वे भी प्रेम की भावना पर आक्षेप नहीं करते और उसे मानव जीवन का एक आवश्यक अंग मानते हैं। टैगोर भी सभी तरह के प्रेम को सांसारिक या संसार से परे पवित्र मानते हैं।

अपने एक वर्णन में उन्होंने एक युवक की तस्वीर आंकी है। जिसका सारा जीवन अपनी प्रेयसी के प्रेम में ही बीत जाता है। न्याय के दिन देखता है कि उसका सारा प्रेम गुणों की पुस्तिका में लिखा हुआ है। वह आश्चर्यचकित रह जाता है किन्तु तभी चित्रगुप्त उसे समझाते हैं कि प्रेम और पूजा दोनों एक ही चीज है।

"साधु महारेंगे वसे यौवनेर पात

एत पुण्य केन लेखे देव पूज्य खाते?

चित्रगुप्त हेरे बले बड शकृ कू इस

यारे वले माल बांसा तारे बले पूज्य।"

इस तहर प्रेम और पूजा को समान मान कर टैगोर ने फ्रायड का समर्थन किया है।

टैगोर के समर्थक उनकी इन प्रेम कविताओं को किसी ऊँची तरह के प्रेम को बतलाने वाली कविता कहकर व्याख्या करेंगे। उसे विश्वस्तरीय प्रेम मानेंगे। इस स्थल पर टैगोर की कुछ ऐसी पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ जो शारीरिक प्रेम की आवश्यकता दिखलाती है।

आत्मा का आत्मा से प्रेम नहीं बल्कि शरीर का शरीर से प्रेम। अपनी कविता "दे हेर मिलन" में उन्होंने कहा है। मेरा प्रत्येक अंग तुम्हारे प्रत्येक अंग के निकट जाना चाहता है।...... और अब आत्माओं की एकता शरीरों की एकता माँगती है। हृदय से आच्छल मेरा शरीर हृदय ही के भय से तुम्हारे शरीर पर मूर्छित होकर गिर जाना चाहता है।

"प्रति अंग काँपे, तब प्रति अंग तरे

प्रामेर मिलन माँगे दे हेर मिलन

हृदय आच्छन्न देह हृदयेर मयें

मूरूछि पड़िते चाय तब देह परे।"

अब यह कविता प्रेम के सिर्फ उसी रूप को दिखाना चाहते हैं जिसे फ्रायड ने आवश्यक माना है। इस प्रकार टैगोर फ्रायड के मत को बहुत दूर तक मानते हैं। और Auden के साथ फ्रायड के बारे में हम भी यह कह सकते हैं कि "To us he is no more a person now but a whole climate of opinion."

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि एक ही समय के दो प्रमुख विचारक पूर्णत: एक दूसरे से भिन्न विचार रखते हैं। मगर इससे अधिक समानता की हम आशा नहीं कर सकते हैं। कोई तो उसे काल्पनिक स्वप्न में देखता है और कोई उसे परीक्षण और प्रयोग में।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सौन्दर्य का आकर्षण ही फ्रायड के काम और टैगोर के प्रेम का मूल है। वासना का विकास ही फ्रायड के व्यक्तित्व बल और टैगोर के मनोबल का कारण है। इसलिए फ्रायड की भाषा में जिसे मनोग्रन्थियों से मुक्ति कहेंगे। उसे ही बहुत अर्थों में टैगोर की भाषा में चेतना की मुक्ति कह सकते हैं। फ्रायड का मनुष्य यदि मन की लघुताओं के कारण छोटा है तो टैगोर का मनुष्य भी और यदि फ्रायड का मनुष्य मन की महत्ताओं के कारण बड़ा है तो टैगोर का भी। मृत्यु के सम्बन्ध में जिस प्रकार फ्रायड आदमी में मरण की प्रवृति (Death instinet) की विशेषता पर बल देता है कि वह मृत्यु से डर का भी उसके आकर्षण से खिंचता रहता है और कितने ही बहानों से इनकार कर के भी उसे स्वीकार करता है, वही बात टैगोर की भावना में भी मिल जाती है। टैगोर ने मेरम हे तुभि मोर श्याम समान। कृष्णा के समान मृत्यु को भी प्रिय कहकर या मरिते चाई ना आसि सुन्दर भुवने मानकर माझें आभि बाँचिवार चाई लिखकर संसार में जीने के लोभ और मरने के आकर्षण की विरोधाभास भरी व्यंजनों की है तो बहुत दूर तक माना जा सकता है कि काम-भाव वासना, प्रेम, मनोलोक, सौन्दर्य और मृत्यु को समान विषय मानकर मनोविज्ञान और साहित्य में मंजिलें बनाने वाले ये दो द्रष्टा एक ही सत्य का दो पहलुओं से महत्व सिद्ध करते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के संदर्भ में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन दोनों ही विचारकों के विचार इस बिन्दु पर लगभग समानान्तर में पाये गये हैं।

संदर्भ

1. रविन्द्र नाथ टैगोर- उपन्यास - पोखरे वारणी (आँख की किरकिरी) - शेपेर कविता
   गीतिकाव्य- गीतान्जलि
   एक नक्षत्र की आत्महत्या फरे वाइरे (मनो वैज्ञानिक राजा)
   कहानी- कथा चतुष्टय 1894
   गल्प दशक 1895
2. Frend S. : The interpretation of dream, New York, Macmillan, 1992.
3. Frend S. : Introductory Lectures on Psychoanalysis, London, Allen 1929.
4. Frend S. : The Isychopathology of everyday life, in A.A. Brill (Ed.) the basis\c writings of Sigmund Frend, New York, Modern Library, 1938.
5. Frend S. : Outline of Psychoanalysis, New York, Norton, 1949 (Translated by J. Strachey).
6. Frend S. : Collected Papers London, Hogarth, 1924, Vol. II.

Vedic Mathematics In Ancient India : A Review

Dr. Neeraj Devi

Asstt. Professor, Department of History, M.M. PG College, Fatehabad, Haryana

Abstract

Vedic mathematics is an ancient Indian mathematical system or set of precise rules that can be applied to any trigonometric, algebraic, arithmetic, or geometric problem. This technique is based on the 16 Vedic Sutras, which are a collection of verbal equations that explain the steps or considerations involved in solving various mathematical problems that are difficult and time-consuming to answer using traditional methods. Starting with the basics of Vedic Mathematics like the meaning of Vedic Mathematics, this article explores mathematical operations using Vedic Mathematics. The mathematical formulas of the Vedas are then presented with the help of many examples and can be used to perform various mathematical operations such as subtraction, addition, division and multiplication among others. Vedic mathematics is basic mathematics, but it is a better method of doing mathematics. It has a bright future ahead of it and will help in studying mathematics in depth with clear explanations. Because it is now taught in all high schools and colleges.

Keywords: Digit, Formula, Mathematics, Operation, Veda.

Introduction

The most common definition of Veda is "knowledge". It is both the oldest layer of ancient Indian culture and the oldest texts of Hinduism. The Vedas are considered to be of divine origin and are considered divine revelations from God. The four Vedas are Yajur-veda, Rig-Veda, Atharvaveda and Samaveda. The Vedas are ancient texts of uncertain exact date, although they are believed to date from the early centuries BC. The contents of the Vedas were known long before the invention of printing and were freely accessible to all. This has been passed down through word of mouth for centuries. The Vedas are a collection of texts that have recently been found to be highly organized both internally and in their interrelationships. Krishna spent 8 years in the pine forest of Shringari Shringari Móra practicing Brahma sadhana and learning the advanced theory of Vedanta between 1911 and 1918. According to him, one of the results of his determination was the discovery and reconstruction of Vedic language from stray allusions within parts of the appendix of the Atharvaveda. As shown in Figure 1, Vedic mathematics is a logical and mathematical system based on sixteen patterns and thirteen subpatterns with a basic idea and rule. Vedic mathematical processes are based on both contemporary and ancient mathematical systems. Each formula describes a concept of mental work that can be used to solve different math problems.

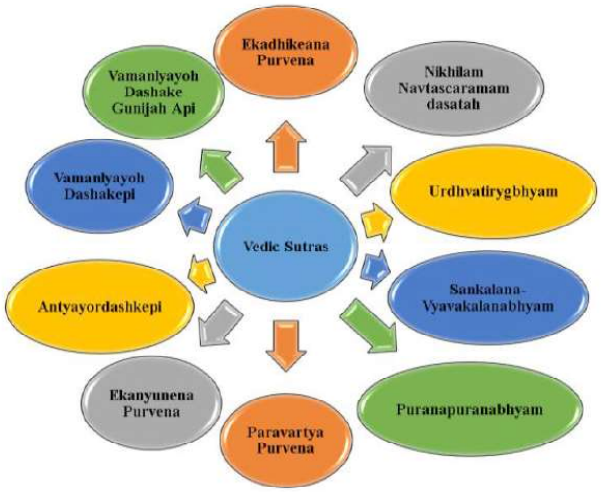

Figure 1: The Sixteen Formulas and Thirteen Sub Formulas with the Simple Rules and Concepts

An Empirical Study on Role of Vedic Mathematics in Improving the Speed of Basic Mathematical Operations

Addition

The addition formulae used in Vedic Mathematics include SankalanaVyavakalanabhyam,

EkadhikeanaPurvena, and Puranapuranabhyam. The following stages may be used to break down the whole process of adding:

```
  9' 8' 7
  4 6' 6'
  8' 4 7'
+ 2 4 8
---------
 2 5 4 8
---------
```

Figure 2: An Example of the Addition Operator Which is done by with the help of Vedas Formula

Add the numbers column by column, and when the total exceeds 10, mark it with a tick or a dot. Continue with the remainder of the ten and add it to the next digit in the column. Finally, add up the number of pieces or dots and enter the total in the following fields. Figure 2 shows an example of addition.

Subtraction

Vedic recipe for success "All of 9 and last of 10" is the meaning of Nikhilam Navatascaramamdasatah for subtraction operation. When subtracting from a multiple of ten, such as 10, 100, 1000 or 10000, traditional techniques need numerous carryovers, which wastes time and creates doubts about accuracy, while Vedic approaches help in this area while saving time. The following examples, as shown in Figure 3, can be used to demonstrate subjects.

- Move from right to left as soon as possible. Replace the last 0 with 10 and each left zero with 9. The leftmost digit is reduced by one before the zero.
- For example, consider removing 5472 from a total of 400,000.

400000		399910
–5472	will become	–5472
		394528

Figure 3: An Example of the Subtraction Operator Which is done by with the help of Vedas Formula

- When the digits on the minuend (upper digit) > the Subtrahend digit, a normal subtraction is performed (lower digit).
- Take the complement of the difference if there are more upper digits than lower digits (with 0's complement it is 10). 1's complement is 9, 2's complement is 8, and so on. The complement of the last digit is chosen from 10, while the complements of the other digits are chosen from 9.
- When we have reached the point where we do not need to take the complement, we remove 1 from the column.

Multiplication

Anurupyena Antyayoshatakepi, Nikhilams Navatascharam Dasatahs, Antyayordashkepi, Ekanyunena Purvenas, Vamanlyayohs Dashakepi, Vamanlyayohs Dashakepi, Vamanlyayohs Dashakepi, Vamanlyayohs Dashakepi, Vamanlyayohs Dashake Urdhvatiryagbhyam and Gunijahs Api are two Vedic multiplication formulae. With the exception of Urdhvatiryagbhyam, which has a restricted use, all of formulas are special formulas for multiplication. Many specific equations can help us quickly determine the solution to a certain type of multiplication, and the Urdhvatiryagbhyam method can help us with any type of multiplication. Here are some examples of special formulas:

Antyayotdashakepi

This formula is valid only if the total unit digits of the multiplier and multiplicand are 10 and the other digits are the same. RHS and LHS will be two parts of the final goods. Multiply the units digit by two and place the result in the RHS (right side) area. In the LHS (Left Hand Side) section, write the product of (Remaining digits in the hundreds or tens place) and (Remaining digits in the hundreds / tens place add 1). To multiply 75 by 75, for example, RHS = 5 x 5 = 25 and LHS = (7 + 1) 7 equals 72. The result is 7225.

Vamanlyayoh Dashakepi

This formula is valid when the sum of the tens digits in the multiplier and the multiplicand is 10 and the units of the multiplier and the multiplicand are the same. The process of obtaining additional information. The answer to such questions consists of two parts.

LHS = product of left-hand digits whose sum is 10 + units digit; and RHS = the square of the unit digit. For example, to multiply 98 by 18, LHS = 9 x 1 + 8 = 17 and RHS = 8 x 8 = 64. Result = 1764.

Nikhilam Navatascharam Dasatah

When the multiplier and multiplicand are close to the base, this approach works well. The bases should be of the form 10n, where n is a natural number. The following is a step-by-step explanation of the concept. Write the two numbers below each other along with their deviations from the base. This has two parts.

- The diagonal cross operation of two numbers will give the left component.
- The right-hand side of the solution can be obtained by multiplying the deviations.

The numbers to the right of the digits will correspond to the number of zeros in the base number. As shown in Figure 3, this approach can be used for different scenarios. When both numbers are greater than zero, the following applies:

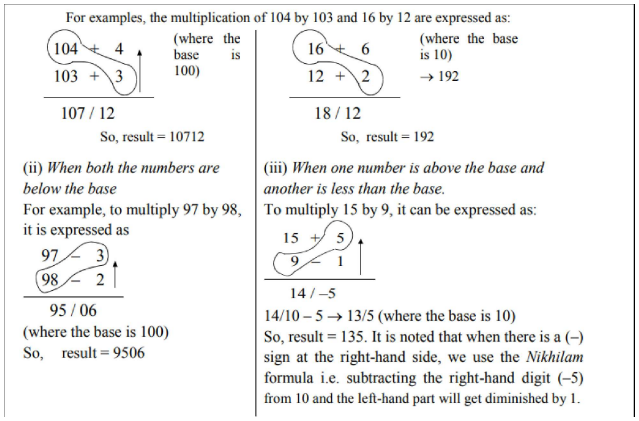

Figure 4: An Example of the Multiplication Operator Which is done by with the help of Vedas Formula

Ekanyunena Purvena

The meaning of the formula is "one less than the previous one." This formula is used when the multiplier is 9, 99, 999 or 9999. The methodology can be divided into two types.

- When the digits of the multiplier are equal to or less than the numbers of nines: The procedure is as follows: Subtract 1 from the multiplier and put the result in LHS; next, subtract the multiplicand using Nikhilam's formula and record the results on the RHS.
- For example, to multiply 3784 by 999999, use LHS = 3784 – 1 = 3783, RHS = 999999 – 3783 = 996213, and Results = 3784996214.
- When the multiplier digits are more than nines: It's a little different than what you're used to.
- Multiply the multiplier by as many zeros as there are nine to get the answer.
- Subtract the original multiplicands from the figure from the first step.

Literature Review

Students are not able to speed up the calculation process even if they understand the problem. A group of twenty-five students writing competitive exams are given some basic math calculations like multiplication, square root, cube root and subtraction of fractional decimal numbers and are told to solve questions without and using Vedic method techniques. paper. The time required to perform the calculations before and after using the Vedic methods approaches is measured in minutes and paired t test is used to compare the results. Their study showed that when performing basic mathematical operations, the use of the Vedic method significantly speeds up calculations. With the wish that their article will be useful and active in the real Vedic Maths research and methods to increase computational speed especially in competitive exams.

Krishna Kanta Parajuliet al. have studied ancient Sanskrit literature and recreated Vedic mathematics. Vedic mathematics is based on the Vedas and was popularized between 1911 and 1918 in the early twentieth century. It is a mathematical system that is very independent, efficient and complex and is based on their sixteen equations as well as many sub-formulas with basic principles and precepts. The main aim of their contribution is to convey new mathematical methods that provide straightforward, parsimonious, mental and one-line solutions to mathematical problems. Basic math operations like subtraction, addition, division and multiplication can be done quickly and verified using Vedic principles and results can be obtained and checked in less than a minute. For each problem, this approach usually has one general method and many specific pattern problems. Their article is exclusively focused on the unique pattern of basic operations of Vedic mathematics.

Between 1911 and 1918, Indian mathematician Jagadguru Shri Bharathi Krishna Tirtha developed Vedic mathematics according to Archana V Katgeri. Tirthaji Maharaj, also known as BharatiKrsna, subsequently published his findings

in a book on Vedic mathematics. BharatiKrishna was a devotee of Lord Krishna who lived from 1884 to 1960. He was a brilliant student who excelled in all his subjects including mathematics, Sanskrit, English, philosophy, science and history. After hearing what European scholars had to say about the parts of the Vedas that were supposed to contain mathematics, he decided to study the articles and see what they had to say. Between 1911 and 1918 he was able to reconstruct the ancient mathematical systems known as Vedic mathematics. Vedic Mathematic is a set of methods for solving mathematical problems quickly and easily. It consists of sixteen sutras and thirteen sub-sutras that can be used to solve problems in algebra, conics, arithmetic, geometry, and calculus. Vedic Mathematics is a methodology of mental mathematics. There are many Vedic methods that intertwine. For example, division can be thought of as the simple opposite of multiplication. This is in direct conflict with the current system. Solving problems using traditional mathematical methods can sometimes be difficult and time-consuming. General and specific techniques of Vedic Mathematics can be used to perform numerical calculations quickly and correctly.

Ajai Kumar Shukla and colleagues examine the ancient Indian mathematical systems known as Vedic mathematics, which were discovered in the early twentieth century from the ancient Indian book Atharvaveda. The purpose of the reading was to evaluate the effectiveness of teaching mathematics using both conventional and Vedic methods in terms of students' performance in mathematics. This experimental study used a pre-test-post-test equivalent control group design, with each group consisting of a randomly selected sample of thirty students from BKT College. The study focused on the main subjects taught in the Uttar Pradesh Basic Education Board's eighth grade mathematics curriculum such as square root, square root, factorization of algebraic expressions and simultaneous parsimonious equations. Means, standard deviations, t test, and effect sizes were used to analyze data collected by the self-administered Achievement Test in Mathematic (ATM) as a posttest and pretest. The arithmetic performance of the experimental group was much higher than that of the control groups in the post-test. In both collections, there was no significant difference between male and female students in the posttest.

Discussion

This article examines mathematical operations using Vedic mathematics, starting with the basics of Vedic mathematics, such as the meaning of Vedic mathematics (the most common definition of Veda is "knowledge"). It is both the oldest layer of ancient Indian culture and the oldest texts of Hinduism. The Vedas are considered to be of divine origin and are considered divine revelations from God. The four Vedas are Yajurveda, Rig-Veda, Atharvaveda and Samaveda). Furthermore, they are the formulas of Vedic mathematics (Vedic mathematics is a logical and mathematical system based on sixteen formulas and thirteen sub-formulas based on basic ideas and rules). Vedic mathematical methods are based on both contemporary and ancient mathematical systems. Each formula describes a concept of mental work that can be used to solve various mathematical problems.) In addition, this insightful article discusses numerous operations in Vedic mathematics such as addition, subtraction, multiplication, etc., which are used with the help of the Vedas formulas and examples.

Conclusion

This article concludes that Vedic mathematics is very important for a thorough understanding of mathematics. It consists of various Vedas derived from Indian agriculture and these Vedas help in performing various types of mathematical operations like subtraction, addition, division and multiplication among others by providing various 16 formulas written in Vedic mathematics. This article provides an overview of Vedic mathematics. Vedic mathematics is a basic kind of mathematics, but it is a more intelligent method of doing it.

It has a bright future ahead of it, and it will help students study mathematics more thoroughly with clear explanations. There are a number of researchers who use Vedic mathematics to study and evaluate mathematical processes. Vedic Mathematics is an old Indian technique of mathematical calculations or processes that was created in 1957 and consists of sixteen word

formulas and several sub-formulae. In competitive exams with little or no time, students find it difficult to answer aptitude questions quickly.

References

[1] Vedas. wikipedia.

[2] Sapnabajantri. Division Made Easier by Vedic Mathematics. Sapnabajantri. 2017.

[3] 16 Sutra Formulas of Vedic Mathematics- ziyyara.

[4] Addition and Subtraction Tricks- cuemath.

[5] Of A. Fundamental+and+Vedic+Mathematics+.

[6] 8 Vedic Maths Tricks: Calculate 10x Faster- vedantu.

[7] Mathematics IV, Mathematics IV. Supplement to chapter 8. :20–31.

[8] YS. Implementation of Arithematic Operations Using Vedic Mathematics. Int J Res Eng Technol. 2015;04(17):114–6.

[9] Vedic Maths Tricks- Tiwari academy.

[10] Karani KP. ISSN : 2249-0558. 2017;(April).

[11] Parajuli KK. Basic Operations on Vedic Mathematics: A Study on Special Parts. Nepal J Math Sci. 2020;1:71–6.

[12] Koch LA. Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work. 2017;(45269).

[13] Shukla AK, Shukla RP, Singh AP. A Comparative Study of Effectiveness of Teaching Mathematics through Conventional & Vedic Mathematics Approach. Educ Quest- An Int J Educ Appl Soc Sci. 2017;8(3):431.

Environmental Change and Urbanization in the Indus Valley and Ganga Valley [C. 2500 B.CE. – AD 8th Century]

Dr. Manoj Kumar

Assistant Professor, Department of History, Maa Kamakhya Mahavidyalya, Gahmar, Gajipur

The present paper intends to investigate the first and the second urbanization in the Indian subcontinent in the context of environmental changes. This presumes that urbanization-environmental change was a two-process i.e., urbanization leading to environmental change and environmental change affecting urbanization. In both the cases of Indus Valley Urbanization (2500 B.CE-1750 B.CE.) and the second urbanization in the Ganga Valley (6th Century B.CE. AD. 5th Century), this reciprocity becomes quite apparent, once the urban centres, especially their decay is examined closely and critically from environmental changes and ecological imbalances point of view, this however, is not to deny the contributory roles of other factors, such as economic (trade decline) armed invasion, etc.

As regards environmental changes influencing the nature and quality of urbanization in the Indus Valley, the following factors seem to be significant and some of these, it would be noted were natural phenomena while others were caused by human activity.

Back in 1960s the hydrologist, Robert Raikes and the archaeologist, George Dales, independently, then jointly, put fourth theories for the seasonal "ponding" of Mohenjo Daro and some smaller sites nearby in Sind. Each scholar felt able to hypothesize, from the standpoint of his own separate studies, that a swelling of the ground during the Harappan period produced a type of natural barrier across the Indus River, perhaps some 10 km wide and as much as 45 meter high. This tectonic activity would have probably taken place near Sehwan, some 145 km downstream from Mohenjo Daro, and would have formed a lake 85 km long, 8 km wide and 5 meter deep.

The result of such a phenomenon during the Harappan period would have been an annual inundation of sites as the natural reservoir would have dried up or at least shrunk considerably. Associated with such a calamity would have been the problems posed by water-borne diseases and the disposal of wastes. Of course, problems of food supply and trade would have been exacerbated.

One can easily imagine that such a situation would have given rise to the use of massive mudbrick platforms as the foundation for domestic activities and constructions in an attempt to stay high and dry above the inundation lake. Thus Wheeler was right in terming the massive constructions as defensive constructions; however, they were defenses against intruding water, not intruding people. It is also equally reasonable to suggest that the Harappan fixation with the control of water was somehow linked to this phenomenon.

Another natural and uncontrollable factor in the demise of at least some of the Indus cities was tectonic uplift on a grand scale. The evidence for this is simple and indisputable; Harappan seaports along the Makran coast, such as Sutkagendor, Sotka Koh and Bala Kot are now as far as 50 km inland. "These displaced ports made it evident that the coastline of Pakistan had risen considerably during the past 4,000 years, with the initial rise apparently having occurred during the post Harappan period (Dales 1966:95). The earthquakes associated with such an uplift would have been tremendous and the disruption of sea and land trade networks would have been devastating. The proximity to Arabian Sea trade routes was after all the raison d'etre for sites such as Sutkagen Dor and Sutkha Koh. This tectonic uplift, then, would explain the demise of several Harappan coastal

sites, as well as simply a hardship for many other Harappan sites which were dependent on these costal sites for trade and / or marine resources.

The urban site of Kalibangam is located in the Rajasthatn and was, like Mohenjo Daro and Harappa, abandoned approximately in the 18th Century B.C. Here Raikes found the soil a "coarse greyish sand very similar in mineral content to that found in the bed of the recent day Yamuna," the main river of the area (Raikes (968:286). Raikes hydrological and archeological investigations indicate an "alternating capture of the Yamuna by the Indus and Ganges systems respectively" due to coriolis force for the western migration and reactive geological controls causing a bank avulsion and flooding for the eastern migration. Put simply, the Yamuna (or Ghaggar) river switched back and forth between two primary river channels, causing abandonment or development of settlements, depending on the location of the all-important river.

Thus Kalibangan and many other sites along the Ghaggar river plain have been consistently left in a dry zone. This resulted in the devastation of a significant portion of the Harappan homeland.

As for the potential implication of this occurrence for the rest of the Indus Valley Civilization, Raikes notes that "in Sind it would merely have been one more nail a coffin already well closed" (Raikes 1968:286). Again the Harappan found themselves at the mercy of water.

The Desertification of Cholistan :

Pakistan archeologist Rafique Mughal has mapped 414 sites along 30 miles of the river Hakra bed in what is today the Cholistan desert. Thus, along with geological surveys, provides incontrovertible evidence for a riverine course change which decimated hundreds of Harappan sites and brought about the desert conditions which exist to this day. In contrast, to the Ghaggar, however, the Hakra changed its course once and for all.

"Archaeological evidence overwhelmingly affirms that the Hakra was a perennial river through all its course in Bahawalpur during the fourth millennium B.C., (Hakra period) and the early third millennium B.C. (early Harappan perid). About the end of the second, or not later than the beginning of the first millennium B.C., the entire course of the Hakra seems to have dried up and a physical environment similar to the present day in Cholistan set in. This forced the people to abandon most of the Hakra flood plain (Mughal 1982:84)".

Thus the Harappans again found themselves unable to control water resources and a significant portion of their homeland was laid bare by uncontrollable natural phenomena.

Climatic Change :

Generally speaking, theories connected with a notable degree of climatic change in a geologically short time frame are rarely given much credence. In the Harappan case, the theory that climatic change (increased rainfall) was a factor in the demise of the Indus Valley Civilization is supported by palynological and not archeological evidence and it encompasses the entire Holocene period and not just the Harappan period. Not surprisingly, there is no archeological evidence to support a theory that climatic change was an important factor in the Indus Valley Civilization to quote Misra:

"The only role the increased rainfall played was to arrest the hyperaridity of the upper Pleistocene, stabilize the sand dunes, accelerate the growth of vegetation and help in the emergence and spread of a nomadic hunting gathering-pastoral economy. This pattern of life has persisted in the semi-arid and arid environments to this day (Mishra 1984:484)".

Indeed, if climatic change played and role in determining the future of the peoples of the Indus Valley, it was to solidify the means of subsistence and lifestyle for centuries to come.

Environmental Degradation by the Population :

George Dales aptly noted that "wearing out a landscape is basically impossible to prove. And no alluvial plain wears out, anyway" (personal communication, 1987). Also, "if environmental factors had been decisive in the downfall of civilizations, Mesopotamia would have been deserted long ago" (Gupta 1980:52). In other words, although Mother Nature wreaked havoc on several significant portion of the Harappan region, as discussed above, the Harappan themselves could

not have been able to change their environmental setting to such an extent as to have any bearing on their ability to sustain themselves.

Urban Process in the Late Harappan Period :

Did the Harappans develop a response to the many, unrelated natural disasters, described above, that befell them? There must be no doubt that they did, for a civilization as advanced and widespread as that of the Bronze Age Indus Valley could not have just "thrown in the towel" on several millennia of achievement and utopain lifestyle. The question really, then, is what form did the Harappan response take?

The problem in answering this question is that there is a surprising lack of investigation into the later phases of the Harappan period. Nearly ever excavation held at true Harappan sites has all but ignored the latest occupation levels, and at many sites still to be excavated, the Late Harappan levels are buried beneath later historical periods levels, further confusing and hiding their role.

Conclusion : The Harappan Legacy :

While there also was a gradual abandonment of the major urban centres of some part of the Indus Valley, and a dramatic increase in the peopling of the areas east of the Indus Valley, it is impossible at this time to evaluate any possible connection between these phenomena. In fact, "while urban centres may have ceased to exist in Sind, it is impossible to assert that this was the situation for the entire area covered by the Harappan Culture during this phase. Certainly, until some of the large Medieval and Early Historical sites which also have associated Late Harappan Ceramics are excavated, and the extent of the Late Harappan settlement determined, it is inappropriate to conclude that urban centres were absent during the Late Harappan period" (Schaffer 1982:49).Schaffer also correctly notes that "Such subjective evaluations as 'decline' and 'degenerate' are unwarranted until a fuller archaeological record is available for examination. Cultural changes distinguish the Late from the Mature Harappan phase, but the exact nature of these changes and the processes responsible for them are at present unknown" (1982:49).

The cultural process of the Late Harappan period remains as enigmatic as many other aspects of the Indus Civilization, yet a few clues do imply that the Harappan peoples did not simply vanish, nor just relocate to India to be swept into a huge gene and culture pool encompassing the subcontinent. For example, in the region today there is continuing usage of many motifs on pottery, bullock carts identical to those depicted by Harappan 'toy carts', and mud brick platforms in domestic locations.

Beyond these physical clues, many experts believe that "In economic and social relations, in religious beliefs and ideology, an important part of the Harappan legacy is likely to be most strongly evident in later Indian Culture". (Allchin and Allchin 1982:329). In other words, physical evidence of the Harappan legacy is difficult to pinpoint, but the more intangible aspects of the Harappan culture are more than likely to be with us today.

Second Urbanization

The Second Urbanization in the Ganga Valley bears witness to the same reciprocal process of urbanization and environmental change, albeit, in a more substantial way.

First we find that the genesis of second urbanization was facilitated amongst others, by two environmental factors; irrigation and geography. Some scholars suggest that irrigation, too, played an important role in the growth of towns. This has been suggested by those who regard power as the main proto-urban criterion which ultimately led to the genesis of urban centres. This view might suggest that irrigation, on the one hand, leads to better production and more surplus, while, on the other hand, it will lead to better control over the countryside by the king. At best, because of its limited role in the production of surplus, it could have been but a minor component in on extremely intricate network of causes and effects.

The geographical system of an area also plays a crucial role in the emergence of urban centres. This can be better understood in terms of the rainfall of the area, its fertility, availability of agricultural land, scope for natural irrigation as well as natural fortification. In ancient times, when

transportation system was not either efficient or easy, cities depended for their survival on the neighbouring hinterland. This might explain how the fertility, etc. of a region becomes decisive in the context of urban growth.

The significance of geographical location can also be appreciated from yet another angle. In ancient India, there were two important categories of towns-political and economic. In the present context we are more concerned with the latter type. There were obvious reasons for the growth of such towns-they were trade centres, some of them grew as a result of their location on important trade-routes. There are yet other towns which assumed urbanization because of their geographical location. In this category we may place the coastal towns, called 'pattana' in our sources. Another place, which become an urban centre, mainly because of its geographical location, was the area situated on the mouth of a river. This type of urban centre has been referred to as 'dronamokha' in our ancient texts. Thus, it can be suggested that there were urban centres, though economic in nature, whose raison d'etre for existence was basically its geographical location.

Natural and Geographical Causes :

The literary texts of Ancient India contain numerous references to natural and geographical calamities like famine, floods, epidemic, etc. this might have led not only to the shifting of population from one place to another, thereby leading to the decay of urban settlements, but also must have adversely affected the urban settlements by turning their erstwhile advantageous geographical location into a distinct disadvantage mainly as a result of the changing course of a river. Although, Megesthenes suggested that India was not prone to famine, Kautilya's Arthashstra and a host of other indigenous literacy texts give us an altogether different picture. Thus, the Yuga Purana refer to a terrible famine which lasted for 12 years.[1] From the account of this famine, it becomes apparent that the most severe impact of this famine was felt in the plains of the Ganga Valley- a region whose agrarian economy was basically dependent on monsoon and which provided subsistence to a large number of towns. The Akhyayona portion of Mahabharata refers to a famine which extended to many years.[2] The famine in Kuru during Samvaran's reign was of 12 years duration and it was so devastating that even trees were destroyed and animals killed and the capital looked like a city of ghost[3]. The most graphic and tragic famine was, however, the one in which lakes, wells and springs dried up and agriculture and domestication of animals became impossible. Markets and ships were abandoned, while cities were deserted and hamlets burnt down. The Brahamanas died unprotected. People fled from fear of one other, or of weapons, or robber's or kings, and animals were virtually completely annihilated. Herbs and plants withered away, and men bereft of sense due to hunger began to eat one other.[4]

The early Buddhist texts also contain numerous references to famine in different regions such as Vaisali, Rajagrha etc[5]. The Divyavadana makes a detailed analysis of famines. Another Buddhist text the Saundarananda of Asvaghosa vividly brings out the severity of famines when it says that sometimes during famines people were forced to eat even the flesh of their children.[6] That these famines seriously affected the fate of urban centres is clearly suggested by the literacy sources. Attempts, have also been made to corroborate these literacy references by archeological excavations. Some of the excavated urban sites certainly betray sings of the effect of famine, so frequently recorded in our ancient text[7].The suggested period of this famine is quite anterior to the actual decline of towns in the Gupta and post-Gupta periods, is characterized by signs of temporary decline or desertion at some urban sites in the post-Maurya phase.[8] This, however, indicates that references to famines in contemporary literature are not hypothetical, but they record actual events. Moreover, the Mahasthan and Piprahwa inscriptions also refers to famine.

The contemporary literature also records instances of other natural calamities like pestilence, fire, plague etc. The Arthasastra, the Epics, the Buddhist literature and the Dhramasastras specifically refer to these calamities.[9]

References to natural calamities are found in large number in the Brhat-Samitha of Varahamihira. This work roughly represents the period in which decline of urban centres was assuming phenomenal proportions. This text

makes 52 forecasts of bad harvests wing to insects, wild beasts, birds, mice, excessive rain, etc. due to diseases, want of food, etc.[10] Similarly, while there is only one forecast of prosperous condition of cultivators[11], there are seven forecasts of their bad times.[12] The text also makes four forecasts of decline of population[13] five of scarcity of food, etc.[14] two of the suffering of citizens at the hands of their own king.[15] There are altogether 42 forecasts of famine,[16] 32 of drought and scarcity of rain, [17] 11 of heavy rainfall flood,[18] five of earthquakes,[19] nine of fire,[20] two of thunder-strokes,[21] four of whirlwinds and stroms,[22] of pestilence,[23] 35 of diseases and sickness,[24] and two of plagues.[25] These numerous references to various natured calamities affecting the settlements in more than one way during the Gupta period might suggest that some actual instances of this type might have adversely affected the urban settlements during this phase of urban decline.

Although all these literary causes responsible for the decline of settlements cannot be corroborated by archaeological evidences, the ravages of foods are clearly noticeable at a number of sites.[26] To begin with, the sites of Saikhan Dheri can be cited as an instance. Here the habitation shrank considerably obviously because of floods during the latest phase of occupation. In some of the cuttings in western section of the site, thick deposits of alluvial clay and sand were noticed implying thereby the entry of flood waters up to that point. The floods ravaging Saikhan Dehri seem to be so recurrent and devastating that the entire population had to shift to a new city site, Rajar, during the reign of Vasudeva I. This led to the complete abandonment of Saikhan Dheri towards the end of the 2nd or beginning of the 3rd century A.D.[27] That precautions against flood were also taken at certain other sites of the area, like Sirkap, cannot be ruled out. The excavated gateway of the northern side was planned in such a way that during floods the water pouring down the main street would expend its force to some extent against the city-wall before entering the capacious underground drain which passed through south to north beneath the gateway.[28] Although devastations due to floods have not been noticed at this site, the recurrent possibility of floods threatening the city becomes obvious from its planning. The evidence of floods affecting adversely the urban settlements of the Punjab and Haryana is not copious, but even the limited evidence suggest that the rivers did affect the urban centres by changing their courses.

The evidence of floods is forthcoming from many sites of Uttar Pradesh. Hastinapupr has clear signs of floods devastating the whole site. The excavator suggests that during period II (c. 1100-800 B.C.) the whole settlement was washed away by a flood in the Ganga.[29] This is no doubt, a earlier evidence but this might have happened in the early centuries of the Christian era also. The complete abandonment of the site towards the end of the 3rd century A.D. for about 800[30] years might have something to do with floods, though the excavator does not give any reason for this desertion.

Floods also seem to have affected the city of Atranjikhera. A flood seems to have washed away a considerable portion of the PGW habitation during its last phase. Again the pre-structural NBP phase also seems to have been brought to an end by a flood causing a heavy loss.[31] Similarly, the ancient city of Saravasti, too, might have been destroyed by floods of the river Rapti.[32]

Evidence of the flooding of the site is not forthcoming from other sites of Uttar Pradesh, but it can be suggested that some of the more important ancient urban centres of this area, like Kausambi, Bhita, Rajghat etc. being situated on river banks, might have been susceptible to the vagaries of the river. They possibly were not only affected by the floods, but the changing course of the river too might have forced changes in the occupational pattern. The erosion of a moat at Kausambi as a result of the annual inundation of the Yamuna[33] lends credence to our suggestion.

The evidence of flood at some of the sites of Bihar is howerver, more explicit. Anyone visiting the site of Chirand can see for himself that a large area of the present mound seems to have been continually eroded by the river Ghaghara. Moreover, the fact that a large number of antiquities have been picked up from the river-bed, suggest a continuous erosion of the site. This might indicate that the settlement at Chirand possibly came to be abandoned because of the continuous erosion of the habitational area of this city.

At Vaisali too one comes across certain distinct instance of the flooding of the site. To begin with, the 1960-61 excavation revealed unique evidence from the area of Bania. The structures of period II, representing the Kusana-Gupta phase were sealed by a sterile, yellowish, compact earth, probably a flood deposit. From the overlying humus a few sherds of the "Muslim" glazed were picked up.[34] This evidence clearly suggests that the site was destroyed by floods some time during the Gupta period and it was abandoned. The discovery of "Muslim" glazed ware from the overlying humus, implying the rehabitation of this site after a long period, corroborates this hypothesis. Similarly frequent changes in the river-beds[35] might have further aggravated the situation and apparently led to the desertion of this city.

Excavations at Charittravan (Buxar) also indicate the devastating impact of floods. The site seems to have been inundated some time after period II by the Ganga water which completely washed away a major portion of the habitational area. The impact of the inundation was such that the site was soon abandoned leading to the complete disappearance of this erstwhile flourishing urban centre.[36] The crucial role of floods in the destruction of the city of Pataliputra is explicitly referred to in many of the literary texts and is confirmed by archaeological evidence also.

The ancient city of Pataliputra, because of its geographical location, was very much susceptible to the vagaries of floods. It was surrounded by four important rivers, the Ganga, Sone, Punpun and Gandak.[37] the city seems to have been destroyed by some devastating flood of the Sone in the second half of the 6th century A.D. The graphic account of Hsuan-Tsang about the desolation and destruction of the city also suggests that the city had been badly ravaged by floods causing a large-scale devastation of the buildings and property.

Excavations carried out at this site also suggest that Pataliputra was constantly visited by floods. In the course of excavations at Kumrahar during 1912-13, about 8 to 10 feet deep silt and a thick layer of ashes were discovered at the site of the 80 pillared halls, which clearly indicate that the destruction of the hall had a lot to do with floods also.

The above discussion makes it obvious that floods did play a crucial role in the decline and decay of certain urban centres, while in the case of towns like Saikhan Dheri, Hastinapura, Altranjikhera, Sravasti, Vaisali, Buxar and Pataliputra, floods seem to have played a crucial role in their ultimate collapse and desertion. At Taxila, Sanghol, Kausambi, Bhita, Rajghat, Chirand, Balirajgarh and Rajabadidanga, they seem to have adversely affected the settlement. Although we do not know much abut other sites in this context, it can be suggested that the towns located on river banks might have had to cope up not only with floods but also with the changing course of the stream.

In this context it will be worth while to refer to the system of fortification of ancient Indian towns. What was the purpose of these fortification. Were they designed only as a defence mechanism against possible foreign invasions? Recently an analysis has been made of the fortification system of nine important sites of the Ganga Valley, Viz., Ujjain, Kausambi, Rajghat, Rajgir, Pataliputra, Ahichhatra, Sravasti, New Rajgir and Vaisali, with a view to precisely determining the nature of the fortificatins.[38] It has been suggested that the massive mud-walls reinforced by timber and externally riveted with burnt brick could be interpreted as embankments meant to resist floods at least in the case of Ujjain, Kausambi, Rajghat and possibly Sravasti.[39]

From the above survey of environmental change and urbanization in the Indian sub-continent of the Indus Valley (c.2500 BCE - c.1700 BCE) and Ganga Valley (6th Century BCE. - 8th Century A.D.) the idea is well brought forth that the processes of urbanization, do not remain unaffected by environmental factor; rather environment and changes it in have significant bearings on the rise and condition of towns and cities.

References :

1. .R., Mankand, Yuga Puranan (1951); p.20.
2. Mbh., 1. 71.31
3. Ibid., I. 175. 38-46
4. Ibid., XII 137.24; A.N. Bose. Social and Rural Economy of Northern India (1951), Vol. I, p.131.
5. Mahavagga, BI. 19. 2; Chullavagga, VI. 2.1.1.
6. E.H, Johnston (ed. & tr.) The Saundarananda of Asvaghosa (1975), XVI. 13.

7. M.D.N. Sahi. 'Famine of the Gangetic Valley mentioned in Yuga-Purana- Its Date and Economic Aspects', PIHC, XXXII Session (1970), Vol. I, pp. 163-73.
8. Ibid.,
9. A.N. Bose, op/ cit., p. 129ff; D.R. Economic History of the Deccan (1969), pp. 116-19.
10. Ibid., IV. 5,11; V.30-31, 33 36-37, 41, 55, 78; VIOI. 4,6; VIII. 3.42; IX. 3-31, 33, 40, 42, 43; X.3, 7-8, 20; XII. 19; XVII. 18-19, 23, 24, 25, 26, XIX. 2; XXX. 13-14; XXXI. 4; XXXIII. 4, 5; XXXIX. 2.5; XLVI. 27, 53; XLVII. 16; LIII. 6; LXI. 6, 7, 9; LXXIX. 31.
11. Ibid., XXX. 52
12. Ibid., IV. 9; 29. 34; XXXI. 4; XXXIII. 9, 21; XXXIV.12.
13. Ibid., IV. 32; V. 28, 41; XI. 39.
14. Ibid., IV. 14, 2, 27; V. 61; XXIV.30
15. Ibid., III. 15; V.44.
16. Ibid., III. 37, 7, 18; VIII. 19; XI. 14, 18, 23, 41; X.2, 20; XI. 13, 30, 31; XII. 19, 21; XVII. 5; XX. 1, 20; XXXIII. 1, 20; XXXIV. 12; XXXIV. 15, 16; XXXV. 4; XLVI. 45; XLVII. 13, 16; LVIII. 50; LXXXVIII. 24.
17. Ibid., III. 26; IV. 13, 21; V.20, 23, 55, 61; VI. 2, 5, 8; VII. 2, 3, VIII. 28, 43-44; IX. 37, 44; X.; I. 31; XII. 18; XVII, 21-22, 33; XIX. 2, 19-21; XX. 2; XXX. 9, 26; XXXII. 14; XXXIII. 12; XXXIV. 16,; XXXV.; XLII. 64; XLVII. 13.
18. Ibid., III. 37; V. 34; VII. 1, 18; VIII. 48; IX. 24, 36; XXI. 24; XXVVII, 3; XXVIII. 10, 1.
19. Ibid., III. 9-10; V. 63, 92; XVII 16; XXIV. 25.
20. Ibid., III. 6; VII. 1, 18; VIII 17, 19, 28; XIX. 7-9; XXXIV. 15; XXXV.4.
21. Ibid., V.63; XXI. 31.
22. Ibid., III. 9-10, V. 94; VIII. 28; IX.38.
23. Ibid., III. 3; V. 23, 27, 58, VI 9; VIII. 47; XI. 12, 30; XII, 21; XXXV. 4; XLVI. 40, 71, 80, LXXVIII. 24.
24. Ibid., III. 26; IV. 29; VI. 2, 4; VII, 2, 3, 7, 16, 18; VIII. 3, 17, 34, 42, 48, 51; 51; IX; 18, 23, 33, 37, 44; XI. 31; XII. 19; XVII 5; XXIV. 29; XXX. 15; XXXII. 14; XLV. 9; XLVI. 25, 27, 71; LIII. 60; LX. 6; LXXVIII. 24.
25. Ibid., VIII. 40, 43-44.
26. Surprisingly, R.S Sharma has made a deliberate attempt to undermine the role of floods in the decline of towns (op. cit., p. 148). He has done this apparently to lend more credence to the theory of economic degeneration as responsible for the decay of towns in the Gupta times, a theory which would have still stood its ground quite forcefully even without this portial emphasis.
27. AP. II. 23F.
28. J. Marshall, Taxila, I. p.115.
29. B.B. Lal, 'Excavation at Hastinapura and other Explorations in the upper Ganga and sutly Basins 1950-52', Al, nos. 10-11, p. 14.
30. Ibid., p. 19.
31. IAR, 1968-69, p.37.
32. ASI-AR, 1907-08, pp. 89-90.
33. G.R. Sharma, Excavations at Kausambi, 1959-60, MASI, no. 74, p.3.
34. IAR, 1960-61, p.6.
35. Y. Mishra and S.R. Ray, A Guide to Vaishali and the Vaisali; Museum, (1964), p. 14.
36. IAR, 1965-66, p.11.
37. Waddell makes a fantastic suggestion that Pataliputra was situated at or near the confluence of all the five great rivers of Mid-India, the Ganga, the Gagra, the Rapti, the Gandak and the Sone (Report on the Excavations at Pataliputra, (1903, p.2). This suggestion is undoubtedly misleading.
38. M.S. Mate, 'Early Historic Fortifications in the Ganga Valley', Puratattva, No.3, pp. 58-69.
39. Ibid., pp. 65-68.

Historical Prospective of Evolution of the Siwan Town

Mukesh kumar Ram

Research scholar, Dept. of Geography, Jai Prakash University, Chapra, bihar

Abstract :

This profile of Siwan focuses on the historical evolution of the city when the city has seen both extreme prosperity as destitution siwan city is located at coordinate 26.22°north 84.36°east latitude and longitude. The siwan town from part of CD block. The total area of the siwan municipal council is 13.05 sq km. The total population of the city (1,09,919) accounts for 4.04% of the total population of the district. According to census 2011 the siwan town is divided into 38 wards.

Key words : Envention, Don, sadaquet ashram, traditional, effective. Introduction :

Siwan is the administrative headquarter of siwan District. It is the 18th most populated town in bihar and in terms of total area, it ranks 53rd in the list of total 130 towns of bihar. Siwan is located in the western part of bihar , on the eastern bank of Daha River, a tributery of river Ghaghara which is the main perennial river flowing in the district.

The siwan district is bounded on the east by the saran district, on the north by Gopalganj district and on the west and south by Ghaghara River beyond which lies the two district of utter Pradesh, viz., Deoria and Balia respectively. The municipality of siwan was establish in 1924. The present municipal limit cover an area of 15.68sq. kms and comprises of 38 wards. It is a class 1 town with a population of 1,34,458 as per 2011 census. According to census 2001, the siwan town is divided into 32 wards. Subsequently, the ward boundaries have been redrawn and currently the town is divided into 38 wards. The ward boundary map of siwan city is incorporated as Drawing SPUR/BHR/SWN/FCSP/01with this report.

Objective of the Study :

1. To evaluate the city development activities of siwan city.
2. To give suggestion for the better implementation of policies and development.
3. Everyone should get information about the development and history of the city.

Research Methology :

To conduct the research study descriptive research method has been used for the purpose of the study secondary data is used. To secondary data collected from the published books, research papers in journals and annual reports.

Study Area :

Siwan city is located at coordinate 26.22°north 84.36°east latitude and longitude. It has an average elevation of 72 meter. The municipality of siwan was established in 1994. The present municipal limit cover an area of 15.68sq. kms and comprises of 38wards. It is a class 1 town with a population 1,34,458 as per 2011 census.

Analysis and Explanation :

Siwan, situated in the western part of Bihar, was originally a sub-division of saran District , which in ancient days formed a part of the Kosala kingdom. The present district limit came into existence only in 1972. The Siwan district is bounded on the east by the Saran district, on the north by Gopalganj district and on the west and south by two district of Uttar Pradesh viz., Deoria and Balia respectively.

Siwan derived its name from "Shive Man", a Bandh Raja whose heirs ruled this area till Babar' arrival. Maharajganj, which is another sub-division of Siwan district, may have found its name from the seat of the Maharaja there. A recently excavated statue of the lord Vishnu at village Bherbania from underneath a tree indicates that there were large numbers of followers of lord Vishnu in the area.

As the legend goes, Dronacharya of Mahabharat belonged to village 'DON' in Darauli

Block. Some believe Siwan to be the place where lord Buddha died. Siwan is also known as Aliganj Sawan after the name of Ali Bux, one of the ancestors of the feudal lord of the area. Siwan was a part of the Banaras Kingdom during 8th century. Muslim came here in the 13th century. In the end of the 17th century, the Dutch came first followed by the british. After the battle of Buxar in 1765, it became a part of Bengal. Siwan played an important role in 1857 independence movement. It is famous for the stalwart and sturdy Bhojpuries', who have always been noted for their martial spirit and physical endurance and from whome the army and police personnel were largely drawn. A good number of them rebelled and rendered their service to Babu Kunwar Singh.

The anti pardah movement in Bihar was started by sri Braj Kishor Prasad who also belonged to Siwan in response to the non co-operative movement in 1920. A big meeting was organized at Darauli in Siwan District on the eve of the Kartik Purnima Mela under the leadership of Dr.Rajendra Prasad who had thrown away his lucrative practice as an advocate in the Patna High Court at the call of Gandhi ji. In the wake of this movement Maulana Mazharul Haque, who came to stay with his maternal uncle Dr. Saiyyad Mahmood in siwan, had constructed an ashram on the Patna Danapur road which subsequently became sadaquat Ashram. The next phase of the non co was fully implemented in Siwan. In connection with the satyagrah movement, Pt.Jawaharlal nehru made a whirlwind tour of the different parts of Bihar. One of the famous meetings he addressed was at Maharajganj. A few person of present Siwan District who played an important role in the attainment of independence were Dr. Rajendra Prasad, Maulana Mazharul Haque, Shri Mahendra prasad, the elder brother of Dr. Rajendra Prasad, Dr. Sayyas Mohammad, shri Braj Kishore Prasad, and shri Phulena Prasad. Uma kant singh (Raman jee) of Narendrapur achieved martyrdom during the Quit India Movement. Shri Jwala Prasad and Shri Naremedshwar Prasad of Siwan helped Jai Prakash Narayan after his escape from Hazaribagh Central Jail. One of the most renwed literature of this country Pandit Rahul Sankritayayana started peasant Movement here between 1937 to 1938. During his visit to Champaran Mahatma Gandhi and Madan Mohan Malviya visited Siwan and Gandhi ji even spent a night at Zeradei in the house of Dr. Rajendra Prasad.

Regional Importance :

The economy of Siwan district is mainly dependent on agriculture and Siwan town is the main market for the district. The city being the only Class-I Town in the entire district (other town in the district are Class- III&IV town), and also because of its Proximate and connectivity to other Important cities of the region,is expected to attract investment which would boost the local economy which in turn would lead to higher growth rate of population.

Economy :

The economy of siwan district is mainly dependent on agriculture and siwan town is the main market for the district. At present the town has congested commercial area in the core city accommodating both wholesale and retail trade activities. The town had a good industrarial base due to the presence of three suger mills and one jaggery mill. Siwan used to be a hub of power looms to support the textile industry of the state. Apart from these units, there are few tiny artisan household units functioning in the town. These includes household level small scale manufacturing units like furniture, bindi sindur, etc. and income generating ventures like data processing, furniture, rice, and elaichi dana processing. However there are no large size industrial units. The industrial investment has been very insignificant in the town as of now.

Siwan has been identified by the Government of Bihar as a part of seven hand loom clusters(districts) in Bihar considering its importance in the state handloom sector as also future potential for their growth. As per a survey undertaken by Department of industries, Bihar, the number of handloom weavers in Siwan is around 1850. A large number of weavers have moved to other livelihood opportunities. The major handloom cluster in Siwan region are sultanpur, lagghi Chowki, and Ghanuti. The major handloom product of siwan are bed sheet, towel, waist-leg wrap (lungi), and shirting. The location of market areas in Siwan is given in Drawing SPUR/BHR/SWN/FCSP/02

Educational Activities :

Education is a very important input in any development plan since the potential of a town to grow and act as a vibrant urban centre depend to a large extent on the city. Study of the existing situation shows that the availability of colleges and higher secondary schools is quiet adequate in siwan, there are six colleges in the city and many schools. However, requirement exitx of special school/ training centres including for mentally and physically changed/primary schools. Siwan Municipality does not run any school or education institution. The Education department of the state Government runs schools and other similar institutions with control over administrative and financial aspects. The District office of Education Department is responsible for implementing all the central and state programmes meant for the benefit of the school children. Policy should be geared to encourage integrated schools from the pre-primary to the higher secondry level, rather than allocating spaceseparately for Nursery Schools, Primary schools and middle schools.

Cultural and Religious Activities :

Office languages of Siwan are Bhojpuri, Hindi,urdu. Traditional dresses for men are Dhoti-kurta or Kurta-Pyjama with a headgear Indian turban (Pagri) and for women, it is Lehnga/ Ghaghra choli (historical) , often worn during regional folk dance, celebration or wedding, however most of the women wear Saree or Kameez-Salwar and men prefer western dresses like Shirt,Pant, T-shirt and Denim etc. Wheat and rice are the staple diet of majority of the people. Generally Bhojpuri people enjoy 'Sattu' (yellow gram flour) Parantha and litti chokha' the people of Siwan ardently worship goddess Siwannya Devi, Siwan town has a temple of goddess Siwannya Devi at the Chowk area. Among the major festivals celebrated are chhath Puja, Holi(faguwa), Dasahara, Ramnavami, Shivraat, Sekraat(khichdi), Eid, Bakrid, Muharram, Bara din and many other festivals.

References :

1. Revenue Record of Hathua raj,1955.
2. District Gazetteer of Saran
3. Memoria,C.B.Geography of India , Shivalal Agrawal & company, Eduation publisher, Agra 3 P. 217
4. Geology Department of Patna university, Findings Reports of the survey work, the Indian Nation,1987
5. Sing, R.L. Regional Geography of India
6. Singh, Balawant, 1971: Urban Morphology of Patiala (PUNJAB) Geographical Review of India, XXXIII, PP-273-286
7. Bihar Economic Survey,2021-22

Role of Juvenile Justice System in India

Karishma Tamta

Assistant Professor, Department of Law & Justice (Net Qualified) Gautam Buddha University, Greater Noida

Abstract

Juvenile crime in India is skyrocketing, indicating the need to enact strong laws and policies to make the juvenile system robust. All the three organs of state in India, namely the legislature, the executive and the judiciary, focus on the developmental well-being of children in conflict with the law and children in need of care and protection. However, despite this, youth crime is on the rise in India, highlighting the urgent need to revisit existing juvenile laws and their subsequent implementation and enforcement. This article attempts to evaluate the contribution of the above three bodies in strengthening the Juvenile Justice System in India. Secondary data such as books, government reports, legal periodicals and journals will be used to complete this study.

Keywords: Juvenile, Juvenile Delinquency, Juvenile Delinquent, Juvenile Justice, Juvenile Welfare

Introduction

Children are the property or wealth of a nation. They are truly the future of every nation. Today's children are the adults of tomorrow or the citizens of the next era. In that era, they will hold the banner of the country and uphold the prestige of the nation. It will be better to say that today's children are like blooming flowers of society's garden and therefore it is our duty to protect these flowers. Since the development of the country depends on the youth, the society must deal delicately with all their affairs. All these children need to be nurtured, whether physically, mentally or psychologically, by providing a healthy environment. Keeping in view the above aspects, the Constitution of India guarantees several fundamental rights to children. It also contains certain Directive Principles of State Policy which enjoin the State not to abuse children at an early age and children should be given opportunities and facilities to develop in a healthy manner. They will enjoy freedom, dignity and be protected from exploitation and moral and material abandonment.

But in reality, in the current conditions of our country, it is becoming evident that there are fewer opportunities to develop children in a healthy atmosphere, because our children are now indulging in all kinds of crimes. They waste their lives by using drugs or alcohol and thus commit various types of crimes. Youth crime has become the country's biggest problem. This study aims to study the current problem and laws providing for these children in India and suggest solutions and remedial measures to improve the Indian Juvenile Justice System.

Meaning and Concept of Juvenile Justice

The juvenile justice system falls under the administration of the criminal justice system. The juvenile justice system deals with the affairs of juveniles. Therefore, it is mandatory to know about the minor in the first place. The term "juvenile" comes from the Latin "juvenis" meaning "young" and juvenilis meaning youthful. According to dictionaries, the term juvenile means young, adolescent, young person or child. A juvenile can be said to be a young person who is not yet old enough to be considered an adult. So whenever the issue of juvenile justice comes up, it means that it is a youth justice system. This term "minor" was interchangeable with "child" despite the fact that there is definitely a difference between the two. A child in the general sense is used for an innocent, simple or a person who requires care or protection, while on the other hand, the term juvenile is generally used for a person of tender age who comes into confrontation with the law. Another difference between the two is the issue of age. This person is a child to their parents regardless of their age, but a juvenile is definitely a person of a certain age or younger. But this does not mean that a juvenile is not a child. It is the age of the child that determines who is to be treated as a juvenile under the juvenile justice system. Certainly there are

other terms that are used for such persons who are at an early stage of their life, such as child, ward, adolescent, minor infant or young child, etc. Thus, childhood is a major factor in the juvenile justice system.

In Shimil Kumar v. State of Haryana5 it was held that the term child means "one who is between birth and full growth". However, this judgment is also incomplete as it does not clearly state the exact age of a child to be treated as a juvenile. In India, neither the Constitution nor any other legislation has developed a common principle for ascertaining childhood. The age of a child varies according to the law that deals with the particular matter. These laws deal with either a delinquent juvenile or a juvenile in need of care, protection or welfare. As to laws or statutes dealing with juveniles in conflict with the law, they provide for the procedure for dealing with such delinquent juveniles.

Whereas the laws dealing with a child in need of care and protection lay down the procedure for the care, protective treatment, etc. of such a child who is neglected or helpless, etc. These various laws which define the age of such a child for various purposes are as under:

1. Indian Penal Code, 1860

The Indian Penal Code of 1860 provides three categories of children for different purposes. First, it says that if a child under the age of 7 commits a crime, he will not be punished because he is under a year old.1 The law also raised the age of such criminal responsibility to 12 years if the child is found incapable of understanding the nature and consequences of his act.2 The law finally also stipulates as a binding obligation for the granting of sexual consent to be 16 years of age, but this must not be less than 15 years if she is married. .

2. Indian Treaty Act, 1872

The Indian Contract Act, 1872 also fixed the age of a child who became a minor for entering into a contract. Under this law, any person under the age of 18 is incapable of entering into a contract.

3. Child Marriage Restraint Act, 1929

To limit child marriage, this law defines a child as a person under the age of 21 for men and 18 for women.

4. The Minimum Wages Act, 1948

This law deals with determining the minimum wage of an adult, child or juvenile. The law defines the term child as a person who has not reached the age of 14. This law also defines the term juvenile. It says that a juvenile is someone who has already reached the age of 14, but has not reached the age of 18.

5. Factories Act, 1948

This law prohibits a child from working in factories. For the purposes of this Act, a child is a person under the age of 14. This law further stipulates that a minor who has reached the age of 14 but is under the age of 18 may work in factories only if he obtains a certificate of medical fitness from a doctor.9

6. Constitution of India, 1950

The Constitution of India contains several special provisions for the betterment, welfare or empowerment of children. It empowered the state to enact any law for the upliftment of children. It guarantees free education for all children between the ages of 6 and 1411 and asks the state to provide early childhood care and education for children under the age of six.12 It prohibits human trafficking and forced labor.

It also talks about providing opportunities and facilities for children to develop healthily and in conditions of freedom and dignity and to be protected from exploitation and moral and material abandonment.

7. The Mines Act, 1952

This law prohibits a child under the age of 18 from working in any mines or any part of them.15 However, in the case of apprentices or trainees, the age limit is 16, but the same can only be done under the supervision of a manager and with the permission of the chief inspector.

8. Children Act, 1960

The purpose of this Act was to provide for the care, protection, nutrition, welfare, upbringing, education and rehabilitation of neglected or delinquent children. It ensured the establishment of the Children's Socio-Legal Protection Corps, Children's Court, Children's Home, Special Home, Observation Home, Aftercare Association, etc. For the purposes of this Act, a child is a boy who has

not reached the age of 16 or a girl who has not reached the age of 18. This law prohibited the imposition of the death penalty or imprisonment on any child and the detention of a child in prison or police custody.

9. Employment Law Act, 1961

This Act was enacted to control and regulate the education of apprentices. It prohibits the employment of an apprentice if he is under 14 years of age. The law further states that a person under the age of 18 is excluded in the case of running specified trades related to risky employment.

10. Juvenile Justice Act, 1986

This Act replaced the Children Act 1960. It was enacted to provide for the care, protection, treatment, development and rehabilitation of neglected or delinquent juveniles and to decide and deal with certain matters relating to delinquent juveniles.

For the purposes of this Act, a minor is a person who has not reached the age of 16 in the case of a boy and 18 in the case of a girl.

11. The Children (Prohibition and Regulation) Act, 1986

This law prohibits the employment of children in certain occupations. The law set the age of the child at 14 for this purpose.

12. Juvenile Justice (Care and Protection) Act, 2000

This Act was enacted to deal with juveniles in conflict with the law and children in need of care and protection by providing for proper care, protection, etc. This law defines the term "minor" or "child" as a person who has not reached the age of 18.22 This law also defines the term "child in need of care and protection". It is said that a child who is found without a home or settled place or abode and without it any apparent means of sustenance is a child in need of care and protection.

13. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015

This Act replaced the Juvenile Justice (Care and Protection) Act 2000. It was enacted to make comprehensive provisions for children alleged to be or found to be in conflict with the law and for children in need of care and protection. This law defined the term juvenile as in the previous law as a person who has not reached eighteen years of age. And for the purposes of care and protection of the child, the law established the same age, i.e. eighteen years. However, in cases of heinous crimes, this Act (hereafter JJ Act) classifies children between the ages of 16 and 18 differently. Such children involved in heinous crimes can be tried as adults.

14. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2021

This bill was passed by the Lok Sabha on 24 March 2021 and then the same was passed by the Rajya Sabha on 28 July 2021. The main objective of this bill is to strengthen child protection at the district level, to empower the District Magistrate, to strengthen the Child Protection Committee etc. But as far as on the age of a minor or a child requiring care and protection, the bill does not propose to change or supplement it. This Bill seeks to amend the Youth Justice (Care and Protection of Children) Act 2015.

Historical Scenario

The concept of special treatment of children in India can be traced back to ancient "Hindu Jurisprudence". In ancient India, haramasutrakaras and Dharmashastrakaras propounded a law called Dharma. They stated that an infant under the age of eight is similar to a child in the mother's womb, from which it follows that he cannot be held responsible for his actions. This concept gradually developed into a dynamic concept that changed according to the needs of society. This concept can also be traced to Muslim law. According to this law, if any young boy indulges in sexual activity with consenting women, he will not be held responsible for the act. It is thus clear that both Hindu and Muslim law recognized the innocence of the child and afforded him protection.

The beginning of special legislation for juvenile offenders began with the enactment of the Apprenticeship Act29 in 1850. This act was the first special legislation dealing with the issue of children in conflict with the law. The law allowed courts to treat children between the ages of 10 and 18 who had committed minor crimes as apprentices instead of sending them to prison. Then in 1860, the Indian Penal Code was enacted which stated that any crime committed by any child under the

age of 7 would be doli incapax, hence not punishable.

The code further exempted children from 7 to 12 years of age if they did not have mens rea.

Another law was passed in 1878, i.e. Reformatory Schools Act 1878, targeting children and later amended in 1897. It provided that children under 15 years of age, if sentenced to imprisonment, could be sent to reformatory schools instead of imprisonment. Then in 1898 the Penal Code empowered the Magistrate to send juvenile offenders to reformatory instead of prison or to grant probation or order their trial in the Juvenile Court. In addition the three Presidencies of Madrass, Bengal and Bombay promulgated their own laws for special treatment of children. The Acts were the Madras Children Act, 1920, The Bengal Children Act, 1922 and The Bombay Children Act, 1924 respectively. These laws established different ages for the treatment of children under these laws. According to these laws, the age ranged from 13 to 18 years. The last piece of legislation before Indian independence to be passed for the welfare of children was the Bengal Vagrancy Act of 1943. This Act provided care and training to children below the age of 14 who were beggars or had criminal or bad habits etc. Apart from these Acts there were two more of laws coming into force before the independence of India. The first of these was the Mysore Children Act, 1943, and the next was the East Punjab Children Act, 1949. The East Punjab Children Act was enacted to provide for the guardianship and protection of children as well as the guardianship, trial and punishment of children/ juvenile offenders.

After independence we got our own constitution and it also provided special protection and guarantees to children. Then, in 1960, India achieved a milestone in the field of child welfare, protection and security when the Children Act was enacted. This Act established two separate judicial bodies to deal with children in conflict with the law and children in need of care and protection. Later, this Act was replaced by the Juvenile Justice Act, 1986. It was promulgated to bring uniform legislation for India based on the UN minimum standards for the performance of the administration of justice in youth matters. In fact, there was no difference between the JJ Act of 1986 and the previous Children Act of 1960. The main reason for the re-enactment of this Act was the establishment of nursing homes, children's homes and special homes for neglected and delinquent juveniles. However, this law also had several legal loopholes. It failed to create a link between government and non-governmental organizations in the care, treatment and rehabilitation of children. Moreover, it has become mandatory for an Indian organization.

The government is amending the law relating to children in line with international standards. Therefore, in 2000, the Government of India enacted the Juvenile Justice (Care and Protection) Act, 2000, through the Parliament of India, keeping in mind the global dynamics of securing the rights of the child. But in 2015 this Act was replaced by the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act 2015. This Act itself declares its aim to consolidate and amend the law relating to children found to be in conflict with the law and children. They need care and protection by providing basic needs. This Act allows a child to be tried under the Criminal Code if he is between the ages of 16 and 18 at the time of the commission of any heinous crime. Recently, i.e. in the month of July 2021, a new law on the care and protection of children was approved by both chambers of our parliament. The bill is the Youth Justice (Care and Protection of Children) Act 2021. It seeks to amend the 2015 Act.

Youth Crime

A delinquent juvenile is a juvenile who is unlawfully absent from school or is disobedient or beyond the disciplinary control of his parents or is habitually found in a place unlawful for the juvenile or has left his parental home. In addition, they may also be juveniles who, based on their behavior, are known to be abused, neglected, or addicted. An abused juvenile is a child whose parent, guardian, or custodian causes physical or mental harm to the minor or commits an offense against the child. Being a neglected juvenile is a child who is not receiving proper care, supervision, etc. from parents, guardians or custodians, etc. or has been abandoned or has not received proper medical or correctional care or is living in bad society etc. in the case of an unaccompanied minor,

this is a minor who needs help because he has no parent or guardian or cannot be cared for by his parents, etc. For example, when a child is hospitalized but no one takes care of him in the hospital.

In addition to the above-mentioned juveniles, there is another category of juveniles who become delinquent, namely the so-called youth crime. The term delinquency comes from the Latin terms "delinquentia" and "delinquere". The term "delinquentia" means fault or transgression, and the term "delinquere" means trespass, from de-liquare to abandon. The dictionary meaning of delinquency is criminal behavior.

Synonyms of delinquency are crime, misconduct, culpability, misdemeanor, misdemeanor, misdemeanor. Delinquency as the word is used today is the criminal behavior of a young person or we can say it is the behavior of a child that is anti-social or against the law. Now, when it comes to the concept of youth crime, it is the participation of a minor child in illegal activities. The term is also used for children who exhibit persistent mischievous or disobedient behavior to be considered beyond parental control and subject to legal action by the court system. The legal meaning of youth crime is a violation of the law committed by a juvenile. So we can say that a child who is in conflict with the law is a juvenile delinquent

Causes/factors of Delinquent Trajectories

As mentioned above, youth crime is basically the behavior of a young person that is marked by criminal activity, persistent anti-social behavior or disobedience. There are many reasons behind this behavior. The main causes or factors are as follows:

1. Family Atmosphere

The family is the first educational institution or socialization school for a child. The family environment always contributes to a child's life, be it good or bad. He learns a lot from his family. Parents and siblings play a big role in shaping a child's personality. He learns a lot from his family. Parents and siblings play a big role in shaping a child's personality. Disintegration of the family system, lax parental control, separated families, family violence, broken families, lack of love and affection, single parent families, bad parental habits, careless parents, overly strict parents become the cause of youth crime.

2. Training

Education is essential for a child's overall development. Therefore, the school must have the right infrastructure, the best teacher, the best curriculum, the best evaluation system and above all, education must be easily accessible to every class of society. If the school is unable to provide these basic requirements, it can lead to youth criminal activity.

3. Neighborhood Conditions and Bad Company

A child learns a lot from neighborhood activities because after family and school he spends the rest of the day in the company of neighbors. If the environment is anti-social or violent, etc., the child would be more prone to delinquency. Similarly, another major factor in juvenile delinquency is bad society. Criminal behavior can always be acquired through interaction with people, which can also be found in the neighborhood. Therefore, it has been rightly said that criminal conduct may be the result of the conduct of his associates.

4. Socioeconomic Factor

Socio-economic factors also play an important role in the life of a teenager. Juvenile delinquency is more common in slums or poor areas. Crimes of theft or similar crimes are committed out of necessity because the family does not fulfill it. Such young people with poor economic status easily get involved in criminal activities. The social attitude in these areas also attributes a lot to the lives of teenagers.

The intention of everyone in such areas to change the economic status as soon as possible by any means results in youth crime.

5. Biological Factor

Sociological, psychological, and biological factors are important factors that influence an adolescent's behavior pattern. Adolescents are more conscious of their fashion, appearance, entertainment, play, food, etc. They want freedom or independence and if they get it, there is a possibility for them to develop antisocial behavior. So, social behavior, biological changes, psychological causes are some of the reasons responsible for youth crime.

6. Sexual Exploitation

Children who experience sexual assault or unwanted physical assault in early childhood can develop any kind of repulsion in their behavior and mind. They may become more wanderlust or have a desire for sexual experiences. This can lead boys to commit crimes like kidnapping, rape, etc.

7. Urbanization and Migration

The urbanization of children's homes and the migration of abandoned and destitute adolescent boys to slums bring them into contact with some anti-social elements of society who engage in some illegal activities such as prostitution, narcotics smuggling, etc. Such activities attract the child very much and they can quickly become involved in such activities.

8. Defective Recreation

In today's world, the primary means of recreation that is easily accessible to everyone is the cinema and the Internet. Cinema and the Internet are also responsible for juvenile delinquency. Cinema and online materials present a new model of crime through adventure, romantic scenes, etc. This recreation has definitely left an impression on the minds of children and they may indulge in anti-social activities.

Indian Legal System: Procedure in Case of Juveniles in Conflict with Law

The Indian legal system provides protection to every child who may be delinquent or a child in conflict with the law or a child in need of care and protection. Juvenile justice system of India can be discussed under the following heads:

1. Entitlement of Minor

The JJ Act treats all children under the age of 18 equally, except those who can be tried as adults if they are between the ages of 16 and 18 and have committed some heinous crime. For offenders between the ages of 16 and 18 who have committed a less serious crime, they can also be tried as adults if caught after the age of 21.

It will be pertinent to mention here that entitlement to a juvenile is the main issue in all juvenile delinquency cases. It decides the fate of the delinquent in further proceedings. A minor can raise this issue at any time and in any court up to the Supreme Court and now even after the case has been disposed of under Section 9 of the Juvenile Justice Act 2015.

In Deoki Nandan Dayma v. State of Uttar Pradesh,45 the Supreme Court held that an entry in a school register showing a student's date of birth is admissible as evidence to determine the age of a minor or to prove that a child is a minor. In Satbir Singh v. State of Haryana, the Supreme Court again reiterated and upheld the judgment in Deoki Nandan Dayma and held that the date of birth entered in the school register should be taken into account to determine the age of the offender.

In another case, the Full Bench of Bihar High Court held that for the purposes of juvenile surveillance, the relevant date for assessing the age of the juvenile when the offense was committed should be. But later in Arnit Das v. State of Bihar, the Supreme Court overruled this judgment and held that the date of adjudication of juvenile claim should be the date when the accused is produced before the competent authority.

Following the adoption of the latest Juvenile Justice Act of 2015, the date of the offense is the criterion for determining a person's age. If the juvenile ceases to be a minor during the course of the investigation, the investigation shall continue and an order may be made against such person as if they were still a juvenile or a child.

2. Procedure in Case of Arrest of a Juvenile

If it is suspected that a juvenile has committed a criminal offense and has been detained by the police, he will be handed over to the designated special department of the police for juveniles or designated police officer for the social and legal protection of children, who will immediately inform the parents or relatives of the juvenile about the arrest of the juvenile stage no FIR shall be registered against such a child except in cases of heinous crimes. The police officer will then bring the minor to the youth court without undue delay, within 24 hours of the juvenile's arrest, excluding travel time. It is mandatory that a juvenile should never be kept in a police cell or jail as required by Section 10 of the JJ Act.

Once such a juvenile is produced before the commission for committing any bailable or non-bailable offence, then Section 12 of the JJ Act says that he can be released on bail with or without surety. However, bail can also be refused on several

grounds such as fear of association with any known criminal or exposing him/her to moral, physical or psychological danger or his/her release would defeat the ends of justice. If the juvenile has not been granted bail, the police officer in charge of the police station shall ensure that the juvenile is kept in the observation house in the prescribed manner until he can be produced before the commission. The committee is also required to issue an order that the juvenile be kept in some observation home or safe place pending the hearing of the case.

The board will arrange for regular visits by the probation officer, social worker, district child protection unit or the committee itself to check the facilities provided to the child and to ensure that there is no maltreatment of the child in any form.

The Juvenile Justice Council will conduct an investigation in such cases where juveniles are apprehended for committing a crime. The investigation will be carried out in accordance with the provisions of the Act on JJ. The investigation must be completed within 4 months from the date of its initiation, unless the Board of Directors extends this period for reasons recorded in writing. The Act also provides for cases to be reviewed by a Chief Magistrate or Chief Municipal Magistrate. On completion of the investigation, if the juvenile is found not guilty, the Board under Section 17 of the JJ Act may pass orders to that effect notwithstanding anything inconsistent with any other law. If the board finds at this stage that the child is in need of care and protection, it can refer the child to a committee for appropriate guidance. And if the child is found guilty, according to Section 18 of the Act on Criminal Justice, he can be punished for a maximum period of 3 years for juveniles and 7 years for adult offenders. Such an offender must be held in a Child Welfare Center or Rehabilitation Center until he reaches the age of 21 and may then be transferred to a jail or prison.

It is also mandatory that all educational services including educational services, skills development, alternative therapies such as counselling, psychiatric support and behavior modification therapy are provided to the child during their stay in the place of safety.

3. Constitutional Rights of Juveniles

The Constitution of India also provides several fundamental or minimum rights and provisions, especially for the welfare of children. They are as under:

A. Free and compulsory education of children aged 6 to 14.
B. Protection against risky employment under the age of 14.
C. Protection against abuse in any form by an adult.
D. Protection against human trafficking and forced involuntary labor.
E. The right to ensure good nutrition and a proper standard of living.
F. The State may issue any special law for the education of children.

9. Juvenile Justice Administration: The Role of Different Bodies

Several authorities are established under the Act to perform various roles under the Act and JJ Rules. These bodies work under the control of the central and state governments. The purpose of the appointment of these bodies is the effective implementation of the Act on JJ.

These authorities are as follows:

1. Council for Juvenile Justice: The State Government is required to constitute one or more Juvenile Justice Boards for each district. This Board is to exercise powers and perform functions relating to children in conflict with the law under the JJ Act. The Board consists of a Judicial Magistrate First Class (JMIC) with at least three years' experience and two social workers, one of whom must be a woman. Any person who has violated human rights or the rights of a child in the past, has been convicted of a crime involving moral turpitude, has been dismissed from a job in the state administration, has indulged in a child abuse, any immoral act, employment of children, is not eligible for selection as a member of Juvenile Justice Commission. It is also mandatory that no social worker be appointed as a member of the Juvenile Justice Council unless they have been actively involved in health, education or welfare activities involving children for at least 7 years.

The role of the Juvenile Justice Board begins immediately after the juvenile is brought before the Board. The Committee shall ensure that all rights of the child are protected during the process of the child's arrest, investigation, aftercare and rehabilitation. The Board will initiate an

investigation as soon as the child is brought before it. The law did not use the word court. Primarily on the basis of § 8 letter e) of the JJ Act, the council orders the probation officer (in his absence, the child care guardian or the social worker) to conduct a social investigation and submit a report to 15 days from the day the child is presented to the council. To ensure that the child receives follow-up care and is not held in police custody or in prison, the Council will regularly inspect the place where the child is held. The provisions of § 8 letter j) of the Act on JJ authorizes the board of directors to inspect such a place at least once a month. Section 106 empowers the board to recommend measures to improve the quality of services to the district children's department.

Committee according to § 8 letter (k) of the JJ Act can also direct the police to lodge an FIR against persons who have committed any offense against a child in violation of law. The Board shall dispose of the case within 4 months or record the reason for the delay59 and shall issue a final order, which must include an individual care plan for the child and follow-up instructions to the probation officer or district child probation officer or member of an NGO as appropriate.

Section 6 of the JJ Act empowers the High Court and the Supreme Court to exercise any power of the Juvenile Justice Board whenever a matter comes before it on appeal, revision or otherwise.

It can therefore be said that the main task of the Juvenile Justice Council is to conduct an investigation into the commission of a crime by a juvenile and to take steps to rehabilitate and return the child to the society in which he previously resided. The board also balances individual and societal interest.

2. *Children's Court:* In cases of heinous crimes committed by a child between the ages of 16 and 18, the Juvenile Justice Board will have to make a preliminary assessment with regard to the child's mental and physical fitness to commit such a crime, the ability to understand the consequences of the crime and the circumstances under which it is alleged has committed a crime, and may accept and order under the JJ Act that there is a need to try the said child as an adult, then the Juvenile Justice Board may order the referral of the case to the Children's Division. Court. "Children's Court" under the JJ Act means a court established under the Commissions for the Protection of the Rights of the Child Act 2005 or a Special Court under the Protection of Children from Sexual Offenses Act 2012. In the event that such a court does not exist, then the Board may transfer process to the Supreme Court, which has jurisdiction to decide cases under the law.

As soon as the Children's Court receives such a case, it decides in accordance with Section 19(1) the question of the trial of such a child as an adult under the provisions of the Criminal Code of 1973. If the Children's Court is of the opinion that there is no need to deal with the matter under the Criminal Code, then it will open an investigation as a council and issues the relevant order in accordance with the provisions of § 18 of the Act on JJ. The Children's Court as well as the Youth Justice Board will have to ensure that the child is sent to a safe place until they reach the age of 21, after which the person can be sent to prison. The Children's Court must also ensure that the final order includes an individual care plan for the rehabilitation of the child, including subsequent social care.

A caseworker or county child protection department or probation officer: The court will also ensure the proper care of the child and the absence of ill-treatment in a place of safety. The entire hearing at the Children's Court will be conducted in private. A friendly atmosphere for children must be ensured and it must also be ensured that a joint trial of a child with adults is not conducted.

3. Child Protection Committee: The JJ Act has mandated the State Government to establish a Child Protection Committee by notification in the Official Gazette. The State Government shall ensure that initial training and sensitization of all members of the Committee is provided within 2 months from the date of notification. This committee must be established to exercise powers and fulfill duties in relation to children who need care and protection under the law. A person who has been actively involved in health, educational or social activities related to children for at least seven years or is practicing with a degree in the field of child psychology or psychiatry or law or social work or sociology or human development can be appointed as a member of this commission.

The member is appointed for a period of three years. The Committee functions as a panel and has the powers conferred by the Criminal Code on a Magistrate of the First Class. The District Magistrate is the child welfare committee's complaint handling authority and anyone connected with the child can make a complaint to the District Magistrate, the Committee regularly visits the Child Welfare Institute to ensure that children are properly cared for there. .

The committee can meet on all issues to ensure the proper care and safety of the child. The committee may issue orders or directions to a probation officer, child protection officer or any other organization concerned with the child to produce reports relating to the child. The committee may coordinate with the police, the labor department, who are involved in the care and protection of children, with the help of the district child protection unit or the state government.

4. State Child Protection Society and District Child Protection Unit: A Child Protection Society for the entire State and a District Child Protection Unit for each district will be constituted by each State Government.64 The State Government shall appoint sufficient number of staff in these bodies. The State Government will also provide sufficient funds to enable these bodies to meet the requirements. The main task of these bodies will be the rehabilitation and return of the child to their own society.

5. State Child Protection Society and District Child Protection Unit: The person in charge of the child welfare institution will facilitate the establishment of the children's committee. There will be different committees for different age groups, i.e. 6-10 year group, 11-15 year group, 16-18 year group committee. Committees meet monthly. The commission will strive to improve the condition of facilities for preparing children's daily routine.

6. Audit Committee: The JJ Model Rules mandate the appointment of an inspection committee by the state government for the state and district. These committees regularly visit and inspect all institutions registered under the JJ Act. The visit will take place at least once every three months with at least three committee members, one of whom must be a woman and one a doctor. The committee will check the equipment provided to the children. After the report is submitted by the committee, the District Child Protection Unit or the State Government shall take appropriate action within one month from the date of submission of the report.

7. Child Protection Officer: It is mandatory for every child care institution to have a child protection officer or case worker. This officer plays a key role in the youth justice system and follows the guidance of the Youth Justice Council, the Child Protection Committee and the Children's Court. When a child is admitted to a Child Care Institution by order of the Council or the Children's Court, the child welfare worker deals with the child in a friendly manner. This officer creates connections with voluntary workers and organizations for the rehabilitation and social integration of the child. This officer is responsible for the care, rehabilitation and development of children and will have to report to the committee, the board and the children's court.

A child welfare officer will be required to conduct a welfare inquiry as soon as the child is admitted to the child welfare facility and submit the report within 15 days to the board, committee or children's court. When a child is assigned to this officer, he or she will be required to maintain a file containing behavior, medical or mental tests, and evaluations and examinations of the child. A daily schedule must be established for the all-round development and rehabilitation of the child. He will have to make sure that the child has all the facilities in the daycare center every day.

8. Probation Officer: Probation officer for the purposes of the JJ Act means an officer appointed by the State Government under the Probation of Offenders Act 1958 or a probation officer appointed by the State Government under the District Child Protection Unit. The probation officer is to prepare a social inquiry report on the detained child in each case. The report must be completed within 15 days from the date of the child's presentation before the committee. The report will include the antecedents, family background, circle of friends of the child, his access to drugs and weapons and other factors that lead him to commit the crime and submit a report to the Juvenile Justice Board. It will not be necessary to issue formal orders from the Board of Trustees to submit the report.

A probation officer is required to supervise children in a child care facility. He will have to offer help to any child who needs any care from a probation officer. He participates in all meetings of the Council for Juvenile Justice and the Children's Court. He will also attend rehabilitation programs for children. He will have to play a big role in the rehabilitation or reintegration of the child into society.

9. Physician: There must always be a doctor in every child care facility. This officer can be called at any time for regular medical check-ups and treatment of children. Child care institutions must also have a nurse or paramedic on duty around the clock. The doctor will perform a medical examination of the inmate of the Child Care Institute within 24 hours of entering the institution. It is mandatory to keep complete medical documentation on each child of the institution. The record must include the weight, height, mental or physical condition of the child. Children must be under regular and permanent medical supervision. The doctor must maintain a special health profile for each child.

10. Child Welfare Police and the Special Juvenile Police Unit: The State Government shall establish a special Juvenile Police Unit headed by a Police Officer not below the rank of Deputy Inspector of Police or above in each district and city. At least one police officer in each police station can be designated as a child welfare officer with appropriate access and training. The police child protection officer must deal with children as victims or perpetrators in coordination with the police and non-governmental organisations. The special juvenile police unit will consist of all child welfare officers and two social workers with experience working in the field of child care, one of whom must be a woman. In all cases of offenses in which a child is apprehended, it is mandatory that such child be placed under the jurisdiction of a special juvenile police unit or a designated child welfare officer. The official who is in charge of the child has an obligation to take full care of the child.

Treatment of Juvenile Delinquents

The Government of India has also adopted several provisions, like other developed countries, dealing with the rights and protection of juvenile offenders in an effort to address the problem of juvenile delinquency. The juvenile justice system in India is based on three premises:

A. Children in conflict with the law should not be tried by the courts, but should be corrected in the best ways.
B. They should not be punished by the courts but should be given a chance to correct themselves.
C. The trial of a child in conflict with the law should be based on non-criminal treatment through community-based non-criminal treatment through community-based institutions of social control, such as observation homes and special homes.

The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 provides for many child care institutions in India. These are children's homes, open shelters, observation homes, places of safety, specialized adoption agencies and facilities eligible under this Act to provide care and protection to children in need of such facilities. These institutions are explained below:

1. Orphanage

The State Government must establish a Children's Home through a voluntary or non-governmental organization in each district or group of districts. All childcare institutions will be registered under the JJ Act, so the Children's Home will also be registered for the purpose of care and protection, education, treatment, placement of children in need of care, protection, development and rehabilitation. The State Government may lay down rules for the management of Children's Homes including the standards and nature of services to be provided and the monitoring system for such homes. Children who are without parents or abandoned by their parents or who are orphans and have no shelter or may be indulging in drugs or other anti-social activities or any other similar child that falls within the definition of a child may be left in the Children's Home.

2. Observation Home Page

An observation home is a home established and managed in each district or group of districts by the state government. Such observation homes must be registered under Section 41 of the JJ Act. The state government can establish such a home by itself or through voluntary or non-governmental organizations. The main function of

such a home is to receive, care for and rehabilitate a child who is alleged to have committed any crime. The State Government may lay down rules for the monitoring and management of such houses.

3. Special Homes

Special Homes are homes established by the State Government or a non-governmental organization registered under Section 48 for the accommodation and provision of rehabilitation services to children in conflict with the law who are sent to such homes on the order of the Board. The State Government may lay down rules for the monitoring and management of such homes. These homes will have a special and separate home for girls and boys above 10 years of age. There must be classification based on age, nature of crime, mental and physical condition.

4. Place of safety

According to Section 2, Section 46 of the JJ Act, a place of safety is a place or institution that is not a police lock-up or a prison, established separately or attached to the observation home of the special home whose person is entrusted with it ready and willing to receive and care for a child in violation of the law. The state government is required to establish at least one safe place in the state. It is also registered according to § 41 of the Act on JJ. A child who is accused or convicted of a heinous crime can be kept safe if it is the same. State Govt. may lay down rules for monitoring, maintenance and necessary services to be provided in such safe place.

5. Specialised Adoption Agencies

Specialized adoption agencies are recognized by the state government and work to rehabilitate orphaned, surrendered, abandoned or abandoned children through adoption. It is mandatory that these agencies are audited by the state government at least once a year. The Child Protection Committee declares the child legally free for adoption and entrusts the child to the care of the Specialized Adoption Agency. Such children can be rehabilitated by these agencies through adoption.

Judicial Access to Juvenile Justice

Whenever the question of illegality arises, the courts in India always step in to resolve the issues. In juvenile justice cases, justice has played a big role to deal with the juveniles in an appropriate manner. In Jayendra v. State of Uttar Pradesh, the Supreme Court ordered a medical examination of the appellant to ascertain his age. The applicant was convicted of a criminal offense and was sentenced to imprisonment. Based on the medical examination, it was clear that the complainant was 16 years and 4 months old at the time of the crime and 23 years old at the time of the medical examination. The Supreme Court upheld the conviction but ordered the applicant's release because he was a juvenile at the time of the crime. A similar view was expressed by the Supreme Court in the case of Bhoop Ram v. State of Uttar Pradesh, where the court held that the time of commission of the offense is relevant in determining the age of the offender.

In Sheela Bars v. Union of India

The Supreme Court directed the state governments to set up observation homes where accused children could be placed during the trial.

The Supreme Court delivered another landmark judgment in Sheela Barse v. Secretary, Children's Aid Society. In this case, the Court took suo motu action based on a letter received from a reporter containing allegations about observation homes run by the Children's Aid Society. . The court ruled that children should not be forced to stay in an observation institution for long periods of time. The occupations offered to the child in these homes should lead to adaptation in life, self-confidence and the development of human values.

Vishal Jeet v. Union of India, The Supreme Court issued directions in this public interest litigation to State Governments and Union Territories to eradicate the evil of child prostitution and to develop programs for the care, protection, development, treatment and rehabilitation of young victims. .

In M. C. Mehta v. State of Tamil Nadu, the Supreme Court issued guidelines for compulsory education, health, nutrition etc. on child labour.

In Raj Singh v. State of Haryana the controversial issue of determining age came up again before the Supreme Court. The court again decided that the date of the crime plays a crucial role in determining the age of the offender.

However, this judgment was overruled in Amrit Das v. State of Bihar The Court disagreed with the earlier decision in Raj Singh and held that neither the definition of juvenile nor any other provision contained in the Act expressly mentions the date of reference to age. of the child must be determined to determine whether he was a minor or not.

In Munney v. State of Utter Pradesh

In that case the accused was convicted under Section 302 read with Section 34 of the Indian Penal Code, 1860 and sentenced by the Additional Sessions Judge to imprisonment for life. The sentence was also confirmed by the High Court. In an appeal to the Supreme Court, the accused complainant was taken up with a new plea that he was a juvenile at the time of the commission of the crime, which occurred on 11/11/1978. The appellant was convicted by the Additional Sessions Judge on 26.2.1980 and at that time the Children Act, 1951 was in force which provided protection to a child below the age of 16 years. The Supreme Court considered the fact that the petitioner in his own statement stated that his age is 18 years and he is studying in class 10+2 which reflects his age at the time of occurrence of almost 17 years. At the time of trial or appeal in the High Court no objection was raised that the accused was a child. The Supreme Court ruled that the accused was not a child at the time of the crime.

In the Case of Pawan v. State of Uttaranchal

Similarly, in this case also the plea of juvenile was raised for the first time only in the Supreme Court. The question before the Court was whether the inquest report would be required or not, especially as no prima facie evidence of juvenile was produced in the High Court and the question of juvenile was not raised in the trial court and the High Court. The Supreme Court held that in such a case the judicial conscience of the Supreme Court must be satisfied by placing adequate and satisfactory material that the accused was below 18 years old at the time of the crime. The appeal was thus rejected.

The Case of Nirbhaya

The Nirbhya case is one of the major cases of India. In this case, the crime of mass rape and murder was committed by six persons, one of whom was under the age of 18. The whole country was shocked by this act and there were protests for sentencing the child as an adult. The Juvenile Justice Board concluded an investigation and found that the youth was the "most brutal" of the six accused. But since the law made it clear that a juvenile could not be treated like an adult, he was kept in a detention center for a maximum of three years.

In Jodhbir Singh v. State of Punjab82 the Supreme Court held that if the accused is a juvenile at the time of the incident, he should be tried in a juvenile court. In Kulai Ibrahim v. State82, the court held that the accused can raise the issue of juvenile even after the disposal of the case.

Conclusion and Suggestions

Children, who are actually the treasure of the nation or the pillars of strength of the nation, if not properly cared for, may indulge in anti-social activities. Since crime has been a social phenomenon since the beginning of society, a child may be attracted to the same. Therefore, it is necessary that certain steps are taken to direct their energy in the right direction. Even though we know that childcare is essential, still the rising juvenile crime rate in India is a major concern. It requires the priority of the government and other sociologists and criminologists, lawyers, advocates and courts.

The government is doing a great job and has passed a number of laws to deal with young offenders, including the latest progressive step of the Youth Justice Act 2015, but it can be said that the scale of the problems is so huge that what has been done so far is not enough.

Absence of proper growth of today's children will throw the future of the country into a dark atmosphere. Juvenile crime is a serious problem that damages the social order of every country. In addition to delinquent juveniles, another category of children that requires attention is the child in need of care and protection. With this category of children, we see that their total number is growing rapidly every day and they are also heading towards delinquents.

To deal with the problems of both categories of juveniles, the Government of India and the State

Government have created or appointed or set up several agencies and special homes for children. These bodies work under the direction of the government. But the problem is increasing day by day. Therefore, the present researcher makes the following suggestions:

- Effective implementation of the JJ Act is essential and to achieve this goal, the implementation of these provisions needs to be monitored.
- Training program or capacity building for juveniles is mandatory. It includes all the authorities that deal with the child, from the police, the probation officer to the board and the judge.
- There is a need to strengthen administrative institutions to make them effective, accountable and targeted. The main problem is financial aid, which needs to be given maximum attention.
- There is a need for critical legal awareness of the guarantees provided by the JJ Act.
- Steps should be taken to prevent children from indulging in anti-social activities. Therefore, the detection and prevention of crime through the study and counseling of problem children at school is necessary.
- There is an urgent need to change the traditional repressive and frightening attitude of the police towards the public and especially towards children and reformation will be the primary objective. Since the police are the first point of contact for a delinquent juvenile, they should have quality social workers and a good knowledge of their new socio-legal responsibilities.
- Each county has separate juvenile courts.
- Observation homes involve more teachers for the proper education of children.
- The hearing of the case should be informal and no other person should be allowed in the juvenile court.
- Public legal awareness programs on juvenile justice and especially the prevention of children's involvement in anti-social activities will be implemented at lower levels.
- The age of the juvenile is determined on the date of the offense.
- Prompt disposal of cases should be ensured. The Council will always complete the investigation in all cases within 4 months.
- Special provisions to help juveniles must be strictly enforced.
- Community participation should be increased, especially as the juvenile justice system currently operates in isolation from the mainstream.
- All bodies appointed by law will work in an unbiased manner, a rehabilitated approach should be applied.
- Steps must be taken for the all-round development of children in the Child Care Institute.
- Parents should be given training to adapt, adjust and understand children's behavior. General awareness programs for family education should be started to motivate children for development activities.
- Advertisements and advertising agencies should pay special attention to deliver in the right way to engage children and not make them violent. The same policy applies to film and online material.

References

1. Agarwal, S. and Kumar, N. 2016. "Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act 2015: A Review." Space and Culture, India 3 (3):5–9.
2. Bala, N., Carrington, P. J., and Roberts, J. V.. 2009. "Evaluating the Youth Criminal Justice Act After Five Years: A Qualified Success." Canadian Journal of Criminology and Criminal Justice 51 (2):131–67.
3. Behari, Chandra. 1961. Police Act 1861, Allahabad.
4. Crawshaw, Ralph and Leif, Holmström. 2008. "United Nations Rules for the Protection of Juveniles Deprived of Their Liberty." Pp. 467–82 in Essential Texts on Human Rights for the Police, edited by Crawshaw, Ralph and Holmström, Leif. Leiden: Brill Nijhoff.
5. Dube, D. 2014. "Public Opinion in the Wake of the Nirbhaya Gangrape – Ominous Signs for India." International Journal of Advanced Research in Management and Social Science 3 (1):89–103.
6. Feld, Barry C. 2008. "A Slower Form of Death: Implications of *Roper v. Simmons* for Juveniles Sentenced to Life Without Parole." Notre Dame Journal of Law, Ethics and Public Policy 22 (1):9–65.
7. Government of India. 1875. *Indian Majority Act, 1875*. Retrieved November 30, 2021 (http://www.bareactslive.com/ACA/ACT1876.HTM).

8. Government of India. 2009. *The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009*. (https://legislative.gov.in/sites/default/files/The%20Right%20of%20Children%20to%20Free%20and%20Compulsory%20Education%20Act,%202009.pdf).
9. Government of India. 2021. *The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Amendment Bill, 2021*.
10. Government of India, Ministry of Law and Justice, Legislative Department. n.d.b. *The Constitution (Eighty-Sixth Amendment) Act, 2002*. Retrieved May 22, 2021 (https://legislative.gov.in/constitution-eighty-sixth-amendment-act-2002).
11. Government of India, Ministry of Women and Child Development. n.d. The Children Act, 1960 [Act no. 60 of 1960 dated 26th. December, 1960]. Retrieved August 26, 2020 (https://wcd.nic.in/children-act-1960-60-1960).
12. LegalServicesIndia.com. n.d. *The Juvenile Justice Care and Protection of Children Act, 2000 and The Juvenile Justice Care and Protection of Children Act, 2015*. Retrieved August 26, 2020 (http://www.legalservicesindia.com/article/2482/The-Juvenile-Justice-Care-and-Protection-of-Children-Act,-2000-and-The-Juvenile-Justice-Care-and-Protection-of-Children-Act,-2015.html).
13. Nair, Smita. 2019. "Justice League: An Attempt to Institutionalise Juvenile Reform and Rehabilitation." *The Indian Express*, July 28, 2019. (https://indianexpress.com/article/india/juvenile-justice-correctional-home-rehabilitation-5857362/).
14. National Crime Records Bureau (NCRB). (https://ncrb.gov.in/).
15. Pfund, P. H. 1994. "Intercountry Adoption: The 1993 Hague Convention: Its Purpose, Implementation, and Promise." Family Law Quarterly 28 (1):53–88.
16. Piper, Christine. 1999. *The Crime and Disorder Act 1998: Child and Community "Safety"*.
17. Pritchett, Frances W. n.d. "XVI. Mughal Administration." (http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00islamlinks/ikram/part2_16.html).
18. PRS India. n.d. "Police Reforms in India." Retrieved November 30, 2021 (https://prsindia.org/policy/analytical-reports/police-reforms-india).
19. Ratliff, J. 1999. " *Parens Patriae*: An Overview." Tulane Law Review 74:1847.
20. Richards, J. F. 1995. The Mughal Empire, vol. 5. Cambridge: Cambridge University Press.
21. Salmond, J. W. 1907. Jurisprudence: Or the Theory of the Law. London: Stevens and Haynes.
22. *Sampurna Behrua v. Union of India* (Supreme Court of India) (Civil Original Jurisdiction, Write Petition No. 473 of 2005; decided on 9 February 2018).
23. Scott, Elizabeth S. 2013. " *Miller v. Alabama* and the (Past and) Future of Juvenile Crime Regulation." Law and Inequality 31 (2):535–58.
24. Sharma, B. R., Dhillon, S., and Bano, S.. 2009. "Juvenile Delinquency in India – A Cause for Concern." Journal of the Indian Academy of Forensic Medicine 31 (1):68–72.
25. *Shilpa Mittal v. State of Nct of Delhi on 9 January 2020*. (https://indiankanoon.org/doc/187771162/).
26. Sihag, Balbir S. 2007. "Kautilya on Administration of Justice during the Fourth Century B.C." Journal of the History of Economic Thought 29 (3):359–77.
27. Syed, Ismail Y. 2018 "Interest in Sharia: Legal Consequences and Penal Aspects in Sharia." *SSRN*, April 30, 2018. (https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3369733).

Digital India: Challenges And Oppourtuinity, In The Perspective Of State Of Bihar

Dr. Ratan Kumar

(Guest Faculty Deptt. Of Applied Economics and Commerce P.U.PATNA)

ABSTRACT - Digital India is an initiative of the Central Government of India "designed to transform India into a global digitized hub" by reviving a rundown digital sector of India with the help of improving digital connectivity and skill enhancement and various other incentives to make the country digitally empowered in the field of technology. This paper helps understand the global as well as domestic challenges that might hinder the successful implementation of the program and suggest some feasible remedies to deal with the same. Further the paper also highlights the opportunities that would pave the way for achieving the program's aim of making India the preferred choice for digital activities by both global and domestic investors and also how far the "Digital India" model can prove to be an attraction for the in vectors' to invest in the sectors which are yet to achieve their full potential in India.

INTRODUCTION: Digital India Program is a national campaign to transform India into a globally connected hub. It includes various proposals and incentives given to companies, basically the manufacturing companies both domestic and foreign to invest in India and make the country a digital destination. The emphasis of Digital India campaign is on creating jobs and skill enhancement in the Broadband Highways, eGovernance, and electronic delivery of services, Universal access to Mobile Connectivity, Electronics Manufacturing, and Information for All etc. The campaign's aim is to resolve the problems of connectivity and therefore help us to connect with each other and also to share information on issues and concerns faced by us. In some cases, they also enable resolution of those issues in near real time. This initiative is focused to help India gain a better rural connectivity with a stable governmental policy in the background coupled with benefits and incentives via the campaign. Simultaneously the initiative is designed to create jobs and enhance skill developmentwhich will ultimately lead to increase in GDP and revenues from tax.

LITERATURE REVIEW: Digital India" initiative has been an intriguing subject matter of numerous researches from various disciplines because of its great significance and influence on the economy as a whole and particularly the technological sector. Being a recent move, there have been various research on different aspects of the initiative ranging from the economical to social and ethical dimensions. Some of these researches retrieved through internet searches have been reviewed here. Prof. Singh began with the basic overview of what Digital India entails and led a discussion of conceptual structure of the program and examined the impact of "Digital India" initiative on the technological sector of India. He concluded that this initiative has to be supplemented with amendments in labor laws of India to make it a successful campaign. (2) Sundar Pichai, Satya Nadella, Elon Musk researched about Digital India and its preparedness to create jobs opportunities in the information sector. (3) He concluded that creating new jobs should be continued with shifting more workers into high productivity jobs in order to provide long term push to the technological sector in India. Microsoft CEO, Satya Nadella intends to become India's partner in Digital India program. He said that his company will set up low-cost broadbandtechnology services to 5lakhs villages across the country. Arvind Gupta intends to say that Digital India movement will play an important role in effective delivery of services, monitoring performance managing projects, and improving governance. An Integrated Office of Innovation & Technology to

achieve the same, and for problem solving, sharing applications and knowledge management will be the key to rapid results, given that most departments work on their own silos. Tracking and managing the projects assume significance because India has been busy spending money in buying technology that we have not used effectively or in some cases not even reached its implementation stage. Sharing, learning's need to be best practices across departments Tracking and managing the projects assumes significance because India has been busy spending money in buying technology that we have not used effectively or in some cases not even reached implementation stage. Sharing learning's and best practices across departments needs to be driven by this Office of Technology.

Bihar Located in the Eastern part of the Indian subcontinent, it covers 2.86% of India's geographical area. About half of Bihar is under cultivation, but population pressure has pushed cultivation to the furthest limits and little remains to be developed. Rice is the dominant crop grown with pulses, wheat and barley being supplementary crops (Dutt et al., 2020).

Digital India and rural development Digital India was launched in 2015 to create digital infrastructure for empowering rural communities and promoting digital literacy. Digital India can serve as an integral tool for development of the agricultural sector in India. Agriculture in India suffers from various handicaps, for example, the agricultural supply chain in India is highly unorganized and complex. It suffers from lack of transparency and coordination between various stakeholders, leading to bigger ratio of agricultural produce being wasted. The pre and post-harvest situation of the crop needs to be traced in order to improve accountability and transparency. An improvement in transparency about the agricultural processes in the supply chain of the produce will prevent wastage and increase consumer trust. The greatest contribution of digital India is enabling farmers to get the best price while reducing transaction costs, this helps the farmers avoid the costs of intermediaries and expand their profit margins. Because of innovation in digital agricultural solutions built using computer visions, farmers can monitor crop and soil health. They can learn the best practices for the entire supply chain. These technologies help the farmers adapt faster to adverse weather conditions especially in flood and drought prone regions. Availability of sensors and drone helps the rural youth fight pests, spray pesticides and monitor crop health among others. Replacing farmer's subsidies, the government can reach the farmers directly for cash transfers. This in turn helps the farmers come out of debt traps and enhance agricultural productivity. When combined with data infrastructure, subsidies can help increase the farmers' profit margins, enabling them to further invest in their farm's to increase production. With the help of social media platforms, participatory videos explain best management practices to farmers. With digital platforms, farmers can overcome poor banking infrastructure and support savings and access credit digitally.

Objectives: The following research aims to: i. Highlight the importance of digitalization in agriculture to overcome most of the agriculture related problems in India throughout the journey of the crop production. ii. Study the existing dichotomy between the states of Haryana which is highly food secure and Bihar which is extremely food insecure. To get to the bottom of this, we must first understand the reasons behind these contrasting scenarios.

MATERIALS AND MENTHODS: There is an extensive digital divide between the states of Haryana and Bihar. In order to become food secure, Bihar ought to narrow this divide and introduce more programs which enable farmers to reach their maximum potential. Incorporating initiatives launched by the state of Haryana could ensure this possibility. Primary data was collected through the process of questionnaire which consisted of close-ended questions in the form of Multiple Choice Questions. This particular method was adopted because of the ongoing Covid-19 pandemic and the use of online questionnaire allowed easy collection of data from the respondents. A sample size of 40-45 was chosen to satisfy the objectives of this research. Respondents belonged to various backgrounds i.e. from different states of the country and belonging to varying socio-economic backgrounds. Respondents were asked their opinion on questions like the reasons for poor state of agriculture in India, the cause behind Haryana's

prosperity and Bihar's backwardness and whether digital investment in agriculture has the potential to transform the state of agriculture in the country. The respondents were provided various options to choose from and in case they were unsure about a particular question, they were given the option of 'not sure' and maybe' to choose from. The responses gathered were depicted in the form of Bar charts and Pie charts. However, there is a possibility that a few respondents failed to comprehend the questions despite their straightforwardness and guessed their answers, instead. This could be the result of lack of awareness on the subject being researched. However, this does not in any way impact the interpretation of data, because majority of the respondents provided answers after extensive thought and deliberation as described by them in the comment box. Secondary data was collected from credible and wellcited academic research papers and journal articles written by authors on the same topic. Central government initiatives In order to tackle the issues faced by the Indian farmers, the Government has introduced a number of initiatives. Digital India is a platform to provide services to farmers through digitally enabled devices.

Following are some of the initiatives: i. e- Sagu In order to advice farmers regarding various techniques to increase farm production, expert suggestions are provided to farmers through Internet and Audio visual communication facilities. ii. Community radio This initiative of the Government provides information to the farmers using radio station facilities. iii. Digital green Information related to farming, nutrition, health is disseminated through short videos using low-cost and durable technology. iv. Soil health card schemes Introduced in 2015, this scheme has been introduced in order to assist state governments to issue soil health cards which provide information regarding improvement of soil health and fertility to farmers throughout the nation. v. e- NAM This initiative of the Government serves as an E-marketing platform for the entire nation and supports the creation of infrastructure to enable E-marketing. This allows farmers to earn better prices for their products, thus moving towards the goal of "One Nation One Market" (Sharma, 2019). vi. The Government has put in operation the use of three portals, namely the Farmers portal, Kisan Call Centre and Kisan portal in order to help farmers make an informed decision for efficient farming under diverse climates. vii. E-governance programs, Soil health card software and web based software provide farmers with crop management recommendations in many states of India.

RESEARCH METHODOLOGY: The specific types of information and / or data needed to conduct a secondary analysis will depend on the focus of study. For this research purpose, secondary data analysis is usually conducted to gain in-depth understanding of the "Digital India" initiative. Secondary data review and analysis involves collecting information, statistics, and other relevant data at various levels of aggregation in order to conduct a requirement analysis of the rural area and mostly the paper is based on the information retrieved from the internet via journals, research papers and expert opinions on the same subject matter. Sampling Design: Digital India who are the main source of primary data are collected from the digital India through a wellstructured questionnaire. As the area of study is limited in Salem district of Bihar and as the total population of digital India population is numerable, the researcher has proposed the sampling techniques for the selection of respondents. To identify the right respondents which are also very essential for the collection of primary data the following process has been adopted scientifically. Tools of analysis: All these data are to be arranged in various form of tables and proposed to critically analyze with the help of a number of statistical tools. Percentage Analysis and Chi-Square Test are the various statistical tools applied.

Findings of the Study

It is observed from the above table that the percentage of satisfaction of digital india in challenges & opportunities was the highest (26.6%) among the respondents of 31-40 years age group and the same was the lowest (6.69%) among the respondents ofabove 20 years age group. The percentage of medium digital India in challenges

& opportunities Opinion attitude digital India in challenges & opportunities was the highest (20.44%) among the respondents of Below 31-40 years of age category and the same was the lowest (18.68%) among the respondents of above 40 years age category. The percentage of low Opinion digital India in challenges & opportunities attitude towards digital India in challenges & opportunities was the highest (23.52%) among the respondents of 31-40 years of age category and the same was the lowest (16.12%) among the respondents of below 20 years. It was found from the analysis that the maximum Opinion digital India in challenges & opportunities belongs to the age group of '21-30' years. In order to find the relationship between the age of the respondents and their Opinion women digital India in challenges & opportunities, the following hypothesis was framed and tested with the help of Chi-square test.

CHALLENGES, RECOMMENDATIONS & SUGGESTIONS: The Digital India campaign cannot be a successful campaign merely by implementation or by incentivizing industry. For a hugely rewarding success, the campaign should move forward taking along other policies, amending redundant laws, focusing on necessary infrastructure building etc. One such hindrance in the way of Digital India is the first is the digital infrastructure, which requires to be put in place. For this the telecom infrastructure will form the base. On top of this layer, we need the IT infrastructure in the form of apps, software etc. The second set is content that needs to be relevant to the citizens and address their real-time requirements. The third layer is capacity. Unless we have all these three sets (i.e., telecom infrastructure, content, capacity) we will not be able to meet the supply commence rate of the demand. If this point is not taken proper care of then there would be clashes between the people in the rural areas and the government which will result in delay in commencing the project which will ultimately defeat the Digital India campaign's spirit of quick and hassle-free ease of doing business. If this government takes the agenda forward and does not leave any of the constituent parts gasping for funds, the opportunities are huge for the country in general and for willing participants in the IT sector as well! There is much to be done, from the creation of smart cities to the comprehensive availability ofbroadband, from connectivity in education, healthcare, agriculture, and manufacturing to a National Digital Literacy Mission (NDLM) that Nasscom Foundation has already taken up with the Department of Electronics & IT (DeitY). What is important to understand is that like any elephant, Digital India has many parts, and each has to be addressed to make the big vision a reality. Another recommendation as to digital connectivity is to reduce the judicial clearances and stability in ruling which can act as a major impetus to the technological sector as it will attract high investor confidence with the judicial rulings being fair and pro-business. Going by the present practices, the imposition of certain amendments with retrospective effect has garnered much noise in the past and should immediately be taken notice of. The more stable, quick, and fair the judgment in basically cases relating to the business and taxation sectors, the better the chances of attracting more business leaders to invest more.

CONCLUSION: Digital India' initiative is a refreshing move and quite the need of the hour for the weakened technological sector. The Government of India hopes to achieve growth on multiple fronts with the Digital India Programme. Specifically, the government aims to target nine 'Pillars of the Digital India' that they identify as being. 1. Broadband Highways 2. Universal Access to Mobile Connectivity 3. Public Internet Access Programme 4. e-Governance – Reforming Government through Technology 5. eKranti - Electronic delivery of services 6. Information for All 7. Electronics Manufacturing 8. Digital or IT for Jobs 9. Early Harvest Programs. However, it requires to be rightly substantiated with amendments to various legislations that have for long hindered the growth of Indian technology. India should focus more on developing domestically led connectivity, promoting research and innovation-led development to establish itself strongly on the international stage as an economic superpower and particularly a thriving technological hub.

References:

1. Dr.Bindu Dua, 2018,Digital India Challenges and Suggesstion for Implementations, review of Research, Vol.8, Issue 1.
2. Midha.R,(2016), Digital India Barrier and remedies, International conference on recent innovation in Science, Management, Education and Technology, 256-261.
3. Sharma S.K Lama, V & Goyal.N (2015) Digital India a verson towards digitally empowered knowledge Economy, An Indian Journal of Applied Research 5(10), 715-16.
4. Panda.I. Chhatar, D.C & mharana.2013. A Brief View to Digital Divide in Indian Senerio. International journal of Scentific and research publication 3(12).
5. Shetty .V,2019, A study of Awareness among Youth about Digital India Initiative Research Vol.6, Issue 4, PP 8-21.
6. telecommunications/in-tmt-tele-tech-2015-noexp.pdf
7. www.dqindia.com.
8. www.ncaer.org.
9. www.dnaindia.com

Implications of GST on Unbranded Food Items

Dr. Phool Chand

Associate Professor, PGDAV College, University of Delhi

The GST council amended the law to cover unbranded food items such as wheat, flour, milk, puffed rice, organic food, etc. under the ambit of 5 percent GST from 18th July. Since then, food traders across the nation started searching for its implications. There is a lot of buzz in the market and households regarding the implications of this new regime. While consumers have been baffled over the food items that come under the current regime, the food traders have confusion over the exemption of packaged and brand concerns of the goods like cereals, wheat, rice, natural honey, pulses, and paneer. This new levy of GST on unbranded food items certainly expands the GST network. However, this move of the government would affect the consumption of basic food items which has been already facing stubborn food inflation due to the Ukraine war. At such times when the rupee has been depreciated to an all-time low, widening current account deficit, rising fed rates inducing inflation across countries, and supply chain disruptions caused by the Ukraine war, this step appears to be unwise as it could induce food inflation further.

The decision to brand or rebrand a good is based on the manufacturer's financial strength whereas to buy a branded or unbranded product depends on the income of the consumer. The GST levies tax on branded food items means a logo, trademark, or brand name on the packaging whereas unbranded food items represent the food from an unmarked unit container. This new move not only affects the price and packaging of product but other p's of marketing as well like place and people. In order to understand the consequences, firstly the difference between generic products and branded products must be known to all the concerned traders and households. It is said that brand lies in the perception of consumers about a particular product. The brand is the symbol, logo, pride, and perception of a product of the consumer. Generic brands or unbranded goods are those that offer basic benefits to the consumer besides the manufacturer's name is not labelled on the package as either the manufacturer doesn't have product differentiation or limited resources because branding requires quite serious efforts on the ground. Whereas, branded goods are those where the manufacturer's name is labelled on the package as he decides to go for branding like Samsung, Adidas, Fortune, etc. that offers functional, symbolic, and experiential benefits to the consumer. Consumers indeed seek branded items to get quality products however as per economics, income is one of the significant determinants of consumer demand therefore consumers' demand for quality changes as per their income. As we know, in every society there are different classes of consumers who can afford different goods as per their income. However, food items like cereals and pulses are household items that have inelastic demand because of necessity. Being a necessity, there is no alternative to the consumer as they could be starving without basic food items like atta, flour, milk, etc. so the consumer will buy these products either way cause they need to feed themselves to live. Branded goods indeed provide quality and reason to buy however in the end that is income and necessity of good that decides the purchase no matter how appealing that brand looks. It is wrong to claim that consumers will look only at the final price including tax. Therefore, putting GST on unbranded food items seems quite not good from the point of view of the consumers as they only need to satisfy their basic needs through such products.

The current regime requires the registration of unbranded food items under this act only then it will attract GST. A registered brand name signifies a product that is registered under the Trade Marks Act, 1999. Until now only branded food items are covered under the levy of GST. According to this new amendment, only pre-packaged and labelled

food items like cereals, pulses, wheat, flour, etc. that weigh up to 25 kg or litres, would be covered in the 'pre-packaged commodity' under the Legal Metrology Act, 2009. Whereas, single packaged and labelled unbranded food items such as pulses, and cereal that weighed more than 25 kg would be exempted from this current levy of 5 percent GST. That means only when pre-packaged items weigh up to 25 kg then GST would apply besides if a retailer supplies in loose quantity to a consumer in a 25kg pack will not come under this amendment. For instance, if the retailer supplies pre-packed rice and flour weighing up to 25 kg to the ultimate consumer will attract GST but if the supply of rice and flour exceeds 25 kg then GST would not apply. Besides the CBIC clarified that GST would be levied on multiple retail packages, for instance, 5 retail packs of atta or flour weighed 15 kg each shall not attract GST. Accordingly, in case multiple packages are sold in larger packs such as 8 packs of 10 kg each meant for sale to the ultimate consumer from the retailer, then GST shall be liable. However, if one package contains 40 kg atta then it shall not be liable for GST as single packaging which weighs more than 25 kg would not be taken into account as a pre-packaged and labelled product.

Several small traders expressed concerns about levying GST on unbranded food items as these traders are bound to come under the GST net which will hamper their earnings eventually. Whereas, the government sighting it from the angle of trade inequality. Here trade inequality implies when the traders started de-registering brand names to sell their products under the established registered brand name so that they could avail the benefits of unbranded food items. This has been also mentioned by the late Minister of Finance Sh. Arun Jaitley. Earlier, GST used to be levied on registered trademarks only while the goods in open would not attract any GST. So, the small traders were exempted to pay GST for using any brand names which was sighted as unfair by the big corporates on account of a common market for all as here small traders were at advantage. Now the small traders are bound to pay 5 percent GST for using any corporate brand name.

The big corporate brands claim this initiative fruitful in the long run as it lays the common ground for all the traders and paves the way for branded packaged food industry of India. However, it appears unfair to small traders because they have been already facing financial hardships due to the pandemics and rising food inflation which has been making such big holes in their pockets. The market of branded food items appears attractive to the big corporates as they stand to gain at the cost of small food traders. Indeed, several small food traders have been selling their products without GST. But now the branded food packaged industry of India has been set to roll over the unbranded food items sellers. It appears to be the market is opened up for the big players to penetrate. For Big players, this is an opportunity to capture the share of the rural market where small traders hold the major chunk of market share till now because unbranded food items sales are more in rural areas than in urban ones. On the contrary, the small traders will be indulged in defending their share afterward. So, is the consumer willing to pay extra for unbranded food items? It prompts food for thought in more than one way. This move will divert the consumers towards completely branded food items because a rational consumer won't pay extra for unbranded food items that will be a major push for branded food items corporates like Fortune, Kohinoor, and others.

Implications of 5 percent GST on Unbranded Food Items:

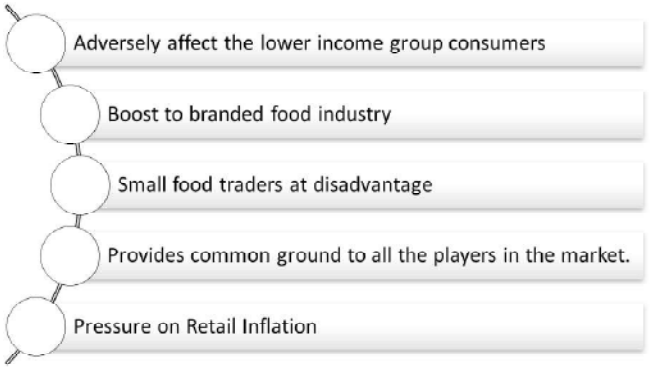

Source: Author's own

As far as the economy is concerned, the 5 percent GST on unbranded food items will surely put upward pressure on retail inflation. It raises the moot question of the timing of this move. One thing is certain afterward this move that the common man and the small food trader are bound

to suffer the most. Therefore, the government should reconsider it in the context of small traders and low-income group consumers instead of only some mischievous traders or the food processing industry who have been using another brand name to take advantage of unbranded food items tax bracket. When branded food items come under the GST umbrella, some traders started to de-registering their brand so that they could avail the benefits of unbranded food items as this would make their product competitive as compared to others in the market. The GST council quickly sniffed what was cooking in the market and quickly amended the law to clearly state the definition of registered brands under GST. Today, it seems quite challenging to hide from this definition for food traders. However, the 5% GST on unbranded food items is an unnecessary load on retail inflation. Is this a ripe time to stop the revenue leakages by imposing 5 percent GST on unbranded food items? This move could have been put on halt for some time at least. Today, tax collections are all-time high besides rising inflation and unpredictable geopolitical scenario have been adding to the woes of economic growth. Certainly, this move will widen the tax base and build a robust tax system that is grounded on transparency but the timing of such a move is questionable. The Confederation of All India Traders (CAIT) has already weighed the consequences of this decision and requested to take back this new amendment to the finance ministers of all the state citing it will adversely affect the small traders and raises the tax load of compliance. Besides only a few people could afford branded goods in this country.

The major implications of the 5 percent GST on unbranded food items:

1. Big players will penetrate the market.
2. Small traders stand to lose their turf-rural market. They have been staring at this huge loss of market share besides financial constraints amid retail inflation.
3. Way forward for India's branded food packaged industry.
4. Increases tax bases and fixes revenue leakages via building a larger and more robust tax system in India.

In a nutshell, this decision will push the small traders towards an unknown future where they can only see one thing clearly and that is loss of market share, the burden of tax, and financial shortfall due to retail inflation.

Role of Restructuring of PSB'S in India's $5 Trillion Economy

Dr. Ramveer

Assistant Professor, Department of Commerce, PGDAV College, University of Delhi, Delhi, India.

Abstract:

Indian Banking is providing the world level quality of services to the customers. It's attracting millennial and young customers. Day by day several types of innovation and innovative ideas are applied for betterment of services to the citizens. Now, the world citizen's connectivity is fast and speedily with the help of Internet. So, we lived in global village. We required our banking facility and working like global standard. So that need for restructuring of our banking system and structure for fight in completion in the global platform. Smart banking is the today's requirement. For better service quality and increasing productivity of the assets, efficiently and effectively utilization of resources, by using advanced technologies such as- Collaboration tools, Artificial Intelligence (AI), Internet of things (IoT), and Machine learning(ML). Through the improving services facility with the quickly and speedily availability of services and reducing the waiting time of the customers The main aim of research paper is to study the role of restructuring of PSB's in India $5 trillion economy on their performance. On one hand, PSB's are facing rigorous issue of increasing huge NPA's. NPA's is creating lot of problems in working of as well as developments and productivity of the PSB's. Due to that problem is negative impact of the working and adverse effect of leading. This study is purely based on the secondary data. The data derived from various online sources like website of RBI and website of PSB's. The performance of PSB's in teams of Advances, NPA's, Deposits, Net Profit and EPS, Interest Income, NII, during second decade of the 21st century.

Key words: Restructuring, Internet of Things (IoT), Artificial intelligence (AI) and Machine Learning (ML), and Digital banking.

Introduction:

The government of India taking several initiatives for economy growth such as reforms and development policy introduced by RBI as well as Ministry of finance in banking sector and finance sector. Recently in banking scoter are merged PSB's. The numbers of public sector banks are reduced 27 to 12. That is the structural changed or restructuring of PSB's. This process of government take positive decision for achieving the economy progress and development because the Indian population demanding more funds. That fund comes from the banking channels and borrowing from banks. The PSB's are the landscape of Indian economy. The banking sector of Indian economy is going through major changes, progress and development. The role of restructuring of PSB's in India's $ 5 trillion economy is very crucial as one of the leading and essential service sector. Now it is second largest country on the basis of population about 1.36 crore population. Nowadays, India's service sector is contributing more than half of the Indian GDP and the banking is most population service area in India. The significant role of restructuring of PSB's is essential to speed up the social economic development. The PSB's are playing a Major role in the economic iidevelopment of developing economies, developed and undeveloped economies. Economic development and India's $5 trillion economy involves investment in various sector of the economy. India is the most unequal society in the world. In any economy in this world are depending on the finance and financial institutions for development, business and day to day activities for performing task. Public sector banks are covered the economy more than 70 per cent. India will need to build world – class deep tech capabilities especially in service sector. The financial sector plays a major role in modern economies and banks are the corner stone of the financial system. They mobilize savings for investment; create opportunities to developing and

growing our financial as well as banking sector. The role of restructuring of PSB's in Indian economy is greater. Day by day role is increasing in the rapidly growth of the economy and business activities in the country. The banking sector playing crucial role in development of industrial and environment for providing funding to borrowers. The most of the country and his business sectors are moving to India for investing and establishing global industry. So that India is biggest platform to world economy. The government also helps to investors for stating investment providing chiefs rate lands and electricity. Each and every economy of the world depends on the financial sector as well as banking sector. Without finance we are not fulfil our demands and wishes or comments. Banking involves each and every step of human life as well as economy development with the help of money we better or superior to others. Banking sector is vital role for economic development. Now, my research paper based on PSB's of the India, Banking sector is the old as human life of the earth. Since ancient time, the banking sector performs the task in better way and to reduce the cost of service and to increase the profit of the organization. Government of India is developing very good infrastructure for logistic support, new roads and high ways are being constructed to improve the connectivity across India which will drastically reduce transportation time to Ports and cities. For this type of activities needs for money. Thus, PSB's providing the facility and availability of funds for development of Indian economy. The roles of restructuring of public sector banks are increased day by day. The banking sector more focus to the centre of the economic activities of a nation. A strong and healthy banking system is essential for economic growth. The economic growth depends on the healthy and soundness banking sector and financial system of country.

Review of Literature:

In the Indian economy, the public sector banks playing crucial role for developments and progress of the economy without help of PSB's the economy cannot more and not grow in future because finance is the life blood of the economy. The public sector banks providing larger scale loans and advance to the economy. The market players have increased entry level barriers have erased. The economists and researchers have reorganised for soundness of banking positions with improving productivity and profitability and financial performance of banks. The banking sector is the main pillar of the economy of the any country. A paper that summarizes recently published development on a topic, without adding new data.

Uppal, R. K (2017)[1] in his research on the topic of "Banking with technology a new vision-2020" They analysis the comparative efficiency of Indian banking sector in the way of customer satisfaction, profitability, productivity, costs, service quality and employees satisfaction. He find out his study digital banking reduce the working time and work stress of employees, they should be feeling relieved and like that technology.

Singh, Prof. Bhagirath and Sharma, Dr. Mukesh (2018)[2] "they find out that about 40 per cent of Indian's lack seen even to the simplest kind of formal financial services. Government of India took initiative of financial inclusion for the achievement of inclusive growth in the country. The study also analysed the impact of literacy, income, card, education".

Jayaraman, T. K. & Sharma, Ajeshni (2018)[3] they try to analysis the India's financial system as well as banking system is going through a crisis of unprecedented nature since 2010. Negative progress and performance of banks rising stress on public sector banks.

Jha and Bhome (2014)[4], they are attempting to highlight the strategic aspects of green banking, opportunities and challenges faced by green banking in India. He found the more green banking initiatives as compared to ICICI Bank.

Georage, Binija (2015)[5] his focus on the recent trends of banking sector is the back bone of banking in Indian has been through a long journey. He said "Today banking is known as innovative banking". They said that public sector banks play crucial role in the development of undeveloped and developing economies by mobilization of resources and their better allocation.

Laxman, Dr. Vishnu (2018)[6] his study based on technology available banking sector. This study specify the area of such as "Technology banking in Kerala: Socio – Economic Disparities and

Implications in Advance" she find out the technology basically has certain in built problems as it is changing from time to time which make it unaffordable for certain sections.

Research Gap:

The PSB's are day by day decreased profit margin as well as rapidly increase non-performing assets (NPA) and more time consuming at the tie of dealing customers. Thus customers are unsatisfied due to the employees performance are very poor and very low accuracy of the records. These are the problem of my research paper. These problems influenced the restructuring concepts in banking sector. The public sector banks launched the new products and services to the customers so need for restructuring of public sector banks.

Objectives Of Research:

- To study the structural changes in PSB's in India.
- To find out the role of restructuring of PSB's in India.
- To analysis the impact of restructuring of PSB's in India's $ 5 trillion economy.
- To evaluate the restructuring effects on the profitability, productivity and efficiency of the employees of PSB's.

Purpose Of Study:

The aim and purpose of this research paper is to investigate the relationship between restructuring effectiveness of PSB's in terms of performance, productivity, profitability, efficiency and soundness.

Period Of The Study:

The present research study has been seven years from year 1st April, 2015 to 31st March, 2021.

Limitation Of Research:

This research paper is related to the PSB's only. The secondary data, which used for this research paper is based on annual reports of PSB's and RBI. The quality of this research depends on quality and reliability of data published in these reports. The main limitation of the study is based on six years' time duration from 2015 to 2021. There is no specific reason for this duration of data randomly taking that period for this research paper. There is the possibility of further updating of this research paper because of updating in future.

Research Methodology:

The researcher is used analytical and comparison methods in his research paper. This paper focus on the idea of restructuring of PSB's in India. In context of India's $ 5 trillion economy particularly about the PSB's with the quantitative as well as quantitative tools for analysis of data collected from primary and secondary sources. Primary sources will include the documents and reports of government organisation such as RBI and PSB's. The secondary sources are includes – books, research articles, magazines, newspaper, websites etc. the results will not reflect the strength and weakness of the bank on the whole and is not an indication of the future. The research paper is intended to cover a six time span from 1st April, 2015 to 31st March, 2021 for analysing the effectiveness of restructuring in Indian Public Sector Banks. The data are obtained from the reports and annual reports of the PSB's and RBI bulletin or website.

Hypothesis of the Study:

The government commitment to restructuring the highly regulated PSB's appears strong. This has increased the profitability and efficiency of PSB's in India. The research hypotheses are trends of RoA, trends of RoE, trends of deposits and loan and advances. Trends of NPA are the indicator of banking sector progress, development and growth of banking business as well as economy progress and prosperity.

Restructuring of Public Sector Banks in India:

Reserve Bank of India (RBI):

Reserve Bank of India is the central bank of our country. It is the banker's bank of India. The main role is to guide, control, regulate and supervise banking sector and Indian economy. It is banker to the Government and bankers bank. It is deal with only institutions of finance and banks.it issues currency notes, regulates money supply, decide the monetary and credit policies, regulates, controls and maintains foreign exchange of the country. Also maintains foreign exchange of the country.

Public Sector Banks in India:

Public sector banks are whose control and ownership under the Government control. The higher authority are appointed or nominated by central government. These banks totally dedicated for public welfare and reached the last men of country. The main task of public sector banks is providing service to the society, not to make profit. Public sector banks will have to improve their efficiency. PSB's have been permitted to lay down policy of accountability and responsibility of banks officials. The PSB's continued to be dominant part of the financial system. It seems there is a case for bringing greater uniformity in the structure of interest rates of cooperative banks and there by evolving an all India pattern for the PSB's system as whole. The enormous increase burden of NPA's in the loan accounts. These activities have made the Indian banking experience a unique one. Thus, all the PSB's which issued shares to private shareholders have been listed on the exchanges and subject to the same disclosure. As on 31st March, 2015 there were 26 Public Sector Banks in India. Now, today have only 12 Public Sector Banks in India. According the data after 2015 several types of changes and restructuring of PSB's. The number of banks is reduced by the merger and actuating. It is the restructuring PSB's effects on the economy as well as growth of the Indian economy.

The structure of PSB's has changed. In 2015, the total public sector banks are 26 in numbers but after 2015 reduced number of PSB's in India. In 2015, were 26 PSB's includes SBI (1), Associate Banks of SBI (6) and Nationalised Banks (20). In 2019, reduce the number of PSB's. They are remaining only 12 Public Sector Banks – such as SBI (1) and Nationalised Banks (11). In 2021, the PSB's are 12 only. They are providing facility and fulfil financial requirements of the world population. The reducing of PSB's due to the intention of government is building the global level financial institution. They provide more funds to borrowers as well as provide and cover largest business area. Other intention is reduce the NPA's stress from PSB's. Nowadays, Indian economy is third largest economy in the world. Our highest ranked bank-is State Bank of India lowered rank 55th in the world and is the only single bank to the ranked in the global top 100 banks. The style of working of PSB's are changed from motor and breaks to click order banking. We are moving without carrying hard cash in own pocket because easily doing payments of the customers or any seller of goods. We are moving without hard cash or purse with us. The type of hard cash is day by day reduced in the banking system. Plastic card and online transaction covered the more space in banking sector. Plastic card facilities as well as online transaction facility are save the money as well as save the time of consumers as well as bank employees. Only we, keep our plastic card (Debit cards and credit cards) with us for doing the any type of transaction and anywhere in the world economy. That is the safe and secure. Smartly transfer and quickly transaction, less time consuming, both side customer as well as financial sector. Mostly transfer money one account to another account within the help of electronic clearance. These types of methods are helping in reducing transaction cost as well as traction time. That facility helps also raising the efficiency of banks employees with raising productivity of the employees. It means the current time is the customer centric. Every minute banking regulatory and banking authorities improving the facility of customer with smartly provide service within second.

The bank set up the central processing centres for financial inclusion for rural loans, scale up coverage of micro insurance among banking customers. According to the O. P. Chawla[7] said in his book "Banks capital ratio improved to Basel requirements and ratios of provisions against NPA's improved consequently, the published financial strength and profitability of PSB's seemingly improved." The government while announcing the latest merger plans for PSB's did say the boards of banks shall get more freedom in the selection of independent directors and in deciding the role of board members. Among the measure were allowing banks to appoint chief risk officers at market –linked remuneration. In banking sector as well as financial system involves the social media for alternative solution for reaching millions customers. One study find out on average spend about 2.4 hour daily on social media[8]. The social media help banks in reviving the working style as well as business policy. Social media used in customer grievance redress management conflicts between the manager's and

lower level employees as well as customer's.

Role of Restructuring of PSB's:

Banking restructuring all over the world has two forms- the market approach route and government intervention method. Restructuring options means change the present structure in the new way of change in the banking policy, working in the working culture change in the capital requirements, governance and change in the managerial system, regulation and supervision and either change in the product and service of banking. Present status of the bank, may be change then impact of other stockholder of the organization.

- In April 2017, SBI merges five of its associate banks and one more to enter the list of top-50 banks of the world economy. Merged with parent, and to enter the global top 50 banks list in terms of size. The associate banks are SB of Hyderabad, SB of Bikaner & Jaipur; Bhartia Mahalia Bank; State Bank of Travancore; SB of Mysore and SB of Patiala.
- In 2017, the proposal by the government to consolidate ten PSB's into four large banks is expected to increase efficiency and reduce the cost of lending.
- From April 2019, Vijaya Bank and Dena Bank had become a part of Bank of Baroda.
- From April 1, 2020 Punjab National Bank (PNB), Oriental Bank of Commerce (OBC) and United Bank of India are merged and to form the nation's second –largest lender.
- After the mega merger of ten banks into four, the numbers of public sector banks in India were reduced from 27 banks to 12 banks. This decade has inarguably remained the most eventful for the banking industry ever-perhaps even more than the bank nationalization drive in the year 1970's.
- The Union Bank of India were amalgamated with Andhra Bank, and Corporation Bank.
- Allahabad Bank Merged with Indian Bank. Banks needed to be recapitalized in a new economy- both for growth need and for taking care of losses due to bad debts.
- The government has infused Rs. 3.43 lakh crore in PSB's since 2014.

Data Analysis of Public Sector Banks:

YEARS	ROA%	INDICATION	ROE%	INDICATION
2015	0.46	-	7.76	-
2016	-0.07	Decrease performance	-3.47	Decrease
2017	-0.10	Decrease performance	-2.05	Negative sign
2018	-0.84	Decrease performance	-14.62	Very poor performance due to the raising negative performance
2019	-0.65	Very less improve performance	-11.44	Improve positions from previous year to current year
2020	-0.20	Better position of PSB's	-4.2	More improve
2021	0.30	More better performance of PSB's	4.7	Wonderful improvement of PSB's from negative to positive.
Source of data: RBI website.				

Source of data: RBI website.

Soundness of PSB's:

PSB's support and strength of their capital position and also improved their asset quality, liquidity and leverage ratio. The number of banks under the Reserve Bank prompts corrective action (PCA) framework reduced from four at end – March 2020 to one at end September 2021,

reflecting bank level as well as overall improvement in PSB's soundness indicators.

Resources raised by banks through private placements. PSB's raised 20 number of issues with amount raised Rs. 29.573 crore in the financial year 2019-20 and 36 number of issues with raised amount Rs. 58.697 crore in the financial year 2020-21.[9] These indicators are showing the soundness of public sector banks. It means restructuring impact on the PSB's is positive. The PSB's helped to achieved $ 5 trillion economy. The RBI created the Enforcement Department in the year 2017 for entrusted with ensuring uniformity and consistency in enforcement of regulating and engendering compliance in regulated entities (RE's). During 2020-21, the number of instances of impositions of penalty reduced, with enforcement action being PSB's- 29 instances of impositions of penalty and total penalty Rs. 36.1 crore in FY-2019-20 but in the FY 2020-21- instances of impositions of penalty is 4 and amount of penalty Rs. 9.5 crore. This is reduced amount as well as number of penalties, they indicating the strong position of banks and better improvement of PSB's.

Impact of Restructuring of PSB's in India's $ 5 Trillion Economy

Changes in organization structure had to be accompanied by changes in systems and process, role definitions, inter faces within the organization and the external environment. The restructured massive training and coordination with line management; many public sector banks have undertaken organization restructuring and achieved different levels of success.

Mobile smart phones have also made a paradigm shift on banking working and social behaviours. That mobile phone is playing bigger role to build strong relationships to reduce costs and to keep strengthening the brand. The payment system of public sector banks adopted the electronic infrastructure in the country to accept payment through cards. Most vexing problem faced by Indian banking system and outstripping recoveries. Separation of NPA's is an important element in a comprehensive bank restructuring strategy in a comprehensive bank restructuring strategy.

Findings:

- Reduced the number of PSB's from 26 to 12.
- The quality and services of PSB's is now better and turning customer friendly.
- Round the clock banking, anywhere banking and digital access brought the customer and banks together all the time.
- The footfall of routine banking operations has come down. Now branches are engaged in increasing customer based by providing a diversified range of value – driven services. According to the research paper it was found that technology has paved a huge way for banking sector.
- Increasing efficiency and competitiveness.
- The research paper found the need of data analysis expert for the data analytics skills for betterment of the banking sector. Also required task force to monitor higher value NPA accounts of the PSB's.
- Resources raised by banks through private placements. PSB's raised 20 number of issues with amount raised Rs. 29.573 crore in the financial year 2019-20 and 36 number of issues with raised amount Rs. 58.697 crore in the financial year 2020-21
- In FY- 2020-21, the number of instances of impositions of penalty reduced, with enforcement action being PSB's- 29 instances of impositions of penalty and total penalty Rs. 36.1 crore in FY 2019-2020 but in the financial year 2020-2021- instances of impositions of penalty is 4 and amount of penalty Rs. 9.5 crore. This is reduced amount as well as number of penalties, they indicating the strong position of banks and better improvement of PSB's.

Conclusion:

Public sector banks are the main pillar of the economy. Traditional banking style as well as system and working not suitable for development of the economy, so need for restructuring of PSB's; mobilisation of deposit is output of the banks and on other it is input for the credit. A sound financial institution are the required for economic development. After the restructuring of PSB's, they

achieved higher goals and target of the business. They achieve higher levels of productivity. The entire exercise of the financial sector reforms is aimed at improving profitability by improving efficiency and productivity. The survival and sustain in the complexioned and competition of business environment. Only few banks are survival on the basis of profit margin and more interest income. Now that data and points described the performance and profitability and productivity of the PSB's. The public sector banks had adopted the loan origination software for customer services. Loan business rose very fast. The loan customers required fast and quicker service. The PSB's increasing their speed for better and fast service for achieving the $ 5 trillion economy target. For achieving target need a efficiency and to improve customer service, the organizational structure is helped to achieved targets or goals of the economy. Technology helped in operational restructuring. Operational restructuring had to be revamped to use the synergy of technology. Public sector banks first moved to computerising banking operations to stay competitive and be able to offer banking services with better operational restructuring. Data centres were created to pool management information system to have a better grip on the monitoring of business growth. They could effectively move towards reducing operational cost and establishing better customer connect. The RBI too supported PSB's in introducing the changes to the operational restructuring of transactions., passbook maintenance, interest calculations on loans and deposits, customers records reconciling payments and cash withdrawals with some of them moving to bank offices under operational restructuring. So that, restructuring of PSB's are playing crucial role to achieve the $ 5 Trillion economy

Refrencess:

Books:

- Uppal, R. K. (2017); "Banking with Technology A New Vision 2020", Bharti Publications, New Delhi.
- RBI- Feasibility trends and Progress Reports-June 2022
- Speech by Shri Shaktikanta Das, Governor, RBI, Delivered at the Bank of Baroda's Annual Banking Conference in Mumbai on July 22, 2022
- Chawla, O. P. (2019) "Evolution of Banking System in India since 1900", SAGE, New Delhi, p.p-246
- Global Web Index's Social Media Trends 2019 report
- Nath, Rachna "Sustinability is good for business as well as the planet"; Guest View, Mint, New Delhi, October 21st, 2022; 3/3; p.p-15.
- Uppal, R. K. (2017) "Banking with Technology: A Vision 2020" Bharti Publications, New Delhi.
- Singh, Prof. Bhagirath and Sharma, Dr. Mukesh (2018) "Socio- Economic Status and Financial Inclusion: A Study of Pratapgarh district of Rajasthan" Indian Journal of Accounting , Vol. 50 (1) June, 2018
- Jayaraman, T. K & Sharma, Ajeshni "Measurement Banking Efficiency In India: An Empirical Study of commercial Banks" Indian Journal of Accounting, Vol. 50 (1) June, 2018
- Jha, N and Bhome, (2014), "A study of Green Banking Trends in India" International Monthly Referred Journal of Research in Management & Technology, (5) 2, p.p-127 - 142
- Georage, Binija (2015) "Recent trends in banking sector – challenges and opportunities" International Journal of Current Research, 7 (10), p.p. 21913-21915
- Laxman, Dr. Vishnu (2018) "Technology Banking in KERALA: Socio-Economic Disparities and Implications in Acceptance" SERIALS PUBLICATIONS PVT. LTD.; New Delhi.

Government Publications & Magazines

- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2014-15
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2015-16
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2016-17
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2017-18
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2018-19
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2019-20
- Report on Trend & Progress of Banking, Reserve Bank of India, Mumbai, 2020-21
- IBA Bulletin, Indian Banks Association, Mumbai

News Papers:

- The Hindu, New Delhi,
- Business Standard, New Delhi
- Mint, New Delhi

(Footnotes)

[1] Uppal, R. K. (2017) "Banking with Technology: A Vision 2020" Bharti Publications, New Delhi.

[2] Singh, Prof. Bhagirath and Sharma, Dr. Mukesh (2018) "Socio- Economic Status and Financial Inclusion: A Study of Pratapgarh district of Rajasthan" Indian Journal of Accounting , Vol. 50 (1) June, 2018

[3] Jayaraman, T. K & Sharma, Ajeshni "Measurement Banking Efficiency In India: An Empirical Study of commercial Banks" Indian Journal of Accounting, Vol. 50 (1) June, 2018

[4] Jha, N and Bhome, (2014), "A study of Green Banking Trends in India" International Monthly Referred Journal of Research in Management & Technology, (5) 2, p.p-127 - 142

[5] Georage, Binija (2015) "Recent trends in banking sector – challenges and opportunities" International Journal of Current Research, 7 (10), p.p. 21913-21915

[6] Laxman, Dr. Vishnu (2018) "Technology Banking in KERALA: Socio-Economic Disparities and Implications in Acceptance" SERIALS PUBLICATIONS PVT. LTD.; New Delhi

[7] Chawla, O. P. (2019) "Evolution of Banking System in India since 1900", SAGE, New Delhi, p.p-246

[8] Global Web Index's Social Media Trends 2019 report

[9] RBI- Feasibility trends and Progress Reports-June 2022

National Education Policy : Bringing Gandhian Education Philosophy Under Spotlight

Neha Swami

Ph.D Scholar, Political Science Department, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur - 342011

Abstract

The proposed article is to show the farsightedness of Mahatma Gandhi. The aim of the article is to show the importance of Mahatma Gandhi philosophy on education through the study of National Education Policy. The paper will discuss the impact of MK Gandhi's ideas and thoughts on the Education system of India.

Keywords - Philosophy, Education, Nai Talim, Government of India, Hand Crafted, Soul, Experiment.

Introduction

Gandhi's educational ideology must be incorporated, according to India's National Education Policy (NEP). The NEP acknowledges the importance of Gandhian ideals like Swaraj, Swadeshi, and Sarvodaya in guiding the nation's educational system. Gandhian philosophy places a strong emphasis on the necessity of a national education system that is ingrained in the country's culture and customs. It emphasizes the significance of delivering education that is applicable, practical, and useful in daily living. The NEP has also emphasized the importance of delivering instruction that supports students' overall development, including their moral, mental, and physical development. Gandhian thought places a strong emphasis on the value of societal involvement in education. In order to make sure that education is suited to the requirements of the community, the NEP has acknowledged the necessity of involving parents, teachers, and local communities in the educational process.

Gandhian ideology also stresses the importance of universal access to and inclusion in education. The NEP has acknowledged the need to offer education that is fair and inclusive, putting a particular emphasis on the requirements of underprivileged and marginalized groups.

A holistic, multidisciplinary education that is grounded in Indian culture and principles is important, according to the National Education Policy (NEP) 2020. Promoting the ideals of Mahatma Gandhi, who thought that education should be available to everyone and should support the development of the individual's physical, intellectual, and spiritual dimensions, is one of the foundational tenets of the NEP.

Gandhi's educational theory emphasizes the value of experiential learning, in which students gain knowledge through their own experiences and interactions with their environment. This method places a focus on the necessity of education being pertinent to both societal and individual requirements, as well as the need for it to foster the growth of critical thinking, creativity, and problem-solving abilities.

Gandhi's educational theory is still relevant today, and the NEP 2020 aims to incorporate it into the curriculum. It seeks to encourage the creation of curricula that are grounded in Indian culture and values and are founded on the principles of experiential learning. The NEP also emphasizes the need for teacher preparation programmes that advance Mahatma Gandhi's principles and give educators the tools they need to provide students with a holistic and multidisciplinary education.

Objectives

- To explore Mahatma Gandhi's contributions to philosophy and education and to communicate his ideas to the current generation.
- To evaluate Gandhi's fundamental education programme and its applicability to the current social environment.

- To comprehend and revisit Gandhi's Basic Education concept.
- Enumerate some salient characteristics of Gandhi's fundamental education and its applicability to the current educational system

Research Questions

- What significant steps has the Indian government taken to strengthen India's educational system?
- In what ways Gandhiji's Philosophy influence our educational system?
- How Gandhiji's Thought are still relevant to Current Education System?

Mahatma Gandhi's Ideas on Education - Basic Education (Nai Talim)

In 1937, Mahatma Gandhi published his Basic Education (Gandhi, My Dreams 1959, 158) plan in his newspaper "Harijan," outlining an organized approach to education. Gandhiji was an advocate of taking action, so his ideas about fundamental education can be categorized as either activity methods or practical methods. The primary purpose of it was to establish a connection between theory and practical activity using crafts like carpentry, weaving, and gardening. He is a proponent of striking an equilibrium between the physical, mental, and spiritual selves. The best way to accomplish this is to teach through arts. The other unique feature is that it is made to be completely self-sufficient. Therefore, it does not necessitate spending millions of dollars on schooling.

Gandhiji's Nai Talim

The key components of a fundamental education, as per Gandhiji and his philosophy, are mentioned below.

All- Round Development - Gandhiji emphasized numerous times that education should give kids the chance to grow their personalities on all levels. True education, according to him, is what awakens and stimulates a child's spiritual, intellectual, and physical abilities. During his lifespan, he harshly criticized the current educational system, calling it a pointless and ineffective waste of children's time.

Free and Required Schooling - Gandhiji advocated for free and required primary education for all boys and girls between the ages of seven and fourteen. "I am a firm believer in the idea that basic education should be free and required in India", said Gandhiji. According to Gandhi, everyone between the ages of 7 and 14 should have access to free, compulsory education. The student's mother tongue should be used to deliver instruction at the primary stage. All students in the village should receive a free, universal primary education. This will strengthen a nation's foundation. Using this idea, Sarva Shiksha Abhiyan was created.

Craft-Focused Education - The primary method or medium of basic instruction was local handicraft. The primary topic, through which information about the other subjects was shared, was the craft. The kid and the real world were connected through the craft. Gandhiji placed a strong emphasis on craft-centered education, which was crucial in the Indian context. In the Indian situation, craft would allow education to become self-sustaining because it is impossible to educate every citizen and give them access to government employment. Therefore, a craft-centered education would help all citizens find job opportunities and become self-sufficient. Gandhiji believed that cultivating a disciplined mind from an early age through village handicrafts was the best way to educate the mind. Such practical, fruitful work in education would help to remove the barriers that currently separate manual laborers from intellectual ones. The plan would boost productivity and effectively use their free time as well.

Mother Tongue as the Primary Language of Teaching - The fact that education was being delivered using a foreign tongue was one of the glaring flaws in the current educational system. Gandhiji therefore stressed the importance of mother tongue as a topic of study and a method of instruction. This is both academically solid and very natural. It increases the ability to comprehend and articulate novel ideas in the area of education. It also improves mental acuity.

Growth of Critical Reasoning and Creativity - Gandhiji placed a strong emphasis on the idea of "learning by doing," which encourages individuals

to think analytically and creatively. To allow the students to begin producing while learning, he placed a strong emphasis on work culture from the beginning. His basic education therefore focused more on using his brain, heart, and hand than it did on reading or writing alone. "By education, I mean an all-round drawing of the best in child and man-body, mind, and spirit," said Gandhiji. The primary objective of school cannot be literacy.

Focus on Teamwork in Learning - The cultivation of an attitude of cooperation, tolerance, collaboration, and responsibility is a lifelong process that is aided by true education. All of these traits are necessary for human personality development in order to strike a harmonious balance between the needs of the individual and the societal goals of education. Gandhiji consistently emphasized the value of group learning. A child can develop collaborative learning skills and a sense of the value of hard effort through craft-making.

Puts a Focus on Moral Instruction - Gandhiji believed that education is the key to achieving peace, which is necessary for human existence. Morality and ethics are the only paths to peace. He contends that morality and ethics must serve as the foundation of education. Gandhi encouraged all pupils to value morality and integrity as integral components of their education.

Emphasis on Developing Identity - Education is the most effective tool for developing students' true personalities. Character development should be the aim of schooling. The development of a student's moral, intellectual, and social behavior in all situations is part of character formation. By virtue of education, a pupil should acquire interpersonal traits like kindness, compassion, and dedication.

National Education Policy 2020

The National Education Policy 2020 was unveiled on July 29, 2020. The organization, management, and management of education in a nation are all governed by the national education policy, which is a collection of principles and guidelines. It includes every facet of education, including curriculum, resources, teacher preparation, access, quality, and technology. Every citizen should have access to a high-quality education, and policies that support the growth of a knowledgeable and skilled workforce can help guarantee this. In order to respond to shifting social and economic circumstances, as well as developing technologies and educational practices, many nations have lately updated their national education policies.

The NEP 2020 makes a number of changes to post secondary education, including technical education, as well as K–12 education. The National Education Policy 2020 lists a number of action items/activities that should be implemented in both higher education and schooling. The following are specifics of NEP 2020's key features:

- Providing Universal Access at All Educational Levels from kindergarten to Grade 12 .
- Ensuring that all children between the ages of 0 and 3 receive high-quality early care and schooling;
- Pedagogical Structure (5+3+3+4) with a new curriculum (MHRD Pdf, 2020).
- There are no clear distinctions between the sciences and the arts, between academic and extracurricular pursuits, or between career paths and scholastic ones.
- National Mission on Foundational Literacy and Numeracy to be Established.
- promote multilingualism and Indian languages with a strong emphasis; The home language, mother tongue, local language, or regional language will be used as the primary language of instruction until at least Grade 5, but ideally until Grade 8 and beyond.
- Assessment reforms include the possibility of holding Board Exams up to twice a year, once for the main test and once for improvement, if Needed.
- New National Assessment Center being established PARAKH (Performance Assessment, Review, and Analysis of Knowledge for Holistic Development).
- Education that is fair and equitable with a focus on SEDGs (Socially and Economically Disadvantaged Groups).
- Special Education Zones and a distinct gender inclusion fund for underprivileged areas and groups

- Strong and open procedures for hiring instructors and performance evaluations based on merit
- Making sure all tools are accessible via school complexes and clusters
- Exposure to vocational education in the educational system at all levels of schooling
- Improving GER to 50% in college and university
- Multiple entry/exit points and a holistic, multidisciplinary education.
- The creation of an academic bank of credit
- The Higher Education Commission of India (HECI), a single overarching umbrella organization for the promotion of higher education, excludes medical and legal education but includes teacher education, has independent bodies for standard setting, the Higher Education Grants Council (HEGC), funding, accreditation, and regulation, including the National Higher Education Regulatory Council. (NHERC)
- To boost the Gross Enrollment Ratio (GER), open and remote learning should be expanded.
- Education is becoming more globalized.
- The higher education structure will include professional education as a fundamental component. Stand-alone technical colleges, medical schools, law schools, and agricultural institutions, among others, will strive to become multidisciplinary institutions.
- 4-year combined stage- and subject-specific teacher training degree in education.
- The establishment of the National Educational Technology Forum (NETF), an independent organisation that will serve as a forum for the unrestricted discussion of ways to use technology to improve instruction, evaluation, planning, and management. The appropriate use of technology in all educational stages.
- Achieving 100% literacy among adults and children
- The commercialization of higher education will be fought and stopped by numerous systems with checks and balances.
- As a "not for profit" organization, all educational schools will be held to the same standards of audit and disclosure.
- Together, the Center and the States will increase public investment in the education industry to, at the earliest, 6% of GDP.
- The Central Advisory Board of Education should be strengthened to guarantee coordination and place more of an emphasis on high-quality education overall.

Footprints of Gandhian Philosophy on The National Education Policy

The NEP is not an abstract text; rather, it draws heavily on the thoughts of numerous influential thinkers from the previous century. MK Gandhi is one such influential person. Gandhi first introduced a crucial idea for reforming the educational system in a 1937 issue of the weekly journal he had founded, Harijan. His research in South Africa and his time spent at the ashrams in Sabarmati, Ahmedabad, and Sevagram, Wardha, served as the foundation for these theories. Numerous educational practices in India were built on his idea of Nai Talim, also referred to as fundamental education or buniyadi shiksha. He emphasized the distinctions between knowledge and work, as well as between teaching and learning, in order to promote social change and ensure that education is available to all. The fundamental concept behind Nai Talim was to integrate locally accessible tools with work-centered education. The training of the three Hs; head, heart, and hand was centered on the holistic development of the student - body, mind, and soul. He emphasized the connection between education and vocational training and the idea that work should not only be self-sufficient but also productive and helpful to society (Education Times, 2022 may 25).

Following India's independence, Nai Talim was introduced in a number of primary institutions. But the rules governing education were still based on the textbook-centered educational system of the colonial period. The public education system of Nai Talim could not coexist with the western competitiveness-focused system. Ironically, Nai Talim ideas were incorporated into the educational system as "Socially Useful Productive Work," a minor component. Gandhi believed that the body and soul were equally essential components of a person's identity but that the educational system prioritized intellect while ignoring them. We evaluate education's worth similarly to how we evaluate real estate or financial market shares, he

lamented. We only want to offer instruction that will increase a student's earning potential. We hardly ever consider how to enhance educated people's character. The NEP emphasizes the need to change the widely held notion of memorisation-based learning and places a strong focus on an all-encompassing educational strategy that can encourage learners' logical thinking and creativity.

Gandhi ji was against the use of English as a teaching language because he had lived during a time when colonial monarchs had complete power over not only Indians but also Indian education. He regretted that having understanding of English was frequently the only definition of education. In light of these viewpoints, the NEP places a strong emphasis on ensuring that education is available in the learner's mother language because this is the only way to permit authentic expression.

Gandhi ji emphasized the significance of job training as a component of education because it can promote independence and self-sufficiency. His views on how to combine schooling with handicrafts, cattle husbandry, spinning, and weaving serve as an example of his ideals. These fields are currently being replaced by more contemporary ones like digital skills and technology.

In order to transform the classroom into a hub of rational thought, students should not only be observers and imitators of the teaching-learning process, but also possess their own rational thoughts and the ability to engage in thoughtful conversations with their instructors. The NEP is founded on this Gandhian principle. The new policy advises switching from an annual assessment structure to a framework built on programmes.

It is critical to end teachers' dependence on textbooks and grant them authority over the curriculum. Gandhi ji stated: "The living words of the teacher have very little worth if textbooks are regarded as a means of education. When an instructor uses textbooks, his students do not learn originality. NEP contends that educators play a crucial part in shaping the next generation of residents.

Conclusion

The educational ideology of Mahatma Gandhi is timeless. We can say that his philosophy is like a foundation for building a new Nation after analyzing his philosophical ideas and ideals.

Gandhi viewed education as a process that "strengthens the inner voice" and "awakens the soul." True education, in his opinion, stimulates the spiritual, intellectual, and physical abilities and results in the harmonious operation of the body, heart, mind, and soul. He believed that placing an excessive focus on any one of these things undermines the fundamental ideas of education and slows personal growth. Gandhi was very critical of the Indian educational system, calling it artificial, wasteful, harmful, and immoral. He claimed that "the majority of the boys" are "lost to the parents and the profession to which they are born." They develop bad habits, adopt urban lifestyles, and pick up a little piece of something—it could be anything, but it's not education. He described the goal as imparting "education of the body, mind, and soul through the teaching of handicraft to the children." In order to best and most quickly develop a child's intellect, it is, in his own words, "an intelligent use of the bodily organs in a child."

Gandhi's concept of education is fundamentally based on humanism. By encouraging children and youth to be independent, Mahatma Gandhi's educational philosophy and basic ideas serve as a roadmap for making society self-reliant. Gandhi made it abundantly obvious that the foundation of any society is the education of its people. As a result, he created and employed a brand-new educational system for the peaceful society of his dreams. He thought that fundamental education should be used to cultivate the intellect, body, and soul.Gandhi firmly believed that kids have a lot of strength and potential. Children's upbringing and social environment can have a significant impact on how they live their lives and grow as people. They can pick up a lot of knowledge from hands-on training and practical work. Therefore, all of these viewpoints are very helpful and practical for ensuring that every child has access to a pre-school education. We can only expect that by applying the Pre-School Education and Child Development ideologies of Gandhi, we will be able to fully and completely implement the National Education Policy 2020.

Gandhiji believed that in order to create a sustainable society, excellent education must prioritize the learner's overall development and instill virtues like nonviolence, integrity, and fortitude. We think that Gandhi's and NEP's recommendations for a comprehensive education would contribute to our country's future improvement.

References

- Gandhi, M.K. & Prabhu, R.K. (1959). India of My Dreams. Ahmedabad, Navjivan Publication House.
- D. Jagannath, Rao, (2009). A comprehensive Study of the progress of education in Karnataka. USBPO.
- Sharma RA. Shikshya ke duarsanik evam saamajik mool aadhaar, meerut R. Laal book depot, 2011.
- Sinha K. Education comparative study of Gandhi and Freire. New Delhi: Commonwealth Publishers, 1995.
- Shukla A, Kumar K. Mahatma Gandhi thatha Ravindra Nath Tagore ke shekshik vichaaron ka tulnatmak adhyyan evam vartmaan bhartiya shikshya mai unki prasaangikta. Unpublished doctoral thesis. Kumaun University, Nainital, 2009.
- Taneja VR. Educational Thought and Practice. New Delhi: Sterling Publishers Private Limited, 1986.
- Thhorp A, Thorp S. Pearson samanya gyan kosh. New Delhi: Darlin Kinderslay. Private Limited, 2013.
- Singh RK. Mechanics of research writing. Bareilly: Prakash book depot, 2010.
- Sharma's. Rashtramata Kastur-ba Gandhi. Mathura: Yug nirmaan yojna press, 2009.
- NEP 2020: Implementation Strategy, National Institute of Planning and Administration, New Delhi. December 2020.
- Gandhi, M.K., An Autobiography or The Story of My Experiments with Truth, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1927.
- Kripalani, J.B., Gandhi: His Life and Thought, The Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, 1971.
- Shukla Ramakant, Gandhian Philosophy of Education,Sublime Publication Jaipur the vaccine, Simon & schuster India.
- Patel, M.S., The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1953. P.16.
- Gandhi, M.K., Towards New Education, Navajivan Publishing House, 1953, (ed by Bharatan Kumarappa).
- Shah, P. K. (2017), Gandhiji's Views on Basic Education and its present relevance, International Journal in English, Volume 3; Issue 4.
- Dey, S. (2017), Mahatma Gandhi and His Idea of Basic Education: An Historical Appraisal, International Journal Advances in Social Science and Humanities, Volume 5; Issue 1.
- Jana, P. (2020), Mahatma Gandhi and basic Education. Anu Book house p. Limited.
- Kumarappa, B. (1953), Towards New Education: Published by Navajivan Mudranalaya, Ahmedabad, 380014, India.
- Gandhi, M. (1962), Navajivan Pu Vijaylakshmi, N. and others (2016), "Relevance of Gandhian Philosophy in the 21st century", International Journal of Research in Engineering, I T and Social Science, Vol. 6, Issue1.
- Draft National Education Policy 2019. Committee for Draft National Education Policy, Ministry of Human Resource Development, Government of India. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft _NEP_2019_EN_Revised.pdf
- Govt. of India (2020).National Education Policy 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP _Final_English_0.pdf
- Education Times, (May 25. 2022), NEP 2020 highlights Gandhian principles, published by Times of India.

Perceived Relationship Between Corporate Capital Structure And Value Of Firm: A Case Study Of Apollo Tyres Limited

Sandhya Gupta

Guest Faculty of B.Com, Magadh Mahila College, Patna University, Patna

Abstract

This study investigates to establish the relationship between change in capital structure (Leverage) and firm's value.Although the capital structure issue has received substantial attention in developed countries, it has remained neglected in the developing countries. The reasons for this neglect according to Bhaduri (2002) was, that until recently, developing economics have placed little importance to the role of firms in economic development, as well as the corporate sectors in many developing countries, faced several constraints on their choices regarding sources of funds, and that access to equity markets was either regulated, or limited due to the underdeveloped stock markets. Determining the actual effect a firm's capital structure has on its market value has been a major challenge among researchers. Particularly, specifying what capital mix seems to optimize firms' values has been a difficult puzzle to unravel.

According to Pandey (2005), the capital structure decision of a firm is a significant managerial decision; it influences the shareholders return and risk, and subsequently affects the market value of the firm.

Introduction

The term capital structure according to Kennon (2010) refers to the percentage of capital (money) at work in a business by type. There are two forms of capital: equity capital and debt capital. Each has its own benefits and drawbacks and a substantial part of wise corporate stewardship and management is attempting to find the perfect capital structure in terms of risk and reward payoff for shareholders. Alfred (2007) stated that a firm's capital structure implies the proportion of debt and equity in the total capital structure of the firm. Pandey (1999) differentiated between capital structure and financial structure of a firm by affirming that the various means used to raise funds represent the firm's financial structure, while the capital structure represents the proportionate relationship between long-term debt and equity. Value of firm is a particulars combination of market value of equity and market value of debt at a certain time. It is a measure of a company's total value, often used as a more comprehensive alternative to equity market capitalization. The market capitalization of a company is simply its share price multiplied by the number of shares a company has outstanding. Enterprise value is calculated as the market capitalization plus debt.

The capital structure of a firm as discussed by Inanga and Ajayi (1999) does not include short-term credit, but means the composite of a firm's long-term funds obtained from various sources. Therefore, a firm's capital structure is described as the capital mix of both equity and debt capital in financing its assets. However, whether or not an optimal capital structure exists is one of the most important and complex issues in corporate finance.

Companies have been struggling with capital structures for more than four decades. During credit expansions, companies have been unable to build enough liquidity to survive the contractions, especially those enterprises with unpredictable cash flow streams which end up with excess debt during business slowdowns. Chief financial officers (CFOs) constantly encounter these questions when managing their balance sheets: firstly, is it advisable to return the excess cash to shareholders or invest it, and secondly, should they

finance their new projects by adding debt or raising capital from equity? Achieving the right capital structure by defining the composition of debt and equity for an organization to finance its operations and investments has challenged academics and practitioners alike. Some companies focus on the traditional tax benefit of debt, since interest is often a tax deductible expense, while many other companies hold substantial amounts of cash and explore options of what to do with it. The choice of capital structure for firms is by and large the most fundamental issue of the financial framework of a business entity. Methods by which public corporations finance their assets set up their ownership structure and reflect standards of their corporate governance.

Review of Literature

(Modigliani and Miller, 1958) were the first to raise the question of the relevance of capital structure for a firm. They argued that under certain conditions, the choice between debt and equity does not affect firm value, and, hence the capital structure decision is irrelevant. The conditions under which the irrelevance proposition holds includes, among others assumptions, a situation where there are such as no taxes, no transaction costs in the capital market, and no information asymmetries among various market players. Financial theorists have however since provided several possible explanations for the financing decisions of firms. Major hypotheses include tax effects, signaling effects, bankruptcy effects, agency issues and industry effects.

Several theories have emerged to explain firms' capital structures and their resultant effects on their market values. Among these theories include the Capital structure relevance theory, pecking order theory, the free cash flow theory, the agency cost theory and the trade-off theory (Bokpin and Isshaq, 2008).

Capital Structure Irrelevance and Relevance Theory

These theories as propounded by (Modigliani and Miller, 1958 and 1963) state that under perfect capital market conditions, a firm's value depends on its operating profitability rather than its capital structure, that is, value irrelevant (Modigliani and Miller, 1963). But, in their tax-corrected paper, (Modigliani and Miller, 1963) showed that when corporate tax laws permit the deductibility of interest payments, the market value of a firm is an increasing function of leverage. With corporate income tax rate Tc and P on an after tax basis, the equilibrium market value of levered firm is given by:

$$VL=X(1-Tc)/P+TcDL$$

Where, X equals expected earnings before interest and taxes, X(1-Tc)/P=Vu value of the firm if all-equity-financed, and TcDL is the present value of the interest tax-shield, the tax advantage of debt. Given X, VL increases with the leverage, because interest is a tax-exempt expense. But while this theory successfully introduced the potential effects of corporate taxes into the capital structure theory, it only leads to an extreme corner effect as the firm's value is maximised when 100 percent debt finance is used (Mollik, 2008).

In reality, it is impracticable, probably because of the uncertainty of interest tax-savings, and the existence of personal taxes (Miller, 1977) and non-debt tax shields (DeAngelo and Masulis, 1980) putting limit to this limitless tax advantage to debt. Following this theory, it is apparent that a significant relationship exists between a firm's choice of capital structure and its market value.

Capital Structure and the Pecking Order Theory

The pecking order theory of capital structure as introduced by (Donaldson, 1961) is among the most influential theories of corporate leverage. It goes contrary to the idea of firms having a unique combination of debt and equity finance, which minimize their cost of capital. The theory suggests that when a firm is looking to finance its long-term investments, it has a well-defined order of preference with respect to the sources of finance it uses. It states that a firm's first preference should be the utilization of internal funds (i.e. retain earnings), followed by debt and then external equity. He argued that the more profitable firms become, the lesser they borrow because they would have sufficient internal finance to undertake their investment projects. He further argued that it is when the internal finance is inadequate that a firm should source for external finance and most preferably bank borrowings or corporate bonds. And after exhausting both internal and bank borrowing and corporate bonds, the final and least

preferred source of finance is to issue new equity capital. According to (Myers, 1984), due to adverse selection, firms prefer internal to external finance. When outside funds are necessary, firms prefer debt to equity because of lower information costs associated with debt issues. These ideas were refined into a key testable prediction by (Shyam-Sunder and Myers, 1999), that the financing deficit should normally be matched dollar-for-dollar by a change in corporate debt. As a result, if firms follow the pecking order, then in a regression of net debt issues on the financing deficit, a slope coefficient of one is observed.

(Fama and French, 2002) tested some qualitative predictions of the pecking order theory as against the qualitative predictions of the tradeoff model. In their findings, they suggested that more profitable firms are less levered and it is consistent with the pecking order. And also, that firm with greater investment opportunities is less levered as predicted by the tradeoff theory.

3. Objective of the study

Examining the relationship that exists between corporate capital structures and corporate market values.

4. Hypothesis of the Study

- H1:- There is significant relationship between change in the capital structure and the value of the firm

Table-1.0: Showing Compiled Financial Data Of Apollo Tyres Limited

YEAR	NET PROFIT (IN CR. ₹)	TOTAL LONG TERM DEBT (IN CR.₹)	EARNING PER SHARE (IN ₹)	NO. OF EQUITY SHARE (IN CR.)	CLOSING MARKET PRICE PER EQUITY (IN ₹)	TOTAL SHAREHO-LDERS' EQUITY (IN CR.₹)
2005	12.49	23.96	1.94	6.426	89.88	261.47
2006	40.15	6.32	6.25	6.426	101.40	212.00
2007	47.44	6.73	7.38	6.426	143.60	251.38
2008	60.74	8.72	9.45	6.426	53.50	291.16
2009	67.23	10.40	10.46	6.426	99.40	334.29
2010	95.35	13.77	14.84	6.426	181.28	398.24
2011	225.84	0.00	35.14	6.426	265.23	574.31
2012	171.60	0.00	26.70	6.426	433.48	700.53
2013	190.74	0.00	29.68	6.426	528.28	841.00
2014	231.17	0.00	35.97	6.426	652.85	1022.15

SOURCES:-AUDITED BALANCE SHEET AND P&L ACCOUNT OF THE COMPANY (2005 - 2014)

The above table shows financial data like as Net profit, Total long term debt value, Earning per share, No. of equity share, Closing market price of per equity share and Total shareholders' equity. The above financial data is imperative to find out the leverage ratio and value of the firm.

Table-1.1: Showing Market Value of Equity Share & Leverage Ratio of Apollo Tyres Limited

YEAR	NO. OF EQUITY SHARE (IN CR.)	CLOSING MARKET PRICE OF PER EQUITY (IN ₹)	CLOSING TOTAL MARKET VALUE OF EQUITY SHARE (IN CR.₹)	MARKET VALUE OF LONG TERM DEBT (IN CR.₹)	TOTAL SHAREHO-LDERS' EQUITY (IN CR.₹)	LEVERAGE RATIO
1	2	3	4 = 2 X 3	5	6	7 = 4/4+5
2005	6.426	89.88	577..56	23.96	261.47	.0839
2006	6.426	101.40	651.59	6.32	212.00	.0289
2007	6.426	143.60	922.77	6.73	251.38	.0260
2008	6.426	53.50	343.79	8.72	291.16	.0290
2009	6.426	99.40	638.74	10.40	334.29	.0301
2010	6.426	181.28	1164.90	13.77	398.24	.0334
2011	6.426	265.23	1704.36	0.00	574.31	0.000
2012	6.426	433.48	2785.54	0.00	700.53	0.000
2013	6.426	528.28	3394.72	0.00	841.00	0.000
2014	6.426	652.85	4195.21	0.00	1022.15	0.000

The above table-1.1 shows closing total market value of equity share and leverage ratio of Apollo Tyres Limited. It helps to find out value of the firm and the correlation between leverage ratio and value of the firm.

Table-1.2: Showing Value Of Bata India Limited

YEAR	CLOSING TOTAL MARKET VALUE OF EQUITY SHARE (IN CR.₹)	LONG TERM DEBT & PREFERANCE VALUE (IN CR.₹)	VALUE OF APOLLO TYRES LIMITED (IN CR.₹)
1	2	3	4 = 2+3
2005	577..56	23.96	601.52
2006	651.59	6.32	657.91
2007	922.77	6.73	929.50
2008	343.79	8.72	352.51
2009	638.74	10.40	649.14
2010	1164.90	13.77	1178.67
2011	1704.36	0.00	1704.36
2012	2785.54	0.00	2785.54
2013	3394.72	0.00	3394.72
2014	4195.21	0.00	4195.21

The above table shows value of Bata India Limited. It helps me to find out correlation between leverage ratio and value of the firm.

Table-1.3: Calculated Value Of Leverage Ratio And Value Of Apollo Tyres Limited

YEAR	LEVERAGE RATIO	VALUE OF APOLLO TYRES LIMITED (IN CR.₹)
2005	.0839	601.52
2006	.0289	657.91
2007	.0260	929.50
2008	.0290	352.51
2009	.0301	649.14
2010	.0334	1178.67
2011	0.000	1704.36
2012	0.000	2785.54
2013	0.000	3394.72
2014	0.000	4195.21

SOURCES: - Author

The above table shows leverage ratio and value of Apollo Tyres Limited.

Table-1.4: ***Showing Overall Overview of the Findings***

Company Name	Correlation Coefficient (r_{xy}) Between Leverage ratio(x) & Firm's value(y)	Test Statistic t-test Degree of freedom = 8 Level of significance=.05 With the result of correlation 0f variables
Apollo Tyres Limited	0.2149	0.6222

5 Interpretation of Result

The table-1.4 shows that the co-efficient of correlation and test statistics. Here we can see that the correlation coefficient between leverage ratio and value of Apollo Tyres Limited

is showing negatively correlated and t- test result is showing insignificant because the tabulated value of t test is less than the calculated value at level of significance 5% and degree of freedom 8.

6. Conclusions

In general, the market value of a firm is positively significantly influenced by its choice of capital structure (financial leverage). More specifically, there is a significant positive effect of long-term financial leverage on the market value of a firm as suggested by other research studies as in Modigliani and Miller, 1963 and Mollik, 2008 among others, but in sharp contrast to the pecking order theory as propounded by Donaldson (1961), which assumes a firm's capital structure as irrelevant to its market value and that a firm's choice of capital structure should follow a well defined order, starting with internal funds, then debt and finally equity capital. However the findings of this study suggest that financial policy or corporate leverage matters in a firm's market valuation. Consequently, the theory of a firm's optimal capital structure is justified on the ground that it has an empirical significant positive impact on the firm's market value. Furthermore, it is obvious that a firm's choice of capital structure is significantly influenced by its size, profitability, costs of capital, associated risks, shareholders opinions, level of development of the stock market, and the quality of personnel managing the finance function of firms in India. It was discovered that the combination of both equity and debt capital constitute the general pattern in the capital structure of firms. This study investigated the relationship between leverage ratio and firm's value. It was hypothesized that there is no definite relationship between leverage ratio and firm's value .significant relationship was found between corporate capital structure and the value of a firm. This is because of the fact that the value of a firm affected by a multiplicity of factors and capital structure is just one of them. Many of these factors like the reputation of promoters, management of the company, economic and political conditions, role of bulls and bears, government policies, cost of capital etc. Since a majority of the factors are non-measurable as they are qualitative in nature, it is not possible to segregate their effects. Therefore, an exact relationship between capital structure and value of a firm cannot be established. This conclusion is further strengthened by the highly volatile behaviour of the stock markets.

BIBLIOGRAPHY

Leverage.", *The Journal of Finance, pp. 911-922*.

Modigliani, F., and Miller, M., 1963. "Corporate income taxes and the cost ofcapital: A correction," *American Economic Review, Vol.53, pp.433-43*.

Myers, S. C. (1984). The capital structure puzzle. *Journal of Finance, 39,575- 592.*

Pandey I. M. (2004), Financial Management 9th Edition, Indian Institute of Management,

Ahmedabad. *Vikas Publishing. House P.VT. LTD. Pp. 289 – 350.*

Fama, E. F., and French, K. (2002). Testing trade-off and pecking order Predictions about dividends and debt. *Review of Financial Studies, 15, 1-33*.

Kraus, A., Litzenberger, R., H., (1973),"A State-Preference Model of Optimal Financial Leverage.", *The Journal of Finance, pp. 911-922*.

Mollik, A. T. (2008). Capital structure choice and the firm value in Australia: a panel data analysis under the imputation tax system. *Advances in Quantitative Analysis of Finance & Accounting*, **6**, *205-237.*

Health and Economical Problem of the Elder's in Rural Areas

Navin Kumar Singh

Research Scholar, Dept. of Economics, BRA Bihar University, Muzaffarpur

Abstract

The aged and elderly people, who had a dominant and important position in the family and community in the past and had contributed to society's well-being with their useful knowledge and experience, are very much a part of the present society. However, with the physical, mental, socio-cultural and economical changes in old age, the aged people are facing a number of problems due to the occurrence of changes in their roles and status. It is noted that still in many rural areas, the elderly people are playing an important role in solving problems and making decisions for the administrative problems. But they are suffering from certain socio-economic and health problems due to ageing. The present study was undertaken through survey of about 345 elderly people from 12 villages in Raghopur Block of Vaishali District (Bihar) using interview schedule. The results of the survey shows that these elders are suffering from certain socio-economic problems such as increase in loans, health problems, lack of sufficient monthly income, feeling of insecurity, etc. Health problems are the major problems of the elders as disclosed by the study. The paper concludes with the remarks that there is need to increase awareness about the government schemes among the elderly population living in rural areas.

In the twenty-first century, the family set-up has changed to divided family rather than joint family. Further, the younger people are more attracted towards the cities, where they expect the jobs. But the rural elderly people cannot adjust to the metropolitan environment. Hence, in majority of the cases, the elderly people are staying in villages and their children are working in cities.

It is estimated that there are 77 million elderly persons in India. In Bihar, the population statistics for the year 2001 show that, of the total 8.28 crores of population about 63.75 lakhs of population is above 60 years of age (Planning Commission : 2007).

Statistical Dimension of Elderly People -2001 (Age Care Forum : 2007)

- 77 million elderly population (projected to 177 Million by 2025).
- 90% with no social security
- 30% of older persons live below the poverty line.
- 33% of older persons live just marginally over the poverty line.
- 80% of older persons live in rural areas.
- 73% are illiterate, and can only be engaged in physical labour.
- 55% of elderly women are widows.

From 1901 to 2025 : 12 Million to 177 Million

- 1901-12 million elderly
- 1951- 19 million elderly
- 2001-77 million elderly
- 2025- Projected 177 million elderly.

In many cases it is found that the elderly people are neglected due to various reasons, such as sickness, unemployed, weakening of the family, poverty, lack of care from younger in the family, felling of insecurity, loneliness etc. Realizing these problems, the Government of Bihar formulated different schemes for the elderly people, such as monthly pension, free medical facilities, concessional transportation facilities, etc. But in view of the increasing number of the aged in the society, the facilities available and the budget allocation made are limited. Hence there is need to study and emphasize the care for the aged has gained importance and urgency because of the alarming increasing in the demographic figures of the aged, an indication of development of a society. Hence, the present study is made to know about the socio-economic and health problems of the elders in the rural areas.

Objectives of the Study

- To know about the socio-economic conditions of the elderly in rural areas;
- To examine the health and Mental problems of the aged;
- To know about the Government Schemes on elderly people and to examine whether the elderly people are aware about these schemes.

The study covered about 345 elderly living in different rural areas of Raghopur Block in Vaishali District (Bihar). In the context of the study, the

elderly people are of above 60 years of age. Specifically the elderly people both male and females living in 12 villages namely, Chandpura, Paharpur, Mirampur, Fatehpur, Rostampur, Jurawanpur, Hajpurwa, Bisunpur, Chaksingar, Rampur, Shivnagar & Birpur in Raghopur Block in Vaishali district were interviewed to collect the information. The study covered different aspects such as social status, economic background, mental and health problems of the elderly etc. Interview and Observation methods are used to collect the data. The collected data from the respondents is presented in the following sections.

1. Age-wise and Gender-wise distribution of the Respondents.

As stated already all the 345 respondents are of above 60 years of age and gender-wise and age-wise distribution of the respondents is shown in the following table:-

Age-wise and Gender-wise distribution of the Respondents.

Table No.1.1

Particulars	*Males*	*Females*
From 60-70 Years	85	67
71-80 years	73	32
81-90 years	30	26
91-100 Years	12	14
Above 100 Years	02	04
Total	202	143

2. Family Income of the Respondents

The income and wealth of the elderly refers to feeling of security in their life. High income status refers to more felling of security and comfortable life and vice versa. The monthly income of the respondents is stated as under.

Family Income Level of Respondents.

Table No.1.2

Particulars	*Frequency*	*Percentage*
Below Rs. 5000	126	36.69
Rs. 5001 to Rs. 8000	111	32.24
Rs. 8001 to Rs. 10000	62	17.94
Rs. 10001 to Rs. 15000	24	6.86
Above Rs. 15000	22	6.27
Total	345	100

3. Economic Problems & Concerns

The elders were called upon to tell about the problems, which made them worry about their solution. These included the daughters' marriage, son/daughter's employment, children education, increase in loans, health problems, etc. The responses of the elders are presented as under.

Economic Problems and Concerns.

Table No.1.3

Kinds of Economics Problems	*Frequency*	*Percentage*
Increase in Loans	193	56.04
Daughters Marriage	80	23.25
Children's Employee	100	29.11
Health Problems	263	76.34
Any others	57	16.62
Total	345	100

4.Mental Depression and Feeling of insecurity:

It was asked from the respondents that whether they were feeling unsecured and depressed. The different studies revealed that due to different problems such as ill health, ill treatment from the family members, more responsibilities and lack of adequate income and economic power, the elderly people are suffering from depression and feeling of insecurity. The responses of the elders covered under the study are presented as under:

Mentally Depressed and feeling unsecured.

Table No.1.4

Particulars	*Frequency*	*Percentage*
Yes	128	37.1
No	217	62.99
Total	345	100

5.Health Problems of the elders

It is noted that most of the elders, covered under the study, are suffering from different kinds of problems. Of which, major problems are cardiovascular problems, Diabetes, Asthma, Ophthalmologic Problems Psychiatric Problems, Dental Problems, Cancer etc. The collected data revealed that a few of the elderly people are suffering from more than one health ailment. The collected data presented in the following table.

Health Problems of the Elders.

Table No.1.5

Health Problems	*Frequency*	*Percentage*
Cardio-Vascular	80	32.07
Diabetes	140	40.69
Asthma	151	43.87
Ophthalmologic	123	35.69
Cancer	20	5.72

Psychiatric	104	3.25
Dental Problems	138	40.05
Others	54	15.76
None	68	19.66
Total	345	100

6. Health status of the elders

The table 1.6 shows that 122 (35.35%), respondents were very good Health condition 113(32.75%) were good health condition, 15(32.75%) normal, and 95(27.58%) were Bad health conditions.

Health Status of the elders

Table No.1.6

Health Status	*Frequency*	*Percentage*
Very Good	122	35.35
Good	113	32.75
Normal	15	4.32
Bad	95	27.58
Total	345	100

As the present study covered the elders living in rural areas, there are more illiterate elders. It is surprising that majority of the elders (about 57%) do not know about the government schemes and programmes for the elders, whereas only 43% of the elderly population know about the schemes and programmes of the governments. Hence, there is need to know about whether the elders covered under the present study know about the Government Schemes, so as to get benefit from these schemes.

Findings

- Present study covered total 345 elderly people consisting of 202 Males and 143 female respondents.
- The monthly income of about 36.69% (126) of the respondents is below Rs. 5000/-, about 32.24% (111) elders stated that their income is between Rs. 5001/- to Rs. 8000/-and the remaining respondents stated that their income is above Rs. 8000/-.
- It is emphasized from the study that majority of the elderly people in rural areas are suffering from problems of increase in loans and health problems. Specifically, about 56.04%(193) of the respondents have increase in loans, about 23.25% (80) of the elders have concern about daughters' marriage, and about 29.11 (100) of the respondents have concern over their children's employment, a major portion that is 76.34% (263) have health problems and 16.62% (57) have other problems and concerns.
- Of the total 345 respondents 128 (37.1%) are suffering from feeling of depression and insecurity.
- Health problems are major as states by the elders in rural areas. The collected data revealed that the elders covered under the study have different kinds of health ailments such as Cardio-Vascular Problems (23.07%), Diabetes (40.69%), Asthma (43.87%), Ophthalmologic Problems (35.69%), Cancer (5.72%), Psychiatric Problems (30.25%), Dental Problems (40.05%) and such other problems (15.76%). It is noted that only about 19.66% of the respondent have no health problems.

Conclusion

It is observed that a huge majority of the elders are suffering from different old age diseases and health ailments. There is need to provide medical aid to the elders. Further, most of the elder respondents do not know about the government schemes and programmes on old aged people. Hence, there is need to educate the elders and increase awareness about the schemes of the governments for the elders. In this regard, the social workers and Non-Governmental Organizations must have to act to increase the awareness about the government schemes among the elders.

References:

1. Mishra, Bikram Keshari (2004): Changing meaning of work: A Gendered perspective - labour and development Vol. 10No. June 2004
2. Rashmi Rani Agnihotri H.R. & Dr. M.A. Konour, Health and Psychological Problem of the Elders : Third Concept October, 2008.
3. Age Care Forum (2007), Age Care : Overview 2007
4. Jayakumar, B (2004), "Protecting Old Age", Kerala Calling, August, p. 13.-15
5. Planning Commission, Government of India (2007), Development Report, New Delhi : Academic Foundation, P. 171
6. Basalingamma, Halemani and Dr. S.A. Kazi : Problems of Elderly People in Rural Areas, Third Concept August, 2008

Events and Tragedy in English Literature

Dr. Prakash Kumar

Asst. Professor, Dept. of English, Gopeshwar Collage, Hathua, Jai Prakash University, Chapra

Of Course, it is fact that we are not far away from danger of considered life and further we recognize our subtle impression that it is ill treated found in something where we have to travelled for a long time. In this priceless events, which are taken from tragedy events, but mostly in English Literature. In this regarding, we have shortly discussed about tragedy events, which are taken from Shakespearears 'Hamlet' and 'Macbeth', belong to Elizabethan / Jaccobean age which deals guilt, sins, blood- shedding as well asCruelitywhose enmity have no doubt in his remarkable or masterpiece work, Shakespeare's plays are suffering from taking revenge from lust of desire or enmity full of crown throne. In Lycidas (tragedy verse poetic play) John Milton attracts audiencers attention about Edward King's advancement life how he died with his hundred sheeps in Galilean Lake where St. Peter arrives for funeral procession, In Marder in the Cathedral, T.S. Eliot has explained about four knights murdered by Thomas Backet under King Henry II who soon executed Thomas Backet. In Sailing To Byzantium, W.B. Yeats Celebrates function of life Organic decay immorality. In The Triumph of Life. P.B. Shelley observes his views about psychological journey of life which joins to melancholy strain of life. In Dr. Faustus, Christopher Marlowedeals folly mental process of Dr. Faustus which contains convenience of life and, In Sons and. Lovers, D. H Lawrence explained about psychological strain of life in which Gertrude Morel struggle adjustment circumstance meager salary, but rented house with her three children who early died also herself for this.

Key - Word :- Tragedy, Literature, Drama poetry, Learning, Understood, Novel,

Introduction :-

In this context, we will study about tragedy events in Eng. literature through tragedy plays, poems and novel on basis of imaginations, dignity and significance of characters whose important of life, remarkable, relevant among our society which are associatedwith many events, happens and incidents as well as accidental which belonged to tragedy are shown mostly in this.

We are well - known that English literature is full of mysterious events which sinuously happens, incidents have occurred sometimes unnecessarily at once which learns us a task In this present context, I am going to explain and described about considered subject - matters now.

Hamlet :- The Best Interesting Tragedy Play

William Shakespeare was not one of the greatest dramatist of the Elizabethan and Jacobean age of sixteenth century, but also a poet, who wrote thirty seven plays in which seventeen plays were written in comedy and ten plays were written in historical plays remaining were written tragedy plays like, Hamlet Othello, King Lear and Macheth.William Shakespeare also wrote poetic collections in 154 lines which later known as sonnets in blank verse.

In fact, William Shakespeare was well - known dramatist rather a poet who was regarded as "A Man of Letter" in English literature for his creation which turned a new leaf of English drama. In his dramatic writing, write agreat tragedy play Hamlet, which reflected consciousness of the audiencers on the stage.

In this regarding, he wrote tragedy play Hamlet in 1603 which was performed on the holy earth of England in 1609 Hamlet made wept out the audiencers who assembled on the stage In this regarded play as tragedy, king Hamlet of Denmark whose brother Claudius mysterious murdered king Hamlet and broke out blowing his crocodile tearsus that king Hamlet died of mysterious disease in sound - sleeping. The people of Denmark became sad due to ultimate death of king young

Hamlet, the prince of Denmark and the son of king Hamlet fallen in grief of sorrow of knowing that his father did not die, but murdered by Claudius, king and uncle who early married with Gertrude, beautiful but passionate wife of king Hamlet, and mother of the prince Hamlet.

One day, wise and faithful officer of Denmark, Bernardo and Marcellus went to Hamlet and they informed that they saw the ghost of king Hamlet bestowing crown and figured was matched previous night at soon, Hamlet believed and he father's ghost remarked him that his death was not really, but he was mysterious murdered. for above subject matters, Hamlet decided that he would takerevenge to Claudious one dayBut on the way, Claudius conforms that Hamlet is notfar from his (Claudius) guilt so he sends Hamlet toEngland with Ophelia(his beloved and Polinious's daughter)for some days. But it was misfortunes that Hamlet had toface with shipwreck's robbersinvading sailing tothe sea. In his feigned madness, Hamlet proposed a proposal to the king Claudiusand the Queen, Gertrudeto perform a re-play beforein presence of King Queenhow King Hamlet mysteriousmurderedby Claudius inSound Sleeping undelibaretly.

In the mid-play the Queen Gertrude went to palacepretending that she hadfelt headache themwhat happened for a moment with her. She was restless like a fish out of water It was cleared that King Hamlet's mysterious murdered by king Claudius reflected her heart it with grief of sorrows. Ultimately King Claudius meant that it was high voltage drama in which Secrecy was opened talkingby misbehaviour of Hamlet. Instead this replay, King Claudius.

After this, Hamlet went to palace of knowing that how Queen was restlessness like a fish out of water. As soon as, Hamlet Entered in palace, Gertrude herself murdered of rages for Claudius.For purpose, Hamlet dragged out and murdered Polonius who was listening talking between Hamlet and Gertrude, hidden deliberately.In spite of talking revenge to Claudious, Hamlet dragged out and started encountered they murdered at soon one by one existed scenes in Hamlet.

We should avoidfrom greedy like Claudious and betrayal love like Gertrude in tragedy play "Hamlet"

Lycidas :- Tragedy Grievance for Pastoral Elegy Poem

John Milton was the mostfamous poet of Puritian age of fifteen century whowas born in 1608. He wrote many trageety poems which brought up a lot of grief Sorrow in life. His poems turned a new leaf about grievance which was taken together by the best example of Lycidas. Like a civil servant for common wealth of England under Cromwell and he was known generally for version of epic poem 'Paradise Lost',wasnarrated in blank verse.

In Lycidas, John Milton has narrated about many sciencs which took aptitude of life, through his true friend Edward King of Puritan age on occasion of spiritual death of Edward king. Indeed he drawn sink in the sea with his hundred sheeps. As a pastoralelegy, Milton celebrated grievanceformournful family Lycidas. In fact, Edward King is a symbolic character, Lycidas who died early days with his hundredsheeps. It is known as shephered pastoral elegy Indeed, Lycidasis an epic in which St. Pater is a disciple of Jesus Appollo on occasion of funeralprocession, St. Peter arrives on the sea vale and he deliverance a strange speech for consolation against the earthly desires but heavenly emotion for life. Infact St. Peter arrives at the end of the funeralprocession disciple of the Jesus, of Galilean Lake

In shephered pastoral elegy, Lycidashas contradict manners which merely well-known for many characters alike shephered Lycidas, Phoebus, the Pilot and second speaker etc. are explained and described.In Lycidas, as epic is full of mysterious and miracles scenes which are seen for a moment. its talking is rarely found face to face. Infact, it has a great contradicts of life which is full of Consolation to Laminateand mournful grievance for sorrows etc. for this.

life is full of mysterious scences which are often seen in poverty.

Murder in the Cathedral :- The Best Example for Dictorship Tragedy Play

T.S. Eliet was born in 26 September 1888 in America who belonged to modernist poets of Twentieth century. He wrote his poetic, verse drama in 1935 which brought up a new leaf of life who did never known to defeat. Infact T.S. Eliot

had lust of eventual life so he started writing verse poetic drama in English literature as Murder in the cathedral ; performed in 1935 which reflected thehearts of the audiencers assembled on the stage.

In fact, it was a verse poetic tragedy play which can be taken together by eventual life as Shakespeare'sMacbeth which makes blood sheding ofknowing Crown-throne, but we are well-known that happen hasoccurredin the Murder in the Cathedral that it traced figure of enmity between ArchbishopThomas and four knights under Henry II in England in which Knights were murdered in celebration religious festival.In blood- sheding murder, King Henry II suspended the pope of church. It was started quarreling between four Knights and Archbishop Thomas Backet. The stage ofquarreling was associated with RomanCatholic Church and Commonwealth Christianity.

Indeed, T.S. Eliot is so interested in verse poetic. tragedy play that he makes the audiencers understood how a happen occurs for a little moment and soon it appears among us how to face against poverty or Crueltywhich also across from many circumstance of our life who executed Thomas Backet by king Henry II in the existed scence of Murder in the cathedral for this. In the whole scences, T. S. Eliot has explained about the thoughts of dictorship by king Henry II in England. As a matter of fact, there is a great dealings of life. which perhaps gives us Contraction of perfect feelings and which yet sharing grievance for mournful family So, T. S. Eliot sharing about verse poetic tragedy drama Murder in the Cathedral which brought up a lot of scences grievance and mournful

Sailing To Byzantium :- Ancient Greek Methology Roman cothelic poem.

B Sailing To Byzantium is an ancientGreek Colony which wasfounded a man, named "Byzas" situated on the European side of the Bosporus which linked to the Black Sea (The Mediterranean), the site of Byzantium, was associatedwith ideally located to serve as a transit and trade point between Europe and Asia

Sailing To Byzantium was written by W. B. Yeats in middle class age which was associated with religious, but holiest place for the Christianized Greek Culture of eastern toRoman Empire. It is also classical Greek mythology which brought up artistically; expressed through Hellenistic modes ofstyle and iconography. It fact in the present poem, Sailing To Byzantium. W. B. Yeats has expressed about Byzantium that the Empire was so vast and powerful civilized origins which be traced to 330 AD when the Roman Empire was dedicated continued 'New Rome' on the site of ancient Greek colony of Byzantium. Indeed, we may observe about Sailing To Byzantium is the half of Roman Empire Gambled and Soon felt in 476 the eastern half survived 1,000more years spewing a rich tradition of ancient literature and learning as well as serving a military buffer between Europe and Asia. In fact, The Byzantium Empire finally fell in 1453 after ottoman army stormed Constanope during the regin of ConstantineII.

Sailing To Byzantiumis a such poem of Greek mythologyand spiritual poem which has a perfect life. It is expressed in figure of imagination which refersimagined Spiritual and rebirth of human beings. It involes the purity of spirit as mid night arrived their final journey to English, tormoilon dolphins across the sea. W.B Yeats says that Sailing to Byzantium is a symbolic poemOrganic decay and immorality versus in which Yeats mostly describes about Eternal procession of perfect art.In this regarding Yeatsaccepts here that the images of flames flit across thetemporary pavement through they are not fed by wood or steel not disturbed by storm. He also says that blood beyond then "Spirit comes and dies into a dance"The Agini of flames that it is not a singlesleeve leaving behind all the complexities and furies of life Riding the backs of dolphins spirit after spirit arrives, flood broken on thegolden smithies of the Emperor."The marble of the dancing floor storms of the break the better furies of complexities," the storm of images that beget more images that dolphins torn that going tormented seal for this

It gives us depth of life Oldness which seldom returns again.

The Triumph of Life :- Example of Psychological Journey of the Poets Poem

P. B. Shelley was one of the most intellectualpoet of the Romantic poets of eighteenthCentury. He was born in 4 August 1792 in the, Aristocratic family who did not take mostly

desire of the nobility and he left his native land of England of his early days and he went to whels to see with Lord Byron and John Heigh, Publisher who influenced him to write some notes onliterary Criticism which made him a great critics about life. He was so influenced through Lord Byron that he did not return to his home again. Wandering, he went to permanent self Exide in Itally in 1818 and over next four produced, literary party who started of literary writing. In spite of writing literary he wrote in 1822 the Triumph, of life unfinished, but major work which many mysterious eyes -witness of life in which it was later completed by his wife Mary Shelley. Like a romantic poets, the wrote, 'The Triumph of Life' on basis of Casa Magni in Lergi on early occasionof summer in Itally.

In the triumph of life is a poem whose structure bears some resemblance to the medieval genre of the dream vision an allegory or story containing moral and religious significance through embedded within a more obvious narrative tale. Its common elements includes a poet who fells asleep in Idyllic scene, a garden or pleasant wood lulled by the soothing sound of Nature, dreaming of real people or symbolic actions which upon walking profound significance. stated in another way the dream - vision can be story of the poets psychological journey, a dream that begins in great confusion and soon ends with a vision of perfect harmony.

In the triumph of life does not strictly conform to medieval genre this genre provide a frame work for understand fantastic composed up by a dreaming poet caught up in a trance of wondrous thought.

Life is wondrous ought which is seldom lift behind.

Macbeth :- One of the best Example of blood - handstain of tragedy play.

William Shakespearewas born in 26 April 1564 in holy Trinity in Stratford upon AVON in middle class Glove maker family in England in Elizabethan age in sixteenth century. He wrote blood Shedding tragedy play Macbeth in which is mostly well-known that his tragedy play was generally written on basis of murder, killing, corruptionCrime and guilt of life's forms which are sometime shown as crueltyfor human's beings.

InMacbeth, Shakespeare has traced the figure of kingdom, Scotland where two wisdom, smart and knee Generals.

Macbeth and Banquoare returning from Norway and Ireland of wining their wars with Malcolm Cheerfully. life sun setting up, crossing from the Birnam wood General stopped hidden listening that Macbeth will be become the king of one day, appearing trio sinister witches, Macbeth becomes exclaimed with wondrously, he did not believe on his ears. Banquo eagerly wanted of knowing that if he become the king of Scotland, Triowitches, replied that Banquo could not but his son will be becoming king of Scotland, but within death of Banquo.

In thestrange meeting, Banquo had to face with Macbeth, If it was possible shall be obeliged for prohecy trio sinister witches.

On very early, king Duncan arrived to General Macbeth of congratulating that he had proud of Macbeth for issuingthat brave, and warrior will be becoming condor of Scotland who bravely won the battlementfrom Ireland and Nor way Macbeth became over joy of prophecy trio sinister witches proved. King pun can moped Macbeth that he would dine with his family in Dunsinane castle. tonight on occasion of prevail - victory along with military buffer Macbeth sent letter to Lady Macbeth that his dreaming was proved : by prophecy trio sinister witches pervious yet. Lady Macbeth planned that strike the iron while it is hot. Tonight Duncan arrived in Duns inane castle with his family along with military buffer. The couple of Macbeth decided that king's in under would conviction on chamberlains who were killed in asleep easily while Duncan's sons Malcolm and Donablain flee to England and Ireland respectively, fearing that whoever killed Duncan desire that demise as well.

Fearful of the witches prophecy that Banquo heirs will seize the throne Macbeth killed a group of hires Banquo, but they fail to kill Fleance but Fleance escapesin night, Macbeth becamefurious long as Fleance is alive, he fears that his power remains insecure.

In spite of power secure he is prophecy that he is incapable of being harmed by any man born of woman. and he will be safe untill Birnam wood comes to dunsinane castle in which Macbeth orders

that Macduff's castle be seized and must Gully Lady Macduff and her children be murdered soon. All the scences are reflected by restriction about Macbeth's power in which lady Macbeth Believes to bebloodstain on her hands, She lulled herself as from Macbeth receives news, causing him to sink into deep and pessimistic despair. He did never believe that he would defeat with English armies who gradually over whelm his army and castle. Macbeth encounters the vengeful Macduff on the battlefield, who declines that he was not of women born" but instead" untimely ripped from him mothers womb. Though he realizes that he domed, Macbeth continued to fight unitll Macduff kills and behead off him and soon Malcolm now, the king of Scotland, declarers his benevelopment for country and invites all to see him crown at scone .

Dr. Faustus :- Psychological Folly.

Christopher Marlowe was the greatest dramatist and a poet of sixteenth century who was born in February, 26, 1564 in Canterbury, Kent in England who went to king's school and he was regarded as scholarship enabled to study at corpus college, Cambridge, from late 1580 untill 1587. Assoon as we start to study about Christopher Marlowe, we find that he was a poet and dramatist of the with century on basis of ShakespeareanLiterary writing perhaps, Christopher Marlowe was the dramatist and poet of Shakespearean contemporary age in which we find mostly aweful, scenes like sinful, killing, murdering, cruelity, fearful, revenge of blood - shedding and suffering from feelings and psychological study in Marlowe's play which merely found in Dr. Faustus.

Infact, Dr. Faustus is his major works of life; written in 1592 but it is misfortunes that it was published in 1604 and was performed in 1592 early simulator year which reflected miserable condition of characters in England. Dr. Faustus is real figure of a man as John Faustus, favorite character of Christopher Marlowe, who took up briefly life sketch in playing acting of theatre for this.

In Dr. Faustus, Marlowe bears structure, that that he was so noble and gentleman that he could not pray to an ordinary man so much. In the present play, Dr. Faustus Marlowe refers, Dr. Faustus that he had gone mad because, he wandered went to Germany and sometimes treated as narrated songs which magic is delivered.

In Fact, Dr. Faustus is the folly of ambition which true, versus illusive power and his initially aims quickly give way to pranksand brings up entertainment the folly of his desire to reach for power beyond human limitations. It also fact that Faustus's is not his truely own but it rather that of Mephistopills, who is subservient to Lucifer, who is turn in constrained by God.

But, we initially may high light on good versus evil that Faustus at first choose the side of evil in his attainment of ungodly magic, but later decide to repent only to be sinful eventual facts.

In Dr. Faustus sub lime, Dr Faustus is talented scholar of Germany, who believes that he had learned which all that cense be learned by conventional means. Dr. Faustus thinks. What he is left him but magic. Dr. Faustus is offered of a choice Christian conscience by a good angel, and end the path to damnation by an evil angel.

Ampty Vessel sounds much by tanking instruct by Dr. Faustus.

Sons and Lovers :- Meager Salary Struggle.

D. H. Lawrence is the best psychological novelist of the twentieth century, who was born in 11th December 1885 in East wood, Nottinghamshire, England. He wrote many novels, short stories, poems and plays in which his recent novel Sons and Lovers was written on basis of drunken, an ordinary employ, a clerk in office and he ultimately joins to drink, his early life which decays his lungs.

Sons and lovers is that a novel which takes a place as 16th century in England which was regarded as a man who is so emotionallyconnected and influenced by his mother that he is unable to form lasting relationship as soon he encounters other woman.

In the whole part of the story Gertrude coppard falls for Walter Morel who is a poor coal miner. In this regarding, the couple marries and soon she started struggling for adjustment of circumstance on a meager salary for rented house. In fact the couple driptapart from aptitude desire of lust she birth three children Williams, the eldest son who joins in London an ordinary employ, but Williams dies up in accidental incident which makes Mrs.

Morel in great grievance of sorrow. After some time, she fells in emotional love with her second but the youngest son paul, dies up of pneumonia disease early days.

Anne, one of the youngest heir daughter Anne who drawn sink in a pond and finally she suicided herself in the rented house in the shock and great grievance of sorrow for her family.

Learning :- In this novel, the author reflects life that poverty does not come alone.

Conclusion :- Finally, we find mostly in play 'Hamlet', a man is consciousness who takes advantage getting of opportunity like king Claudius and betrayal love of Queen Gertrude, in 'Lycidas' moral death of Edward king with his hundred sheeps drawn sink in Galilean Lake in,'Murder in the cathedral'. murder of four knights under Henry II, by Thomas Backet who is finally executed in 'Sailing To Byzantium', oldness Age riding the backs of dolphins spirits, in 'The Thump of Life'the dream vision can be story of poets psychological journey, in 'Macbeth' a man's greedyness over flows sins and blood - handstain of Lady Macbeth,In Dr.Faustus psychological folly ambition of Dr. Faustus and in 'Sons and Lovers', well off economical condition of emotional loveof her children Gertrude Morel All the styles and techniques of literary writing have been interpreted what the author wants to say.

Reference :-

1. Hamlet (play) - William Shakespeare (Sahani Publication - 2010, New Delhi)
2. Lycidas - (Poem) - John Milton (British Peetry - Meg - 01 - 2021, Neeraj Publication New Delhi)
3. Murder In Cathedral (Poem) T.S. Eliot (British Poetry - Meg - 01 - 2021, Neeraj Publication New Delhi)
4. Sailing To Byzantium (Poem) - W. B. Yeats (British Poetry - Meg - 01 - 2021, Neeraj Publication New Delhi)
5. Triumph of Life (Poem) - P. B. Shelley (British Poetry - Meg - 01 - 2021, Neeraj Publication New Delhi)
6. Macbeth (Play) - William Shakespeare (Sahani Publication - 2010, New Delhi)
7. Dr. Faustus (Play) - Christopher Marlowe (Sahani Publication - 2010, New Delhi)
8. Sons and Lovers (Novel) - D. H. Lawrence (Sahani Publication - 2010, New Delhi)